ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला १९

शेर-ओ-सुख़न

भाग १

प्रारम्भसे ई० स० १९०० तककी उर्दू-शायरीका प्रामाणिक इतिहास, निष्पक्ष आलोचना और इस अवधिमें हुए प्रायः सभी गजलगो शायरोकी श्रेष्ठतम रचनाओंका संकलन और परिचय
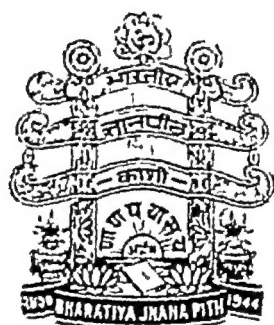
अयोध्याप्रसाद गोयलीय

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०

प्रथम सस्करण ५०००
अगस्त १९५१
मूल्य आठ रुपये

०

प्रकाशक
मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ काशी
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

मुद्रक
जे० के० शर्मा
लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद

परम स्नेही सहृदय

साहू-बन्धु श्रेयांसप्रसादजी : शान्तिप्रसादजी !

"आपकी नज़्र हैं ये लालोगुहर थोड़े-से ।
अश्के ख़ूँ थोड़े-से और लख़्तेजिगर थोड़े-से ॥"

卐 卐 卐

"तुम सलामत रहो हज़ार बरस ।
हर बरसके हो दिन पचास हज़ार ॥"

—गोयलीय

विषय-सूची

अवतरण

[उर्दू-शायरी पर एक नजर]

प्रारम्भिक युग

[दौरे मुतक़द्दमीन]

मध्यवर्त्ती युग

[दौरे मुतवस्सतीन]

पूर्वार्द्धयुगके शायर

उत्तरार्द्धयुगके शायर

प्रारम्भिक युग

[दौरे मुतक़द्दमीन]

दक्खनी शायर पृ० ५३

उर्दूके आदि शायर पृ० ५६

देहलवी शायर पृ० ६२

मध्यवर्त्ती युग

[दौरे मुतवस्सतीन]

पूर्वार्द्धयुगके शायर

उत्तरार्द्धयुगके शायर

अर्वाचीन युगपर सिंहावलोकन पृ० २३५-२७९

पूर्वार्द्ध

लखनवी शायर

लखनऊके नवाब शायर

लखनऊकी बेगमात

देहलवी शायर

उत्तरार्द्ध

लखनवी शायर

देहलवी शायर

बादशाह और नवाब शायर

सूचनाएँ—

१—शेरोसुखनके इस प्रथम भागमे प्रारम्भिककालसे अर्वाचीन युग (१९०० ई०)तकके केवल ग़ज़लगो शायरोका परिचय दिया गया है। गज़लका अर्थ है—इश्क़िया शायरी। इसलिए गज़लोंके अतिरिक्त जो महानुभाव इसमें—गीत, नज्मे, रुबाइयाँ, मर्सिये, कसीदे, मसनवियाँ[1] आदि खोजना चाहेगे या दार्शनिक और नीति सबधी[2] अशआर देखना चाहेगे, अथवा राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक प्रश्नोपर विचार विनिमय चाहेगे या किसी नेता आदिकी प्रशस्ति खोजना चाहेगे, तो वे धानके खेतमे बाजरा ढूँढेगे।

२—पुस्तकमे प्राय उन्ही ख्यातिप्राप्त शायरोका उल्लेख किया गया है, जिन्हे कि ऐतिहासिक महत्ता प्राप्त है। ऐसे बहुत-से शायर छूट गये है, जो कहनेको तो उस्ताद हुए है, मगर कलाम शागिर्दोंसे भी हलका है, अथवा जिनके न तो कलामका नमूना मिलता है, न विशेष परिचय ही। और इससे अधिक समावेशकी पुस्तकके आकारने भी इजाजत नही दी। अनुक्रमणिकामे ऐसे बहुत-से शायरोकी तालिका दी गई है, जिनका एक-एक दो-दो शेर भी दिया जाता तो पुस्तकका कलेवर दुगुना हो गया होता।

३—हमारा मुख्य लक्ष्य उत्तमोत्तम अशआरसे हिन्दी भण्डार-भरनेका रहा है। अत हमने शायरोका सभी तरहका कलाम न देकर हज़ार-हा अशआरमे-से गिनतीके श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ शेर देनेका प्रयत्न किया

---

[1]प्रसंगवश मसनवीके २-१ शेर आ गये है।

[2]इस तरह के अशआर भी मिलेगे, मगर आटेमें नमकके समान।

देहलवी शायर

बादशाह और नवाब शायर

सूचनाएँ——

१——शेरोसुखनके इस प्रथम भागमे प्रारम्भिककालसे अर्वाचीन युग (१९०० ई०)तकके केवल गजलगो शायरोका परिचय दिया गया है। गजलका अर्थ है——इश्किया शायरी। इसलिए गजलोंके अतिरिक्त जो महानुभाव इसमे——गीत, नज्मे, रुबाइयाँ, मर्सिये, कसीदे, मसनवियाँ[1] आदि खोजना चाहेगे या दार्शनिक और नीति सबधी[2] अशआर देखना चाहेगे, अथवा राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक प्रश्नोपर विचार विनिमय चाहेगे या किसी नेता आदिकी प्रशस्ति खोजना चाहेगे, तो वे धानके खेतमे बाजरा ढूँढ़ेगे।

२——पुस्तकमे प्राय: उन्ही ख्यातिप्राप्त शायरोका उल्लेख किया गया है, जिन्हे कि ऐतिहासिक महत्ता प्राप्त है। ऐसे बहुत-से शायर छूट गये है, जो कहनेको तो उस्ताद हुए है, मगर कलाम शागिर्दोसे भी हलका है, अथवा जिनके न तो कलामका नमूना मिलता है, न विशेष परिचय ही। और इससे अधिक समावेशकी पुस्तकके आकारने भी इजाजत नही दी। अनुक्रमणिकामें ऐसे बहुत-से शायरोकी तालिका दी गई है, जिनका एक-एक दो-दो शेर भी दिया जाता तो पुस्तकका कलेवर दुगुना हो गया होता।

३——हमारा मुख्य लक्ष्य उत्तमोत्तम अशआरसे हिन्दी भण्डार-भरनेका रहा है। अत: हमने शायरोका सभी तरहका कलाम न देकर हजार-हा अशआरमे-से गिनतीके श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ शेर देनेका प्रयत्न किया

---

[1] प्रसंगवश मसनवीके २-१ शेर आ गये है।

[2] इस तरह के अशआर भी मिलेगे, मगर आटेमें नमकके समान।

है। इस चयनसे शायरोंके समूचे कलामका अन्दाजा नही लगाया जा सकता। हमने सीपी-शख न बटोरकर केवल मोती चुननेका प्रयत्न किया है।

४—उर्दू-शायरीकी गति-विधिका परिचय देनेके लिए तत्कालीन भाषा-सम्बन्धी तथा चारित्रिक उत्थान-पतनके बतौर नमूना कुछ शेर अपनी रुचिके विरुद्ध भी देने पडे है, क्योकि शायरीके इतिहासमे उनका उल्लेख लाजिमी था।

५—शायरोका परिचय अत्यन्त सक्षेपमे यथावश्यक दिया गया है। उनके खानगी झगडो, आचरणो और व्यर्थकी बातोसे गुरेज किया गया है।

६—पुस्तकमे वर्णित—मीर, दर्द, जौक, मोमिन, गालिब, अमीर, दाग और हालीका परिचय शेरोशायरीमे दिया जा चुका था। फिर भी ऐतिहासिकक्रमको बनाये रखनेके लिए इनका प्रस्तुत पुस्तकमे उल्लेख अत्यन्त आवश्यक था। इनके बगैर इतिहास लँगडा-लूला रहता। अतः हमने इनका परिचय और कलाम शेरोशायरीसे सर्वथा भिन्न और नवीन दिया है। हाँ, तुलनात्मक विवेचनमे, अथवा प्रसगवश शेरोशायरीमे उल्लिखित कुछ शेर भी आ गये है, किन्तु उनकी सख्या २५-३०से अधिक नही होगी।

७—प० दयाशकर 'नसीम'के अतिरिक्त अन्य किसी हिन्दू शायरका उल्लेख नही हुआ है, जब कि हिन्दुओमे भी हज़ार-हा शायर हुए है। इसका कारण मुख्य तो यही है कि गज़लके लिए जैसी इश्किया-प्रकृत्ति और वातावरण चाहिए, वह हिन्दुओके लिए मुश्किल था। उनमे ज्यादातर फार्सीमे लिखते रहे, कुछ गीता-रामायण आदि धार्मिक ग्रथोको उर्दू-पद्यका रूप देनेमे लगे रहे, कुछ दार्शनिक और आध्यात्मिक शायरी करते रहे। कुछ गजलके मैदानमे उतरे भी तो योग्य उस्तादके अभावमे, उचित प्रोत्साहन एव पब्लिसिटी तथा अनुकूल वातावरण न मिलनेके कारण कामयाब न हो सके। कुछ हुए भी तो उनके कविता-ग्रथ न छप

सके अथवा साम्प्रदायिक मनोवृत्तिके इतिहासकारो और तजकरे नवीसोकी पक्षपात नीतिके कारण ऐतिहासिक महत्ता प्राप्त न कर सके। यही कारण है कि गजलगोईके मैदानमे एक भी हिन्दू उस्तादकी हैसियतसे मशहूर नहीं है, न उनके दीवान ही दस्तयाब है। हम चाहते तो १०-२० हिन्दू शायरोका समावेश कर सकते थे, किन्तु इतिहासकी परम्पराको खलत-मलत करना हमने उचित नही समझा। यदि सम्भव हो सका तो कुछ अच्छे हिन्दू शायरोका परिचय किसी पृथक पुस्तकमे देनेका प्रयत्न किया जायगा।

८—अक्सर हर शायरके अन्तमे हमने तारीख दी है, ताकि लेखन-कालका पता लग सके। कई जगह बहुत नजदीकी तारीखे अकित है। उतने वक्फेमे वह मजमून लिखा ही नही जा सकता। इसकी वजह यही है कि कई-कई मजमून यथावश्यक और सुविधानुसार लिख लिये गये, परन्तु किसी वजहसे पूर्ण न हो सके और जब पूर्ण हुए तो लगातार होते चले गये और तभी मजमून समाप्तिकी तारीख डाल दी गई। शायरोका कलाम पढा कभी गया, उद्धृत कभी किया गया और परिचय आदि सुविधानुसार कभी लिखा गया। कुछ स्थल सुविधानुसार आगे-पीछे लिखे गये है और उन्हे बादमे क्रमबद्ध कर दिया गया है।

डालमियानगर,
१ जुलाई, १९५१ ई०

—गोयलीय

अहवाले वाक़ई

'शेरोशायरी' प्रकाशित हुई तो एक उर्दू-अदीबने फर्माया--"इसमे कई अच्छे शुअरा रह गये है।" मैने अर्ज किया--"कई क्या, बहुत-से रह गये है, मगर मजबूरीका इलाज भी क्या[1]? फर्माइये आप किन-किन शुअराको इसमे लाजिमी समझते है, ताकि दूसरे ऐडीशनपे घटाया-बढाया जा सके?" जवाब मिला--"मीरके साथ सौदा तो जरूरी थे।" मैने कहा--"उस दौरके सिर्फ दो शायर--मीर-ओ-दर्द--मैने चुने है,

---

[1]इस मजबूरीका स्पष्टीकरण 'शेरोशायरी'मे इस प्रकार कर दिया गया था--

"शायरोकी निश्चित ३१ संख्याका बन्धन न होता और पुस्तकके आकारने इजाजत दी होती तो और भी कई शायरोका उल्लेख किया जा सकता था। ३१ शायरोमें अमुक शायर क्यों नही रक्खा गया, यह प्रश्न तो स्वाभाविक है, परन्तु वह किस अध्यायमे, कौनसे शायरके स्थानमे रक्खा जाय, यह बताना कठिन होगा।"

फ़र्माइये आप इनमे-से किसको निकालकर सौदाको रखना चाहते है ?" बोले—"इन दोनोको तो निकालना नामुमकिन है।" फिर बोले—"इस्माइल मेरठी, नून-मीम राशिद, आरज़ू लखनवी भी लाजिमी थे।" मैने कहा—"इनका स्थान 'नवप्रभात' 'प्रगतिशील युग' और 'मधुरप्रवाह' मे है; आप फर्माएँ वहाँसे किन-किनको हटाकर इन्हे रक्खा जाय।" बोले—"जो है वे तो सब लाज़िमी है, मगर यह भी जरूरी थे।" मैने कहा—"बन्दानवाज ! वह भी होते तो अच्छा था, यह भी होते तो मुनासिब था। फिर तो निश्चित ३१ सख्याका बन्धन ही टूट जाता और पुस्तक भी इतनी बोझल हो जाती कि हजरते इन्सानके उठाये न उठती।" एक उर्दू-अखबारने भी इसी तरहकी राय जाहिर की थी।

इसी तरह एक ख्यातिप्राप्त विद्वानने उलाहना दिया कि "आपने न तो अमुक-अमुक शायरोका जिक्र किया और न महात्मा गांधीपर नज्मे दी" मैने पत्रोत्तरमे लिखा—"मै इनको इस कोटिका शायर ही नही समझता कि अपनी पुस्तकमे उनका उल्लेख करता। रही महात्माजी सम्बन्धी नज्मे, सो मैने पुस्तकमे उर्दू-शायरीका सक्षिप्त दिग्दर्शन कराया है, न कि नेताओकी प्रशस्ति प्रस्तुत की है।" किन्तु, मुझे इस उत्तरसे सन्तोष न मिला। यूँ किस-किसका समाधान हो सकेगा। क्यो नही उर्दू-शायरीका प्रारम्भसे वर्त्तमान तकका इतिहास प्रस्तुत कर दिया जाय। धीरे-धीरे यह विचार जड़ पकड़ता गया और उसकी रूप-रेखा मस्तिष्कमे इस प्रकार आई—

शेरोसुख़न भाग १—प्रारम्भसे १९०० तककी गजलका इतिहास।
शेरोसुख़न भाग २—१९०१से १९५१ तककी गजलका इतिहास।
शेरोसुख़न भाग ३—नज्म और गीतोका संकलन और परिचय।
शेरोसुखन भाग ४—उर्दू-शायरोके बापू।
शेरोसुख़न भाग ५—उर्दू-शायराएँ
शेरोसुख़न भाग ६—उस्तादोकी इस्लाहे।

रूप-रेखा ऐसी बनी कि समस्त जीवन खपा दिया जाय, तो भी कार्य पूरा न हो सके। अत मन अस्थिर हो उठा। दूसरे जिन कुलियात-ओ-दीवानोके कई लाख पृष्ठ मैं कई-कई वार पढ चुका था, उनको फिर पढनेसे जी भागने लगा। लेकिन विधिका विचित्र विधान देखिये कि लाख छटपटानेपर भी मुझे इस काममें जुतना ही पडा।

शेरोशायरी छपते-छपते १३ जनवरी १९४९को मेरा जवान भतीजा चलता बना। भाईसाहब इस सदमेको बर्दाश्त न कर सके और टी० बी०के चक्करमे आ गये। वे तो फरिश्ते थे, मासूम बच्चोकी सुबकियाँ और दुल्हनका बिलखना न देख सके, खुद भी तिल-तिलकर घुलते गये और आखिर कुर्बान हो गये। मगर मैं बेहया जीता रहा और गम गलत करनेको फिर इन किताबोमे डूब गया। भाईसाहब एडियाँ रगड-रगडकर दम तोडते रहे और मैं शुअराके कलामको पढता हुआ रोता और बिसूरता रहा——

"इन आँसुओंकी हकीकतको कौन समझेगा।
कि जिनमें मौत नहीं, जिन्दगीका मातम है।"

और उसी आलममे यह पहला हिस्सा तैयार भी हो गया। भाई-साहब जब मुझे इसीमे १२-१३ घटे डूबे हुए देखते तो सिहर उठते और मेरे अस्वस्थ शरीरकी चिन्ता उन्हे रुला देती। कभी भाभीसे कहते——"मुझसे तो यही अच्छा, जिसने दु:खोसे जूझनेका क्या खूब तरीका निकाला है।" जो मैं रोज लिखता, उसे बडे चावसे सुनते। पुस्तक उनके सामने प्रेसमे चली गई थी, परन्तु वे इसे मुद्रित न देख सके। भाभी, बहू, बच्चे सब दहाड मारकर रो पडे और मैं पत्थर बना सब सहता रहा——

"हजार ऐशकी सुबहे निसार हैं जिसपर।
मेरी हयातमें ऐसी भी इक शबे गम है॥"

शेरोसुख़नकी प्रेसकापी मेरे अनन्य मित्र सुमत साहबने[1] बहुत सावधानीसे देखी है। मै स्वयं उनके पास एक माह रहा हूँ। जो शेर जरा भी वजनसे गिरा मालूम दिया, निकाल बाहर किया। जिस स्थलपर तनिक भी सन्देह हुआ, तत्काल मूल ग्रन्थसे मिलान कर लिया। २००-२५०

---

[1]सुमत साहब देहलवी है और आजकल होशियारपुर (पंजाब)मे फ़र्स्टक्लास मजिस्ट्रेट है। उर्दू, हिन्दी, अंग्रेजी-साहित्यका बहुत अच्छा शौक़ रखते है। (भारत विभाजनसे पूर्व आप रावलपिण्डीमें मजिस्ट्रेट थे और अदबी हलक़ोंके रूहेरवाँ। अच्छे-अच्छे शायर और अदीब आपके यहाँ महीनो मेहमान रहते थे। आपके जमानेमें वहाँ जो पुरलुत्फ़ सुहबतें और आलीशान मुशायरे हुए, उन्हे लोग भुलाये नहीं भूलते।) हिन्दुओं-मुस्लिमोंके बीच अब दीवार खड़ी कर दी गई है, फिर भी उनकी याद लोगोंके दिलोंसे नही मिटती और अदीब-अहबाबके खतूत आते ही रहते है। जब आप रावलपिण्डीमें 'अंजुमने तरक़्क़ीये उर्दू'के सदर मुन्तखिब हुए तो नवाब 'अच्छन' रामपुरीने लिखा--"इस हुस्ने इन्तखावपर मैं अंजुमनको मुबारिकबाद पेश करता हूँ; और आपका शुक्रगुजार हूँ कि आपने इस खिदमते अदबको अपने जिम्मे ले लिया। हक़ीक़त यह है कि बुरा-भला शेर कहनेवालोंकी तो हिन्दुस्तानमें कमी नही है, हत्ताकि हम जैसे नाअहल भी कह लेते है। लेकिन शेरका समझना और जौक़े सलीम रखना, जबानका सही जौक़ और फ़साहतका लफ़्ज; ये ऐसी चीजें है कि गैर शायर तो क्या शुअ़रा हजरातमें भी कम पाई जाती है, और मै बिला तसन्नो यह अर्ज करता हूँ कि मैंने यह सब चीजें आपमें कमाहक़्क़ू पाई। आप ही जैसे हजरात हक़ीक़तन उर्दूकी सही मायनेमे खिदमत कर सकते है। वर्ना या खालिस फ़ार्सीका नाम उर्दू हो जायगा या खालिस भाषाका; और हमारी उर्दू उस लोचसे जो इन दोनों जबानोंकी आमेजिशसे पैदा हुआ है, महरूम हो जायगी।"

मायने स्वयं फुटनोटमें लगाये और अनेक उपयोगी सूचनाएँ दीं। गालिब-पर दसों फुटनोट उन्होंने स्वयं लगाये हैं, २०-२५ शेर भी बढ़ाये हैं और ३०-४० अशआरके अर्थ भी उन्होंने लिखे हैं और वायदा किया है कि शेरोसुखनके दूसरे भागको लिखनेमें वे भी साझीदार बनेंगे और पुस्तकका एक हिस्सा वे स्वयं लिखेंगे।

सुमतसाहब अपने इस ज़िक्रसे ज़रूर भिन्नाएँगे और चीं-ब-जबीं होंगे। मगर मैं भी अपनी आदतसे मजबूर हूँ। मैंने एक पंक्ति भी किसीकी उद्धृत की है, तो उसका नाम दे दिया है। फिर मैं अपने उस हृदय-सखाका उल्लेख न करता तो मेरे मनका बोझ हलका न होता, और अपनेको घुटा-घुटा-सा महसूस करता रहता।

श्री देवीशरणजी पाण्डेय शास्त्री मेरे लेखनकार्यके साथ-ही-साथ उसकी प्रतिलिपि करते गये, इससे मुझे पुस्तकके शीघ्र प्रस्तुत करनेमें काफी सहायता मिली। अनुक्रमणिका भी उन्होंने तैयार की है।

समूची पुस्तकके गैली प्रूफ़ सुमत साहबने देखे हैं और मैंने स्वयं तीन बार देखे हैं। श्री रामावतार दुबे 'साहित्य-भूषण'ने भी प्रूफ देखनेमें मुझे काफ़ी सहयोग दिया है। शास्त्रीजी और दुबेजी धन्यवादके भूखे न होकर मेरे आशीर्वादके ही अभिलाषी रहे हैं, और वह इन्हें सदैव मिलता रहा है।

प्रिय भाई लक्ष्मीचन्द्रजीने इसे अपनी ग्रन्थमालामें गूँथनेकी कृपा की है, इसके लिए मुझे उनका कृतज्ञ होना चाहिए; परन्तु हमारे परस्पर जिस तरहके आत्मीय सम्बन्ध हैं, उनको देखते हुए किसने क्या किया, यह ज़ाहिर करना भी मुनासिब मालूम नहीं होता।

"हवास रहते तो कुछ अर्ज़ मुद्दआ करता।
धफ़ूरे इश्क़में क्या कह गया ख़ुदा जाने।"

डालमियानगर (विहार)
१ जुलाई, १९५१ ई०

अ० प्र० गोयलीय

अवतरण

दुनिया पहुँच रही है कहाँ-से-कहाँ 'शफ़ीक़' !
तुम हो शरीके महफ़िले शेरो-सुख़न अभी ॥

[उर्दू-शायरी पर एक नज़र]

उर्दू-शायरी पर एक नज़र

उर्दू-शायरी पर एक नज़र

मुस्लिम-शासनसे पूर्व बारहवी सदी तक भारतकी राष्ट्र-भाषा अपभ्रंश थी। यह भाषा हिमालयसे गोदावरी, और सिन्धसे ब्रह्मपुत्र तक बोली और लिखी जाती थी। यद्यपि इन प्रान्तोमे बहुत-सी बोल-चालकी भाषाएँ भी थी, परन्तु भिन्न-भिन्न प्रान्त-निवासी एक दूसरेपर अपने मनोभाव इसी भाषामे व्यक्त करते थे। सबकी सम्मिलित भाषा अपभ्रश ही थी। यह ई० स० आठवी सदीसे १३वी सदी तक प्रचलित रही। वर्त्तमान हिन्दीकी जननी या मूल अपभ्रंश ही है। इसका दूसरा नाम देशी भाषा भी है।

मुस्लिम-शासनसे पूर्व भारतकी राष्ट्र-भाषा अपभ्रंश थी

महापण्डित राहुल साकृत्यायनने अत्यन्त परिश्रमसे अपभ्रश कविताका सकलन किया है। वे लिखते हैं—"इसे अपभ्रश इसलिये कहते है कि इसमे संस्कृत शब्दोंके रूप भ्रष्ट ही नही, अपभ्रष्ट—बहुत ही भ्रष्ट—है। लेकिन शब्दोका रूप बदलते-बदलते नया रूप लेना दूषण नही, भूषण है। इससे शब्दोके उच्चारणमे ही नही, अर्थमे भी अधिक कोमलता, अधिक मार्मिकता, आती है। 'माता' संस्कृत-शब्द है, उसका मातु, माई, मावो तक पहुँच जाना अधिक मधुर बननेके लिये था। खेद है, कि यहाँ भी कितने ही नीम हकीमोने शुद्ध सस्कृत 'माता'को ही नही लिया, बल्कि उसमे 'जी' लगाकर 'माताजी' बना उसके ऐतिहासिक माधुर्य्यको ही नष्ट कर डाला। अस्तु, यह निश्चित है कि अपभ्रंश होना दूषण नही, भूषण था।....बारहवी-तेरहवी शताब्दी तक

अपभ्रंशका महान कवि स्वयम्भू

द्राविड भाषा-भाषी—आन्ध्र, तामिल, कैरल और कर्नाटकको छोडकर भारतके सभी प्रान्तोकी एक सम्मिलित भाषा भी थी।.. (मराठी, उड़िया, बँगला, आसामी, गोरखा, पजावी, गुजराती आदि आधुनिक भाषाएँ बारहवी-तेरहवी शताब्दीमे अपभ्रशसे अलग होती दीख पडती हैं। जिस समय (आठवी सदीमे) अपभ्रश-साहित्य पहले-पहल तैयार होने लगा था, उस वक़्त बँगला आदि उससे अलग अस्तित्व नही रखती थी) .. ..

तुलसी, सूर, कबीरके प्रथम प्रेरक अपभ्रंश कवि थे

"अपभ्रश-कवि हिन्दी-काव्यधाराके प्रथम स्रष्टा थे। उन्होने अश्वघोष, माघ, कालिदास और वाणकी जूठी पत्तले न चाटकर एक योग्य पुत्रकी तरह काव्य-क्षेत्रमे नया सृजन किया है। नये भाव, नये चमत्कार पैदा किये हैं। . नये-नये छन्दोंकी सृष्टि करना तो उनका अद्‌भुत कृतित्व रहा है। दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय आदि कई-सौ ऐसे नये छन्दोकी उन्होने सृष्टि की है, जिन्हे हिन्दी कवियोने बराबर अपनाया है। हमारे विद्यापति, कबीर, सूर, जायसी और तुलसीके ये ही उज्जीवक और प्रथम प्रेरक रहे हैं।. . इन अपभ्रश-कवियोमे स्वयभू सबसे बड़ा कवि था। वस्तुतः यह भारतके एक दर्जन अमर कवियोमे एक था। आश्चर्य्य और क्रोध दोनो होते हैं कि लोगोने कैसे ऐसे महान कविको भुला देना चाहा। स्वयभूके रामायण और महाभारत दोनो ही विशाल काव्य हैं। स्वयभूकी भाषाका प्रवाह स्वाभाविक है। उसने खामख्वाह दुरूहता लानेकी कही कोशिश नही की। पद्यस्वर बडे ही कर्णप्रिय हैं। शब्द बिल्कुल नपे-तुले हैं और रस-परिपाक तो बराबर ऊपर और-और उठता जाता है। उसका कवि-कौशल अत्यन्त श्रेष्ठ है। प्राकृतिक दृश्योका वर्णन करनेमे वह अद्वितीय है। सामन्त-समाजके वर्णनमे उसकी किसीसे तुलना नही की जा सकती। सौन्दर्यके वर्णनमे उसने कमाल किया है। विलापचित्रणमे भी उसे बडी

सफलता मिली है। मालूम होता है तुलसी बाबाने स्वयंभू-रामायणको ज़रूर देखा होगा।"[1]

ई० पू० १५००से ६०० ई० पू० तक भारतीय भाषा संस्कृत थी। किन्तु ई० स० ५००-६०० पूर्व 'बुद्ध' और 'महावीर'के समयमे संस्कृतका स्थान पाली और प्राकृतने ग्रहण किया। पालीका प्रसार ई० सन्‌के पूर्व तक रहा, किन्तु प्राकृत ईसाकी छठी शताब्दी तक प्रचलित रही। संस्कृत, पाली, और प्राकृतमे परस्पर भेद होते हुए भी बहुत कुछ समानता है। "असमानता केवल यही है कि संस्कृतके क्लिष्ट उच्चारणको सरल बनाकर पालीने तद्भव शब्दोकी रचना प्रारम्भ की। उसके भारी-भरकम व्याकरण-कलेवरको कम किया। शुद्ध संस्कृत बोलनेके लिये जहाँ छ. हजारसे ऊपर सूत्र-वार्तिकोंको याद रखनेकी जरूरत थी, वहाँ पालीने ८००-६०० सूत्रोसे ही कार्य निकाला और प्राकृतने तद्भव या उच्चारणके सरलीकरण कार्य्यको और जोर-शोरसे किया। अपभ्रशने असाधारण परिवर्तन किया। उसने ढाँचा ही बदल दिया। अपभ्रंश, सस्कृत, पाली, प्राकृतसे अत्यन्त भिन्न हो गई और हिन्दीसे अभिन्न।"[2]

अपभ्रंशसे पूर्व प्रचलित भाषाएँ

यही अपभ्रश फिर नागरी और आगे चलकर हिन्दी कहलाई। 'नगर' या 'नागर' जातिके लोग 'मानसरोवर'के निकट 'हाटक' स्थानसे निकलकर पहल 'नगरकोट'मे बसे। फिर धीरे-धीरे सारे भारतमे फैल गये, यहाँ तक कि कूर्ग और बगालमे भी फैल गये। यह अपभ्रश बोलते मे अत. इनके नगर-कोटके निकासके कारण इनकी भाषा 'नागरी' भी कहलाई।

नागरी या हिन्दीका मूलस्रोत अपभ्रंश है

---

[1] हिन्दी-काव्यधाराकी भूमिका पृ० ५-५२

[2] हिन्दी-काव्यधाराकी भूमिका पृ० ८-६

पृथ्वीराज चौहानकी पराजयके बाद जब मुस्लिम आक्रमणकारियोंने लूटमार, डाकेजनीके बजाय यहाँ साम्राज्य स्थापित करके स्थायी रूपसे रहना प्रारम्भ किया तो विजेता और विजित एक दूसरेकी भाषासे भिज्ञ होने लगे। काम चलाऊ शब्दोंका आदान-प्रदान होने लगा, परन्तु दोनोंकी भाषा संयुक्त न होनेके कारण बड़ी असुविधा रहती थी। आखिर खिलजियोंके शासन काल--(ई० स० १२९०-१३३०)मे 'अमीर ख़ुसरो'[1]ने

हिन्दी-शब्दके आविष्कारक और उसके प्रथम कवि अमीर खुसरो

---

[1]'खुसरो' ईसाकी तेरहवी सदीमे मु० पाटियाली, जिला एटामे पैदा हुए थे और खिलजी-शासनमें कई ओहदोंपर मुमताज रहे। गयासुद्दीन बलबन बादशाह इनकी बड़ी इज्ज़त करता था। 'तूतियेहिन्द' इनकी उपाधि थी। ये फारसीके बहुत बडे शायर हुए है, संगीतके भी अत्यन्त मर्मज्ञ थे। इन्हीने वीणासे सितारका आविष्कार किया है। कई पक्के गाने भी ईजाद किये हैं। इन्हीने सबसे पहले फ़ारसी-मिश्रित कविताएँ लिखी। औरतोके लिये गीत और बच्चोके लिये पहेलियाँ, मुकरनियाँ, आदि लिखी। युवको-युवतियोके लिये दो-सुख़ने दोहे भी लिखे। बाज शेर ठेठ हिन्दीमे भी लिखे। उनकी भाषाका चमत्कार देखिये--

पहेली--

तरवरसे इक तिरिया उतरी उसने बहुत रिझाया।
बापका उसके नाम जो पूछा आधा नाम बताया॥
आधा नाम पितापर प्यारा बूझ पहेली मोरी।
अमीर खुसरो यूँ कहे अपना नाम नबोली॥

उत्तर--निम्बोली

यानी तरवरकी तिरियाने अपने बापका नाम आधा (नीम)

ऐसी मिली-जुली भाषाका सूत्रपात किया, जिसे हिन्दू-मुस्लिम सरलतासे व्यवहृत कर सके)

बताया। नीम फ़ारसीमे आधेको कहते हैं और भारतमे नीम एक पेड़ होता है, और अपना नाम नबोली कहकर पहेलीमें जवाब भी दे दिया है और आधा नाम नीम-बोली कहकर सीधी-सादी बातको पहेली भी बना दिया। इसी तरहकी दो पहेलियाँ और भी दर्ज की जाती हैं—

फ़ारसी बोली आईना, तुर्की सोच न पाईना।
हिन्दी बोलते आरसी, आये मुँह देखे जो उसे बताये॥

उत्तर—आईना (दर्पण)

बीसोंका सर काट लिया।
ना मारा ना ख़ून किया॥

उत्तर—नाख़ून

मुकरनी—

सगरी रैन मोहि संग जागा, भोर भई तब बिछुड़न लागा।
उसके बिछुड़त फाटे हिया, ए सखि! 'साजन' ना, सखि! 'दिया'॥

उत्तर—दिया (दीपक)

इसमे 'साजन' और 'सखी' के बीचमे 'ना' डालकर भूल-भुलैयामें डाला है। 'ना' को साजनके साथ रखा नही कि सखीको दियाका जवाब मिल गया।

सरब सलोना सब गुन नीका। वा बिन सब जग लागे फीका॥
वाके सरपर होवे कोन। ऐ सखि 'साजन' ना, सखि! 'लोन'॥

उत्तर—लोन (नमक)

जिस मेल-जोलकी भाषाका खुसरोने सूत्रपात किया था उसका उन्होंने स्वयं नाम-संस्करण 'हिन्दी' 'हिन्दवी' किया।—

वह आवे तब शादी होय, उस बिन दूजा और न कोय।
मीठे लागें वाके बोल ऐ सखि 'साजन' ना, सखि! 'ढोल'॥
उत्तर—ढोल

सावनके गीत—

जो पिया आवन कह गये अजहुँ न आये, स्वामी हो।
आवन कह गये आये न बारह मास॥

जिन स्त्रियोंके पति देशमें ही हैं, वे फिर सावनमें क्या गाएँ? उनके लिए भी लिखा। नई नवेली ससुरालमें गीत गा रही है—

अम्मा मेरे बाबाको भेजियो री कि सावन आया।
बेटी तेरा बाबा तो बूढ़ा री कि सावन आया॥

अम्मा मेरे भाईको भेजियो री कि सावन आया।
बेटी तेरा भाई तो बाला री कि सावन आया॥

अम्मा मेरे मामाको भेजियो री कि सावन आया।
बेटी तेरा मामा तो बाँका (छैला) री कि सावन आया॥

सीधे-सादे शब्दोंमें पीहर जानेकी उमंगको, और माके न बुला-सकनेकी मजबूरीको, कैसे हृदयग्राही शब्दोंमें व्यक्त किया है, कि यही गीत विरदेजबान (कण्ठस्थ) हो गये।

एक बार 'अमीर खुसरो' कहीं जा रहे थे। मार्गमें प्यास लगी तो पनिहारियोंको कुएँ पर पानी भरते देख उनसे पानी पिलानेको कहा, तो पनिहारी उन्हें पहचान गईं। चारों पनिहारियों ने अपना एक-एक शब्द—खीर, चर्खा, कुत्ता और ढोल दिया और ज़िद पकड़ गईं कि जब तक

यानी अपभ्रंश भाषा जो नागरी भी कहलाने लगी थी और दिल्ली, मेरठके इलाकोंमे जिसे खड़ी बोलीका रूप दिया जाने लगा था। 'अमीर

इन पर पहेली नहीं कहा जायगी वे पानी नही पिलायेंगी। आखिर खुसरो ने खीजकर कहा—

'खीर' पकाई जतनसे 'चर्खा' दिया जला।
आया 'कुत्ता' खा गया, तू बैठी 'ढोल' बजा॥
ला पानी पिला॥

दुसुख़ने—

गोश्त क्यों न खाया, डोम क्यों न गाया ? उत्तर—गला न था।
जूता क्यों न पहना, समोसा क्यों न खाया ? उत्तर—तला न था।
अनार क्यों न चखा, वजीर क्यों न रखा ? उत्तर—दाना न था।

दुसुख़ने फ़ारसी-उर्दू—

सौदागर चे मे बायद ? बूचेको क्या चाहिये ? उत्तर—दो कान
(सौदागरको क्या चाहिये) (अर्थ दुकानसे है और दो कानसे भी)
तिश्नारा चे मे बायद ? मिलापको क्या चाहिये ? उत्तर—चाह
(प्यासेको क्या चाहिये) चाहके मायने कुआँ और प्यार दो होते है।
शिकार ब चे मे बायद करद ? क़ुव्वते मग़जको क्या चाहिये ?
उत्तर—बादाम
(शिकार किस चीज़से करना चाहिए ? मस्तिष्कशक्तिको क्या चाहिये ?)
बादामका अर्थ 'जालके साथ' और मेवा भी है।

ग़ज़लका नमूना—

ज़हाले मसकीं मकुन तग़ाफ़ुल दराये नैना बनाये बतियाँ।
कि ताबे हिजराँ नदारम ऐ जाँ ! न लेवो काहे लगाय छतियाँ॥

ख़ुसरो'ने उसमे कुछ फारसी-तुर्की शब्द मिश्रित करके उसे 'हिन्दी'[1]

(हमारी मसकीन हालतसे बेख़बर न होकर नयनो मे आकर बात करो। प्रीतम ! मुझमे अब हिज्र (विरह) सहन की शक्ति नही, मुझे सीने से क्यो नही लगाते ?)

शवाने हिजराँ दराज़ चूँ ज़ुल्फ़, बरोजे वस्लत चूँ उम्र कोताह।
सखी पियाको जो मैं न देखूँ तो कसे काटूँ अँधेरी रतियाँ ?

(विरहकी रात जुल्फोकी तरह लम्बी और मिलनके दिन उम्रकी तरह छोटे है।)

यकायक अज़दिल दो चश्मे जादू बसद फ़रेबम बबुर्द तस्कीं।
किसे पड़ी है जो जा सुनावे पियारे 'पी'को हमारी बतियाँ ॥

(यकायक दो जादू भरी आँखोने फरेब करके हमारे हृदयकी तस्कीन—शान्ति छीन ली।)

चूँशमअ़ सोज़ाँ, चूँज़र्रा हैराँ, ज़कहरे आँ मह बगुश्तम आखिर।
न नींद नैना, न अंग चैना, न आप आवें न भेजे पतियाँ ॥

(शमाकी तरह जलती हूँ, ज़र्रेकी तरह हैरान हूँ, उस चन्द्रमुखीके अत्याचारसे मेरा बुरा हाल है।)

बहक़्के रोज़े विसाल दिलबर ! कि दाद मारा फ़रेब 'ख़ुसरो'।
सपीत मनके दराय राखूँ जो जाय पाऊँ पियाके खतियाँ ॥

(ए ख़ुसरो, सच बात तो ये है कि विसाल (मिलन) के रोज़ मुझे दिलबर ने फरेब दिया। यदि प्रियतमका पत्र मिले तो प्रेम पूर्वक उसे मनमे रखलूँ।)

—आबेहयात, पृष्ठ ७१-७७

[1] भारतवर्षका 'हिन्द' नाम यूनानियोंके आक्रमण-कालमें पड़ा, क्योकि

'हिन्दवी"[1] नाम दिया। अमीर खुसरोने हिन्दु-मुस्लिम दो धाराओंका ऐसा समन्वय किया कि वह संगम बन गई। मौलाना आजादके शब्दोंमें—"खुसरोने फारसीका नमक मिलाकर हिन्दीके जायकेमें एक अजीब लुत्फ पैदा कर दिया।"[2] परन्तु खेद है कि बादके शायरोंने आटेमें नमक न मिलाकर नमकमें आटा मिला-मिलाकर सब स्वाद किरकिरा कर दिया। यानी आटेके बजाय नमकको ही खाद्य समझ लिया और उसमें ज़रा-सा आटा नमककी तरह डालने लगे। जिससे सब गुड गोबर हो गया।

हिन्दी-उर्दू दो भिन्न धाराएँ

खुसरोके इस हिन्दी-हिन्दवी संगमपर उसके बाद कबीर, जायसी, रहीम, रसखान वगैरह सैकड़ों कवियोंने शंख भी बजाया और अज़ान भी दी; परन्तु यह धारा अविच्छिन्न न बहने पाई और तास्सुबका बाँध बाँधकर (१७०० ई०के बाद) उसमेंसे एक अलग नहर निकाली गई जो पहले 'रेख़्ता' और बादमें (१९०० सदीमें) 'उर्दू' कहलाई। अब खड़ीबोली नागरीकी दो धाराएँ बहने लगीं। अरबी-फ़ारसी मिश्रित भाषा 'उर्दू' और संस्कृत-निष्ठ भाषा 'हिन्दी' कहलाने लगी। परिणाम इसका यह हुआ कि हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति एकीकरण होनेके बजाय वे उत्तरोत्तर दूर-दूर बहती चली गईं। "हकीकत यह है कि ज़बानेउर्दू उस हिन्दी या भाषाकी शाख़ है जो सदियों तक देहली और मेरठकी तरफ़ बोली जाती थी और जिसका तअ़ाल्लुक 'सूरशेनी-

---

वे 'स'का उच्चारण 'ह' करते थे और सिन्धु नदीके पार बसे होनेके कारण वे भारतको 'हिन्द' और उसके निवासियोंको हिन्दुस्तानी कहने लगे थे।

[1] अर्थात् भारतवर्षकी भाषा।

[2] आबेहयात, पृ० ७१

प्राकृत'से विलावास्ता था। यह भाषा जिसे मगरबी (पश्चिमी) हिन्दी कहना बजा है जबाने उर्दूकी अस्ल माँ[1] समझी जा सकती है।"[2]

आमतौरपर 'उर्दू' फारसीकी एक शाख़ समझी जाती है, परन्तु यह धारणा भ्रामक है। वास्तवमे 'उर्दू' हिन्दी-खडीबोलीकी ही एक विरासत है जिसे रग-बिरगे फूलोसे अलकृत किया गया है। 'उर्दू'मे अरबी-फारसीकी अधिकताके निम्न कारण थे—

उर्दूमें फ़ारसीकी अधिकताके कारण

१—शासक अरबी-फारसी भाषा-भाषी थे।

२—फारसी राज्य-भाषा होनेके कारण हिन्दू भी पढनेको विवश हुए और शासकोकी भाषा होनेके कारण फारसी-शब्दोको अधिक-से-अधिक व्यवहृत करनेमे उसी प्रकार गर्वका अनुभव करते थे, जिस प्रकार वर्तमानमे अधिकतर व्यक्ति अंग्रेज़ी-शब्दोके उच्चारणमे शान समझते है, और बेमलाल अंग्रेज़ी-बाहुल्य भाषाका प्रयोग करते है।[3]

३—शासक अपने साथ बहुत-सी—वस्त्र[4], भोजन[5], फल-

---

[1] 'मा' नही 'नानी' लिखना चाहिये। माँ तो अपभ्रंश है और अपभ्रंशकी जननी प्राकृत है।

[2] तारीखे अदबे उर्दू, पृ० १।

[3] जैसे—एक डाक्टर चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, कुछ इस तरहकी जबान बोलेगा—'मै कैलकटासे थर्सडेको स्टार्ट होकर फ्राइडेको मौनिङ्ग ट्रेनसे इलाहाबाद पहुँचा। वहाँ पेशेण्टको देखा, वह होपलेस कण्डीशनमें था, फिर भी प्रसक्रिप्शन लिखना पड़ा।"

[4] लबादा, कुरता, क़बा, चोग़ा, आस्तीन, गिरेबान, पायजामा, इज़ार, रूमाल, शाल, दुशाला, तकिया, गावतकिया, बुर्क़ा, आदि।

[5] दस्तरख्वान, चपाती (हिन्दीमें रोटी कहते थे, रोटी हिन्दी शब्द है जो उर्दूने भी अपना लिया है), शीरमाल, बाकरख़ानी, पुलाव, ज़र्दा

मेवा[2] आदि ऐसी नई वस्तुएँ लाए जो यहाँ पहले होती ही न थी। इसलिये उन वस्तुओंके मूल शब्द ज्यों-के-त्यों बोले जाने लगे। जिस प्रकार कि अंग्रेजीके—रेलवे, पोस्टआफिस, डाक्टरी, इंजीनियरिंग, बिजली, साइन्स, मशीनरी, फ़ैक्टरी, फर्नीचर, राजनीति, शासन, फैशन, युद्ध आदि सम्बन्धी कई हजार शब्द जाने-अनजाने जबानपर चढ गये हैं और अशिक्षित भी अनायास ही प्रयोगमे लाते रहते हैं।

४—कई हजार ऐसे शब्द जो राज्य-भाषा-भाषी होनेके कारण बार-बार प्रयुक्त होते थे, ज़बानपर इस तरह रवाँ हो गये कि उनके हिन्दी शब्द सर्वसाधारणको सूझ नही पडते हैं और प्रयत्न करनेपर ही हिन्दी पर्यायवाची शब्द याद आते हैं।[3] और-तो-और शतरंज (चतुरंगिनीसे

क़लिया, क़ोरमा, मुतंजन, तुरंजन, फिरनी, हरीरा, लौज, मुरब्बा, फ़ालूदा, गुलाब, बेदमुश्क, ख़्वान, तबक, तश्तरी, रकाबी, कफगीर, चमचा, नान-बाई, हलवाई, आदि।

[2]पिश्ता, शहतूत, बेदाना, ख़ुबानी, अंजीर, नाशपाती, अनार, फ़ालसा, चिलगोजा, आदि।

[3]जैसे—कमर, दुआ, बीमारी, तकलीफ, तबियत, मिजाज, दूकान, मकान, बाजार, बन्द, महल, देहात, फ़ैसला, अमीर-गरीब, आबादी, बरबादी, बहार, तकाजा, कागज, क़लम, दावात, जिक्र, सिपाही, मालिक, इज्जत, आबरू, याद, क़द, तेज, सुस्त, ख़रीदार, माल, दारोग़ा, नजराना, शिकायत, हौसला, बला, ऐब, होश-हवास, होशियार, मस्त, सरकार, दरबार, जुलूस, क़ौल-क़रार, जादू, परहेज, बदजबान, बयान, रंगीन, रंगरेलियाँ, मजबूत, प्याला, क़िस्सा, शौक, बदनाम, रोशनी, नशा, मजाक, मौसम, फ़स्ल, मामला, रिश्ता, शोरगुल, आदत, आमदनी, दीवार, दर-वाजा, तमाशा, सैर, नोक, नक़्शा, परदा, बरामदा, मैदान, चादर, मसनद, बिस्तर, इरादा, नीयत, तूफ़ान, ताजा, पेशा, फ़र्श, जायदाद, दलाल,

चतुरंग) भारतीय आविष्कार होनेपर भी बिल्कुल 'वी पर्शियन' दीख पड़ने लगी। उसका राजा 'बादशाह', मंत्री 'वज़ीर' हस्ती 'फील' या

वकील, नकल, असल, मनहूस, परीशान, परी, पलंग, पासंग, पुल, पेच, पेशगी, पैदावार, बराबर, बर्फ, बगल, रेशम, मायने, सादा, बदनाम, आम, ख़ास, दीवानखाना, तूल-तवील, गुंजाइश, आसार, पैरवी, रिहाई, रसाई, तारीख, पता, जिगर, रंज, अमीन, सरदार, फुर्सत, रुख़सत, मज़दूर, शर्त, मेज़, तख्त, शऊर, महकमा, रियासत, खंजर, मखमल, चिकन, हरकत, रुतबा, नकाब, नाजुक, फीलख़ाना, क़द्र, पंजा, मालूम, सलाह, मशवरा, मुहर, वास्ते, इलजाम, मुकाबला, शहर, पसन्द, दिलचस्प, शहीद, मुहल्ला, जर्राह, नमूना, इत्र, रोगन, काफी, अर्सा, तनाव, मददगार, जवानी, वज़न, पिंजरा, नहर, रफ्तार, कसरत, परवरिश, दबदबा. दगाबाज, नसीहत, गलतफहमी, बहाना, हीला-हवाला, मलाल, पोशाक, जोग-खरोग, पुर्जा, गुमराह, बदला, तब्दीली, गारत, शर्बत, कब्ज़, मामूली, कस्बा, तसल्ली, जबरदस्ती, रईस, हैरानी, लिफ़ाफा, गश, पहलवान, चुस्त, चालाक, मुर्दा, लाश, कफन, चीख़, इमारत, रद्दी, बालिश, यानी, तबला, सितार, क़ैंची, करामात, किराया, बदमाश, दावा, मुहावरा, कारख़ाना, लिहाफ, शाबाश, गबन, पानदान, शौकीन, माजरा, जल्लाद, नाश्ता, गनीमत, गुलदस्ता, मसविदा, जहाज, ऐलान, ऐयारी, खफ़ा, रिश्वत, बगैर, चश्मा, ऐनक, सदमा, मोम, मीनाकारी, नक़्द, नौकर, विलायत, चुगली, मवेशी, हौज, बनफ़्शा, जीरा, ज़ुकाम, मर्दाना, जनाना, क़लई, मरहम, ज़मानत, शेख़ी, सुख़न, चर्खा, दरकार, जिल्द, दस्तकारी, आतशबाजी, मालामाल, दर्जी, मुकदमा, पैरवी, यकतरफ़ा, मुनादी, चापलूस, हजामत, बजाज, बस्ता, कमीना, गप, बिसाती, तरस, बारात, चन्दा, दहेज, लतीफा, लकवा, लुच्चा, नागा, बुरादा, मकर, कसरत, पुल, हर्जाना, जुर्माना, चेचक, वगैरह।

हाथी', अश्व 'अस्प' (घोड़ा), रथ 'रुख़', और पदाति 'पियादा' बन बैठा। और बिसातको पहले क्या कहते थे, यह हमे स्वयं याद नही आ रहा है। इसी तरह यहाँ घुड़सवारीका प्राचीन रिवाज था, परन्तु इसमे भी ऐसा

अरबी-फ़ारसीके बहुत-से शब्द अर्थ-परिवर्तन करके उर्दूमे लिये गये। जैसे--

फ़ीलसोफ़--यूनानी शब्द है। जिसका अर्थ हकीम होता है; किन्तु उर्दूमे तेज, तर्रार, फ़रेबी, मक्कार, बदबातिनको कहते है।

ख़सम--अरबी शब्द है जिसका अर्थ शत्रु है, किन्तु उर्दूमे देखिये कितना प्राणप्यारा 'शौहर' अर्थ हुआ है।

तमाशा-सैर--अरबीमें रफ़्तारके अर्थमें आता है। उर्दूमे जुदा ही लुत्फ़ देता है।

इख़लास--अरबीमे ख़ालिस करनेको कहते है। उर्दूवाले प्यार, मुहब्बत, इख़लास एक मायनोंमें इस्तेमाल करते है।

ख़ैरात--अरबीमें नेकियों और उर्दूमें दानके लिये आता है।

तकरार--अरबीमें दोबारा कहने या काम करनेके लिये प्रयुक्त होता है, उर्दूमे झगड़ेके लिये।

ख़ातिर--अरबी-फ़ारसीमें दिल या ख़्यालके मौक़ेपर बोलते है, उर्दूमें आदरके लिये।

रोजगार--फ़ारसीमें जमानेको, उर्दूमें आजीविकाको कहते है।

दाई--फ़ारसीमें मासी (माँकी बहन)को और उर्दूमें बच्चा जनानेवाली या दूध पिलानेवालीको कहते है।

पतंग--फ़ारसीमें रोशनदानको और उर्दूमे परवानेको तथा हिन्दीमे कनकौवेको कहते है।

परचम--फ़ारसीमें पहाड़ी गायोंके बाल और दुमको, उर्दूमे झण्डेको कहते है।

कायाकल्प किया कि देखते ही बनता है। सवार, साईस, अस्तबल, जीन, जीन-पोश, लगाम, तग, नाल, बाग, सब ऐसा भेष बदलकर आये कि सूरत पहचानी नही जाती।

५––यह आश्चर्यकी बात है कि उर्दूका प्रारम्भ गद्यसे न होकर पद्यसे हुआ। गोया बच्चीने बोलनेसे पहले गान अलापा। प्रारम्भके सभी कवि अभारतीय और फारसीके मँजे हुए शायर थे। अत वे अधिक-से-अधिक फारसी और कम-से-कम उर्दू-हिन्दीका व्यवहार उसी प्रकार करते थे जिस प्रकार वर्तमानमे अगरेज अग्रेजी-हिन्दीका समिश्रण करके बोलते है।

६––उर्दूके प्रारम्भिक शायर चूँकि सब अभारतीय थे, और शासक जातिके थे, अतः स्वभावत उन्हे अपनी सस्कृतिपर गर्व और यहाँकी अच्छी-से-अच्छी बातसे चिढ या नफरत होना लाजिमी था। इसीलिये उन्होंने देशी भाषाके शब्दोके बजाय अधिक-से-अधिक फारसी-अरबी शब्दोका समावेश किया। छन्दकी बहरें भी फारसीकी चुनी और उपमा, उदाहरण और अलकार भी फारसीसे ही उठा लिये। उन्हे नौशेरवाँ बादशाहके समक्ष भारतके सूर्यवशी, कुरुवशी न्यायी शासक सुझाई ही न पडे। हातिमकी सख़ावतके आगे उन्हे कर्ण, मोरध्वज, हरिश्चन्द्र, दधीचि

पिशवाज़––फ़ारसीमें मुसाफिर या महमानके स्वागतको और उर्दूमें उस लिबासको कहते है, जिसे पहनकर वेश्या महफ़िलमें नृत्य करती है।

दबंग––फ़ारसीमें पस्त-फ़ितरत (कायर)को और उर्दूमें बारौब और दिलेरको कहते है।

दंग––फ़ारसीमें अहमक़को और उर्दूमें हैरतजदा हो जाने या आश्चर्यान्वित होनेको कहते है।

कमरा––फ़ारसीमे उस स्थानको कहते है जहाँ रातको चौपाये बाँधे जाते हों और उर्दूमें मकानके एक विशेष स्थानको कहते है।

सब घटिया दिखाई दिये। उन्हे सीता-राम, नल-दमयन्ती, उर्मिला-लक्ष्मण, दुष्यन्त-शकुन्तलाके प्रेम-विरहसे लैली-मजनूंके इश्कमे ज्यादा सोज़ोगुदाज़ मालूम दिया। सौन्दर्यमे यूसुफके आगे राधा-मोहन, द्रौपदी, उत्तरा सब फीके जचे। और-तो-और, भीम, अर्जुन, जयद्रथ, कीचक, रावण, कुम्भकर्णको न जगाकर सोहराबोरुस्तमको कब्रसे खीच लाये। सावित्री, अनुसूया, अजना-जैसी पतिव्रता नारियोसे अधिक आकर्षण उन्हें व्यभिचारिणी तुर्कीमे मिला। कोयल, पपीहेकी हूक उनके हृदयमे हलचल क्या खाक मचाती ? जबकि उनके हाथोंपर बुलबुल बैठी रहती थी और घरोंमे मुर्गियाँ कुकडूं-कूँ बोलती रहती थी।०

७—उर्दूके ये प्रारम्भिक शायर भारतीय भाषा और सस्कृतिसे अनभिज्ञ थे। इसलिये भी अभारतीय शब्द, उपमा, अलकार, उदाहरण अधिक-से-अधिक उर्दूमे समोये गये।

८—शासक फारसीदाँ थे। इसलिये उनपर अपने भावोको व्यक्त करने तथा उन्हे रिझानेके लिये मुसलमानोंकी तरह हिन्दू भी अधिक-से-अधिक फारसी शब्द प्रयोग करने लगे और हिन्दू होते हुए भी शायरीमे—अल्लाह, खुदा, कयामत, हश्र, किबलओकाबा, दैरो-हरम आदि हजारों ऐसे शब्द व्यवहृत करने लगे, जो केवल मुस्लिम संस्कृतिसे सम्बन्ध रखते थे और भारतीय सस्कृतिके विरुद्ध होते थे।०

फ़ारसीकी नक़लके कारण उर्दूकी हानियाँ

परिणाम इसका जो हुआ, वह 'तारीखे अदबे उर्दू'के शब्दोंमे पढिये—"इन्ही वजूहातसे यह होनहार बच्चा अपने हकीकी वाल्दैनसे जुदा होकर अपने मसनूई (बनावटी) वाल्दैनकी आगोशे-मुहब्बतमे तरबियत पाता रहा। अस्ल ज़बानकी खूबियाँ जिनमे उर्दूकी इब्तदा हुई थी बहुत कुछ फना हो गई।"[1]

---

[1]तारीख़े अदबे उर्दू, पृ० ८-९

२—फ़ारसी-अरबीके रीतिरिवाज तथा पारिभाषिक शब्दोकी भरमारसे उर्दू वास्तविकतासे हटकर सिर्फ नकलची रह गई।[1]

३—फ़ारसीमे जिन भावोको हजारो शायर प्रकट कर चुके थे, उन्ही उगले हुए भावोको उर्दूमे सँजोनेके लिये होड़-सी लग गई। हर शायर बार-बार इन कहे हुए भावोमे नवीनता और चमत्कार लाना चाहता था। सचाई कबतक साथ देती? लाचार झूठका पल्ला पकड़ना पडा, और फिर ऐसी बेनुकत झूठ बोली और बेपरकी उडाई कि शायरी का नाम ही झूठ हो गया। 'आतिश' जैसो को लिखना पडा—

'आतिश' बुरा न मानियो हक-हक जो पूछिये।
शायर है हम, दरोग़[2] हमारा कलाम है॥

४—फारसीकी अन्धी अनुयायी होनेके कारण उर्दूने अप्राकृतिक व्यभिचार (लौडेबाजी) भी गलेमे बॉध लिया।

५—फारसी-शायरी विलासितामे सराबोर थी। भारतके बादशाह और नवाब भी विलासी थे। अधिकाश उर्दू-शायरोकी आजीविकाके साधन यही लोग थे। अत इनको प्रसन्न करनेके लिये खुशामदाना कसीदे और विलासिताको उभारनेके लिये जो गजले कही गई उनमें चाटुकारी, ऐय्यारी और अकर्मण्यताका समावेश होना लाज़िमी ही था। गजलोमे अप्राकृतिक व्यभिचार और बाजारू इश्ककी भरमारसे ही तसल्ली नही हुई। बल्कि 'रेख्ता' कहते-कहते कुछ लोग 'रेख्ती' भी कहने लगे, जिसे हिजड़ोकी बोली कहा जा सकता है। उस वक्त नवाबों, बादशाहोके चालचलन कैसे थे, आमजनताका झुकाव किस तरफ था—यह रेख्तीके आविष्कारसे भली भॉति जाना जा सकता है, क्योकि साहित्य तो एक दर्पण है, जो अपने सृजन-समयकी जनता और कविके

---

[1] तारीखे अदबे उर्दू, पृ० ४२

[2] झूठ

भावोंको प्रतिबिम्वित करता रहता है।[1] जब आजीविकाका साधन बादशाहों, नवाबों और रईसोंको समझा जाने लगा तो, उनकी कृपादृष्टि प्राप्त करनेके लिये खुशामदाना क़सीदे ही नही लिखे गये, अपितु शायर परस्पर कीचड़ भी उछालने लगे। प्रतिद्वन्द्वितामे एक दूसरेको उखाड़ फेकनेका जघन्य-से-जघन्य उपाय करने लगे। यहाँ तक कि जो कला कविता-क्षेत्रमे प्रकृतिकी ओरसे सौन्दर्य भर देनेके लिये बख्शी गई थी, उसका सदुपयोग (?) परस्पर फब्तियाँ कसनेमे होने लगा। ऐसी हालत देखकर 'मुसहफी'को लिखना पड़ा—

बज्मे शुअरा है या यह मुर्ग़ियों की पाली है ? ०

इसी प्रतिद्वन्द्विताके कारण उर्दू-शायरीमे 'हिजो'[2]का आविष्कार हुआ। मौ० मुहम्मदहुसेन 'आजाद' लिखते है—"एक बार मुसहफी और इशामे हिजो हुई तो **नवाब आसफ़ुद्दौला** लखनऊसे बाहर गये हुए थे। वापिसीपर जब उन्हें इस हिजोबाजीका इल्म हुआ तो उन्हे अपनी इस ग़ैरमौजूदगीका बड़ा मलाल रहा। उन्होने फौरन दोनो बाकमालोकी हिजो मँगाकर बड़े शौकसे सुनी और दोनोंको इनाम दिया"।[3]

रेख़्ती और हिजोपर ही सब्र नही हुआ, रंगीन मिजाजोंने 'हज़ल'[4] का

---

[1]रेख़्तीके आविष्कारक सआदतयारख़ाँ 'रंगीन' थे। उनका और रेख़्तीका परिचय मध्यवर्ती अध्यायमें क्रमानुसार मिलेगा।

[2]हिजोके ईजाद करनेवाले 'सौदा' थे। उनका और हिजो का उल्लेख मध्यवर्ती अध्यायमे क्रमानुसार मिलेगा।

[3]आबेहयात, पृ० २८५

[4]"हज़ल'का एक भी उदाहरण देनेमें हम असमर्थ है। इसे सुनकर निर्लज्जता भी दुम दबाकर भाग जाती है। मीर अटल नारनौली, मीर जाफ़रजटल, जानी, चिरकीन, उफ़क़, शफ़ीक़ और मीरग़ुलामहुसेन बुरहानपुरी इस तरहकी गन्द उछालनेमे मशहूर हुए है।

भी आविष्कार कर डाला, जिसमे स्त्री-पुरुषोके गुह्य अंगोंका खुल्लम-खुल्ला उल्लेख और मैथुनका विस्तारके साथ अश्लील-से-अश्लील शब्दोमे वर्णन किया। इन हज़लियातमे वह कीचड उछाली गई है कि हया और गैरतकी आँखें नीची हो जाती हैं।

उर्दूमे फारसीके इतने अधिक सम्मिश्रणसे तग आकर मौलाना मुहम्मदहुसैन 'आज़ाद'-जैसे उर्दूके अमर लेखकको खीजकर लिखना पडा—"उर्दूमे फारसीका रंग बहुत तेजीसे आया। यह रंग अगर उसी कदर आता कि जितना चेहरेपर उबटनेका रग या आँखोंमे सुर्मा, तो खुशनुमाई और बीनाई (नेत्रज्योति) दोनोंको मुफीद होता। मगर अफसोस कि फार्सीकी शिद्दत (अधिकता)ने हमारे कूवतेबयान और आँखोको सख्त नुकसान पहुँचाया। और ज़बान (साहित्य)को खाली बातोंसे फ़कत तवहुमातका स्वाँग (खोखला-निर्जीव) बना दिया। नतीजा यह हुआ कि भाषा और उर्दूमे ज़मीन-आसमानका फ़र्क हो गया।"[1]

हिन्दी-उर्दूकी खूबियोंका बयान करते हुए मौलाना आज़ाद लिखते हैं—"उर्दूकी इंशापरदाज़ी (उम्दा मज़मून लिखनेकी महारत)मे जो दुश्वारी और हिन्दीकी इंशापरदाज़ीमे जो आसानी है, उसमे एक नुक्ता गौरके लायक है। वह यह कि भाषा (हिन्दी) ज़बान जिस शय (वस्तु) का बयान करती है, उसकी कैफियत उन खतोखाल (ढग)से समझाती है, जो खास उसी शयके छूने, देखने सूँघने, चखनेसे हासिल होती है। दूसरे सुननेवालेको देखनेका-सा मज़ा आता है। बरखिलाफ, उर्दूके शायर जिस शयका जिक्र करते हैं, साफ उसीकी भलाई-बुराई नही दिखाते, बल्कि उसके मुशावह (उदाहरण-स्वरूप, तुलनामे) एक और शयका बयान करते हैं। हमारे शायर किसी बादशाहके इकबाल और

---

[1] आबेहयात. पृ० ५२

अक़्लके लिये इस कदर तारीफपर कनाअत (सब्र, सन्तोष) नही करते कि वह इकबालमें सिकन्दरे यूनानी और अक़्लमे अरस्तूए सानी है, बल्कि कहेंगे—

"अगर इसका हुमाएअक़्ल, उरूजेइकबालसे साया डाले तो हर शख्स किश्वरें दानिशो दौलतका सिकन्दर और अरस्तू हो जाये।" अव्वल तो हुमाकी यह सिफत खामखयाली है। उसपर इकबालका फलक (आसमान) और एक आसमानके बीच नया तैयार करना और उसपर फ़र्जी 'हुमा'का जाना देखिये। फिर ज़मीनपर उस ख़याली आस्मानके नीचे यूनान बसाना देखिये। फिर उस फ़र्जी हुमाकी बरकतका इस कदर फैजेआम देखिये कि जिससे दुनियाके जाहिल इस खयाली यूनानमे जाकर अरस्तू हो जाएँ।....शायरोसे इस मुबालिगा आमेजीका सबब पूछते हैं तो जवाब मिलता है—"कोई समझे-तो-समझे जो न समझे, वह अपनी जहालतके हवाले।"[१]

हिन्दी-साहित्यकी वर्णन-शैलीकी कई पृष्ठोंमे प्रशसा करते हुए मौलाना आजाद अपने हृदयकी वेदना इन शब्दोंमें बखरते ह— "यह अफसोस दिलसे नहीं भूलता कि उन्होंने (उर्दू-शुअराने) एक क़ुदरती फूलको जो अपनी खुशबूसे महकता और रगसे लहकता था मुफ्त (व्यर्थमे) हाथसे फेक दिया। हमारे नाजुकख़याल और बारीकबीन शायर इस्तआरे (अलकार) और तशबीहों (उदाहरणों)की रगीनी और मुनासिबतेलफ़्जीके जौक-शौकमे ख़याल-से-ख़याल पैदा करने लगे और असली मतालिबको अदा करनेमे बेपरवाह हो गये।"[२]

संस्कृतमे एक-एक शब्दके कई-कई अर्थ होते हैं। अतः सस्कृत-

---

[१]आबेहयात, पृ० ५४

[२]आबेहयात, पृ० ६१

कवि अनेकार्थक श्लोक लिखकर अपनी प्रतिभाका परिचय देते रहे हैं। उसीका अनुसरण उर्दूमे भी करनेका प्रयत्न किया गया, परन्तु सफलता नही मिली।[१] इन्ही द्विअर्थक शेरोमे बाज-बाज शायरने बडी अश्लीलता बखेरी है। शाह हातिमने बडी कोशिश करके इन रग-आमेजियोसे उर्दूको पाक (मुक्त) किया।

उर्दूमें संस्कृतका असफल अनुकरण

मौलाना आजाद उर्दू-शायरोके नकलचीपनसे दुखी होकर फ़र्माते हैं—

"ये मजमून इस क़दर मुस्तामल हो गये है कि सुनते-सुनते कान थक गये। वही मुकर्रर (दुहराई हुई) बाते हैं। गोया खाये हुए बल्कि औरोके चबाये हुए निवाले हैं। उन्हीको चबाते हैं और खुश होते हैं।"[२]

उर्दू फ़ारसीकी जूठन है

उर्दू-शायरी इतनी अविकसित क्यो रही? उसमे राजनैतिक,

---

[१]बानगी मुलाहिजा हो—

तुम देखो या न देखो हमको सलाम करना।
यह तो कदीम ही से सरपर हमारे कर है॥

'कर' संस्कृतमे हाथको हिन्दीमे महसूलको कहते है और सरके बालोकी जडोमे जो खुश्की हो जाती है, उसे भी कहते है।

नहीं मुहताज जेवरका जिसे ख़ूबी ख़ुदा देवे।
कि आखिर बदनुमाँ लगता है देखो चाँदको गहना॥

गहना जेवरको भी कहते है और ग्रहण लगनेको भी।

[२]आबेहयात, पृ० ८४

सामाजिक, आर्थिक, क्रान्तिकारी, भावनाएँ क्यों नहीं आईं? प्राकृतिक सौन्दर्य और जीवनको उभारनेवाले सन्देश क्यों नहीं? इन ५००-६०० वर्षोंमें अनेक उलट-फेर, बड़े-बड़े युद्ध हुए, दुर्भिक्ष पड़े, बादशाहतें खत्म हुईं, क़त्लेआम हुए। ताजमहल-जैसा सजीव इश्कका स्मारक खड़ा हुआ। हीर-राँझा, सोहनी-महिवाल, नूरजहाँ-जहाँगीर-जैसे प्रेमपुजारी आये और चले गये। पद्मिनी-जैसी हुस्ने शोलारुख़, मजरेआमपर आई जिसकी लौमें अल्लाउद्दीन झुलस गया। राणा प्रताप-जैसे पानीदार भी हुए। गदर भी हुए, कयामतें भी आईं, परन्तु कहीं किसीका उल्लेख नहीं मिलता। वही बुलबुल और पिंजरा, वही साक़ी औ शराब, वही महफिलोमाशूक और वही रोना-बिसूरना—

उर्दू-शायरीमें समयकी आवश्यकतानुसार भाव क्यों नहीं?

सदसाला दौरे चर्ख़ था साग़रका एक दौर।
निकले जो मयकदेसे तो दुनिया बदल गई॥

—रियाज ख़ैराबादी

उर्दू-शायरीका इतना अविकसित रहनेका कारण यही है कि यह जनताकी शायरी न रहकर दरबारी शायरी बन गई। उर्दू-शायरीकी दिल्ली, लखनऊ, रामपुर और हैदराबाद चार हुकूमतें सरपरस्त रही हैं। इन हुकूमतोंकी सरपरस्तीसे उर्दू-शायरीका खूब प्रसार हुआ और शायर भी आजीविकासे निश्चिन्त रहे, परन्तु यही सरपरस्ती उर्दू-शायरीके लिये घातक सिद्ध हुई। शायर आजीविकाकी निश्चिन्तताके कारण अकर्मण्य बन गये और इस अकर्मण्यताके कारण आजीविकाकी रक्षाके लिये उन्हें वही बोल बोलने पड़े जो उनके आश्रयदाता चाहते थे। इस परतन्त्रताके जीवनपर 'इकबाल'ने कैसी करारी चोट मारी है!

ऐ तायरे लाहूती उस रिज़्कसे मौत अच्छी,
जिस रिज़्कसे आती हो परवाज़में कोताही ॥[१]

उर्दू-शायरीमे अरबी-फारसी शब्दोंकी भरमार न होती और अन्धा-धुन्ध उसके उदाहरणो, अलकारों और भावोकी भर्ती न हुई होती तो उर्दू भारतकी सर्वोच्च भाषा हुई होती। उर्दू-शायरोने शब्दोंको इस खूबीसे खरादपर चढाया है, कि उनकी आभा पहले से कही ज़्यादा चमक उठी है। महावरोंको इस जाँफिशानीसे तराशा है कि दाद देनेको शब्द ढूँढे नही मिलते। वात-वातमे वह गुलकारियाँ की है कि लोग देखकर सकतेमे आ जाते हैं। नाज़ुक खयालीकी ऐसी भीनी और रसभरी फुआरे छोडी है कि सावनी समाँ भी शर्माये। यासोहिरमाँके व पुरअलम वोल वोले है कि कलेजा मुँहको आने लगता है। कल्पनाकी उडान, विरहका वर्णन, सव इस तरहके जवाहरपारे है कि सीनेसे लगा लेनेको जी चाहता है। उसकी सज-धज, शोखी, अदा, बाँकपन, भावुक हृदयको दीवाना वनाये वगैर नही रहते। उसके जमाल्लियात (प्रेयसी-का रूप-वर्णन)पर लतीफ शेर किसे सिर फोडनेपर मजबूर नहीं करते?

उर्दू-शायरीकी ख़ूबियाँ

उर्दू-भाषामे हिन्दीकी तरह वडा गुण ये है कि इसमे दुनियाकी समस्त भाषाओंके शब्द तत्सम या तद्भव रूपमे वड़ी आसानीसे पच-खप जाते है। उर्दूकी सईदी डिक्शनरी (पृ० सख्या १४०६)मे जो शब्द आये है, वे कुल ३२,७०४ है और वे निम्न भाषाओंके है—

उर्दूकी पाचनशक्ति

---

[१]ओ अनन्त आकाशमे उडनेकी क्षमता रखनेवाले पक्षी! इस पिजरेमे रखे भोजनसे मृत्यु श्रेष्ठ है, क्योंकि पिजरेमे भोजन तो स्वादिष्ट मिलता है, परन्तु उडनेकी स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है।

अरबी	६३३०
फारसी	५४५५
उर्दू	२४१५
हिन्दी	९०३५
तुर्की-इरानी	११७
अग्रेजी	२२६५
सस्कृत	१४२
महावरे	६९४५
कुल	३२७०४

आवश्यकतानुसार नवीन शब्द भी गढ़े जाते रहे है। 'भगी' 'चूहड़ा' शब्द बहुत अपमानजनक है। ये लोग जितनी कठिन जनताकी सेवा करते है, उसको देखते हुए उक्त शब्द उच्च समाजकी कृतघ्नताके द्योतक थे। अकबरने इसे महसूस किया और उसने इनके लिये 'हलालखोर' शब्द प्रचलित किया। जहाँगीरने शराबका नाम 'रामरगी' और औरगजेबने आमोंको 'सुधारस' और 'रसनाविलास' नाम दिये। 'नारगी' और 'सन्तरा' दोनो ही नाम इस फलके लिये मौजूँ नही; क्योकि इतना रगीन होते हुए नारगी और इतना लतीफ होते हुए भी सग (पत्थर) तरा कहलाये, यह जौकेसलीमके लिये जेब नही। इसलिये मुहम्मदशाहने 'रंगतरा' नाम दिया। मगर यह प्रचलित नही हुआ। शाबाशीके कामपर य। खुशीके मौकेपर हार पहनाना कुछ बदशुगन या कर्णकटु-सा मालूम होता था। उसे मुहम्मदशाहने फूल-माला नाम दिया। हजारो हिन्दी-शब्दोमे अपनी जबानकी आधी पुट मिलाकर उन्हे दूध-मिश्रीकी तरह समरूप कर लिया।[1] और हजारों हिन्दी-उर्दू गगाजमुनी शब्दोके मेल-

[1] **जैसे—राग-रंग, रंगमें भंग, रंग-रूप, राह-बाट, धन-दौलत**

जोलसे हजारों ऐसे मुहावरे गढे हैं, जो जवानमे एक ख़ास चटखारा पैदा कर देते हैं।

प्राचीन हिन्दी-कविता नवरसों—१ श्रृंगार २ हास्य ३ करुण ४ रौद्र ५ वीर ६ भयानक ७ वीभत्स ८ अद्भुत ९ शान्तरस—मे विभक्त है।

हिन्दी कविताके गुण-दोष

प्राचीन कवियोमें—तुलसी, सूर, कबीर, देव, सेनापति, विहारी, केशव, मतिराम, विद्यापति, भूषण, दास, वेनीप्रवीन, जायसी, रहीम ख़ान खाना, काफी प्रसिद्ध हैं। इनकी अमर रचनाओंसे हिन्दीकी वडी श्रीवृद्धि हुई है। नवरसोमे शृगाररस सबसे प्रधान माना गया है और इस रसमे यूँ तो सैकडो कवियोने कौशल दिखलाया है, परन्तु कम-से-कम एक दर्जन ऐसी कृतियाँ भी विद्यमान है, जिनपर हिन्दी-साहित्य गर्व कर सकता है। भारतीय ललना पतिव्रता और सती होती है। इसलिये हिन्दी-कवितामे उसके पति-प्रेम, विरह, लाज आदिका बडा ही सजीव और स्वाभाविक वर्णन मिलता है। वह अपने पतिपर आसक्त होती है। इसलिये उर्दू-शायरीके अनुसार वह आशिक और पति माशूक होता है। अत. वह अपने प्रेमी पतिको रिझानेके अनेक उपाय करती है। हिन्दी कवियोने स्त्रियोचित हाव-भावोमे इन सवका निरूपण किया है। इसके विपरीत उर्दू-शायरीमे आशिक स्त्री न होकर पुरुष होता है और माशूक स्त्री या कमसिन छोकरा। और स्त्री या छोकरे उस आशिकसे नफरत करते है। अपने पास भी नही फटकने देते। इसीसे वह दुखी रहता

हुक्का-पानी, शाम-सवेरे, जादू-टोना, बोल-बाला, धींगा-मुश्ती, रिश्ता-नाता, खत-पत्तर, पहरेदार, समझदार, चोली-दामन, चिराग-बत्ती लाज-शरम, दाना-घास, किस्सा-कहानी, बाग-बाड़ी, ईमान-धरम, देर-सवेर, रीत-रिवाज, दान-दहेज, जात-पाँत, बेटा-दामाद, चिट्ठी-रसाँ, कुरता-धोती, पूँजीपति, वगैरह।

है, पागल हो जाता है, बदनाम रहता है, रोता है और दर-दरकी ठोकरें खाता है। हिन्दी-कविताकी इस खूबीकी उर्दू-आलोचकोंने मुक्तकण्ठसे सराहना की है।

परन्तु इश्क़िया शायरीकी तरह हिन्दीकी शृंगारिक कविता भी धीरे-धीरे अश्लीलताकी चरम सीमाको पहुँच गई, और लोगोंन इसमे इतनी गन्द बखेरी कि उसकी दुर्गन्धसे भलेमानस कोसों दूर भागने लगे। शृगाररस-की कविताका श्रीगणेश भारतकी अधोमुखी दशामे हुआ। इसके कवि भी विलासी और खुशामदपसन्द राजाओके आश्रित थे। अतः उनको रिझाने-फुसलानेके लिये चाटुकार कवियोने कामुकता, अतिशयोक्ति, आदिका ऐसा बवण्डर उठाया कि सारा हिन्दी-साहित्य एकबारगी धूल-धूसरित हो उठा, और वही सब दोष उर्दू-शायरी-जैसे हिन्दीके शृगार-रसमे भी आ गये। और वह भी अपने मूर्ख मालियोके हस्तकौशल(?) के कारण विकसित होते-होते मुर्झाकर पीली पड गई। एक समय वह भी था जब कवियोंके स्वाभिमानी और कलापारंगत होनेके कारण राज्य दरबारों और जनतामे भरपूर सम्मान होता था। तभी शायद पद्माकरके मुँहसे यह गर्वोक्ति प्रस्फुटित हुई होगी--

इन्द्रपद छाँड़ि, इन्द्र चाहत कवीन्द्र पद।
चाहै इन्द्ररानी, कविरानी कहिवाइवो॥

परन्तु जब कविता आत्म-साधना न रहकर पेट-साधना बन गई और कवि कुकरमुत्ताकी तरह ठौर-ठौर उपजने लगे तो वे कुत्तोंकी तरह गली-गली मारे-मारे फिरने लगे। कहीसे दुतकारे जानेपर एक कवि तो खीझकर बकने लगता है—

घरते कढ़े न, कवि आये सुनि द्वार, ऐसे
पाजिनके मुखमे पेसाब करि देनों है॥

और एक कवि तो इतने अपमानित हुए कि वे पेशाब करना भी गुनाह समझते हैं —

"ऐसनके द्वारे कबौं मूतन न जाएँगे"

मालूम होता है ये कवि शायद अमृतधारा मूतते थे। अश्लीलताके साथ उर्दूकी तरह पुनरुक्ति-दोष, भावापहरण, वेपरकी उड़ान, झूठके अम्बार और असम्भवताकी भीड लग गई, जिससे हिन्दी शृगार कविता हतप्रभ हो गई। वह केवल पोथियोमे दबकर रह गई। सूर्पणखाका रूप लेकर जनता तक पहुँचनेका उसे साहस नही हुआ।

हिन्दी-भाषामे वह पाचनशक्ति रही है कि इसने सस्कृतके ४०,००० शब्दोको तत्सम और तद्भव रूपमे उदर-गह्वरमे रख लिया। अरबी-फारसी, पुर्तगाली, तुर्की, ईरानी और अग्रेजीके भी कितने ही हजार शब्द पचा लिये। प्रान्तीय भाषाओंके लिये तो इसके दर सदैव खुले रहे है। एक जीवन-सन्देशदायिनी भाषाको इससे अधिक और सुविधा चाहिये भी क्या ?

परन्तु खेद है कि हिन्दुओंकी तरह हिन्दीकी पाचनशक्ति भी अब नष्ट हो चुकी है। हिन्दुओने ग्रीक, शक, हूण, आदिको अपनाकर आत्मसात कर लिया और अब मालूम भी नही होता कि वे अपनाये हुए लोग कौन-कौन हैं ? किन्तु पाचनशक्ति बिगडी तो पीछेके आक्रमणकारियोंको न भगा ही सके न अपना ही सके। इस अनुदारताका दुष्परिणाम जो भारतको भोगना पड़ा वह मरकर भी भारतवासी नही भूलेगे।

यही अनुदार मनोवृत्ति हिन्दीमे भी आ गई है। तद्भव शब्दोंके बजाय तत्सम शब्दोंका प्रचलन आरम्भ हो गया है। दूसरी भाषाओके वे शब्द भी जो दूध-मिश्रीकी तरह घुल-मिल गये थे, मुँहमे उँगली देकर वमन किये जा रहे हैं। आवश्यकतानुसार शब्दोंका सृजन दूषण नही भूषण है, परन्तु अभ्यस्त शब्दोकी चोटी पकडकर निकालना और नवीन रगरूटोंकी भर्ती करना भी कहाँतक उपयुक्त है, यह भविष्य ही

बता सकेगा। हम तो 'हफीज़'के इन बोलोंपर आशिक़ हैं—

'हफ़ीज़' अपनी बोली मुहब्बतकी बोली।
न उर्दू, न हिन्दी, न हिन्दोस्तानी॥

हिन्दीमे हजारों शब्दोकी सृष्टि हो रही है, कृपया इन चन्द शब्दोंका मतलब तो बताइये—

वाष्पवाहकयान[१], द्विचक्रअश्वरथ[२], लौहपथगामिनी-विश्रामस्थल[३], मार्गव्ययप्रदानपत्रिका[४], यात्राप्रमाणपत्रदायक[५], कर्णपुर[६], विश्रामकेन्द्र-स्थल[७]; अवरुद्धस्थल[८]; ताम्बूल तथा तमालपूँगीफलशाखा-विचूर्ण-विक्रेता[९], द्विताम्रमुद्रा[१०], रसालकेदलीफलविक्रेता[११], द्विदशकेदलीफल[१२], प्रतिशर्परी रसाल[१३], भारवाहक[१४], गतिशून्य[१५], गमनागमनसूचकअरुणलौहस्तम्भ[१६] समयसूचिका[१७], गोधूमचूर्ण[१८], करपट्टिका[१९], सूर्यप्रकाशवस्त्र[२०], क्रयशाला[२१], बहित्ररथ[२२], लिपिक[२३], प्रव्याजि[२४], वज्रचूर्ण[२५]।

---

[१]इञ्जन; [२]इक्का, ताँगा; [३]स्टेशन; [४]टिकट; [५]बुकिंगक्लर्क; [६]कानपुर; [७]जंकशन; [८]प्लेटफ़ार्म; [९]पानवाला; [१०]अधन्नी; [११]फल बेचने वाला; [१२]केले एक दर्जन; [१३]एक टोकरी आम; [१४]कुली; [१५]रुकना (ट्रेनका स्टेशनपर रुकना); [१६]सिगनल; [१७]टाइमटेबुल; [१८]गेहूँका आटा; [१९]बाटी; [२०]रक्तवस्त्र या पीताम्बर; [२१]दुकान; [२२]मोटरकार; [२३]क्लर्क; [२४]प्रीमियर; [२५]सीमेण्ट।

उर्दू-शायरीकी जन्म-भूमि

यह भी एक आश्चर्यकी बात है कि जिस दिल्लीको उर्दूपर इस कदर नाज और फख्र है और जो दिल्ली मुसलिम-शासकोंकी चहेती रही है, उसके बतन (औरस)से उर्दूका जन्म न होकर दकनसे हुआ है। इसका मुख्य कारण यह था कि दिल्लीमे गो फ़ारसी-शायर अच्छे-अच्छे मौजूद थे, लेकिन देशी जबानसे परिचित न थे। हालाँकि फारसी राज्य-भाषा घोषित हो जानेके कारण फारसी शब्द हिन्दुओमे धीरे-धीरे प्रचलित होने लगे थे। यहाँ तक कि सूर, तुलसी, कवीर, नानक आदिकी रचनाओमे भी यत्र-तत्र फारसी शब्दोकी पुट मिलती है। मुसलमानोमें देशी भाषाके शब्द रूढ होने लगे थे। बावर हिन्दमे नया-नया आता है वह भी अपने शेरमे—रोती (रोटी), मोती, कुज (कुछ), और मुजको (मुझको) जैसे हिन्दी-शब्द लाता है। हुमायूँके शासन-कालमे मलिक मुहम्मद जायसीकी पद्मावत इस बातकी साक्षी है कि मुसलमानोमे देशी भाषाका प्रचलन किस हद तक हो गया था, और अकवरके युगमे तो हिन्दीके सैकडों शब्द फारसीके सरकारी रुक्कों और दैनिक व्यवहारमे व्यवहृत होने लगे थे। अकबरकी हिन्दू-मुस्लिम-प्रेमकी भावनाने हिन्दुओमे फारसी और मुसलमानोंमे हिन्दीके लिये काफी आकर्षण उत्पन्न किया। यहाँ तक कि अकवरी युगमे फारसी-शायर भी अपनी रचनाओमे हिन्दी-शब्दोंका समावेश करने लगे। जैसे—हार, चमेली, राग, धोवी, तमोली, गुडहल, मौलसिरी, वगैरह। दिल्ली और उसके इर्द-गिर्द फारसी-हिन्दी मिश्रित भाषाका कुछ-कुछ प्रचार हो चला था, परन्तु वह साहित्यिक रूप नही ले पाई थी। इसी साहित्यिक भाषाका जन्म दकनमे हुआ।

दक्खनी शायरी क्या है ?

दिल्लीसे इतनी (१०४३ मील) दूर दकनमे उर्दूके जन्म लेनेका कारण यह था कि यहाँ मुस्लिम-शासनका सूत्रपात ही हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यसे हुआ। बहमन वशका प्रथम मुस्लिम-शासक हसन[1] गगू नामक ब्राह्मणका इतना श्रद्धालु और विनम्र भक्त था कि जब (सन् १३४७ ई०मे) वह बादशाह बना तो वह कृतज्ञता-स्वरूप 'गंगू' ब्राह्मणकी स्मृतिको अमर रखनेके लिये अपने नामके आगे गगू बिरहमन लिखने लगा। जिसका अपभ्रंश बहमन हो गया। फिर इस वशके सभी शासक बहमन कहलाये। एक मुसलमान और वह भी विजेता, फिर भी अपने वशको बिरहमनसे ख्याति-दिलाये कितना अनूठा स्वामिभक्ति और हिन्दू-मुस्लिम प्रेमका परिचायक है !

हसन बादशाहने केवल गंगू ब्राह्मणका नाम ही अपने वंशके साथ नही जोडा, अपितु उसे मालमंत्री बनाकर शासनाधिकारमे भी सम्मिलित किया और तभीसे ब्राह्मणोंको मालमन्त्री पद दिये जानेका रिवाज-सा चल पडा। पहले मुल्की हिसाब फारसी लिपिमे लिखा जाता था, अब हिन्दी-भाषा और हिन्दी-लिपिमे लिखा जाने लगा। हिन्दुओकी शासन-विभागमे नियुक्ति होनेसे देशी भाषाकी बडी उन्नति हुई। परिणाम इसका यह हुआ कि हिन्दू-मुसलमानोमे प्रेम-भाव बढ़ने लगा। वे एक दूसरेकी सस्कृति, आचार-व्यवहार, वेषभूषा, खान-पान और बोल-चालसे परिचित होने लगे। इब्राहीम आदिलशाहने अपने राजकीय कार्यके लिये

---

[1] 'हसन' एक दरिद्र अफगान था, जो ३० वर्षतक 'गंगा' ब्राह्मणके यहाँ खेतोंमे कार्य करता रहा। एक दिन हसनको खेतमे कुछ गड़ा हुआ धन मिला। यह धन उसने अपने मालिकको दे दिया। ब्राह्मण उसकी ईमानदारीसे इतना प्रसन्न हुआ कि दिल्ली बादशाहके दरबारमे जहाँ इसकी बहुत कुछ प्रतिष्ठा थी, उसने कह-सुनकर उसे सवारोंका सरदार बनवा दिया। यही हसन अवसर पाकर बादशाह बन बैठा।

बाहरके लोगोकी नियुक्ति बन्द करके दक्खिनी हिन्दुओंको स्थान दिया। हिन्दुओंकी नियुक्ति और देशी भाषामे हिसाब-किताब रखनेसे धीरे-धीरे देशी जबान सरकारी और दरबारी जबान बन गई।

इन तीन सौ वर्षो (ई० स० १३४७से १६८५ तक)मे यानी जब तक 'गोलकुण्डा' और 'बिजापुर'की हुकूमते स्वतन्त्र रही, हिन्दू-मुस्लिम प्रेम इतना भरपूर था कि अन्यत्र उदाहरण नही मिलता। इसी मेल-जोलके परिणामस्वरूप वहाँकी प्रान्तीय और शासकीय भाषाओंके गठ-बन्धनसे उर्दूका जन्म हुआ। जो उन्नति करते-करते शायरी भी करने लगी। उस वक्तके मुस्लिम औलिया और फकीर भी बड़े पहुँचे हुए होते थे। उनके हृदय पक्षपातरहित निर्मल होते थे। वे भी अपना कलाम इसी प्रेम-भाषामे लिखते थे; परन्तु खेद है कि तत्कालीन शायरीके नमूने तजकरेनवीसोने नही लिखे और इसका कारण यह था कि इस शायरीमे देशी भाषाके शब्दोकी बहुतायत होनेसे तजकरेनवीस उसके मर्मको नही समझ सके और इसीलिये इस शायरीको देशी शायरी समझकर उर्दू-शायरीमे स्थान नही दिया, परन्तु यह खयाल नही किया कि कोई भी बच्ची पैदा होते ही न चलने लगती है, न अठखेलियाँ करने लगती है, न जवाँ होकर कयामत ढाने लगती है। हरइक धीरे-धीरे ही परवान चढती है। कब उसने आँख और मुट्ठी खोली, कब उसने हाथ-पाँव मारे, कब उसके मुँहसे कौन-सा शब्द पहली बार निकला, कब किलकारियाँ मारने लगी कब घुटनो चली, कब ठुमुक-ठुमुक चलना सीखी, कब आँखमिचौनीके खेल खेले, कब उसकी तरफ लोगोकी निगाहे उठने लगी, और कब उसने जवानीकी अँगडाइयाँ लेनी शुरू की, कब उसके इर्द-गिर्द शरीफ और शोहदे चक्कर काटने लगे, और कब उसने अपने माँ-बापकी नीदे उचाट कर दी—ये सब बाते प्राण-विज्ञानके विशेषज्ञके लिये जानना आवश्यक है। चट मँगनी-पट ब्याहवाली जल्दी शोभनीय नही। देरपा (अधिक दिन टिकनेवाली) वस्तुओंका विकास धीरे-धीरे

ही होता है। घास-फूस, आक-बेरी जितनी जल्दी बढ़ते हैं उतनी ही शीघ्रतासे नष्ट होते हैं। हिरन और सिंहादिके बच्चे पैदा होते ही जितनी शीघ्रतासे भागने-दौड़ने लगते हैं, उतनी ही शीघ्रतासे मृत्यु भी उनपर झपटती है। हज़रते इन्सान जितनी मुश्किलोंसे इन्सान बनते हैं, उतनी ही देर उनकी इन्सानियत कायम भी रहती है।

फ़रिश्तेसे बहतर है इन्सान बनना।
मगर इसमें पड़ती है मेहनत ज़ियादा॥—हाली

बहमन वंशकी बादशाहतके विनाशके बाद बिजापुर, गोलकुण्डा और अहमदनगर तीन छोटी-छोटी सल्तनतें कायम हुईं। इस युग (ई० स० १४८९से १६८६)में दक्खनी जबान घुटनियों चलने लगी। हिन्दू रानियोंके कारण देशी भाषाको और भी बल मिला। दक्खनी उर्दूमें फारसीकी बहुतायत नहीं पाई जाती। इसका कारण यही है कि मुसलमान शासकोंने वहाँकी प्रान्तीय भाषाओं—मरहठी, तामिल, तैलगू और कर्नाटकीको तथा हिन्दुओंको खूब अपनाया और हिन्दुओंने बादशाही शासनमें लगन और ईमानदारीसे हाथ बटाते हुए शासकोंकी भाषाको भी सीखा।

उर्दूका जन्म

परिणाम इसका यह हुआ कि जब दो क़ौमें मिलीं तो एक नई बच्चीको जन्म दिया, जो आगे चलकर अरबी-फारसीके परिधानमें लपेटकर 'वली'ने बादशाहोंकी चहेती दिल्ली बेगमको गोद दे दी। बड़ी मुश्किलसे उसने इस सुकुमार बच्चीको पाया था, कहीं नजर न लगे इस डरसे नदीदी माँने इसका नाम भी बिगड़ा हुआ, भद्दा नाम—'रेख़्ता'[1] रखा। और जब यह जवान हुई तो लाड़-प्यारकी वजहसे काबूसे बाहर होकर शोख

[1] रेख़्ता—यानी गिरी-पड़ी। हिन्दुस्तानमें मरतजिवाईके बच्चोंके इसी तरह भद्दे नाम रखनेका रिवाज आजतक चालू है। जैसे घसीटामल, बुद्धूमल, पोंगानाथ, उजबकख़ाँ, नत्थूख़ाँ, रहपटअली, वग़ैरह।

हो गई। फ़ौजी लश्करोंमें जा-जाकर फ़ौजियोंसे दीदे लड़ाने लगी तो इसे सब बाज़ारू, लश्करी (उर्दू) कहने लगे।

हिन्दू-मुस्लिम-मिलापके फलस्वरूप जिस शायरीका जन्म हुआ, उसमें प्रेम, इश्क-विरहका वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक, अकृत्रिम, सीधे-सादे ढंगपर किया जाता था। इस नवोत्पन्न भाषाके पास शब्दोंका भण्डार बहुत कम था, होता भी तो सुरक्षित रखनेका तब शऊर भी क्या हो सकता था? इस नवोत्पन्न शायरीने आँखें खोलीं तो देगी भाषाओंके गीत थिरकते देखे। लामुहाला इसने भी वही नक़्लो-हरकत शुरू की। परन्तु रक्तमें फ़ारसियतका अंश भी था। वह असर रंग दिखाये बिना न रहा। और यह बच्ची अपनी हमजिन्स सहेलियोंको प्यार करनेकी बजाय छोकरोंके साथ खेलने लगी।' फिर भी सत्संगतके कारण इश्कके इज़हारमें स्वाभाविकता बनी रही। अत माशूकके लिये तुर्कीहूरके बजाय सजन, पिया, बुलबुलके बजाय पपीहाको प्यार किया। रीति-रिवाज भी स्थानीय बर्ते। स्थानीय ही अलंकारोंसे अलंकृत हुई।

(यही कारण है कि इस ३०० वर्षकी मेलजोलकी शायरीको उर्दू-इतिहासकारोंने उर्दू-शायरी तस्लीम नहीं किया है। इसे वह शायरीका बीजारोपण समझते हैं, और यही कारण है कि इन तीन सदियोंकी विशाल शायरीका कहीं भी किसीने उदाहरण नहीं दिया। कितने खेद और दुखकी बात है कि यह हिन्दु-मुस्लिम संस्कृतिके ऐक्यका साकार उदाहरण इन मजहबी दीवानोंके तास्सुबके कारण नजरोंसे ओझल हो गया, और नहीं कहा जा सकता कि उसका कुछ अंग कहीं सुरक्षित भी है या सब दीमकों, चूहोंके पेटमें चला गया)।

२० जून १९४९

'यानी हिन्दी-कवितामें स्त्रीका पतिसे और पतिका स्त्रीसे प्रेम-वर्णन किया जाता था, परन्तु उर्दूके आशिकने स्त्रीसे इश्क़ न करके छोकरोंसे किया। इसीको 'अमरद परस्ती' कहते हैं।

प्रारम्भिक युग

[दौरे मुतक़द्दमीन]

यह सोचते ही रहे और बहार खत्म हुई ।
कहाँ चमनमें नशेमन बने, कहाँ न बने !

—असर लखनवी

पूर्वार्द्ध

दक्खनी शायर

आदिल और क़ुतुबशाही शासन-काल ई० स० १५८० से १६८६ तक

उत्तरार्द्ध

उर्दू के आदि शायर

औरंगज़ेब शासन-काल १६८६से मुहम्मदशाह शासन-काल १७४८ तक

दक्खनी शायर

१ इब्राहीम आदिलशाह
२ मुहम्मदअली कुतुबशाह
३. सुलतान मुहम्मद कुतुबशाह
४. सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाह
५ अब्दुलहसन तानाशाह

उर्दूके आदि शायर

१ वली
२ दाऊद
३ सिराज

देहलवी शायर

४. फाइज
५ आरजू
६ मजहर
७ हातिम
८ मजमून
९ आबरू
१० नाजी
११. यकरंग
१२ अहसन
१३ फुगाँ

यद्यपि दक्खनी शायरोका परिचय और उनकी शायरीके नमूने उर्दू-लेखकोके तास्सुबकी वजहसे दस्तयाब नही है, फिर भी जिनको उन्होंने उर्दू-शायरीके प्रारम्भिक शायरोमे समझकर उल्लिखित किया है, उनका संक्षिप्त परिचय और उनकी शायरीका एक-एक दो-दो नमूना बतौर बानगी पेश किया जाता है।

१—इब्राहीम आदिलशाह—यह बीजापुरकी आदिलशाही हुकूमतमे पाँचवाँ बादशाह (ई० स० १५७९-१६२६) हुआ है। यह ९ वर्षकी उम्रमे सिहासनारूढ हुआ। इसे सगीतका बहुत अच्छा ज्ञान था। हजारों संगीतज्ञ इसने राजधानीमे एकत्र किये और 'नवरसमाया' एक ग्रंथ भी संगीतपर लिखा। यह स्वय गीत लिखता था और उन्हे गाता भी था। क्योंकि इसे हिन्दी गीतोंसे रुचि थी इसीलिये गीतोमे दक्खनी हिन्दी-शब्द भी फारसीके साथ मिले होते थे। यही गीत धीरे-धीरे फारसी-छन्दोमे आनेपर उर्दूकी प्रथम शायरी समझे गये। परन्तु अफसोस कि इनकी कविताका नमूना कही भी नजर नही पड़ा। अत नही कह सकते इनकी भाषा कैसी थी।

२—मुहम्मद कुली क़ुतुबशाह—यह गोलकुण्डाकी कुतुबशाहीका पाँचवाँ बादशाह (ई० स० १५८०-१६१२) था। यह बड़ा रगीन और गुणज्ञ था। इसने 'भागमती' नामक हिन्दू ललनासे शादी की और प्रेम-स्मारक-स्वरूप गोलकुण्डा राजधानीके समीप 'भागनगर' बसाया। जो वर्तमानमे हैदराबाद कहलाता है। यह बहुत अच्छा शायर था। फारसी ज़बानके अलावा मुल्की जबानमे भी शेर कहता था। इसकी रचना 'सनीमेकुलयात' मौजूद है। अल्लामा नियाज फ़तेहपुरी लिखते हैं—"सनीमेकुलियातके देखनेसे मालूम होता है कि जब अकबरी अहदमे फारसी और भाषाने सिर्फ़ बोलचालकी सूरत अख्तियार करनेके अलावा कोई और शक्ल अख्तियार नही की थी, टीक उन्ही दिनो यह बादशाह इस नई ज़बानमे शायरी कर रहा था।"[1]

नमूना— **पियाहूँ हजरतके हित आबेकौसर।**

तो शाहाँ ऊपर मुझ कलसकर बनाया॥

इसके बाद इसी वशमे निम्न तीन बादशाह और हुए हैं, वे तीनो ही शायर थे।

---

[1] **इन्तक़ादियात भाग २, पृ० ८२-८३**

३—सुलतान मुहम्मदकुतुबशाह—(ई० स० १६११-१६२५)के कलामका नमूना—

पिया साँवला मन हमारा भुलाया।
नजाकत अजब सब्ज रंगमे दिखाया॥

साकिया ! आ, शराबेनाब कहाँ ?
चन्द्रकी प्यालीमें आफ़ताब कहाँ ?

४—सुलतान अब्दुल्लाकुतुबशाह—(१६२५-१६७४ ई०)की शायरीका नमूना—

ऐ परी पैकर ! तेरा मुख आफ़ताब।
देखता हूँ नूर है या मुझमें ताब॥

तिरी पेशानीपर टीका झमकता।
तमाशा है उजालेमें उजाला॥

५—अब्दुलहसन तानाशाह—की शायरीका नमूना—

किस दर कहाँ काँ जाऊँ मुझदिलपै भल बझराट है।
इक बात किये होंगे सजन याँ जो ही बाराबाट है॥

विजापुर और गोलकुण्डेके शासक स्वयं शायर और कलाविद थे, अतः वे शायरो और कलाकारोको आदर भी खूब देते थे। जवाहरातकी कद्र जौहरी ही कर सकते है, भीलनी नही।

हजारो साल नरगिस अपनी बेनूरीपै रोती है।
बड़ी मुश्किलसे होता है चमनमें दीदावर पैदा॥

—इक़बाल

अतः इन दोनो सल्तनतोसे उत्साह मिलनेपर जनतामे भी शायर हुए। गोलकुण्डा सलतनतमे इब्ननिशाती, गवासी, वाहबी, तहसीन, कुतबी, तवई, शाहमलिक, अमीन और विजापुरमे नूरी शाही, मिर्जा,

रस्मी, नुसरती, हाश्मी, दौलत, आजिज, बहरी, वली दक्खनी, वज्दी, आज़ाद, मशहूर शायर हुए हैं। इन सबने मसनवियोंकी ओर अधिक ध्यान दिया और प्रस्तुत पुस्तकमे गजलका उल्लेख हो रहा है। मसनवियोंके सिर्फ एक-एक, दो-दो नमूने देनेमे ही पुस्तक भर जाय, इसलिये यहाँ उससे गुरेज़ किया जाता है और कभी अवसर मिला तो उनकी मौलिक प्रकाशित-अप्रकाशित रचनाओंकी खोज करके नमूने देनेका प्रयत्न किया जायगा और तभी विस्तारसे दक्खनी शायरीपर भी प्रकाश डाला जायगा। यहाँ तो क्रम बनाये रखनेके लिये उल्लेख मात्र कर दिया है। इस प्रकार प्रारम्भिक युग (दौरमुतक़द्दमीन)का पूर्वार्द्ध युग समाप्त होता है।

१

वली

[ई० स० १६६८-१७४४]

शम्स उद्दीन 'वली' औरंगाबाद दकनके रहनेवाले थे। ये दो बार दिल्ली गये। उर्दू-इतिहासकार इन्हीको उर्दूका प्रथम शायर मानते हैं। अमीर ख़ुसरोने जिस भाषाको जन्म दिया था और जिसे शाहानेदकनने पाला था, उसी बच्चीको इन्होंने अरबी-फारसीके परिधानमे लपेटकर मलकये हिन्द देहलीकी गोद दे दिया। सबसे प्रथम वलीने अमीर ख़ुसरो-की ईजादकर्दा भाषासे हिन्दी-शब्दो, मुहावरो, उपमाओं, अलंकारों और उदाहरणोंका बहिष्कार प्रारम्भ किया। दूसरे शब्दोमे यूँ कहिये कि अमीर ख़ुसरोके बनाये हुए सगमपर तास्सुबका बाँध बाँधकर वलीने एक अलग नहर निकाली।

औरंगजेबने (ई० स० १६८६मे) जब दक्षिणकी सल्तनतोको समाप्त किया और औरंगाबादको अपना केन्द्र बनाया तो बिजापुर और गोल-कुण्डाके शायर भी वही पहुँच गये। वहाँ दिल्ली और ईरानके फ़ारसी शायरोकी सुहबतसे शायरीमे परिवर्त्तन होने लगा। वली प्रथम बार १७०० ई०मे औरंगजेबके शासनकालमे दिल्ली गये। वहाँ शाह गुलशनसे इनका परिचय हुआ जो प्रतिष्ठित और वयोवृद्ध शायर थे। वलीसे हिन्दी-बाहुल्य शेर सुनकर इन्होने वलीको फारसी लफ़्ज़ोके इस्तेमालकी तरगीब दी। दूसरी बार वली दिल्ली मुहम्मदशाहके शासनकाल ई० स० १७२४मे गये और अपने साथ 'कलामेरेख़्ता' भी ले गये, जिसकी वहाँ काफी

शुहरत हुई। दिल्ली-यात्राके बाद वलीके कलाममे फ़ारसीयत बढ़ती गई और हिन्दी-शब्द बहिष्कृत होते गये। जो वली दिल्ली जानेसे पूर्व लिखा करता था —

'तेरे आनेकी बाट ऊपर बिछाये हूँ मै अँखियाँको।'

दिल्लीसे वापिस आनेपर ऐसे बोल बोलने लगा—

सहर है सरवे गुलजबींकी सदा।

वलीकी उर्दू-शायरीके नमूने—

दिल छोड़के यार क्योंकि[1] जावे ?
जख़्मी है शिकार क्योंकि जावे ?

अजब कुछ लुत्फ़ रखता है शबेख़िलवतमें[2] दिलबरसे।
सवाल आहिस्ता-आहिस्ता जवाब आहिस्ता-आहिस्ता॥

ख़ूबरू[3] ख़ूब काम करते हैं।
इक निगहमें ग़ुलाम करते हैं॥

याद करना हर घड़ी तुझ यारका।
है वज़ीफ़ा[4] मुझ दिले बीमारका॥

बेवफ़ाई न कर ख़ुदासूँ डर।
जग हँसाई न कर ख़ुदासूँ डर॥

जिस वक़्त ऐ सरीजन ! तू बेहिजाब[5] होगा।
हर ज़र्रा तुझ झलकसूँ जूँ आफ़ताब होगा॥

---

[1]क्योंकर; [2]एकान्तरात्रिमे,
[3]हसीन, रूपवान; [4]पाठ करना;
[5]बेपर्दा।

मुझको हुआ है मालूम ऐ मस्ते जामे ख़ूनी ।
तुझ अंखड़ियोंके देखे आलम ख़राब होगा ॥

लिया है जबसूँ मोहनने तरीक़ा खुदनुमाईका[1] ।
चढ़ा है आरसीपर तबसे रंग हैरत फ़िज़ाईका ॥

ऐ 'वली' ! रहनेको दुनियामें मुकामेआशिक़[2] ।
कूचयेज़ुल्फ़[3] है या गोशयेतनहाई[4] है ॥

ज़िन्दगी जामेऐश[5] है लेकिन ।
फ़ायदा क्या अगर मुदाम[6] नहीं ॥

---

[1]अपने प्रकट करनेका, [2]प्रेमियोका स्थान; [3]प्रेयसीकी लटे, [4]एकान्त कोना; [5]सुखका प्याला; [6]स्थायी ।

२

दाऊद

मिर्ज़ा दाऊद औरंगाबादके रहनेवाले और वलीके समकालीन थे। एक छोटा-सा दीवान इनकी यादगार है।

रात दिन है पुकारमें 'दाऊद'।
ज्यूं पपीहा 'पिया, पिया' तुम बिन ॥

मेरा अहवाल चश्मेयारसे पूछ।
हक़ीक़त दर्दकी बीमारसे पूछ ॥

ऐ ज़ाहिदाँ! उठाओ जबींको[1] ज़मीनसे।
जो सरनविश्त[2] है उसे काँ तक मिटाओगे?

—इन्तक़ादियात, भाग २, पृ० ८६

---

[1]मस्तकको; [2]भाग्यमें लिखा।

३

सिराज

सैय्यद सिराजुद्दीन 'सिराज' भी औरंगाबाद-निवासी थे। ये बारह वर्षकी उम्रसे ७ साल तक उन्मत्तावस्थामे मारे-मारे फिरे।

शहेबेख़ुदीने[1] अताकिया[2] मुझे अब लिबासेबरहनगी[3]।
न ख़िरदकी[4] बख़ियागरी रही न जुनूँकी परदादरी रही॥

[5]चली सिम्तेग़ैबसे[5] इक हवा कि चमन सरूरका[6] जल गया।
मगर एक शाख़ेनिहालेग़म[7] जिसे दिल कहें सो हरी रही॥

नज़रेतग़ाफ़ुलेयारका[8] गिला[9] किस ज़बाँसे बयाँ करूँ।
कि शराबेसदक़दहे आरज़ू[10] ख़ुमेदिलमे[11] थी सो भरी रही॥

[6]वह अजब घड़ी थी कि जिस घड़ी लिया दर्सनुस्ख़ये इश्क़ का[12]।
कि किताब अक़्लकी ताक़पर[13] ज्यूँ धरी थी त्यूँ ही धरी रही॥

---

[1]दीवानगी रूपी बादशाहतने, [2]दान किया, [3]नग्नतारूपी पोशाक, [4]अक्लकी, [5]अन्तरिक्षकी ओरसे, [6]आनन्दका, [7]रजकी टहनी, [8]प्रेयसीकी उपेक्षा-दृष्टिकी, [9]शिकायत, [10]अभिलाषारूपी शराब, [11]दिलके वर्त्तनमे, [12]प्रेमपाठ, [13]आलेपर।

तेरे जोशे हैरते हुस्नका असर इस क़दरसे अयाँ[1] हुआ।
कि न आइनेमें जिला[2] रही न परीकी जल्वागरी[3] रही॥

—अदबे-उर्दूसे

शुक्रे अल्लाह, इन दिनों तेरा करम होने लगा।
शेवयेजौरोसितम[4] फ़िलजुमला[5] कम होने लगा॥

मुद्दतसे गुम हुआ दिले बेगाना ऐ 'सिराज'!
शायद कि जा लगा है किसी आश्नाके हाथ॥

—इन्तक़ादियात भा० २, पृ० ८८

इसी दौरमें आजिज़, यार, महरूम, ईमा, दाग, रंगीन, महदी, अजीज़, महर, पनाह, रज़ा, ईराकी, महताब, शराफत, शहीद, ज़िया, काज़िम, मुब्तिला, नज़्म, हमदम, दर्द, हशमत, हाजी, क़ादर, फ़ख्र, कद्र वगैरह शायर हुए हैं, जिनका उल्लेख करना यहाँ व्यर्थ है। वही सब पुराने ढंगकी शायरी है। मालूमातके लिये इस ढगके तीन शायरोंका उल्लेख ऊपर कर ही दिया है।

---

[1]प्रकट; [2]चमक, [3]सौन्दर्य, चमत्कार,

[4]अत्याचार करनेकी बान, [5]आखिरकार।

देहलवी शायर

वलीकी रेख़्ता-शायरीका दीवान दिल्ली पहुँचा तो वहाँ धूम मच गई। कहनेको दिल्ली मुस्लिम शासनकी राजधानी थी। भारतके ख्याति प्राप्त लोग यहाँ रहते थे। फारसीके अच्छे-अच्छे शायर यहाँ विद्यमान थे, परन्तु रेख़्ता-शायर कोई न था। विधिका विचित्र विधान देखिये कि जो दिल्ली उर्दूकी प्रामाणिकताके लिये सनद समझी जाती है, उस दिल्लीमे उर्दूका जन्म न होकर दक्षिणमे होता है, और वहाँसे यह बच्ची अमानतन लेकर यहाँ परवान चढ़ाई जाती है और बडी जाँफ़िशानीसे सँवारकर इस तरह नोक-पलक निकाले जाते हैं कि जो देखता है लहालोट हो जाता है।

गरज यह, कि वलीके रेख़्ता-कलामको देखकर अहले देहलीके दिलोमे भी रेख़्ता कहनेका ज़ौक़-शौक हुआ और यहाँके फारसी शायर भी मुँहका जायका बदलनेको फारसी शेर कहते-कहते दो-चार रेख़्ता शेर भी कहने लगे, परन्तु मुहम्मदशाह रँगीले (ई० स० १७१६)से पूर्व कोई खास रेख़्ता-शायर देहलीमे नही हुआ। मुहम्मदशाह रँगीलेकी रँगीली तबियतने जब रग पकडा तो इसके यहाँ गवैयो और शायरोके झुण्ड इकट्ठे होने लगे।[1]

कुदरतका करिश्मा देखिये कि इधर मुस्लिम सल्तनतका सितारा डूब रहा था और उधर शायरीका आफताब आसमानमे चढ रहा था। उर्दू-शायरीका प्रारम्भ ही सल्तनतके जवालसे हुआ है, इसलिये जवालके वक्त सल्तनतमे ऐय्याशी, काहिली, बुज़दिली वगैरह जो ऐब आगये थे, वे सब

---

[1] इस समय दिल्ली विलासिताके रंगमे डूबी हुई थी। हुस्नोइश्ककी शायरीका बाज़ार गर्म था। शूर-वीर और विद्वानोके स्थानपर दरबारमे भाँड और मीरासी सुशोभित हो रहे थे। बादशाहसे लेकर रैयत

शायरीसे भी चिमट गये। इस युगमे जो मशहूर शायर हुए हैं, उनका अत्यन्त सक्षिप्त परिचय और कलामका नमूना इस अध्यायमे दिया गया है।

ध्यान रहे यह उर्दू-शायरीका प्रारम्भिक युग है। वह कहाँ और कैसे पैदा हुई, उसने किस प्रकार आँखे खोली, कैसे घुटनियों चली, यही सब इस दौरमे देखनेकी चीज़ है। ज़बान किस तरह पैदा होती है, किस तरह बढ़ती है, प्रारम्भमे क्या-क्या खामियाँ रहती है, और फिर वह किस प्रकार सँवरकर अपने परायोको आकर्षित करती है, यही भाषित करनेके लिये अत्यन्त सक्षेपमे इस युगके कवियोंका परिचय और उनकी शायरीके नमूने दिये हैं। इस युगकी शायरी बहुत हल्की और अविक-

---

तक सब ऐशो-आराममे मस्त थे। सभीकी आँखोमे विलासिताका मद छाया हुआ था। दीन-दुनियाकी किसीको चिन्ता नही थी। इन्ही दिनोंमे उचित अवसर जानकर नादिरशाहने (ई० स० १७३९मे) हिन्दुस्तानपर आक्रमण कर दिया। लाहौरके शासकने इस आक्रमणकी सूचना मुहम्मद-शाहको भेजी, तब वहाँ शराबका दौर चल रहा था। शराब पीकर हर-एक बदमस्त था। सन्देश सुनकर एक दरबारीने हँसकर कहा—"अजी हुज़ूर! असल बात तो यह है कि लाहौरवालोंके मकान इतने ऊँचे है कि उन्हे बहुत दूरकी सूझती है। न कोई नादिरशाह है, न उसकी इतनी हिम्मत ही है कि वह हुज़ूर-जैसे शाहका सामना कर सके।" दूसरे बोले—"अमाँ, आता है तो आने भी दो, हम तो जनानेमे हो लेगे।" तीसरे बोले—"हम भी तो देखे नादिरशाह कैसे लड़ता है, वह बहरेतवील गाऊँ कि वज्दमे न आजाय (बेहोश न हो जाय) तो मेरा ज़िम्मा।" इसी तरह सबने ही-ही-हू-हू करते हुए आक्रमणकी बातको टाल दिया और लाहौरके शासकका सन्देश-पत्र शराबमे घोलकर पी लिया गया। आखिर मुहम्मद-शाहको अपनी अकर्मण्यताके कारण नादिरशाहके हाथ बन्दी होना पड़ा। लालकिलेपर उसका अधिकार हो गया और दिल्लीमे क़त्लेआम हुआ।

सित है; इसीलिये हमने इसका अधिक उल्लेख करनेसे परहेज रक्खा है। आजके उन्नतिशील युगमे इस शायरीकी कद्र भी क्या ? क्रम बनाये रखने-के लिये नाम मात्रका उल्लेख कर दिया है। उर्दू-शायरीने जिस युगमे जितनी अधिक उन्नति की है। हम उतने ही परिमाणमे उत्तरोत्तर अगले युगोंमे उसका उल्लेख करेंगे।

इस प्रारम्भिक युगमें बहुत-से ऐसे शब्द आये हैं जो वर्त्तमानमे कानोंमे खटकते हैं और अब उनका प्रयोग नही होता, परन्तु प्रारम्भमे होता था। ठुमुक-ठुमुक कर चलने और गिरनेवाली बच्चीसे और आशा भी क्या की जा सकती थी ?

प्रारम्भिक युगकी उर्दू	वर्त्तमान उर्दू
सूं, से, सेती	से
भीतर	अन्दर
कू	को
मुझदिल	मेरादिल
हमनकूँ	हमको
मोहन, सरीजन, पी, पीतम	माशूक
जगमे	दुनियामे
आझुवाँ	आँसू
भवाँ, पलकाँ	भवे, पलके
तुझ लबकी सिफत	तेरे लबकी सिफत
नैन	आँख
नाईं	तरह, मिसाल
दहुन	दहन
जग	जहान, दुनिया
उठावो	उठाओ
मिरा	मेरा

बचन	कलाम
यूह	यह
नित	हमेशा
मुख	मुँह
तस्बी	तसबीह
सही	सहीअ़
बिगाना	बेगाना
क्योंकि	क्योंकर
तुझ यारका	ऐ हबीब तेरा
तुझ अँखड़ियाँ	तेरी नज़रें
तुम बिन	तुम्हारे बग़ैर
मीता (मित्र)	दोस्त
चित्रकारी	मुसव्वरी
नैन मिलाय गया	नज़र मिला गया, लड़ा गया
पलक	मिज़गाँ
किसू, कभू	किसी, कभी
कहियो	कहना
न जानूँ	न जाने
जागा	जगह
ज़ाहिदाँ	ज़ाहिदो
यूँ, वूँ	इस तरह, उस तरह

उर्दू-शायरीके प्रारम्भिक युगसे ही इश्क़ अप्राकृतिक हो जाता है। °अमरदपरस्ती (लौंडेबाज़ी)का मर्ज़ बढ़ता जाता है। यहाँ तक कि उसे शायरीमें खुल आम फ़ख़्रिया बयान करते हैं।°हमने दो-एक शायरोंके केवल एक-एक शेरका नमूना दिया है, ताकि मालूम हो कि उस वक़्त इन लोगोंके चाल-चलनका धरातल कैसा था।

४

फ़ाइज़

न जाने कितने ऐसे गुमनाम शायर ससारके उदरगह्वरमे छिपे पड़े हैं, जिनपर ऐतिहासिकोंकी दृष्टि तक नहीं पड़ी। उनमे बहुतोंके तो दीवान ही मुरत्तिब होनेकी नौबत न आई और किन्हीके दीवान मुरत्तिब या मुद्रित भी हुए तो जनतातक न पहुँचकर पुस्तकालयोंमे रखे-रखे दीमकोंके केवल क्रीड़ास्थल बने रहे।

'शेरोसुख़न'कम्पोज़ हो जानेके बाद एक ऐसे ही गुमनाम शायर'फाइज़'-का पता हमे 'आजकल' उर्दू (अगस्त १९५०)मे प्रकाशित जनाब मसऊदहसन साहब रिज़वीके खोजपूर्ण लेखसे विदित हुआ। उसी शोधखोजपूर्ण लेखसे 'फाइज'का संक्षिप्त परिचय और कलाम साभार दिया जा रहा है।

नवाब सदरुद्दीन मुहम्मदख़ाँ बहादुर 'फाइज़' दिल्लीके रईसोमेसे एक थे, जो कि औरंगजेब बादशाहके अन्तिम समयसे मुहम्मदशाहके शासनकालतक मौजूद थे। सम्भ्रान्त कुलमे उत्पन्न होनेके अतिरिक्त स्वयं भी अच्छा व्यक्तित्व रखते थे। तत्कालीन शिक्षा-दीक्षामे पारगत थे और बाईस पुस्तकोंके रचयिता थे। फारसी और उर्दू दोनों ज़बानोमें शायरी करते थे। 'फाइज़' उपनाम था। उत्तरी भारतके जिन उर्दू शायरोंका हाल अबतक मालूम हुआ है सम्भवत. उनमे 'फाइज'से पुराना कोई नहीं है।

बाज़ लोग शाह 'हातिम'को दिल्लीका प्रथम शायर करार देते हैं, परन्तु उनकी यह धारणा ठीक नहीं है। हातिमकी शायरीकी शुरूआत-का उल्लेख दो जगह मिलता है। एक 'दीवानज़ादह हातिम'के दीबाचेमें, दूसरे मुसहफ़ीके 'तजकरयेहिन्दी'मे। इन दोनों बयानोंपर गौर करने से मालूम होता है कि हातिम हि० स० ११२८से फारसीमे शेर कह रहे थे।

मगर जब 'वली'का दीवान हि० स० ११३२मे देहली आया और उनका कलाम हर तबक़ेमे मक़बूल हुआ तो हातिमने 'नाजी' 'मजमून' और 'आबरू'-के साथ उर्दूमे शेर कहना शुरू किया। फाइज अपना कुलियात (दीवान) जिसमें उर्दू दीवान भी शामिल है हि० स० ११२८मे पूर्ण कर चुके थे। इससे यह नतीजा निकलता है कि फाइज़का कुलियात सम्पूर्ण हो चुकनेके एक साल बाद हातिमने फारसीमे और पाँच साल बाद उर्दूमे शेर कहना शुरू किया।

गुलाम मुस्तफाख़ाँ 'यकरंग' भी हातिमके हमअस्रोंमे शुमार किये जाते है; मगर मालूम होता है वे हातिमसे बहुत पहले उर्दूमे शेर कहने लगे थे। फ़ाइज़ने अपनी एक गज़लके मक्ते (उपनामवाले शेर)मे यकरंगका एक मिसरा तजमीन कर दिया है (यकरगके मिसरेपर गिरह लगाई है) इससे प्रकट होता है कि यकरगकी गजल पहलेसे मौजूद थी, और उसी गजलपर फाइज़ने गजल कही है।

रिजवी साहबको फाइजकी २२ कृतियोंका अभीतक खोज मिला है, जिनमे २० तो वे स्वय देख चुके है। फ़ाइजके फारसी दीवानमें सम्भवत: बीस हजार शेर थे, किन्तु वर्त्तमानमे चौदह हजारके करीब मिलते है। फ़ारसीके इसी दीवानमे फाइजका उर्दू-कलाम भी शामिल है; परन्तु अनुमानसे मालूम होता है कि उनका उर्दू-दीवान फारसीसे अलग भी प्रकाशित हुआ था। 'तारीख़े अदबीयाते हिन्दी और हिन्दोस्तानी' के लेखकने लिखा है कि फाइजका हिन्दोस्तानी-दीवान गजलों, कसीदों और छह मसनवियोंपर मुश्तमल है।

'फाइज' वली दक्खनीके समकालीन थे। उनके वर्त्तमान उर्दू-गजलोंके नुसख़ेमे केवल ३३ गजले मिलती है। उनमें १९ गजले ऐसी जमीनोंमे हैं जो वलीके दीवानमे भी मौजूद है। वलीका दीवान हि० स० ११३२में दिल्ली आया, परन्तु फ़ाइज़ इससे चार वर्ष पूर्व ११२८मे दीवान मुरत्तिब कर चुके थे। इससे जाहिर होता हैं कि वली फाइजकी गजलोंपर गजल कहते रहे या वलीकी गज़ले दीवान छपनेसे पूर्व भी दिल्ली पहुँचती रही

और उन्हींपर फाइज़ने ग़जलें कहीं। यहाँ चन्द गजलोंके कुछ तुलनात्मक अशआर दिये जा रहे हैं—

वली— ऐ शोख़ ! तुझ नयनमें देखा निगाह कर-कर।
आशिक़के मारनेका अन्दाज है सरापा॥

फ़ाइज़— तिर्छी निगाह करना, कतराके बात सुनना।
मजलिसमें आशिकोंकी अन्दाज़ है सरापा॥

ग़मजह, निगह, तग़ाफ़ुल, अँखियाँ सियाह चंचल।
यारब ! नज़र ना लागे अन्दाज़ है सरापा॥

वली— जिसे इश्कका तीर कारी लगे।
उसे ज़िन्दगी जगमें भारी लगे॥

न छोरे मुहब्बत दमेमर्गतक।
जिसे यारजानीसूँ यारी लगे॥

न होवे उसे जगमें हरगिज़ करार।
जिसे इश्क़की बेक़रारी लगे॥

हर इक वक़्त मुझ आशिक़ेज़ारकूँ।
पियारे तेरी बात प्यारी लगे॥

'वली'कूँ कहे तू अगर यक बचन।
रक़ीबोके दिलमें कटारी लगे॥

फ़ाइज़— तिरी गाली मुझ दिलकूँ प्यारी लगे।
दुआ मेरी तुझ मनमें भारी लगे॥

तिरी क़द्र आशिक़की बूझे सजन।
किसी साथ अगर तुझकूँ यारी लगे॥

भुला देवे वोह ऐशोआराम सब।
जिसे ज़ुल्फ़से बेक़रारी लगे॥

नहीं तुझ-सा और शोख़ ऐ मन-हरन !
तिरी बात दिलकूँ नियारी लगे ॥

भवाँ तेरी शमशीर-ओ-ज़ुल्फ़ाँ कमन्द ।
पलक तेरी जैसे कटारी लगे ॥

वही क़द्र 'फ़ाइज़की' जानें बहुत ।
जिसे इश्क़का ज़ख़्म कारी लगे ॥

वली—

ख़ूबरू ख़ूब काम करते हैं ।
यक निगहमें ग़ुलाम करते हैं ॥

देख ख़ूबाँको वक़्त मिलनेके ।
किस अदा सूँ सलाम करते हैं ॥

कमनिगाहीसे देखते हैं वले ।
काम अपना तमाम करते हैं ॥

दिल ले जाते हैं ऐ 'वली' मेरा ।
सरवेक़द जब ख़िराम करते हैं ॥

फ़ाइज़—

जब सजीले ख़िराम करते हैं ।
हर तरफ़ क़त्लेआम करते हैं ॥

मुख दिखा, छब बना, लिबास सँवार
आशिक़ोंको ग़ुलाम करते हैं ॥

यह नहीं नेक तौर ख़ूबाँके ।
आशनाईको आम करते हैं ॥

ख़ूबरू आश्ना हैं 'फ़ाइज़'के ।
मिल सभी राम-राम करते हैं ॥

अन्तमे हम चन्दशेर फाइज़के ऐसे देते है, जिनमे हिन्दी-शब्दों, हिन्दी-उपमाओंका उन्होने व्यवहार किया है—

ख़ाकसेती सजन उठाके किया।
इश्क तेरेने सरबुलन्द मुझे॥

सूरजका जलानेकूँ जिगर ज्यूँ दिले 'फ़ाइज़'।
ऐ नार! तू क्यों धूपमें सर खोल खड़ी है॥

तुझ बदनपर जो लाल सारी है।
अक़्ल उसने मेरी बिसारी है॥

ओढ़नी ऊदीपर किनारी जर्द।
गिर्द शबके सूरजकी धारी है॥

कनकसूँ सफ़ादार है वह बदन।
कँवल डालसे हाथ, गुलसे चरन॥

केलेके गाभेसे मुलायम दो हात।
देखके मुरझाते थे केलेके पात॥

रंगसूँ है पैरहन सब गुलसे लाल।
नैन है रंगो कँवलसे अज गुलाल॥

नैन दो कँवल और दो गुल है गाल।
कली चम्पेकी नाकको है मिसाल॥

तिरछी नज़रोंसे देखना हँस-हँस।
मोर-सी चाल तुझ न्यारी है॥

जूड़ा नहीं गेंद है कन्हैयाकी।
या सहसनागनी है दरियाकी॥

हरइक पनहारिन वाँ इक अपछरा थी
कुएँके गिर्द इन्दरकी सभा थी॥

दिलफ़रेबीकी अदा उसकी अनूप
रूपमें थी राधिकासूँ भी सरूप॥

२२ सितम्बर १९५०

५

आरज़ू

[१६८९—१७५६ ई०]

सिराजुद्दीन 'आरजू' शेख़ हसामुद्दीनके साहबजादे थे। 'मीर' तक़ी-जैसे अमर शायरका क़ौल है कि "इस जमानेमें इनसे बढ़कर कोई मुहक़्क़क़ और शायरेशीरीजबान न था।" 'मीरहसन' इन्हे अमीर खुसरोके बाद हिन्दोस्तानका सबसे बड़ा शायर समझते थे। आरजू आगरेके रहनेवाले थे, मगर दिल्ली रहने लगे थे। नादिरशाह द्वारा दिल्लीमें क़त्लेआम किये जानेके बाद यह लखनऊ चले गये थे। वहाँ १७५६में इन्तकाल कर गये; परन्तु लाश देहलीमे दफनाई गई। इनकी १५ कृतियाँ बताई जाती है। इन्होंने फ़ारसीमे ही लिखा है। उर्दूमें चन्द शेर लिखे है।

आता है हर सहर[1] उठ तेरी बराबरीको।
क्या दिन लगे है देखो ख़ुरशीदेख़ावरीको[2]॥

उस तुन्दख़ू[3] सनमसे जबसे लगा हूँ मिलने।
हर कोई मानता है मेरी दिलावरीको॥

---

[1] प्रातःकाल; [2] सूर्यको; [3] बद्दिमाग।

६

मज़हर

[१६९८–१७८१ ई०]

शमशुद्दीन जानजानाँ 'मजहर' मिर्ज़ा जानके बेटे थे, और मालवेमें पैदा हुए थे। देहली रहते थे। उर्दूके मशहूर शायर हुए हैं। शहरमें ताज़िये निकल रहे थे, इनके मुँहसे अनायास निकल गया—"बारह सौ बरस बाद इस कदर शोरोगुल और मातम करना और काग़ज़ और बाँसके ढाँचोंका इस क़दर अहतराम करना खिलाफेअक्ल है।" यह वाक्य ताजियेदारोने सुन लिए और एक रोज़ दो मज़हबी दीवानोंने आकर इन्हे भी हसन-हुसेनके पास भेज दिया। मजहर इस दौरके न सिर्फ बेहतरीन वल्कि प्रामाणिक शायरोंमे से थे।

चले अब गुलके हाथोसे लुटाकर कारवाँ[1] अपना।
न छोड़ा हाय! बुलबुलने चमनमें कुछ निशाँ अपना॥

यह हसरत रह गई किस-किस मजेसे जिन्दगी करते।
अगर होता चमन अपना, गुल अपना, बाग़बाँ अपना॥

गरचे इलताफ़के[2] क़ाबिल यह दिलेज़ार न था।
लेकिन इस जौरोजफ़ाका[3] भी सज़ावार न था॥

---

[1]काफिला, मुसाफिरतमे माल-असबाब, [2]कृपादृष्टिके; [3]अत्याचारोका।

खुदाके वास्ते इसको न टोको।
यही इक शहरमें क़ातिल रहा है॥

लोग कहते हैं मरगया 'मज़हर'।
फ़िलहक़ीक़तमें कर गया 'मज़हर'॥

जो तूने की सो दुश्मन भी नहीं दुश्मनसे करता है।
ग़लत था जानते थे तुझको जो हम महर्बां अपना॥

—आबेहयातसे

७

शाह हातिम

[१६९९–१७९१ ई०]

ज़हूरुद्दीन 'हातिम' शेख़ फतहउद्दीनके बेटे थे और दिल्लीमें जन्मे थे। सिपाही पेशा थे। दो दीवान छोड़ गये हैं।

जबसे तेरी नज़र पड़ी है झलक।
तबसे लगती नहीं पलकसे पलक॥

हिज्रकी[1] जिन्दगीसे मौत भली।
कि जहाँ सब कहें विसाल[2] हुआ॥

—इन्तकादियात भाग २, पृ० ९४

यारका मुझको इस क़दर डर है।
शेख़, ज़ालिम है और सितमगर है॥

आबेहयात[3] जाके किसूने पिया तो क्या?
मानिन्दे ख़िज्र जगमें अकेला जिया तो क्या?

सरको पटका है कभू, सीना कभू कूटा है।
हमने शब[4] हिज्रकी[5] दौलतसे मज़ा लूटा है॥

—आबेहयात, पृ० ११७

---

[1]विरहकी; [2]मिलन, (मृत्युसे आलिंगन);
[3]अमृत; [4]रातको
[5]विरहकी।

० ज़िन्दगी दर्देसर हुई 'हातिम' !
कब मिलेगा मुझे पिया मेरा ?

सितमसे तेरे मैं जाता हूँ फिर न कहियो तू।
कि आश्नाईका 'हातिम' निबाह भी न किया ॥

० तुम कि बैठे हुए इक आफ़त हो।
उठ खड़े हो तो क्या क़यामत हो !

मुफ़लिसी और दिमाग़ ऐ 'हातिम' !
क्या क़यामत करे जो दौलत हो ?

—इन्तक़ादियात भा० २, पृ० १७५

मज़मून

[लगभग १७४५ ई०]

शेख शरफुद्दीन 'मजमून' अकबराबादके रहनेवाले और सिपाही पेशा थे। एक दीवान छोड गये हैं। खान 'आरजू'के शिष्य थे। सौदाने इनका ज़माना देखा था।

ख़त[1] आगया है उसके, मिरी है सफ़ेद रीश।
करता है अब तलक भी वोह मिलनेमें शाम-सुबह॥

हँसी तेरी पियारे फुलझड़ी है।
यही गुंचेके दिलमें गुल झड़ी है॥

—आबेहयात, पृ० १०३

मेरा पैग़ामेवस्ल ऐ क़ासिद!
कहियो सबसे उसे जुदा करके॥

० चला करतीमें आगेसे जो वह महबूब जाता है।
कभी आँखे भर आती है कभी दिल डूब जाता है॥

—इन्तकादियात भा० २, पृ० ९४

---

[1]यह शेर अमरदपरस्ती (लौंडेबाज़ी)से सम्बन्धित है। यानी 'मज़मून'के माशूकके मुँहपर बाल (ख़त) आ गये हैं और खुदके सफ़ेद दाढ़ी है। मगर इश्कका वलवला मौजूद है। रस्सी जल चुकी है, मगर बल बाकी है।

६

आबरू

[लगभग १७५० ई०]

शाह मुबारिक 'आबरू' अपना कलाम ख़ान 'आरज़ू'को दिखाया करते थे। ये अपने ज़मानेमें रेख़्ताके प्रामाणिक शायर समझे जाते थे। इस युगमें इख़लासको बिसवास और धड़को सरकी तुकमें समझते थे। रदीफकी कुछ ज़रूरत ही न थी। मुहावरोंको शेरमें लानेकी बड़ी कोशिश करते थे। इनकी मिर्ज़ा जानजानाँ 'मज़हर'से ख़ूब चशमकें रहती थी।

पलंगको छोड़ ख़ाली गोदसें उठ गये सजन मीता।
चित्रकारी लगी खाने हमनको घर हुआ चीता॥

लगा दिल यारसें उसको क्या काम 'आबरू' हमसे।
कि ज़ख़्मी इश्क़का फिर माँगकर पानी नहीं पीता॥

नैनसे नैन जब मिलाय गया।
दिलके अन्दर मेरे समाय गया॥

मत क़हर सेती हाथमें ले दिल हमारेको।
जलता है क्यूँ पकड़ता है ज़ालिम अंगारेको॥

—आबेहयातसे

निकले तुम आ सबाकी[1] तरह जब चमनसे भूल।
गुलशनके देख तुमको गये हाथ-पाँव फूल॥

क्या हुआ मर गया अगर फ़रहाद।
रूह पत्थरसे सर पटकती है॥

क़ौल 'आबरू'का था न जाऊँगा उस गली।
होकरके बेक़रार देखो आज फिर गया॥

—इन्तख़ाबियात भा० २, पृ० ६२

---

[1] मृदु पवनकी।

१०

नाजी

सैयद मुहम्मदशाकिर 'नाजी' युवावस्थामें इन्तक़ाल कर गये। इनका दीवान मौजूद है। तेज़ मिजाज और शोख़ थे। राहचलतोंसे झगड़ा मोल ले लिया करते थे। हजल ज्यादा कहते थे।

जिसने देखे तेरे लबेशीरी[1]।
नजर उनकी नहीं शकरकी तरफ़॥

छोड़ते कब हैं नक़्दे दिलको सनम।
जब ये करते हैं प्यारकी बातें॥

न टोको यारको कि ख़त[2] रखाता या मुँड़ाता है।
मेरे नशेकी ख़ातिर लुत्फ़से सब्ज़ी बनाता है॥

—आबेहयात, पृष्ठ १०४

न सैरेबाग, न मिलना, न मीठी बातें हैं।
यह दिन बहारके ऐ जान! मुफ़्त जाते हैं॥

आज तो 'नाजी' सजनसे करले अपना अर्जे हाल।
मरने जीनेका न कर बिसवास होना, हो सो हो॥

—इन्तकादियात भा० २, पृ० ९२

---

[1]मधुर ओठ।

[2]नाजीका माशूक भी लड़का है। वह कभी ख़त (मुंहके बाल) रखता है कभी मुंड़ाता है।

११

यकरंग

मुस्तफाखाँ 'यकरंग' मिर्ज़ा मज़हर जानजानाँके शिष्य थे।

न कहो यह कि यार जाता है।
मेरा सब्रोक़रार जाता है॥
सुनता ही नहीं है बात किसीकी तू ऐ सजन!
तुझको तेरा ग़रूर न जानूँ करेगा क्या?

इन्त० भा० २, पृ० ६३

धारसाई और जवानी क्योंके[1] हो।
एक जागा[2] आग पानी क्योंके हो॥
जुदाईसे तेरी ऐ सन्दली रंग।
मुझे यह जिन्दगानी दर्देसर है।

—आबेहयात, पृ० १०७

१२

अहसन

मुहम्मद अहसन भी इसी युगमे हुए है—

तरस तुझको नहीं ऐ शोख़! इतनी क्या है तरसाई।
तेरे दीदारको मैं दीदयेतरसूँ[3] खड़ा तरसूँ॥

—आबेहयात, पृ० १०४

---

[1]क्योंकर; [2]स्थानपर; [3]अश्रुपूर्ण नेत्र लिए।

१३

फ़ुग़ाँ

अल्लामा नियाज फतहपुरी इस युगके गजलगो शायरोंमें अशरफ़-अलीख़ाँ 'फ़ुग़ाँ'को तरजीह देते हैं। ये अहमदशाह बादशाहके दूध-भाई (बादशाहको दूध पिलानेवाली धायके लड़के) और 'नदीम'के शिष्य थे। लतीफ़ेगो भी थे। इनके यहाँ व्यथा-वेदनाका अंश पाया जाता है, जो इस युगके अन्य शायरोंमें नहीं था।

ख़त दीजियो छिपाके मिले वह अगर कहीं।
लेना न मेरे नामको ऐ नामाबर! कहीं॥

बावर[1] तुझे अगर नहीं आता तो देख ले।
आँसू ढलक गये कहीं, लख़्ते जिगर कहीं॥

ईज़ा,[2] 'फ़ुग़ाँ'के हक़में यहाँतक रवा[3] नहीं।
ज़ालिम! यह क्या सितम है? ख़ुदासे भी डर नहीं॥

क्या हाल पूछते हो 'फ़ुग़ाँ'का, सुना नहीं?
ख़ानाख़राब इश्क़ने दुनियासे खो दिया॥

मुझसे जो पूछिये तो बहरहाल शुक्र है।
यूँ भी गुज़र गई मिरी यूँ भी गुज़र गई॥

—इन्त० भा० २, पृ० ९५

---

[1] विश्वास; [2] तकलीफ़; [3] जायज।

क्या तू शबेफ़िराकमें[1] जीता रहा 'फ़ुग़ां' !
यॉं तक गुमां[2] न था तेरे सब्रोक़रारका ॥

दिलबस्तगी[3] क़फ़समें[4] यहाँतक मुझे हुई ।
गोया मेरा चमनमें कभी आशियाँ[5] न था ॥

—इन्त० भा० २, पृ० १७८

२६ जून १९४९ ई०

---

[1] विरहरात्रिमे; [2] यक़ीन;
[3] तबियत लगी; [4] कारागृहमे;
[5] घोसला।

मध्यवर्त्तीयुग

[दौरेमुतवस्सितीन]

थमते-थमते थमेंगे आँसू ।
रोना है कुछ हँसी नहीं है ।।

—मीर

पूर्वार्द्ध

उर्दूके रुहेरवाँ (प्राणप्रतिष्ठापक) शायर

शाहग्रालम बादशाह शासनकालीन १७५०-१८०० ई० दिल्ली,
नवाब ग्रासफुद्दौला शासनकालीन १७७५-१७९७ ई० लखनऊ

उत्तरार्द्ध

मसखरे और जिन्दादिल शायर

नवाब सग्रादतग्रलीखाँ शासनकालीन १७९७-१८१४ ई० लखनऊ

मध्यवर्त्तीयुगपर सिंहावलोकन

पूर्वार्द्धयुगके शायर

१४ सौदा
१५ मीर
१६ सोज
१७ दर्द
१८ कायम चान्दपुरी
१९ असर
२० ताबा
२१ यकीन
२२ बेदार
२३ ज़िया
२४ हसन
२५ बयान
२६ अफसोस
२७ लुत्फ़
२८ हसरत
२९ हिदायत
३० फिराक
३१ हज़ी

उत्तरार्द्धयुगके शायर

३२ मुसहफी
३३ इशा
३४ जुरअत
३५ नासिख
३६ हविस
३७ शहीदी
३८ रगीन

मध्यवर्तीयुगपर सिंहावलोकन

यह मध्यवर्तीयुग मुगल-शासनका राहु-युग और उर्दू-शायरीका सुवर्ण-युग है। इसी युगमे एक ही समय और एक ही स्थान (क़िले मुअल्ला)मे मुगल सल्तनत एड़ियाँ रगड़-रगड़कर दम तोडनेपर मजबूर हो रही है और उरूसे-शायरी (कविता रूपी दुलहिन) सखी-सहेलियोकी छेड़-छाड़का लक्ष्य बनी हुई है, और तारीफ़ ये है कि जो 'नमाजे जनाज़ा' पढने आये है, वही दुल्हिनका डोला सजा रहे है। या यूँ कहिये कि जो प्राणप्रतिष्ठापक उर्दू-शायरीमे जान डाल रहे है, वही मुगल सल्तनतकी इस हालतेनजअ (मृत्य समयकी अवस्था)पर आँसू बहा रहे है। एक ही घरसे सीना पीटने और शादियानोंकी सदाएँ आ रही है।

यह युग मुगलशासनके अस्तका होते हुए भी उर्दू-शायरीकी उन्नतिका सबसे बडा युग है। इसी युगके पूर्वार्द्धमे मीर, दर्द, सौदा और सोज--जैसे रूहेरवाँ (उर्दू-शायरीमे जान डालनेवाले) शायरेआजम हुए है। ये लोग अपनी शायरीकी वह मिसाल पेश कर गये है कि अर्वाचीन युगके अमर कलाकार जौक, गालिब, मोमिन, नासिख़ और आतिश-जैसे उस्तादोंने भी इनका लोहा माना है और इनकी काव्य-प्रतिभाकी मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा की है।

जो उर्दू-शायरी अभी घुटनियों चल रही थी और तुतलाकर बोलती थी, इन उस्तादोने धीरे-धीरे कुछ ऐसी कयामतकी चाल सिखलाई और ज़बानमे कुछ ऐसी मिसरी घोली कि देखने-सुननेवाले कलेजा थामकर रह गये। जो अभी देशी पोशाक पहने हुए थी, उसे फारस-ओ-ईरानके नई वज़ह-क़तअके लिबास और जेवरातसे इस तरह आरास्ता किया कि

वह हिन्दवीके बजाय तुर्की हूर[1] मालूम होने लगी। कुछ लोगोंने इसकी सज-धज और निखारपर माथा पीट लिया, मगर ज्यादातर इसके जोबनके उभार, कयामतकी चाल, शोख़ीभरी हँसी, बाँकी चितवन और अल्हड़ जवानीपर शैदाई होकर इसके कूचेमे दीवानावार चक्कर काटने लगे।

इन उस्तादोंकी करिश्मासाजियोंकी बदौलत उर्दू-शायरी नये-नये लिबास और ज़ेवरातसे आरास्ता होकर अजीब-अजीब अन्दाजसे पहलू बदलने लगी[2]। दिन-दूना, रात-चौगुना शबाब बढने लगा, निखार आने लगा।

इसी दौरमे मीर, दर्द, सौदा और सोज़—जैसे सिद्धहस्त उस्तादोंके अतिरिक्त नौजवाँ शायरोमे कायम, असर, हसन, यकीन, तावां, बयाँ, मीर जिया और बेदार प्रथम श्रेणीके शायर हुए है।[3]

---

[1]यानी मीर, दर्दने अपने कलामसे हिन्दी शब्द निकालने शुरू किये, तथा इस युगके शायरोंने सईदी, हाफ़िज़, नासिरअली, जलाल, असीर, बेदिल, और तालिब वगैरह फारसी शायरोंका अनुसरण करते हुए उनके रगमें कहना शुरू किया। फ़ारसीसे नई बहरों, उपमाओं, उदाहरणों, और अलकारोको भी माँग लिया। बहुतसे शब्द बहिष्कृत कर दिये। मतलब ये है कि इस दौरमे उर्दू-शायरीपर फारसियतका पूरा गलबा हो गया और वह बिल्कुल ईरान-ओ-तुर्कके क़ालिबमे ढल गई।

तारीख़े अदबे उर्दू, पृ० ११४

[2]अर्थात् मीरने—वासोख़्त (वह नज्म जिसमे माशूकके जौरोजफा और आशिक़के रंजोमलाल, नफरतोबेजारीका इजहार हो), मुसल्लस, मुरब्बअ (तीनपदी, चौपदी कविता) और सौदाने कसीदा और हिजो ईजाद की।

[3]"जिस तरह मीरने ग़मेहस्तीकी टीसोको राहतआफ़रीन बनाया, दर्दने ग़मेइश्क़को एक नया जलाल बख्शा, उसी तरह इन लोगोंने इश्क़में

हमने उक्त सभी शायरोंके चुने हुए शेर देनेका प्रयत्न किया है। इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि सम्पूर्ण दीवान इनके ऐसे ही जवाहरपारोसे भरे हुए होंगे। नही, उनमे बहुत हल्के शेर भी हैं और उनमे भावोंकी पुनरावृत्ति भी।[१]

इस युगके उत्तरार्द्धमे मुसहफी, इंशा और जुरअत—जैसे रंगीन और ज़िन्दादिल शायर हुए हैं, क्योंकि यह लोग मीर, दर्दके बुढापेमें जवाँ थे, इसलिये इनकी हर चीज़ जवाँ है। इनकी शायरीमें शोख़ी और चुलबुलापन है। इनकी ज़बान रसीली और चाल क़यामतखेज़ है। मीरो-दर्द बुजुर्ग थे, वे फिर भी पुरानी वजह-कतअके लोग थे। ये जवाँ ठहरे और पुरानी बातोंसे बगावत करना जवानोंका खमीर ठहरा। इसलिये इन्होने हर पुरानी बात तर्क कर दी। पुरानी ज़बान नये साँचेमें ढाल दी। बहुत-से हिन्दी-शब्द अव्यवहृत कर दिये। और तो और,

---

एक नई शान पैदा की, और उसे एक जुदागाना मसलक (नवीन मार्ग) बनाकर पेश किया।....बग़ैर इनको पढ़े हमारा उर्दू-गज़लका मुतालआ (अध्ययन) नामुकम्मिल रह जाता है। इनकी सबसे बड़ी खसूसियत ये है कि ये लोग इश्के हकीकी (ईश्वरीय-प्रेम) और इश्के मजाज़ी (कामुक-प्रेम) मे तफ़रीक़ (अलहदगी) महसूस नही होने देते। इनके यहाँ इश्क, इश्क है।"

तनकीदी हाशिये, पृ० ९३-९४

[१] "इस दौरके शायरोंके कलाममे पस्तखयालातके साथ बुलन्द खयालात और सख़ीफ़ (बेहूदे, छिछोरे, तंग) अल्फाज़के साथ शानदार और फ़सीह अल्फ़ाज़ मिले-जुले हैं। इनकी गजलोंमे शुतुरगुर्बगी (शुतुर मुर्गकी एक टाँग नीची एक ऊँचीकी तरह) बुलन्दी और पस्ती पुराने तज़करे नवीसोंको दिखाई दी है।"

तारीखे अदबे उर्दू, पृ० ११६

देहलीकी दाख़िली[1] शायरीको तलाक देकर लखनऊकी ख़ारजी शायरी को घरमे डाल लिया। तात्पर्य्य यह, कि जो चाहा और जैसे भी चाहा इन उत्तरवर्ती शायरोने लिखा। पुरानी पाबन्दियाँ सब हटाकर फेंक दी।

यह वह युग था जब देहली बरबाद हो रही थी। मुगलिया सल्तनत का चिराग टिमटिमा रहा था और अवधका नवाब स्वतन्त्र हो गया था। भूखे मरते क्या न करते? सभी नामवर शायर आजीविकाकी तलाशमें दिल्ली छोड़कर लखनऊ चले आये थे। नवाबको नई-नई स्वतन्त्रता मिली थी। फैजाबादसे हटकर अवधकी राजधानी लखनऊ बन चुकी थी। नवाबको नई सल्तनत और स्वतन्त्र अधिकारोंका नशा था। धन-वैभव उसके आँगनमें किलकारियाँ मारते थे। विलासिता उसके पाँवोंमें लोटती थी। शेरो-सुख़नका शौक था। अतः एक-एक करके 'दर्द'को छोडकर 'मीर'से लेकर प्रायः अधिकतर शायरोने लखनऊको अपना रंगस्थली बना लिया। पूर्वार्द्ध युगके शायर तो लखनऊ पहुँचनेपर भी देहलीके दाख़िली रगमे ही सराबोर रहे; परन्तु इस भोग-विलासकी चमक-दमकमे उत्तरार्द्धके शायर चौंधिया गये और इन्होंने लखनऊका ख़ारजी रग धीरे-धीरे अपना लिया।

इस ख़ारजी रगके प्रथम आविष्कारक 'हसरत'[2] थे। इन्होंने अमरद-

---

[1]दाख़िली और ख़ारिजी शायरी क्या है? देहलवी और लखनवी शायरीमे क्या अन्तर है? यह सब अगले अध्यायमे विस्तारसे मिलेगा।

[2]"जाफरअलीखाँ 'हसरत'ने सबसे पहले लखनऊका एक अलहदा रग कायम करके अमरदपरस्ती (छोकरेबाज़ी)की तरफ़से शायरोकी तवज्जहको हटाया। 'जुरअत' जिनकी बेबाक उरयानियाँ (नग्न कविताएँ) मशहूर हैं, हसरतके ही शागिर्द थे। इस वक़्ततक दिल्लीकी

परस्तीकी लानतसे तो लोगोका मन हटाया, परन्तु शुद्ध और स्वाभाविक प्रेमका मार्ग न बताकर बाजारू शायरीके कूएँमें धकेल दिया—खाईसे निकालकर कुएँमे डाल दिया।[1]

शायरीने महबूबकी निसाई हैसयतको मुतअय्यन नही किया था (अर्थात् स्त्रीको प्रेयसी न समझकर छोकरोको माशूक, हबीब अथवा प्रेम-पात्र समझा जाता था) जिस तरफ देखिये वही सब्जये ख़त (मुँहका नवीन रूआँ) नजर आता था।"

इन्तकादियात भा० २ पृ० १८८

[1]"इस वक़्त लखनवी मुआशरत (रहन-सहन, वातावरण)मे शाहिदाने बाजारी (सुन्दरी वेश्याओ)के साथ ताल्लुकात पैदा करना आम बात थी। इसलिये कघी, चोटीका भी जिक्र शुरू हुआ। चोली और महरम (औ तोके सीनेबन्द)का भी बयान होने लगा। जो ब-लिहाजेफितरती मीलान काबिलेकद्र था। लेकिन इस सिलसिलेमे उरयानियाँ (नग्नता) इतनी बढ गईं कि आखिरकार देहलवी रगेतगज्जुलकी लताफत बिल्कुल पसेपुश्त डाल दी गई, और जज्बात (भावो)का रुख़ हद दर्जा पस्तीकी तरफ माइल हो गया। 'हसरत'की ऐसी शायरीके नमूनेका एक कितआ मुलाहिजा हो—

चोली मसकी, बन्द हैं टूटे, सरके बाल परीशाँ हैं।
इस बिगड़े आलमपै तेरे लाख बनावट क़ुर्बां हैं॥

कपड़े बदनके मले-दले है, बल्कि बदन सब मला-दला।
शबके बासे फूलोंका आलम किससे कहें हम, हैराँ हैं॥

मुँह उतरा है, गाल है नीला, पलकें झुकीं, आँखोंमें ख़ुमार।
नामेख़ुदा बिगड़े आलमपर जमा अदाएँ पिनहाँ हैं॥

इस उत्तरार्द्धमे उर्दू-शायरीको सबसे बड़ी हानि यह पहुँची कि उसका गठबन्धन विलासी नवाबोसे हो गया। पूर्ववर्ती शायर भी बादशाहो-नवाबोसे पुरस्कृत होते थे। उपहार और नियमित शुल्क भी पाते थे। परन्तु वे कीचडमे कमलकी तरह दरबारोसे अलिप्त रहते थे। न कभी उन्होने आत्मप्रतिष्ठा और स्वाभिमानमे[1] बाल आने दिया और न अपनी स्थिति वेतनभोगियो-जैसी होने दी। जब जी चाहा अपनी इच्छानुसार कलाम कहा। न किसी रईसके समयकी पाबन्दीमे रहे और न उनके आदेशपर कुछ लिखना ही पसन्द किया। हाँ, जश्नेपैदाइश, शादी, राजगद्दी वगैरहके मौकोपर बतौर नेकशुगन या मुबारिकबाद देनेके खयालसे कसीदे और सेहरे ज़रूर लिख दिया करते थे।

परन्तु इंशा-जुरअतके युगमे पुरानी आन पानी हो गई, और उर्दू-शायरी खालिस दरबारी शायरी हो गई। दरबारी गठबन्धनसे शायरोकी जाहिरा इज्ज़त खूब बढ गई और वे गुलछर्रे भी उड़ाने लगे, परन्तु उनका व्यक्तित्त्व बिल्कुल समाप्त हो गया। व्यक्तित्त्व यहाँतक समाप्त हुआ

सच कहो 'हसरत' पास रहे थे रात बना जिससे यह रंग।
इस कम्बख्तकी सुहबतसे बेजार जहाँके क़ुर्बां हैं॥

यह सच है कि हसरतके यहाँ यह रंग बहुत ज्यादा नही है, लेकिन इस इब्तदाकी कोई इन्तहा भी होनी थी, जिसे जुरअतने पेश किया और फिर रफ़्ता-रफ्ता रिआयते लफ्ज़ी, इबहामगोई, जनानापन, फ़हाशी, उरयानी, सूकयाना तर्ज़, बेहयाई, और बेग़ैरतीकी वबा नासिख और उनके शागिर्दोकी बदौलत इतनी आम हुई कि लखनऊ स्कूल आजतक इसकी वजहसे बदनाम है।"

—इन्तकादियात भा० २ पृ० १८८-८९

[1]देखिए, लेखककी 'शेरो-शायरी' नामक पुस्तकमे—मीर, सौदा, ग़ालिब, और मोमिनके स्वाभिमानके उदाहरण।

कि इंशाके मुंडे हुए सरपर नवाबने चपत जड़ दी, और इन्शाकी बेगैरती देखिये कि नवाबसे इस बेअदबीका जवाब तलब करनेकी बजाय भाँड़पने-की बात करके इस अपमानको हँसीमे घोलकर पी गया।[1] मुसहफी जैसा उस्ताद नाइयोंकी तरह नाममात्रके बादशाह 'शाहआलम'के पुत्र 'सुलेमाँ'के[2] पीछे मोरछल करनेमे फ़ख्र समझता था—)

तख़्तेताऊसपै जब होवे सुलेमाँका जुलूस।
मोरछल हाथमें मैं बालेहुमाका ले लूँ॥

---

[1]एक दिन इशा नवाबके साथ बैठकर खाना खा रहे थे। गरमीसे घबराकर पगड़ी उतारकर रख दी। सिर मुँडा हुआ देखकर नवाबने चुपकेसे एक चपत जमा दी। इंशाने टोपी सरपै रखते हुए कहा—"सच है, बड़े-बूढ़े बचपनमे कहा करते थे कि नंगे सर खाना खानेसे शैतान चपते मारा करता है। सो आज वह साबित हुआ!"

—आबेहयात पृष्ठ २८७

इशाने बड़ा माकूल जवाब दिया, परन्तु प्रश्न तो यह है कि नवाब-को साहस ही चपत मारनेका क्यो हुआ? इसलिये कि नवाब इशाके व्यक्तित्वको तोल चुके थे।

[2]सुलेमान शाहआलम (द्वितीय) बादशाहके तीसरे बेटे थे। गुलाम क़ादिरकी बगावतके बाद दिल्ली छोड़कर लखनऊ चले गये थे। नवाब आसफ़ुद्दौलाने छः हज़ार रुपया मासिक नियत कर दिया था। सन् १८३७ ई० मे इनकी मृत्यु हुई। (यह शायरोके बहुत बड़े सरपरस्त थे। स्वयं भी अच्छे शायर थे। साहिबेदीवान हुए हैं। प्रारम्भमे शाहहातिम फिर मुसहफ़ी और इशाके शिष्य रहे। देहलीसे जो भी बाकमाल शायर लखनऊ जाता था पहले इनके यहाँ हाज़िर होता था।)

—तारीख़े अदबे उर्दू पृ० २४३

शायर अब शायर न रहकर भाँड[1] वन गये। जब शाही और नवाबी नजरे-इनायतको लोगोने प्रतिष्ठा और गौरवके बढानेमे सहायक समझ लिया तो उसे हासिल करनेकी हर शायर कोशिश करने लगा। यही होड़ धीरे-धीरे चापलूसी, खुशामद, मकरोफरेब, झूठ और लनत-

---

[1]क—एक वार अवधके रेजिडेण्ट 'जानबेली' दरबारमे आये तो इंशा नवावके पीछे खड़े होकर रूमाल हिला रहे थे। बाते करते-करते साहवने इनकी तरफ देखा तो इन्होने मुँह बिगाड़ लिया। साहबने आँखे नीची कर ली। फिर देखा तो अजीव मुँह बना लिया। शरमाकर साहव दूसरी तरफ देखने लगा। गरज जब भी देखा भाँड़पनेकी नकलो-हरकत करते थे। साहवको जब मालूम हुआ कि ये इंशा है तो वह इनके इस मसखरेपन पर खूब हँसा।

—आबेहयात, पृ० २९०

ख—एक वार गोमतीके घाटपर पण्डित बनकर जा बैठे, और स्नाना-र्थियोके तिलक लगाकर पैसे वसूल करते रहे।

ग—एक दिन नवावने रोजा रक्खा तो दरवानको आदेश दे दिया कि आज कोई भी अन्दर न आये। इंशाको जरूरी काम था। इन्होने जब दरबानसे नवावका आदेश सुना तो जनाने कपडे पहनकर अन्दर घुस गये और नाकपर उँगली रखकर बोले—

मै तेरे सदके न रख मेरी पियारी रोज़ा।
बन्दी रखलेगी तेरे वदले हज़ारी रोजा॥

इंशाकी इस हरकतसे नवावको हँसी आ गई और ये अपना काम वनाकर वाहर आगये।

—आवेहयात, पृ० २८९

रानीमें परिवर्त्तित हो गई। जो जितना अधिक चापलूस[1] जालिया, साजिशी,

---

[1]इंशाकी चापलूसीका यह आलम था कि वह पैसेकी खातिर मँगतोंसे भी ज्यादा गिर जाता था। एक नमूना देखिये—

'दिल्लीमे अगर्चे बादशाह उस वक़्त फ़कत बादशाहेशतरज थे।' मगर इंशा अपना मतलब हजार तरहसे निकाल लिया करते थे। मसलन जुमेरातका दिन होता तो बाते करते-करते दफअतन ख़ामोश होते और कहते कि—"पीरोमुरशद! गुलामको इजाजत है?"

बादशाह कहते—"ख़ैर बाशद, कहाँ?"

इशा—"हुज़ूर! आज जुमेरात है गुलाम नबीकरीम जाये। शाहे-दीनोदुनियाका दरबार है कुछ अर्ज करे।"

बादशाह—"भई, हमारे लिये भी कुछ अर्ज करना।"

इशा—"हुज़ूर! गुलामकी और आरज़ू कौन-सी है? यही दीनकी आरज़ू, यही दुनियाकी मुराद।"

यह कहकर फिर ख़ामोश होते। बादशाह कुछ और बात करने लगते। एक लमहेके बाद फिर यह कहते कि—"पीरोमुरशद! फिर गुलामको इजाज़त हो।" बादशाह कहते कि, "है, भई इशा! अभी तुम गये नही?"

इशा कहते—"हुज़ूर! बादशाहेआलीजाहके दरबारमे गुलाम ख़ाली हाथ क्योंकर जाय? कुछ नज़रोनियाज (पूजा-भेट), कुछ चिरागी (दिया-बत्ती)को तो मरहमत हो।" बादशाह कहते—"हाँ भाई' दुरुस्त-दुरुस्त, मुझे तो ख़याल ही नही रहा।" जेबमे हाथ डालते और कुछ रुपये निकालकर देते। मीर इंशा लेते और एक-दो फिकरे दुआके कहकर फिर कहते—"हुज़ूर! दूसरी जेबमे दस्तेमुबारिक जाय तो फिदवीका काम चले, क्योकि वहाँसे फिरकर भी तो आना है।" बादशाह कहते कि

चुगलख़ोर,' जबाँदराज़, और भाँड़ होता, उतना ही नजरे इनायत पानेका हक़दार होता। इस आपाधापीके कारण एक दूसरेपर गन्द भी उछाली जाने लगी और वह यहाँतक बढ़ी कि होलीके भड़ुवे भी मात खा गये।

० इंशा और मुसहफ़ीकी छेड़छाड़ इस दौरकी शायरीपर बदनुमा धब्बा है। यह छेड़-छाड़ दरबारतक ही सीमित रहती तो भी ग़नीमत थी। नवाबोंको साँडो, बटेरों, तीतरों और मुर्गोंकी लड़ाइयाँ देखनेका तो शौक़ था ही। अगर जानवरोंकी तरह हजरते इन्सान और वह भी किबलओकाबा शायर लड़ने लगे तो कहना ही क्या? फिर तो इस शौक़में चार चाँद लग गये। दरबारोंमे चोंच लड़ाते-लड़ाते बाज़ारोंमें निकल पड़े। शायर-शायर तो आपसमे लड़े ही। जुरअत भाँड़से भी उलझ गये।०

चूरन, चना ज़ोर गरम बेचनेवाले, ख़यालिये, लावनिये, तुर्रे,-कलग़ी-बाज और झूलनेबाज़, तो एक दूसरेके बोलका जवाब देकर निहायत संजीदगीके साथ चुप हो जाते थे, परन्तु हमारे इन शायरे-आज़मोंको इतनेसे सन्तोष कहाँ? हर शायर, हर नीच-से-नीच उपायसे अपने अन्न-दाता नवाबको प्रसन्न रखना चाहता था। अतः ये शायर जनाने वेष भी धारण करने लगे। परस्पर कमीने वार भी करने लगे। अश्लील-से-

---

"हाँ भई सच है, सच है। भला वहाँसे दो-दो खजूरे तो लाकर किसीको दो। बालबच्चे क्या जानेंगे कि आज तुम कहाँ गये थे।"

आबेहयात, पृ० २६४

'अपने प्रतिद्वंद्वियोंको नीचा दिखानेके लिये इशाने बादशाहसे कह दिया कि अमुक लोग आपकी गज़लका मज़ाक उड़ाते हैं। इससे प्रति-द्वन्द्वियोंको बड़ा सदमा पहुँचा।

—आबेहयात, पृ० २२४

अश्लील कलाम भी कहने लगे। गरज पेटके लिये आत्मा तो बेच ही दी थी, ज़ाहिरा इज़्ज़त-आबरू भी बेच दी।

जब शायरोंकी यह हालत हो गई तो उनके कलाममें अमरत्व कहाँसे और कैसे आता? परिणाम इसका यह हुआ कि—

१—गज़लसे मतानत, पुख़्तगी, सजीदगी, पाकीज़गी, जाती रही। भाव और विचार उच्चकोटिके न रहकर निम्न श्रेणीके रह गये, और भविष्यकी उन्नतिमें एक बड़ी खाई बन गई।

२—शेरकी आत्मा नष्ट कर दी गई और उसके निर्जीव शरीरको अधिक-से-अधिक सजाया गया।

३—माशूक अबसे खुल्लम-खुल्ला वेश्या या छिनाल औरत समझी जाने लगी।

४—कामुकताका प्रचार बेधड़क और बेझिझक किया जाने लगा, क्योकि तत्कालीन नवाब और रईस ऐसे ही इश्क़ और कलामको पसन्द करते थे और ऐसे ही शायरोंको पुरस्कृत करते थे।

५—शायरीसे रूहानियत और तसव्वुफका रग क़तई जाता रहा।

इस उत्तरार्द्ध युगमे मुसहफी ज़रूर ऐसे शायर हुए हैं, जिनपर उर्दू शायरी नाज करती है। ये देहलवी और लखनवी शायरीके दोराहेपर खड़े हैं। इनकी अन्तरात्मा देहलवी दाख़िली रगमें गजल कहलवाती थी, परन्तु लखनऊ आनेके बाद इशा-जुरअत जैसे जबाँदराज़ोसे पाला पड़नेके बाद अपनी आजीविका बनाये रखनेके लिये लखनवी रगमे भी रोते-पीटते कहनेको बाध्य होते थे। नवाबके यहाँसे इतना अल्प वेतन मिलता था कि ये अपनी ग़ज़ले बेचा करते थे। उस वक़्त लोगोके पतनका यह हाल था कि शायरीसे कोसों दूर है, परन्तु दूसरोसे गज़लें लिखवाकर अपने उपनामके साथ मुशायरेमे पढ़ते थे और नकली शायर बनकर अपने शौक़को यूँ पूरा करते थे। ऐसे ही नकली शायरोंके हाथ मुसहफी अपनी ग़ज़लें बेचा करते थे। मुशायरेके मिसरा तरहपर सैकड़ों शेर लिखकर

रख लेते थे और ये बोगस शायर अपने मनपसन्दके शेर खरीद ले जाते थे। जो बचते थे, उन्हे मुसहफी मुशायरेमे पढ दिया करते थे। बाज दफा तो इनके पास ऐसे फुसफुसे शेर रह जाते थे कि दाद भी न मिलती थी, और ये गजल फाड़कर फेक देते थे।

ऐसे ही बचे-खुचे शेरोसे मुसहफीके आठ दीवान भरे हुए है, और इस कूड़ेकरकटमे भी वह अनमोल हीरे-मोती छिपे रह गये है कि मुसहफीके समकालीन शायरोके यहाँ उनका शानो-गुमान भी नही। काश ! यह दिल्ली ही रहे होते और लखनऊ न जाते। लखनऊ जाने और इशा जुरअतके झमेलोमे फँसनेसे मुसहफी बहक गये, और इससे उर्दू-शायरीकी बडी हानि हुई। मुसहफी-जैसे-शायरसे ऐसे अशआर निकलना उसकी नैतिक मृत्यु है—

नै उन्सके ख्वाहाँ है, नै प्यारके भूखे है।
हम लोग है बाजारी, दीदारके भूखे है॥

इसी दौरमे मियाँ रंगीन हुए; उन्होने रेख्ता कहते-कहते रेख्ती ईजाद कर डाली।

रेख्ती क्या है ?

'आशिक' चाहनेवालेको और जिसे चाहा जाय उसे 'माशूक' कहते है। जो ईश्वरको चाहते है वे भक्त आशिक है और उनका माशूक ईश्वर है। स्त्री अपने पति-प्रेममे लीन है तो वह आशिक और पति उसका माशूक है। कोई युवक किसी कुमारीसे प्रेम करता है तो वह युवक आशिक और वह कुमारी उसकी माशूक है। यह चाहत या प्रेम यदि दुतर्फा हो, तब तो कहने ही क्या ? परन्तु अक्सर ऐसा नही होता। चाहनेवाला गरज़मन्द होता है। उसे अपने माशूकका प्यार प्राप्त करने, उसे रिझाने अथवा बसमे करनेकी अभिलाषा होती है और अक्सर माशूकोको

इन बातोंकी परवाह नही होती। इसीलिये आशिक़ अपने माशूककी प्राप्तिके लिये सभी सम्भव-असम्भव उपाय काममें लाते हैं।

ध्रुव और प्रह्लादने अपने माशूक ईश्वरका जलवा देखनेके लिये घोर तप किया और अनेक कष्ट सहे। मीरा अपने मोहनको रिझाने मेवाड़से नंगे पाँव मथुरा-बृन्दावन पहुँची। पार्वतीने महादेवकी कामनामें घोर तपश्चर्य्या की। जुलेखा जैसी मलिका अपने ही ज़रख़रीद ग़ुलाम-यूसुफको रिझानेमें दर-दरकी भिखारिन बन गई। शकुन्तला मानापमान-की चिन्ता किये बिना ही दुष्यन्तकी खोजमें कहाँ-से-कहाँ जा पहुँची। मजनूंने लैलीके लिये जंगलोंकी जीवन भर खाक छानी। फ़रहादने शीरीं-के लिये पहाड़ काटते-काटते प्राण दे दिये। सोहनी-महिवाल, हीर-रांझा की प्रेम-गाथाएँ प्रसिद्ध हैं। और न जाने कितने असख्य आशिक़ोंने अपने माशूक़ोंकी प्राप्तिके लिये कष्ट सहे हैं, प्राण न्योछावर किये हैं, और भविष्यमें न जाने कितने करते रहेंगे।

स्त्री मन, वचन, कायसे अपने पति-प्रेममे लीन रहती है। उसकी कृपा-प्राप्तिके लिये हर सम्भव उपाय करती है। उसे ईश्वर समझकर पूजती है। पतिके अतिरिक्त पर-पुरुषकी स्वप्नमें भी कामना नही करती। पति-दर्शनकी अभिलाषा दिन-रात बनी रहती है। पति-वियोग असह्य हो उठता है। उसके विरहमें तारे गिन-गिनकर रातें काटती है। तिनके चुन-चुनकर दिन गुज़ारती है।

और पुरुष? यदि वह संयमी और शीलवान है और उसे मन-पसन्द स्त्री मिली है, तब तो वह भी अपनी स्त्रीके प्यारको आदर देता है, अन्यथा अपनी स्त्रीकी उपेक्षा करना, उसे विरह ज्वालामें जलाना, परकीयासे प्रेम करके उसे सन्ताप देना, बाधा डालनेपर अत्याचार करना, पुरुषका अदना-सा काम है।

स्त्रियाँ स्वभावतः लजालु, शीला, कोमल होती हैं, उनका हृदय पति-प्रेमसे ओत-प्रोत होता है, और पुरुषोमे ये गुण उतनी अधिकता लिये हुए

नही होते। इसीलिये संस्कृत और हिन्दी-कवियोने स्त्रीको आशिक और पुरुषको माशूककी सज्ञा देकर अपनी अनोखी सूझ और परिष्कृत बुद्धिका परिचय दिया है। इससे सस्कृत और हिन्दी कवितामे इतनी स्वाभाविकता आ गई है कि अन्यत्र इसकी मिसाल मुश्किलसे-ही मिलेगी। और अरबी, फारसी, उर्दू-शायरीमे तो चिराग लेकर ढूँढनेपर भी यह चीज नही मिलेगी।

इसके विपरीत "उर्दू-शायरीका आशिक स्त्री न होकर पुरुष होता है, और माशूक पुरुष न होकर बीस प्रतिशत स्त्री और अस्सी प्रतिशत कमसिन छोकरे होते है। प्रथम तो यही अप्राकृतिक है कि पुरुष पुरुषको चाहे। इस दूषित मनोवृत्तिसे जनताका कितना पतन होता है, और कितने सक्रामक रोग घर कर लेते है, लिखनेकी आवश्यकता नही, और जब स्त्री या छोकरेको माशूक तस्लीम कर लिया गया तो उनमे उन सब अवगुणोंकी भी कल्पना कर लेनी पडी जो माशूकमे होते है।

"माशूक अक्सर अपने आशिककी उपेक्षा करता है। अन्यको चाहतकी दृष्टिसे देखता है। इसीलिये उर्दू-शायरोने माशूकको शोख़, हरजाई, बदजवान, उद्दण्ड, ज़ालिम, बेवफ़ा-जैसे अनेक विशेषणोसे अलकृत किया है। उर्दूका माशूक आशिककी परछॉईसे भी दूर भागता है। घरमे न घुस आये इसलिये पहरेदार रखता है। आशिक पत्र भेजता है तो जवाब नही देता है। ज्यादा तग आ जाता है तो पत्र-वाहकको ही मार डालता है। उर्दूका माशूक इतना बाजारू होता है कि भरी महफिलमे दूसरोसे ऑखे लड़ाता है। अपने तथा कथित आशिकको धक्के देकर निकलवा देता है। आशिक महफिलसे निकाल दिये जानेपर भी अपनी हरकतोसे वाज नही आता। माशूकके कूचेमे दीवानावार फिरता है। उसकी खिडकीके नीचे पडे रहने और मरनेपर वही समाधि पानेमे जीवन-की सार्थकता समझता है। वहॉ कब्र न बन सके तो अपने जनाज़ेको उसी कूचेसे होकर कब्रिस्तान तक ले जानेको कह मरता है। मरनेके उपरान्त भी कब्रपर फूल चढाने, चिराग जलानेको माशूक आये यही अभिलाषा

बनी रहती है। यहाँतक कि महशरमे जब अल्लाहमियाँ सबके पुण्य पापका न्याय करेंगे, तब भी माशूक सामने हो। यही मनोकामना उर्दूके आशिककी बनी रहती है।

स्त्रियाँ जो स्वभावत. सकोची, लज्जावती, सुशील, दयालु, ममता-मयी, और स्नेहशील होती है, उनको माशूककी कल्पना करके पुरुषोचित दुर्गुणोसे लादना, उर्दू-शायरोंको भी खटकता था, परन्तु सशोधनका कोई उपाय नही था। उर्दू-शायरीका निर्माण-ही इस प्रकार हुआ है कि उसमेसे यह दोष निकाला नही जा सकता।

कुछ नासमझ और मनचले लोगोने हिन्दीकी इस विशेषताका अनुकरण करना चाहा भी तो वे सफल न हुए। उल्टा मुँहके बल औधे गिर पडे, और उनका यह दुस्साहस उर्दू-शायरीका कलक बनकर रह गया। उन्होने स्त्रीको आशिक तो बना दिया परन्तु वे स्त्रियोचित लज्जा, शील, उसमे स्थापित न कर सके और माशूकके ज्यो-के-त्यो अवगुण उसमें रहने दिये। परिणाम इसका यह हुआ कि आधा तीतर आधा बटेर, न औरत न मर्द। जनानो, हीजड़ोकी शायरी बन गई, जिससे भले आदमी कोसो दूर भागते है। यही जनानी शायरी 'रेख़्ती' कहलाती है।

°रेख़्तीके आविष्कारक तो 'रगीन' समझे गये है, परन्तु इनके गहरे मित्र 'इशा' भी कभी-कभी रेख़्ती कहते थे। सबसे बडे रेख़्तीगो मीर-यारअलीख़ाँ 'जान' साहब समझे जाते है।°

हजल

इसी दौरमे हजल भी ईजाद हुई। इसके अश्लील रूपकी ओर हम पहले सकेत कर चुके है, इसका उल्लेखतक करनेकी हम अपनेमे क्षमता नही पाते।

अब हम ऐसे शब्दोकी तालिका दे रहे है जो इस युगमे व्यवहृत होते थे और वे उत्तरोत्तर शायरो द्वारा अव्यवहृत होते गये।

मध्ययुगमे प्रचलित	वर्तमान रूप	मध्ययुगमे प्रचलित	वर्तमान रूप
ते	तूने	रल	मिल
नित	हमेशा	तनक	जरा
टुक	ज़रा	मिरे	मेरे
तिधर	उधर	नगर	शहर
मत, ने	न	कने	पास
एको	एक	तुम	आप
लोहू	खून	आइयाँ	आये
कहो हो	कहते हो	दिखलाइयाँ	दिखलाई
हमपास	हमारे पास	बास	बू
लागा	लगा	वे	वह
नदान	नादान	वसतियाँ है	रहते हैं
ओर	तरफ	तरसतियाँ है	तरसते हैं
तई	लिये	बेपरवाइयाँ	बेपरवाही
माटी	मिट्टी, खाक	आइयाँ	आई, आये
विरह	हिज्र	मैला	गन्दा
अंखड़ियाँ	आँखे	जिन्होके	जिनके
पड़ियाँ	हो पडी	इन्हूँ	इन्हे
बुलवुलाँ	वुलवुले	मैं जब	मैंने जब
महबूबाँ	महबूब	ऐधर	इधर
सेती, से	से	पौन (पवन)	हवा
देखियो	देख	कैंधर	किधर
बीका	बाँका	मुखड़ा	मुँह
कबलग	कबतक	हम ईजाद किया	हमने ईजाद किया
तूँ	तू	खोलियाँ	खोला

मुझसे	मुझे	बोलियाँ	बोली
तूनें	तूने	जानूँ हूँ	जानता हूँ
जूँ	ज्यो	पिण्ड	जिस्म
उन्नने	उसने	सभूँ	सभी
जिन्नने	जिसने	ठौर	जगह
जियो	जो	तिसपै	उसपर
तुझकूँ	तुझको	जो मैं	जो मैंने

इन शब्दोके अतिरिक्त मियाँ, जूँ रेगती, बीच, छिपाई-जैसे और सैकडों शब्द प्रचलित थे, जो इस युगकी शायरीमे यत्र-तत्र मिलते है। इस युगमें हिन्दीके शब्द उत्तरोत्तर अव्यवहृत किये गये और अनेक भोण्डे और करख्त शब्द या तो बदल दिये गये या सानपर चढ़ाकर सौम्य बना लिये गये।[1]

१७ अगस्त १९४८

---

[1] "इस जमानेमे भी वही पुरानी तरकीब—हिन्दी अलफाज़ तर्क करने और उनकी जगह फारसी और अरबी अलफाज दाखिल करनेकी—बराबर जारी रही। इसमे शक नही कि बाज़ हिन्दी और भाषा लफ्ज़ जो खारिज किये गये बदनुमाँ और सकील (कठिन) जरूर थे और नज्मकी सनफे-नाजुक उसकी मुत्तहमल नही हो सकती थी। मगर उनके एक कलम निकाल दिये जानेसे देशी ज़बानकी तरकीबोको सख्त नुकसान पहुँचा। ऐसे जवाहररेजे जो सस्कृत और प्राकृतके खजानोसे जबाने उर्दूके कब्जेमे एक असेंदराजसे चले आते थे, फारसियतके गलबेसे अब खारिज हो गये। कदीम उर्दू-शायर सस्कृत और हिन्दीसे नावाकिफ थे। इसीलिये उन्होने हिन्दी अलफाजकी कोई कद्र नही की।"

—तारीखेअदबे उर्दू, पृ० २७।

पूर्वार्द्ध युगीन उर्दूके प्राणप्रष्ठिापक शायर—

१४

सौदा

मिर्जा मुहम्मदरफी 'सौदा'के पिता मुहम्मदशफी काबुलसे देहली आये थे। सौदा देहलीमे ही उत्पन्न हुए। प्रारम्भमे सुलतान कुलीखाँ दाऊदके और बादमे शाह हातिम[1]के शिष्य हुए। शाहआलम बादशाह इन्हे अपना कलाम दिखाया करते थे, परन्तु अनबन हो जानेसे सौदाने उनके यहाँ जाना छोड दिया था। यह वह युग था जब कि देहली उजड रही थी और अवध सल्तनत बहारपर थी। सौदा भी घबराकर पहले फर्रुखाबाद और बादमे नवाब आसफुद्दौलाके शासनमे लखनऊ पहुँचे। ये ७० वर्षतक जीवित रहे। मीरके प्रतिद्वन्द्वी समझे जाते थे, परन्तु इनकी गजलोमे वह सोजोगुदाज कहाँ जो मीरके यहाँ पाया जाता है। फिर भी इसमे शक नही कि सौदाका मर्तबा शायरीमे बहुत बुलन्द नज़र आता है।

मसनवी, क़सीदे, गजल, मर्सिये, तर्जीहबन्द, मुखम्मस, रुबाई, किते, हिजो सभी कुछ तो इन्होने लिखा है, लेकिन गजलमे सफल नही हुए। हाँ, कसीदे और हिजोमे अपना उदाहरण नही रखते। मसनवियोमे भी भावोकी सरलता और मधुरताकी आवश्यकता है। इसीलिये गजलकी तरह मसनवियोमे भी मीरके मुकाबिलेमे कामयाब नही हुए।

---

[1]शाह हातिमका उल्लेख प्रारम्भिक युगमे सातवे नम्बरमे हो चुका है।

कैफ़ियते चश्म उसकी मुझे याद है 'सौदा'।
साग़िरको मेरे हाथसे लीजो कि चला मैं ॥

समझके रखियो क़दम दश्तेख़ारमें[1] मजनूँ।
कि इस नवाहम 'सौदा' बरहनापा[2] भी है ॥

फ़िक्रे मआश[3]-ओ-इश्क़ेबुताँ,[4] यादेरफ़्तगाँ[5]।
इस जिन्दगीमें अब कोई क्या-क्या किया करे ?

किसकी मिल्लतमें गिनूँ आपको[6] बतला ऐ शेख़ !
तू मुझे गबरू कहे गबरू[7] मुसलमाँ मुझको ॥

'सौदा'! ख़ुदाके वास्ते कर क़िस्सा मुख़्तसिर।
अपनी तो नींद उड़गई तेरे फ़सानेसे ॥

यह तो नहीं कहता हूँ कि सचमुच करो इन्साफ़।
झूठी भी तसल्ली हो तो जीता ही रहूँगा ॥

होती नहीं है सुबुह न आती है मुझको नींद।
जिसको पुकारता हूँ वह कहता है "मर कहीं" ॥

पैग़म्बरने देर लगाई तो है, वले[8]।
धड़के है दिल कि यह न कहे "रात हो गई" ॥

क्या ज़िद है मेरे साथ ख़ुदा जाने, वगर्ना।
काफ़ी है तसल्लीको मेरे एक नज़र भी ॥

---

[1]जंगलमें; [2]नंगेपाँव, [3]आजीविकाकी चिन्ता; [4]माशूक़ोसे इश्क, [5]स्वर्गस्थोकी स्मृतियाँ, [6]स्वयंको, [7]काफ़िर [8]लेकिन।

आशिककी भी कटती है क्या खूब भली रात ।
दो-चार घड़ी रोना दो-चार घड़ी बातें ।।

'सौदा' ! जो तेरा हाल है इतना तो नहीं वोह ।
क्या जानिये तूने उसे किस आनमें देखा ?

नसीम भी तेरे कूचेमें और सबा भी है ।
हमारी खाकमें कुछ देखिये रहा भी है ।।

जुर्म है उसकी जफ़ाका कि वफ़ाकी तक़सीर ।
कोई तो बोलो मियाँ ! मुँहमें ज़बाँ है कि नहीं ?

नीचे हम 'मीर' और 'सौदा'के चन्द शेर आवेहयातसे दे रहे हैं । उनसे मीर और सौदाका मर्तबा मालूम होगा ।

मीर— हमारे आगे तेरा जब किसूने नाम लिया ।
दिले सितमज़दाको हमने थाम-थाम लिया ।।

सौदा— चमनमें सुबह जो उस जंगजूका नाम लिया ।
सबाने तेग़का मौजेरवाँसे काम लिया ।।

मीर— गिला मैं जिससे करूँ तेरी बेवफ़ाईका ।
जहाँमें नाम न ले फिर वह आशनाईका ।।

सौदा— गिला लिखूँ मैं अगर तेरी बेवफ़ाईका ।
लहूमें गर्क सफ़ीना[1] हो आशनाईका ।।

दिखाऊँगा तुझे ज़ाहिद ! उस आफतेदींको[2] ।
ख़लल दिमाग़में है तेरे पारसाईका[3] ।।

---

[1]नाव; [2]धर्मच्युत करनेवालेको;
[3]संयमी और सदाचारी होनेका ।

मीर— चमनमें गुलने जो कल दावयेजमाल[1] किया।
जमालेयारने मुँह उसका ख़ूब लाल किया॥

सौदा— ०बराबरीका तेरे गुलने जब ख़याल किया।
सबाने मार तमाँचा मुँह उसका लाल किया॥

मीर— एक महरूम चले 'मीर' हमीं दुनियासे।
वर्ना आलमको ज़मानेने दिया क्या-क्या कुछ॥

सौदा— ०सौदा ! जहाँमें आके कोई कुछ न ले गया।
जाता हूँ एक मैं दिलेपुरआरज़ू[2] लिये॥

मीर— रात सारी तो कटी सुनते परीशाँगोई[3]।
'मीरजी'! कोई घड़ी तुम भी तो आराम करो॥

सौदा— 'सौदा'! तेरी फ़रियादसे आँखोंमें कटी रात।
अब आई सहर[4] होनेको, टुक तो कहीं मर भी॥

मीर— मत रंजकर किसीको कि अपने तो ऐतक़ाद[5]।
दिल ढायकर जो काबा बनाया तो क्या हुआ?

सौदा— ०काबा अगर्चे टूटा तो क्या जाएग़म है शेख़!
यह क़िसरेदिल[6] नहीं कि बनाया न जायगा॥

मुईन, हाशिम, माहिर, अमानी, उम्मीद आदि सौदाके शिष्य थे।

हिजो—सौदा बड़े गुस्सेल थे। ज़रा किसीसे नाराज़ हुए नहीं कि चट 'हिजो' कहने लगे। आज़ाद लिखते हैं—"उनका 'गुंचा' एक नौकर था। हर वक़्त ख़िदमतमें रहता था और साथ क़लमदान

---

[1]सौन्दर्य का दावा, [2]अभिलाषासे ओत-प्रोत; [3]व्यथा और परेशानियोंकी दास्तान, [4]सुबह, [5]विश्वास; [6]हृदयमन्दिर।

लिये फिरता था। जब किसीसे बिगडते, फौरन पुकारते—'अरे गुचा ! ला तो कलमदान जरा, मैं इसकी ख़बर तो लूँ। यह मुझे समझा क्या है ?'[1] फिर शर्मकी आँखे वन्द और वेहयाई-का मुँह खोलकर वोह-वोह वेनुकत सुनाते थे कि शैतान भी अमान माँगे। आलिम, जाहिल, फकीर, अमीर, नेक, वद—किसीकी दाढी इनके हाथसे नही वची। इस तरह पीछे पड़ते थे कि इन्सान जानसे बेजार हो जाता था। मगर इन्हे भी अहलेकमालने छोड़ा नही। इनका कहा इन्हीके दामनमे डाला है। [1]'फिदवी' शायरने 'सौदा'की शानमे यह हिजो कही है—

कुछ कट गई है पेटी कुछ कट गया है डोरा ।
दुम दाब सामनेसे वह उड़ चला लटूरा ॥
भड़ुआ है, मसख़रा है, सौदा उसे हुआ है ॥

एक वार कयामुद्दीन 'उम्मीदवार' सौदाके पास शागिर्द होने आये। उपनाम सुना तो मुसकराये और ये हिजो कही—

है फ़ैजसे किसीके शजर उनका बारदार ।
इस वास्ते किया है तख़ल्लुस 'उम्मीदवार'' ॥

जव औरत 'गर्भ'से होती है तो दिल्ली-जवानमे उसे उम्मीदवार कहते है। 'कायम' हिजो सुनकर वडे झेपे और तख़ल्लुस बदल लिया। [1]एक वार एक पठानकी शानमे हिजो कही तो उसने इनकी कमर पकड़कर हजारो गालियाँ दी और सीनेपै पेशकव्ज़ रख दी। ख़ुदा-ख़ुदा करके जान वची।[1] उस दिन इन्हे मालूम हुआ कि किसीकी बुराई करनेकी सजा क्या है ?

२८ जून १९४९ ई०

---

[1]आवेहयात, पृ० १५४।

१५

मीर

जब किसीने कहा कि—"फारसी शायरोमे फिरदौसी और अनवरी दुनियाए-शायरीके पैग़म्बर है, तो एक सुख़नसजने पूछा—और 'हाफ़िज ?' फ़ौरन जवाब मिला—"वह तो ख़ुदायेसुख़न था।"

प्रसिद्ध आलोचक मजनूँ गोरखपुरी आगे लिखते है—"उर्दू-शायरी भी अपना एक ख़ुदा रखती है, और वह 'मीर' कहलाता है। कोई तजकरानवीस (उर्दू-शायरीके इतिहास-लेखक या समालोचक) या कोई शायर ऐसा नही मिलेगा, जिसने मीरके ख़ुदाये सुख़न होनेसे इन्कार किया हो।[1]"

'शेरो-शायरी'मे उर्दूके जिन ३१ अमर कलाकारोका उल्लेख किया गया है, उनमे सबसे पहला आसन हमने 'मीर'को दिया है। १४ पृष्ठोमे इनका जीवन-परिचय और सम्पूर्ण दीवानसे चुनकर ५१ शेर दिये है। केवल क्रम जारी रखनेके लिये यहाँ उनका उल्लेख पुन किया जा रहा है; और 'शेरो-शायरीसे' भिन्न उनका सक्षिप्त परिचय और कलाम दिया जा रहा है।

मीर आगरेमे उत्पन्न हुए, परन्तु जवानीकी चौखटपर पाँव रखते ही देहली आ गये और अपने रिश्तेदार 'खान आरज़ू'से शायरीमे मशवरा लिया करते थे। अल्लामानियाज फतहपुरीके शब्दोमे—"दोस्त-दुश्मन सबने इनको गज़लका ख़ुदा तस्लीम किया है। और हक़ीकत ये है कि

---

[1]तनकीदी हाशिये, पृ० ९

उर्दू-शायरी कितनी ही जदीद फतूहात (वर्तमान विजय) हासिल करले, लेकिन वह उस मुमलिकत (शहन्शाही) मे कोई फ़ातिहाना क़दम नही रख सकती जो 'मीर'के कब्जेमे आ चुकी है। जबानकी हलावत (साहित्यिक माधुर्य्य), आशिकाना उफ्तादगी (प्रेमासक्तिकी नम्रता), वालिहाना रवूदगी (प्रेमासक्तिकी शोचनीय रुग्णावस्था)—कौन-सी ऐसी चीज़ है जो 'मीर'की गजलोमे नही पाई जाती। और अब किसमे हिम्मत है जो उनमे कोई इजाफा (सशोधन, परिवर्द्धन) कर सके।[1]"

'मीर' जीवन-पर्यन्त दुख और कष्ट भोगते रहे। शायद इसीलिये उनके कलाममे इतनी व्यथा और पीडा भरी हुई है। फ़र्माया भी है—

किस-किस तरहसे उम्रको काटा है 'मीर'ने ?
तब आख़िरी जमानेमें यह रेख़्ता[2] कहा॥

हमको शायर न कहो 'मीर' कि साहब हमने।
दर्दोग़म कितने किये जमा तो, दीवान किया॥

दिल्लीमे जब भरण-पोषणमे काफी असुविधाओका सामना करना पडा तो मीर लाचार होकर नवाब आसफुद्दौलाके शासनकालमे लखनऊ चले गये और वहाँ ३०० रु० मासिक वृत्ति नवाबसे मृत्युपर्यन्त पाते रहे। आबेहयात आदिके लेखकोने मीर और सौदाको समकालीन माना है, परन्तु अल्लामा नियाज फतहपुरीका मत है कि सौदाकी मृत्युके दो वर्ष बाद मीर लखनऊ पहुँचे थे।[3]

---

[1]इन्तकादियात भाग २, पृ० १०६

[2]स्मरण रहे कि उस समय उर्दू-शायरीका 'रेख़्ता' नाम प्रचलित था।

[3]इन्तकादियात भा० २, पृ० १०१

इस दौरमें इलाही ! मुहब्बतको क्या हुआ ?
छोड़ा वफ़ाको इसने, मुहब्बतको क्या हुआ ?
लगा न दिलको कहीं, क्या सुना नहीं तूने ?
जो कुछ कि 'मीर'का इस आशिक़ीमें हाल हुआ ॥

हमारे आगे तेरा जब किसूने नाम लिया ।
दिलेसितमज़दहको हमने थाम-थाम लिया ॥
ख़िरे सलीक़ेसे मेरी निभी मुहब्बतमें ।
तमाम उम्रमें नाकामियोंसे काम लिया ॥

आग थे इब्तदाये इश्क़में हम ।
अब जो हैं ख़ाक इन्तहा है यह ॥

हम जानते तो इश्क़ न करते किसूके साथ ।
ले जाते दिलको ख़ाकमें इस आरज़ूके साथ ॥
फिरते हैं 'मीर' ख्वार कोई पूछता नहीं ।
इस आशिक़ीमें इज्ज़ते सादात भी गई ॥
जाता है आसमाँ लिये कूचेसे यारके ।
आता है जी भरा दरोदीवार देखकर ॥
लेते ही नाम उसका सोतेसे चौंक उठ्ठे ।
है ख़ैर 'मीर' साहब ! कुछ तुमने ख़्वाब देखा ?
किस तरहसे मानिये यारो कि यह आशिक़ नहीं ।
रंग उड़ा जाता है, टुक चेहरा तो देखो 'मीर'का ॥

कुछ नहीं सूझता हमें उस बिन ।
शौक़ने हमको बेहवास किया ॥

कभू जायगी जो उधर सबा[1], तो यह कहियो उससे कि बेवफ़ा !
मगर एक 'मीर' शिकस्तापा[2] तेरे बागेताज़ामें ख़ार था ॥

सहरगह ईदमें दौरेसुबू था ।
पर, अपने जाममें तुझ बिन लहू था ॥
जहाँ पुर है फ़सानेसे हमारे ।
दिमागेइश्क हमको भी कभू था ॥

अब तो जाते है बुतकदेसे 'मीर' ।
फिर मिलेंगे अगर खुदा लाया ॥

फूल, गुल, शम्शोक़मर[3] सारे ही थे ।
पर हमें उनमें तुम्ही भाये बहुत ॥

क्यों न देखूँ चमनको हसरतसे ।
आशियाँ था मिरा भी याँ परसाल ॥

किसूसे दिल नहीं मिलता है या रब !
हुआ था किस घड़ी उनसे जुदा मैं ?

अब देखें आह ! क्या हो ? हम वे जुदा हुए हैं ।
बेयारो बेदयारो[4] बेआश्ना हुए हैं ॥

एक बीमारेजुदाई हूँ मैं आप ही, तिसपर—
पूछनेवाले अलग जानको खा जाते हैं ॥

जब नाम तेरा लीजिये तब चश्म भर आवे ।
इस जिन्दगीकरनेको[5] कहाँसे जिगर आवे ॥

---

[1] हवा; [2] थका हुआ, [3] चाँद-सूर्य;
[4] अपने वतनसे दूर; [5] जीवित रहनेके लिये ।

मुझीको मिलनेका ढब कुछ न आया ।
नहीं तक़सीर[1] उस नाआशना की ॥

दिल गया, रुसवा हुआ, आख़िरको सौदा[2] हो गया ।
इस दो-रोज़ा ज़ीस्तमें[3] हमपर भी क्या-क्या हो गया ॥

फोड़ा-सा सारी रात जो पकता रहेगा दिल ।
तो सुबहतक तो हाथ लगाया न जायगा ॥
याद उसकी इतनी ख़ूब नहीं 'मीर' ! बाज़ आ ।
नादान फिर वह दिलसे भुलाया न जायगा ॥

मुहब्बत है या कोई जीका है रोग ।
सदा मैं तो रहता हूँ बीमार-सा ॥

इश्क़का घर है 'मीर'से आबाद ।
ऐसे फिर खानुमाँ ख़राब कहाँ ?

हम तेरे इश्क़से तो वाक़िफ़ नहीं, मगर हाँ ।
सीनेमें जैसे कोई दिलको मला करे है ॥

फिरते हो 'मीर' साहब सबसे जुदे-जुदे तुम ।
शायद कहीं तुम्हारा दिल इन दिनों लगा है ॥

उम्रभर कूचयेदिलदारसे[4] जाया न गया ।
उसकी दीवारका सरसे मेरे साया न गया ॥

दिल कि दीदारका क़ातिलके बहुत भूका था ।
इस सितमकुश्तासे दो ज़ख़्म भी खाया[5] न गया ॥

---

[1]दोष; [2]उन्माद, [3]जिन्दगीमें, [4]माशूककी गलीसे ।
[5]जब दो जख्म हैं तो उनकी क्रिया 'खाये न गये' होनी चाहिये थी परन्तु उन दिनो एकवचन क्रियाका भी रिवाज था ।

मस्जिदमें इमाम आज हुआ आके वहाँसे।
कलतक तो यही 'मीर' ख़राबातनशीं[1] था ॥

शरीफ़ेसक्का रहा है तमाम उम्र ऐ शेख़ !
यह 'मीर' अब जो गदा[2] है शराबख़ानेका ॥

अब तो वफ़ाओ-महरका मज़कूर[3] ही नहीं।
तुम किस समेंकी कहते हो, है ये कहाँकी बात ?

इश्क़ करते हैं उस परीरूसे।
'मीर' साहब भी क्या दिवाने हैं ?

कुछ तुम्हीं मिलनेसे बेज़ार हो मेरे, वर्ना।
दोस्ती नंग नहीं, ऐब नहीं, आर नहीं ॥

तब थे सिपाही, अब हुए जोगी, आह जवानी यूँ काटी
ऐसी थोड़ी रातमें हमने क्या-क्या स्वांग बनाये है ?

हाले बद गुफ़्तनी[4] नहीं मेरा।
तुमने पूछा तो महरबानी की ॥

ख़्वाह मारा उन्होंने 'मीर'को या आप मुआ।
जाने दो यारो ! जो होना था हुआ, मत पूछो ॥

जाता है यार तेग़बकफ़[5] ग़ैरकी तरफ़।
ऐ कुश्तयेसितम[6] तेरी ग़ैरतको क्या हुआ ?

परीशाँ कर गई फ़रियादे बुलबुल।
किसूसे दिल हमारा भी लगा था ॥

---

[1]शराबख़ानोंमे पड़ा रहता था। [2]भिखारी; [3]ज़िक्र; [4]कहनेके योग्य; [5]तलवार लिये हुए; [6]अत्याचारोंके आदी।

सरज़द हमसे बेअदबी तो वहशतमें भी कम ही हुई।
कोसों उसकी ओर गये पर सजदा हर-हर गाम[1] किया॥

किसका क़िबला, कैसा काबा, कौन हरम है, या अहराम[2]?
कूचेके उसके बाशिन्दोंने सबको यहींसे सलाम किया॥

यॉंके सफ़ेद-ओ-सियहमें हमको दख़्ल जो है सो इतना है।
रातको रो-रो सुबह किया और दिनको जूँ-तूँ शाम किया॥

ख़ूब किया जो अहलेकरमकी ख़ूका[3] कुछ न ख़याल किया।
हम जो फ़क़ीर हुए तो हमने पहले तर्क सवाल किया॥

चाहतका इज़हार किया सो अपना काम ख़राब हुआ।
इस परदेके उठ जानेसे उसको हमसे हिजाब हुआ॥

तुरबते 'मीर'पर चले तुम देर।
इतनी मुद्दतमें वॉं रहा क्या ख़ाक?

'मीर' उठ बुतकदेसे काबा गया।
क्या करे जो ख़ुदा ख़राब करे॥

कुछ ज़र्द-ज़र्द चेहरा, कुछ लाग़िरी[4] बदनमें।
क्या इश्क़में हुआ है ऐ 'मीर'! हाल तेरा॥

चमनका नाम था सुना वले[5] न देखा हाय!
जहॉंमें हमने क़फ़स ही में जिन्दगानी की॥

हो गई शहर-शहर रुसवाई।
रे मेरी मौत! तू भली आई!!

---

[1] क़दम-कदमपर, [2] उपासनागृह,
[3] आदतका, [4] निर्बलता;
[5] लेकिन।

हर जिन्सके[1] ख्वाहाँ[2] मिले बाज़ारे जहाँमें।
लेकिन न मिला कोई ख़रीदारे मुहब्बत॥

'मीर' साहब ! ज़माना नाज़ुक है।
दोनों हाथोसे थामिये दस्तार[3]॥

हंगामा[4] मेरी नाश[5] पै तेरी गलीमें है।
ले जाएँगे जनाज़ाकशाँ[6] याँसे कब मुझे ?

क्या 'मीर' है यही जो तेरे दरपै खड़ा था।
नमनाक चश्मो[7] खुश्कलबो[8] रंग ज़र्द था॥

एक दिन मैंने लिखा था उसको अपना दर्देदिल।
आजतक जाता नहीं खामाके[9] सीनेसे शिगाफ़॥

पहुँचा तो होगा समएमुबारिकमें[10] हाले 'मीर'।
इसपर भी जीमें आवे तो दिलको लगाइये॥

तलवारके तले ही गया अहदेइम्बसात[11]।
मर-मरके हमने काटी हैं अपनी जवानियाँ॥

कासिद जो वाँसे आया तो शर्मिन्दा मैं हुआ।
बेचारा गिरियानाक[12] गिरेबाँदुरीदा[13] था॥

गदाशाह दोनों हैं दिलबाख़्ता[14]।
अजब इश्क़बाजीका दस्तूर है॥

---

[1]वस्तुके, [2]ख़रीदार, [3]पगड़ी, [4]शोरोगुल, [5]अर्थी, [6]अर्थी उठानेवाले; [7]डबडबाई आँखे, [8]सूखेसे ओठ, [9]क़लमके; [10]मुबारिक कानोमे, [11]खुशीका ज़माना; [12]रोता हुआ, [13]फटे वस्त्र; [14]बदहवास।

आबलेकी-सी तरह टीस लगी फूटी भी।
दर्दमन्दीमें कटी सारी जवानी इसकी॥

इश्क़ आदममे नहीं कुछ छोड़ता।
हौले-हौले कोई खा जाता है जी॥

फ़रहादोक़ैस जिससे मुझे चाहो पूछ लो।
मशहूर हैं फ़क़ीर भी अहलेवफ़ाके बीच॥

अल्लाहरे अन्दलीबकी आवाजे दिलख़राश[1]।
जी ही निकल गया जो कहा उसने 'हाय गुल'॥

चाहे तो तुमको चाहें, देखे तो तुमको देखे।
ख़्वाहिश दिलोंकी तुम हो, आँखोंकी आरज़ू तुम॥

हमने अपनी-सी की बहुत लेकिन।
मरज़ेइश्क़का[2] इलाज नहीं॥

मुत्तसिल[3] रोते ही रहिये तो बुझे आतिशेदिल[4]।
एक-दो आँसू तो और आग लगा जाते हैं॥

डूबे-उछले है आफ़ताब हनूज़[5]।
कहीं देखा था उसको दरियापर॥

मस्ती शराबकी-सी है यह आमदेशबाब।
ऐसा न हो कि तुमको जवानी नशा करे॥

मीरजी! राजेइश्क होगा फ़ाश[6]।
चश्म हर लहज़ा[7] मत पुरआब[8] करो॥

---

[1]हृदयबेधक; [2]प्रेमरोगका; [3]बराबर;
[4]हृदयकी आग, [5]अभीतक [6]प्रकट;
[7]हर समय, [8]अश्रुपूर्ण।

बैठने दे है कौन फिर उसको।
जो तेरे आस्ताँसे उठता है॥

बेखुदी पर न 'मीर'के जाओ।
तुमने देखा है और आलममें[१]॥

फ़ुरसतमें यक नफ़सके[२] क्या दर्देदिल सुनोगे।
आये तो तुम व लेकिन वक़्तेअख़ीर आये॥

रात तो सारी गई सुनते परीशाँगोई[३]।
'मीर'जी कोई घड़ी तुम भी तो आराम करो॥

तुम छेड़ते हो बज़्ममें मुझको तो हँसीसे।
पर मुझपे जो हो जाय है, पूछो मेरे जीसे॥

किसकी मस्जिद, कैसे मयख़ाने, कहाँके शेख़ोशाब[४]।
एक गर्दिशमें तेरे चश्मे सियहके सब ख़राब॥

मुझसे लेने लगे हैं इबरत[५] लोग।
आशिक़ीमें यह एतबार हुआ॥

ज़ुल्म हुए हैं क्या-क्या हमपर, सब्र किया है क्या-क्या हम।
आन लगे हैं गोर[६] किनारे उसकी गलीमें जा-जा हम॥

इश्क किया है उस गुलका या आफत लाये सरपर हम।
झाँकते उसको साथ सबाके[७] सुबह फिरे हैं घर-घर हम॥

हम न कहा करते थे तुमसे "दिल न किसूसे लगाओ तुम।
जी देना पड़ता है इसमें, ऐसा न हो पछताओ तुम॥"

---

[१]स्थितिमें, [२]पल भरमें, [३]दुख-गाथा।
[४]युवकवृन्द, [५]सबक, [६]कब्र;
[७]हवाके।

दिलकी नहीं बीमारी ऐसी जिसमें हो उम्मीदेशफ़ा[१]।
क्या सम्भलेगा 'मीर' सितमकश, वह तो मारा ग़मका है ॥

ख़्वार[१] फिराया गलियों-गलियों सर मारे दीवारोंसे।
क्या-क्या उनने सलूक किये हैं शहरके इज़्ज़तदारोंसे ॥

अब फ़ायदा सुराग़से[२] बुलबुलके बाग़बाँ!
इतराफ़ेबाग़[३] होंगे पड़े मुश्तेपर[४] कहीं ॥

हम देखें तो देखे उसे, फिर परदा बहतर है, यानी—
और करें नज़्ज़ारा उसका हमको यह मंज़ूर नहीं ॥

ख़तका जवाब न लिखनेकी कुछ वजह न ज़ाहिर हमपै हुई।
देरतलक क़ासिदसे पूछा, मुँहमें उसके जवाब नहीं ॥

यूँ नाकाम रहेंगे कबतक जीमें है इक काम करें।
रुसवा होकर मारे जावें, उसको भी बदनाम करें ॥

जिसने सर खींचा दयारेइश्क़में[५] ऐ बुलहविस[६]!
वोह सरापाआरज़ू[७] आख़िर जवाँ मारा गया ॥

दर्दमन्दोंसे तुम्हीं दूर फिरा करते हो कुछ।
पूछने वर्ना सभी आते हैं बीमारके पास ॥
बूएख़ूँ आती है बादेसुबहगाहीसे[८] मुझे।
निकली है बेदर्द हो शायद किसी घायलके पास ॥

---

[१]रोगसे मुक्त होनेकी आशा,
[२]तलाशसे, खोजसे;
[३]बाग़के चारों ओर;
[४]मुट्ठीभर पंख;
[५]प्रेममार्गमें,
[६]विषयासक्त,
[७]अभिलाषाकी मूर्ति;
[८]प्रातःकालीन समीरसे।

कभू 'मीर' उस तरफ़ आकर जो छाती कूट जाता है।
ख़ुदा शाहिद है अपना तो कलेजा लोट जाता है॥

अगर्चे अब तो ख़फा हो लेकिन मुएगयेपर[1] कभू हमारे।
जो याद हमको करोगे प्यारे, तो हाथ अपने मला करोगे॥

बन जो कुछ बन सके जवानीमें।
रात तो थोड़ी है बहुत है स्वाँग॥

हस्ती अपनी हुबाबकी[2]-सी है।
यह नुमायश सराबकी[3]-सी है॥
नाज़ुकी उसके लबकी क्या कहिये ?
पंखड़ी इक गुलाबकी-सी है॥
बार-बार उसके दरपै जाता हूँ।
हालत अब इज्तराबकी[4]-सी है॥
मैं जो बोला, कहा—"कि यह आवाज—
उसी ख़ानाख़राबकी-सी है"॥

तुम्हें तो जुहद-ओ-रिआपर[5] बहुत है अपने ग़रूर।
ख़ुदा है शेख़जी ! हमसे भी गुनहगारोंका॥

दिलके वीरानेका क्या मज़कूर[6] है।
यह नगर सौ मर्तबा लूटा गया॥

वसीयत 'मीर'ने मुझको यही की।
कि सब कुछ होना, तू आशिक़ न होना॥

---

[1] मर जानेपर; [2] बुलबुलेकी, [3] मृगमरीचिकाकी, [4] बेचैनीकी, [5] छलपूर्ण भक्ति उपासना पर, [6] ज़िक्र।

यह भी तुरफ़ा माजरा है कि उसीको चाहता हूँ ।
मुझे चाहिए है जिससे बहुत अहतराज़[1] करना ।।

कभू तो दैरमें हूँ मैं, कभू हूँ काबेमें ।
कहाँ-कहाँ लिये फिरता है शौक़ उस दरका ।।

बहुत रोनेने रुसवा कर दिखाया !
न चाहतकी छुपी हमसे अलामत ।।

अब्दुलरसूल निसार, मियाँ गुलबन, मुहम्मद मुहसन, मजनूँ, मुश्ताक़, बिन्दराबन, राक़िम, शकीबा, वगैरह 'मीर'के शिष्य थे। किन्तु इनमे एक भी मीरकी प्रतिष्ठाके अनुकूल न हुआ। होता भी कहाँसे ? मीर जैसी व्यथा-वदना हर किसीके हिस्सेमें कहाँसे आती ? और जबतक आह-पीड़ा, व्यथा-वेदना अपनी निजी सम्पत्ति नही, तब दूसरोंसे उधार लेनेपर वे भाव कहाँ आ सकते है ? हृदयगत भावों और बनावटी भावोंमे पृथ्वी-आकाशका अन्तर होता है। अपन घरमे आग न लगाकर दूसरोंकी लगाई आगसे तापनेके क्या मायने ?

कबिरा खड़ो बजारमें लिये लुकाटी हाथ ।
जो घर फूँके आपुनो चले हमारे साथ ।।

३० जून १९४९ ई०

---

[1] बचाव, परहेज।

१६

सोज़

इस दौरके तीसरे शायर सैय्यद मुहम्मदमीर 'सोज़' थे। ये पहल 'मीर' उपनाम रखते थे, परन्तु मीर तकीका उपनाम भी 'मीर' होनेके कारण इन्होंने अपना फिर 'सोज' उपनाम रख लिया था। आबेहयातमे लिखा है कि 'मीर' इन्हे चौथाई शायर मानते थे; मगर यह बात गलत है। मीरने इनका वर्णन अत्यन्त सुन्दर शब्दोमे किया है। 'सोज़' दिल्लीमें उत्पन्न हुए। ४० वर्षकी आयुमे दिल्ली छोड़कर फ़र्रुख़ाबाद और मुर्शिदा-बाद रहकर अन्तमे लखनऊ पहुँचे और नवाब आसफुद्दौलाके काव्य-गुरु हुए।

"मीर सोज़की ज़बान अजीब मीठी ज़बान है, और हकीकतमे ग़ज़लकी जान है। मालूम होता है गुलाबका फूल हरी-भरी टहनीपर कटोरा-सा धरा है और सब्ज़-सब्ज़ पत्तियोमे अपना असली जोबन दिखा रहा है। सोज़के कलाममे मुहावरोकी सफाई और ज़बानका लुत्फ हमेशा ज़र्बुल-मिसल (दृष्टान्तस्वरूप) रहा है। उनके शेर ऐसे मालूम होते है जैसे कोई चाहनेवाला अपने चहीते अज़ीज़से बैठा बाते कर रहा है*।"

---

*इन्तकादियात भा० १, पृ० १०७

एकबारी धकसे होकर दिलकी फिर निकली न साँस ।
किस शिकारन्दाजका[1] यह तीरे बेआवाज है ॥

दो दिनकी यह ज़ीस्त[2] 'सोज़' साहब !
जिस तरह निभे तुम अब निबाहो ॥

मै काश उस वक़्त आँखें मूँद लेता ।
यह मेरा देखना मुझको बला था ॥

जिसका तू आश्ना हुआ होगा ।
उसने क्या-क्या सितम सहा होगा !

लोग कहते हैं मुझे यह शख़्स आशिक़ है कहीं ।
आशिक़ी मालूम लेकिन दिल तो बेआराम है ॥

मेरा जान जाता है यारो बचा लो ।
कलेजेमें काँटा गड़ा है निकालो ॥
न भाई मुझे जिन्दगानी न भाई ।
मुझे मार डालो, मुझे मार डालो ॥
ख़ुदाके लिये ऐ मेरे हमनशीनो[3] !
वह बाँका जो जाता है उसको बुला लो ॥
अगर वह ख़फ़ा होके कुछ गालियाँ दे ।
तो दम[4] खा रहो, कुछ न बोलो न चालो ॥
न आवे अगर वह तुम्हारे कहेसे ।
तो मिन्नत करो घेरे-घारे मना लो ॥

---

[1]अचूक निशानेबाज़का, [2]ज़िन्दगी ।
[3]पडोसियो, साथियों; [4]दम साध लो, चुप रहो ।

कहो—'एक बन्दा तुम्हारा मरे है।
उसे जानकन्दनसे[1] चलकर बचा लो॥
जलोंकी बुरी आह होती है प्यारे!
तुम उस 'सोज़'की अपने हकमें दुआ लो॥

की फरिश्तोंकी[2] राह अब्रने बन्द।
जो गुनह कीजिये सवाब है आज॥

अहले ईमाँ 'सोज़'को कहते हैं काफ़िर हो गया।
आह, या रब! राज़ेदिल उनपर भी ज़ाहिर हो गया॥

तड़पती क्यों है ऐ बुलबुल! कमाल इतना तो पैदा कर।
कि तेरा अश्क जिस जा गिर पड़े गुलजार पैदा हो॥

बुलबुल कहीं न जाइयो ज़िनहार[3] देखना।
अपने ही मनमें फूलके गुलज़ार देखना॥

एक दिल था जानेमन! उसकी बिसात*?
तूने लूटा 'सोज़' लोटे है पड़ा॥

तू मनए गिरिया[4] न कर मुझको नासहे बेदर्द!
नहीं है अब तो मेरे अख़्तियारमें रोना॥

---

[1]मृत्यु-पीड़ासे, [2]देवताओंका मार्ग तो बादलोंने रोक लिया; [3]कभी भी, हरगिज़ [4]रोनेसे मना।

*इसी मज़मूनका सीमाब अकबराबादीका यह शेर भी कितने गज़बका है—

दिलकी बिसात क्या थी निगाहे जमालमें।
यह आईना था टूट गया देख-भालमें॥

तू रोज़े वस्लमें ऐ 'सोज़'! अपने आँसू पोंछ।
अभी बहुत है तुझे हिज्रे यारमें रोना॥

थरथराता है अबतलक खुरशीद[1]।
सामने तेरे आ गया होगा॥

ऐ 'सोज़'! अज़्मे[2] कूचये क़ातिल न कर अबस[3]।
तू एक भी बता दे कि वाँ जाके आ सका॥

जिनको नित देखते थे अब उनका।
देखना ही ख़यालोख़्वाब[4] हुआ॥

रातको नींद है न दिनको चैन।
ऐसे जीनेसे ऐ ख़ुदा! गुज़रा[5]॥

सोज़! अब भी रहा है कुछ बाक़ी।
छोड़ दे अब सरायेफ़ानीको[6]॥

जनाज़ेवालो! न चुपके क़दम बढ़ाये चलो।
उसीका कूँचा है, टुक करते 'हाय-हाय' चलो॥

ग़म है या इन्तज़ार है, क्या है?
दिल जो अब बेक़रार है, क्या है?

सर ज़ानू[7]पै हो उसके और जान निकल जाये।
मरना तो मुसल्लिम[8] है, अरमान निकल जाये॥

—इन्तक़ादियात, भा० १ से

---

[1]सूर्य; [2]इरादा;
[3]व्यर्थ; [4]सपनेकी बात,
[5]बाज़ आया, [6]असार संसारको,
[7]जंघापै, [8]अवश्यमेव।

सोज़ने एक दीवान छोड़ा है। जिसमे ग़ज़लोके अतिरिक्त मसनवी, रुबाइयाँ और मुखम्मस भी हैं। तारीखे अदबे उर्दूके लेखकके शब्दोंमे—"सोज़का अन्दाज़ेकलाम निहायत साफ, सादा, और बेतकल्लुफ है। ज़बान मीठी और गज़लके वास्ते निहायत मौज़ूं है। लुत्फेज़वान, मुहावरोकी सफाई और बेसाख्तापनमे उनका कलाम अपना आप नज़ीर है। तकल्लुफ़े फ़िज़ूल, मुबालिगे, तशबीहात (उदाहरण) से पाक-साफ है। सादगी और सफाईमे मीर तकी तो अलबत्ता उनके मुकाबिल है, मगर सौदा बहुत पीछे है। मगर मीर साहबके यहाँ ज़बानेलुत्फके साथ मज़मून और जज्बात (भावो)का जो लुत्फ है वह सोज़के यहाँ बहुत कम है। उनके कलाममे मीरो-सौदाकी तरह फारसी लफ़्ज़ और फ़ारसी तरकीबोंकी भी कसरत नही। सीधे-सादे हिन्दी लफ़्ज़ बेसाख्तगी (अनायास)से बाँधते हैं। मालूम होता है कि बाते कर रहे है।"

सोज़के पढनेका अन्दाज़ भी खूब था। तरन्नुममे पढ़ते थे और पढ़ते हुए इस तरहके हावभाव प्रदर्शित करते थे कि स्वय मज़मूनकी सूरत बन जाते थे। आबेहयातमे लिखा है कि जब यह कितआ पढा—

गये घरसे जो हम अपने सबेरे।
सलाम अल्लाहख़ाँ साहबके डेरे॥
वहाँ देखे कई तिफ़्ले परीरू[1]।
अरे रे-रे, अरे रे-रे, अरे रे॥

तो चौथा मिसरा पढ़ते-पढते ज़मीनपर गिर पड़े गोया परीज़ादोको देखकर दिल बेकाबू हो गया।

3 जुलाई १९४९ ई०

---

[1] कमसिन सुन्दरियाँ।

१७

दर्द

ख्वाजा मीर 'दर्द'का उल्लेख हम 'शेरो-शायरी'मे कर चुके है और उनके चुने हुए ५१ शेर भी उसमे दिये जा चुके है। यहां क्रमको जारी रखनेके लिये कुछ और नवीन अशआर चुनकर दिये जा रहे है।

मीर दर्द मुहम्मदनासिर 'अन्दलीब'के पुत्र थे। दिल्लीमे उत्पन्न हुए, वही परवरिश पाई और २२ वर्षकी आयुमे अपने पिताकी दरगाहमे गद्दीनशीन हुए और मृत्युपर्यन्त दिल्ली ही रहे। सगीतकलाका अच्छा अभ्यास था। पन्द्रहवे रोज़ महफिल भी जमती थी। बड़े-बडे संगीतज्ञ निःशुल्क सम्मिलित होते थे। मुशायरे भी मासिक कराते थे। कभी-कभी बादशाह भी आते थे।

नियाज़ फ़तहपुरीके शब्दोंमे—"दर्दका दीवान बहुत मुख्तसिर है, लेकिन जितना भी है जानेमुहब्बत ह। यह एक साहबेदिल दरवेश थे। इनके कलामकी खूबीका इज़हार अल्फ़ाज़से मुमकिन नही, लेकिन दिमाग ज़रूर महसूस करता है।"[1]

दर्दने कभी किसीकी चापलूसीमे न क़सीदा कहा और न किसीकी बुराईमे हिजो लिखी।

आबेहयातमें मौ० आज़ादका यह लिखना कि "मीर इन्हे आधा शायर समझते थे" मनगढन्त और निजी कल्पना है। दर्दके व्यक्तित्व और शायराना अज़मतका 'मीर' भी अहतराम करते थे। अपने फारसी

---

[1] इन्तक़ादियात भाग २, पृ० १०६

तज़करेमे मीरने 'दर्द'के सम्बन्धमे जो लिखा है उसका हिन्दी अनुवाद निम्न प्रकार है—

"दर्दकी कविता गूढ मन्तव्यको सरल और स्पष्ट रूपसे व्यक्त करती है। उसकी लिपि कागजपर इस प्रकार सुन्दर प्रतीत होती है, जैसे भोर-बेलामे फैली हुई प्रेयसीकी ज़ुल्फे। उसकी कल्पनाशक्ति पूर्णरूपसे विकसित है, और भावनाके उद्यानमे मृदु-पगसे चहलक़दमी-सी करती प्रतीत होती है। उसकी कविताके शब्द मानो उद्यानके फूल है। उसके विचारोके फूलोंको तोड़नेवालेकी टोकरी सहज भर जाती है। वह रेख़्ताका महान कवि है। कला-कुशल, मृदुभाषी, महमाँनवाज़ और सच्चा स्नेही है।"*

दर्दका दीवान अत्यन्त सक्षिप्त है। उसमेसे कुछ नमूने यहाँ दिये जाते है—

*दीवाने उर्दू, ख़्वाजा मीर दर्द, पृ० ४

झुकता नहीं हमारा दिल तो किसी तरफ़ याँ।
जीमें समा रहा है अजबस[1] गरूर तेरा॥

मदर्सा, या दैर था, या काबा या बुतख़ाना था।
हम सभी महमान थे, वाँ तू ही साहिबख़ाना था॥
भूल जा, ख़ुश रह, अबस[2] वे साबक़े[3] मत यादकर।
'दर्द' यह मजकूर क्या है, आश्ना था या न था॥

शरर और बर्क़की-सी भी नहीं याँ फ़ुर्सतेहस्ती।
फ़लकने हमको सौंपा काम जो कुछ था शिताबीका[4]॥
मैं अपना दर्ददिल चाहा कहूँ जिस पास आलममें।
बयाँ करने लगा क़िस्सा वोह अपनी ही ख़राबीका॥

गर्चे वोह ख़ुरशीदरू[5] नित है मिरे सामने।
तौ भी मयस्सर[6] नहीं भरके नज़र देखना॥

मिसलेनगीं जो हमसे हुआ काम, रह गया।
हम रूस्याह जाते रहे, नाम रह गया॥
साक़ी मेरे भी दिलकी तरफ़ टुक निगाह कर।
लबतिश्ना[7] तेरी बज़्ममें यह जाम रह गया॥

की तो थी तासीर आहेआतशीने[8], उसको भी।
जबतलक पहुँचे ही पहुँचे राखका याँ ढेर था॥

---

[1]बहुत; [2]व्यर्थ, [3]घटनाएँ, [4]जल्दीका, [5]सूर्य जैसी आभावाला; [6]प्राप्त; [7]प्यासा; [8]अग्निरूपी आहने।

हिर्स[1] करवाती है रूबाह बाज़ियां[2] सब वर्ना याँ।
अपने-अपने बोरियेपर जो गदा[3] था शेर था॥
अश्क़ने सेरें मिलाये कितने ही दरियाके पाट।
दामनेसहरामें वर्ना इसक़दर कब घेर था॥

काम याँ जिसने जो कि ठहराया।
जबतलक होवे, आप ही काम आया[4]॥
बेतरह कुछ उलझ गया था दिल।
बेवफ़ाईने तेरी सुलझाया॥
आँसू कबतक कोई पिये जावे।
इस मुहब्बतने जी बहुत खाया॥
दुश्मनीमें सुना न होवेगा।
जो हमें दोस्तीने दिखलाया॥

मूरिदेक़हर[5] तो याँ हम ही हैं।
और किसपर यह करम[6] कीजियेगा॥

बावजूदे[7] कि परोबाल न थे आदमके।
वाँ यह पहुँचा कि फ़रिश्तेका भी मक़दूर[8] न था॥

हाल मुझ ग़मज़देका जिस-तिसने।
जब सुना होगा रो दिया होगा॥

अन्दाज़ वो ही समझे मिरे दिलकी आहका।
ज़ख़्मी जो हो चुका हो किसीकी निगाहका॥

---

[1]तृष्णा; [2]लोमड़ी जैसी हरकत यानि छल फरेब;
[3]संन्यासी; [4]आप ही समाप्त हो गया,
[5]अत्याचारके पात्र, [6]कृपा,
[7]यद्यपि, [8]सामर्थ्य।

सौ बार देखीं मैंने तिरी बेवफ़ाइयाँ।
तिसपर भी नित गरूर है दिलमें निबाहका॥

कुछ है ख़बर तुझे भी कि उठ-उठके रातको।
आशिक़ तेरी गलीमें कई बार हो गया॥
बैठा था खिज़्र आके मेरे पास एकदम।
घबराके अपनी जीस्तसे[1] बेज़ार हो गया॥

तुमने तो एक दिन भी न इधर गुजर किया।
हमने ही इस जहानसे आख़िर सफ़र किया॥
जिनके सबबसे दैरको[2] तूने किया ख़राब।
ऐ शेख़! उन बुतोंने मेरे दिलमें घर किया॥

जूँ चाहिए उस तरह बयाँ हमसे न होगा।
कर अपने दहनसे ही तू वस्फ़[3] अपनी कमरका॥

ठहर जा टुक बातकी बात[4] ऐ सबा!
कोई दममें हम भी होते हैं हवा॥

तुझसे कुछ देखा न हमने जुज़जफ़ा[5]।
पर, वोह क्या कुछ है? कि जीको भा गया॥
फिरती है मेरी ख़ाक सबा दरबदर लिये।
ऐ चश्मेअश्कबार[6] यह क्या तुझको हो गया॥

वाइज़[7]! किसे डराइये योमेहिसाबसे[8]।
गिरया[9] मेरा तो नामयेऐमाल[10] धो गया॥

---

[1]ज़िन्दगीसे; [2]मन्दिरको, [3]तारीफ;
[4]क्षणभरको; [5]अत्याचारके अतिरिक्त, [6]अश्रुपूर्ण नेत्र;
[7]उपदेशक, [8]यमराजके न्यायसे; [9]आँसू, रोना;
[10]दुष्कर्मोकी तालिका।

तुझीको यहाँ जलवा फ़रमा न देखा।
बराबर है दुनियाको देखा न देखा॥

अपना तो नहीं यार मैं कुछ, यार हूँ तेरा।
तू जिसकी तरफ़ होवे, तरफ़दार हूँ तेरा॥
कुढ़नेपै मेरे जी न कुढा, तेरी बलासे।
अपना तो नहीं गम मुझे, गमख्वार हूँ तेरा॥
तू चाहे न चाहे मुझे कुछ काम नहीं है।
आज़ाद हूँ इससे भी, गिरफ़्तार हूँ तेरा॥
तू होवे जहाँ मुझको भी होना वहीं लाज़िम।
तू गुल है मेरी जान तो मैं ख़ार हूँ तेरा॥
है इश्कसे मेरे ही तेरे हुस्नका शुहरा[1]।
मैं कुछ नहीं पर, गर्मियेबाज़ार हूँ तेरा॥

जबतक है दिलके शीशेमें रंग इम्तियाज़का[2]।
है ऐ परी! तभी तईं आईना नाज़का॥

फैला है कुफ़्र याँ तक काफ़िर! तेरे सबबसे।
शमएहरम[3] भी दे है माथेपै अपने टीका॥

अपनी आँखों उसे मैं देखूँ।
ऐसा भी कभू ख़ुदा करेगा॥

अहले जमाना आगे भी थे और जमाना था।
पर अब जो कुछ है यह तो किसूने सुना न था॥

किसूसे क्या बयाँ कीजे उस अपने हालेअबतरका[4]।
दिल उसके हाथ दे बैठे जिसे जाना न पहचाना॥

---

[1]प्रसिद्धि; [2]भेदभावका, [3]मस्जिदका दीपक, [4]शोचनीय अवस्थाका।

नज़र जब दिलपै की देखा तो मस्जूदेखलायक़[1] है।
कोई काबा समझता है कोई समझे है बुतख़ाना ॥

कुछ कशिशने तेरी असर न किया ॥
तुझको ऐ इन्तज़ार देख लिया ॥
तिश्नगी[2] और भी भड़कती गई ॥
जूँ-जूँ मै आँसुओंको अपने पिया ॥

मरना ही लिखा है मेरी किस्मतमें अज़ीज़ाँ[3]!
गर जिन्दगी होती तो यह आज़ार[4] न होता ॥

नासह ! मै दीनोदिलके तईं अब तो खो चुका।
हासिल नसीहतोंसे जो होना था हो चुका ॥
ज़ाहिद किया करे है वज़ू गो कि रोज़ोशब।
चाहे कि दिलसे धोए कुदूरत,[5] सो धो चुका ॥

मुहब्बतने हमको समर[6] जो दिया।
सो यह है कि सब कामसे खो दिया ॥

आईनेकी तरह ग़ाफ़िल ! खोल छातीके किवाड़।
देख तो है कौन बारे[7] तेरे काशानेके[8] बीच ॥

हँस कब्रपै मेरी खिलखिलाकर।
यह फूल चढ़ा कभी तो आकर ॥

और तो छुट गये मरके भी ऐ कुंजेक़फ़स[9] !
एक हम ही रहे हर तरह गिरफ़्तार हनूज़[10] ॥

---

[1]विश्वका पूज्य; [2]प्यास, [3]मित्रो; [4]रोग;
[5]मनका मैल; [6]फल; [7]सौभाग्यसे; [8]मनमन्दिरके;
[9]बन्दीगृह; [10]अभीतक।

सैयाद ! अब रिहाईसे क्या सुझ असीरको ?
फिर किसको जिंदगीकी तवक़्क़ो[1] बहारतक ॥

यारब ! दुरुस्त गो न रहूँ तेरे अहदपर[2] ।
बन्देसे पर न हो कोई बन्दा शिकिस्ता दिल ॥

अपने मिलनेसे मना मत कर ।
इस बिन बेअख्तियार हैं हम ॥

हमें तो बाग़ तुझ बिन खानयेमातम[3] नज़र आया ।
इधर गुल फाड़ते थे जेब, रोती थी उधर शबनम ॥

गुल अब तो मिले हैं हँसके लेकिन !
बुलबुल ! यह चुभेंगे खार जी में ॥
यूँ पास बिठा जिसे तू चाहे ।
पर जगह न दीजो यार जी में ॥

हस्ती है जबतक हम हैं इसी इज्तराबमें[4] ।
जूँ मौज आ फँसे हैं अजब पेचोताबमें ॥

ज़ालिम ! जफ़ा जो चाहे सो कर मुझपै तू वले ।
पछतावें फिर तू आप ही ऐसा न कर कहीं ॥
फिरते हो सज बनाये तो अपनी इधर-उधर ।
लग जाये देखियो न किसीकी नज़र कहीं ॥

यावरी[5] देखिये नसीबोंकी !
दोस्त भी हो गये मेरे दुश्मन ॥

---

[1]आशा; [2]आदेशपर, [3]शोकगृह, [4]चक्करमे, [5]करिश्मा ।

हमारी इतनी ही तक़सीर है कि ऐ ज़ाहिद !
जो कुछ है दिलमे तेरे हम वोह फ़ाश[१] करते हैं ॥

अश्कसे मेरे फ़कत दामनेसेहरा नहीं तर ।
कोह भी सब हैं खड़े ता-ब-कमर[२] पानीमें ॥

आह ! परदा तो कोई मानएदीदार[३] नहीं ।
अपनी ग़फ़लतके सिवा कुछ दरोदीवार नहीं ॥

ज़िन्दगी जिससे इबारत है सो वोह ज़ीस्त कहाँ ।
यूँ तो कहनेके तईं कहिये कि हा जीते हैं ॥

सूरतें क्या-क्या मिली हैं ख़ाकमें ।
है दफ़ीना हुस्नका ज़ेरेज़मीं ॥

आगे ही बिन कहे तू कहे है—"नहीं-नहीं" ।
तुझसे अभी तो हमने वे बाते कही नहीं ॥

बेवफ़ाईपै उसके दिल मत जा !
ऐसी बातें हज़ार होती हैं ॥

देख मेरे ज़ोफ़को[४] कहने लगा रोकर तबीब[५]—
"कोई दममें यह भी उसकी नातवानी[६] फिर कहाँ" ॥

हरदम बुतोंकी सूरत रखता है दिल नज़रमें ।
होती है बुतपरस्ती अब तो ख़ुदाके घरमें ॥

अफ़सोस अहलेदीदको गुलशनमें जा नहीं ।
नरगिसकी गो कि आँख है, पर सूझता नहीं ॥

---

[१]प्रकट; [२]कमरतक, [३]देखनेमे बाधक, [४]निर्बलताको; [५]चिकित्सक, [६]निर्बलता ।

ऐ दर्द ! रफ़्ता-रफ़्ता किया आपको भी गुम ।
इस राहमें चला था मैं किसके सुराग़को ?

जिस तरहसे सुबहको होता है बेरौनक चिराग़ ।
देख तुझको उड़ गया गुलशनमें गुलका रंगो-बू ॥

चमकते हैं सितारोंकी तरह सूराख़ सीनेके ।
छुपाया गो कि जूँ ख़ुरशीद मैंने दागेपिनहाँको[1] ॥

नहीं शिकवा मुझे कुछ बेवफ़ाईका तिरी हरगिज़ ।
गिला तब हो अगर तूने किसीसे भी निबाही हो ॥

मुझे यह डर है दिलेज़िन्दा तू न मर जाए ।
कि ज़िन्दगानी इबारत है तेरे जीनेसे ॥
बसा है कौन तेरे दिलमें गुलबदन ऐ 'दर्द' !
कि बू गुलाबकी आई तेरे पसीनेसे ॥

मत इबादतपै भूलियो ज़ाहिद !
सब तुफ़ैलेगुनाहेआदम है ॥

बन्द अहकामेअक़्लमें[2] रहना ।
यह भी एकनोअकी[3] हिमाकत है ॥
एक ईमान है बिसात अपनी ।
न इबादत न कुछ रियाज़त है ॥

मेरे अहवालपै न हँस इतना ।
यूँ भी ऐ महर्बान ! पड़ती है ॥

---

[1] छुपे हुए दाग़ोंको;
[2] बुद्धिके आज्ञापालनमें;
[3] एक प्रकारकी ।

दिल बुरा होता है कोई तुझसे, पर यूँ ही अबस[1] ।
हम सदा ग़ैरोंसे मिलना सुनके घबराया किये ॥

कभू रोना, कभू हँसना, कभू हैरान हो रहना ।
मुहब्बत क्या भले-चंगेको दीवाना बनाती है ।

याँ कौन आश्ना है तेरा किसको तुझसे रब्त ?
कहनेको यह भी लोगोंके इक बात रह गई ॥
बाज़ी बदी थी उनने मेरी चश्मेंतरके साथ ।
आख़िरको हार-हारके बरसात रह गई ॥

ग़मनाकिए-बेहूदा[2] रोनेको डुबोती है ।
गर अश्क बजा टपके आँसू नहीं मोती है ॥

मनअ़सहबा[3] न कर मुझे ऐ शेख़ !
मयपरस्तोंके हक़में दारू है ॥

हम इतनी उम्रमें दुनियासे हो गये बेज़ार ।
अजब है ख़िज्ऱने क्योंकर के ज़िन्दगानी की ॥

उसके तईं भी दुख़्तरेरज़ टुक तू मुँह लगा ।
मैं जानूँ फिर यह ज़ाहिद अगर घरको मुँह करे ॥

५ जुलाई १९४९

---

[1]व्यर्थ; [2]व्यर्थका शोक; [3]मद्यनिषेध ।

१८

क़ायम चान्दपुरी

शेख़ कयामुद्दीन 'कायम' चाँदपुर जिले विजनौरके रहनेवाले थे; परन्तु मुलाजमतके कारण दिल्लीमे रहने लगे थे। पहले हिदायतुल्लाहसे कवितामे संशोधन लेते थे। उनसे विगडनेपर मीर दर्दसे और उनसे भी विगाड़ हो जानेपर सौदासे मशविरा लेने लगे। आजादके शब्दोंमे— "क़ायम फन्नेशेरमे कामिल थे। इनका दीवान हरगिज मीर और मिर्जाके दीवानसे नीचे नही रख सकते।" मजनूँ गोरखपुरी लिखते है कि— "शेफ़्ताको छोड़कर अक्सर तजकरे नवीसोंने कायमके कलामकी बुलन्द पायगी (श्रेष्ठता) तस्लीम की है। 'मुसहफी' उनकी पुख्तगीए कलामके क़ायल है। मीर हसन उनके तर्जको फारसी गजलगो 'तालिब आमिली' का तर्ज बताते है। करीमुद्दीन उन्हे शायरे खुशगुफ्तार बुलन्दमर्तबा, मौजूँतवा, आलीमिकदार लिखते है। इस तज़्करे नवीसका खयाल है कि जो लोग 'कायम' को 'सौदा'से बेहतर समझते है वे सच्चे है। राय लक्ष्मीनारायण साहब 'शफीक़' दक्खनीने क़ायमके जहनेसलीम और फिक्रेमुस्तकीमको माना है; और अपने चमनिस्ताने शुअ़रामे इनकी लताफत और मलाहतकी पूरी-पूरी दाद दी है[1]।"

क़ायम और उनके समकालीन असर, तावाँ, यकीन, बयान, बेदार इस युगके प्रथम श्रेणीके शायर कहे जाने चाहिएँ। सौदा तो क़सीदे और

---

[1] तनकीदी हाशिये, पृ० ६५

हिजोके उस्ताद थे, ग़जलमे मीर और दर्द जैसा रुतबा नही रखते । इस-लिये उक्त शायरोंकी सौदासे तो तुलना करनी ही व्यर्थ है। इनकी तुलना मीरोदर्दसे की जा सकती है । इनके कलाममे भी मीरोदर्द-जैसी भावोंकी स्वच्छता, भोलापन, भाषाकी सरलता, पवित्रता, मिठास पाई जाती है । फिर क्या कारण है कि मीरो-दर्द तो आसमाने शायरीपर चमक रहे है और ये पुस्तकालयोके आलोंमे धरे टिम-टिमा रहे हैं ।

देशके उत्थान-पतनमे शायरोका बहुत बडा हाथ होता है। वे चाहे तो अकर्मण्य और परतन्त्र जनतामे उत्साह, उल्लास, उमंग, नव-चेतना लाकर उसे परतन्त्रताकी बेड़ियाँ काटनेको प्रस्तुत कर दे, अथवा चाहें तो स्वतन्त्र और समृद्धिशाली देशको परतन्त्रता और अकर्मण्यताके दल-दलमे गिरा दे । शायर पशुओको मनुष्य और मनुष्योको पशु बनाने-की क्षमता रखते है । उनकी वाणीमें अमृत और विष दोनों होते है । जहाँ वे राणा प्रतापके डगमगाते पाँवोको अंगदका बल प्रदान कर सकते है, शिवाजी-जैसे साधनहीनको औरगजेब जैसे शाहनशाहसे भिड़ा सकते है, वहाँ वे शाहआलम बादशाहको निरीह बनाकर उसकी आँखे निक-लवा सकते है, वे बहादुरशाह बादशाहको दया-पात्र बनाकर बन्दी होनेको लाचार कर सकते है, वे बेगमातको नादिरशाहके सामने नाचनेको प्रस्तुत कर सकते हैं। वे लखनवी नवाबोंको जनखा बना सकते है । पगुको पर्वतपर चढा सकते है, गूँगेको वाणी दे सकते है। मृगोंको सिंहोसे, कबूतरो-को बाजोंसे भिड़ा सकते है । और वे वीरोंको कायर बना सकते है, सिंहो-को कुत्तोंके साथ भोजन करनेको तैयार कर सकते है। वे स्वर्गको नरक और दोजखको बहिश्त बनानेकी क्षमता रखते है ।

जो शायर देश-समाजमे उत्साह, नवजीवन, चेतना फूंकते है, उन्नतिके नवीन मार्ग खोजते हैं, बल-विक्रम भरते हैं, विकारी मानवोंका कायाकल्प करते है, निराश और उद्यमहीनोंमे आशा और कर्मवीरताके भाव लाते है, वही शायर चिरजीवित रहते है । इसके विपरीत जो शायर व्यथा,

आह, निराशा, रुदन, विलासिता, अकर्मण्यता आदिका दूषित वातावरण उत्पन्न करते हैं, वे थोड़े काल जीवित रहते हैं और समाप्त हो जाते हैं।

जीवनको उभारनेवाले तत्त्व प्राचीन उर्दू-शायरीमे हैं ही नही। उसका जन्म ही मुगलिया सल्तनतके पतनकालमे होता है। अत. उसमें भी वे सब दोष आ गये हैं, जो किसी देशकी पतनोन्मुख स्थितिमें होते हैं। उर्दूके काबिलेनाज शायर मीरोदर्दके यहाँ भी व्यथा, वेदना, आह, रुदन, निराशा, लाचारी, तड़प, पाई जाती है। इनका लक्ष्य ही हुस्नो-इश्ककी शायरी है। बकौल मजनूँ गोरखपुरी—"मीरोदर्दके यहाँ गिनतीके ऐसे अशआर निकलेगे जिनमे जिन्दगीकी नाकामियो और मायूसियोंका बयान न हो; मगर यह बयान अमूमन एक पिन्दार(गर्व) और अहसासे विकार (इज्ज़तके भावो) के साथ होता है। उनकी सुपुर्दगीमे एक फातहाना अन्दाज़ होता है, और हम उनको पढकर थोडी देरके लिये अपनी सतहसे बुलन्द और बरतर हो जाते हैं। बरखिलाफ 'क़ायम', 'असर' वगैरह हमारी तलख़ी और बेजारीको पहलेसे कही ज्यादा बढा देते है। वह गमको राहतफिजा बनाना नही जानते। यही वजह है कि हम ज्यादा देरतक उनकी शायरीके मुत्तहमल (साथ) नही रह सकते।"[1]

कायमके यहाँ उनके समकालीन—असर, ताबाँ, यकीन, बयान, बेदारकी निस्बत तलख़ी और मायूसी कम, सजीदगी और मतानत अधिक पाई जाती है।

मजनूँ गोरखपुरी लिखते हैं—"कायमको अधेड़ उम्रका शायर कहना शायद बेजा न होगा। मुख्तलिफ शायर उम्रके मुख्तलिफ दौरके लिये होते हैं। जवानीके शायरोमे उस हैजान (जोश) और इज्तराब (तड़प) की फ़रावानी (अधिकता) होती है, जिसको जवानीसे ताबीर करते

---

[1]तनकीदी हाशिये, पृ० ६८

हैं। इस दौरके शायरोंमे—असर, यकीन, और ताबाँ इसकी बहतरीन मिसालें हैं। पढनेवालोके दिलोमे इनका कलाम एक तपिश और बैचैनी पैदा कर देता है। इनके यहाँ उस तवाजुनका वहुत कम पता चलता है जो जवानीकी दोपहर ढल जानके बाद होता है। इनका काम सिर्फ तड़पना और तड़पाना है। 'बयान' इस दौरसे गुज़र चुके हैं, और ज़िन्दगीके दश्तमें क़दम रख चुके हैं। इस दौरकी शायरी अमूमन यादकी शायरी होती है। यानी शायर माज़ी (भूतकाल)की यादमें ठंडी साँस भर-भरकर रह जाता है। उसकी सर्द आहोंमे तासीर और तास्सुरात (प्रभाव, असर), सोज़ोगुदाज़ (व्यथा, तड़पन), तो बहुत होती है; मगर वह न खुद तड़पता है, न दूसरोंको तड़पाता है। यह याद महज़ बुढ़ापेकी याद नही होती बल्कि इस यादके अन्दर एक गरमजोशी, एक वालिहाना (आशिकाना) अन्दाज, एक वारफ़्तगी (दीवानगी, मस्ती), होती है, जिसके आसार बुढापेमे बहुत कम रहते है। इस यादकी बहतरीन मिसालमे 'बयान'का यह शेर पेश किया जा सकता है —

पियो शराब जवानो! कि मौसमे गुल है।
हमें भी याद वह अहदे शबाब आता है॥

मीरोदर्द बुढापेके शायर है। जब कि इन्सानके अन्दर इन्तहाई संजीदगी, इन्तहाई मतानत और इन्तहाई बरगज़ीदगी आ जाती है क़ायम अधेड़ उम्रके शायर है और उनके अक्सर अशआर इस यादेगरमके बहतरीन नमूने है।"[1]

---

[1]तनकीदी हाशिये, पृ० ७३

दर्देदिल कुछ कहा नहीं जाता।
आह, चुप भी रहा नहीं जाता॥

काबा अगर्चे बिगड़ा तो क्या जाए गम है शेख़!
कुछ किसरे दिल नहीं कि बनाया न जायगा॥

किस्मतको देख टूटी है जाकर कहाँ कमन्द।
कुछ दूर अपने हाथसे जब बाम रह गया†॥

बेदिमाग़ीसे न उसतक दिलेरंजूर[1] गया।
मर्तबा इश्क़का याँ हुस्नसे भी दूर गया॥

मुझे इस अपनी मुसीबतसे है फ़राग़[2] कहाँ?
किसीसे चाहूँ कि सुहबत रखूं, दिमाग़ कहाँ?

वे दिन गये कि उठाता था बारे निकहते गुल[3]।
है बेदिमाग़िये दिल[4] इन दिनों गिराँ[5] मुझको॥

फ़लक जो दे तो खुदाई भी अब न ले 'क़ायम'।
वे दिन गये कि इरादा था बादशाहीका॥

---

†आश्चर्य है कि यही शेर हू-ब-हू सौदाके दीवानमें भी मिलता है। यह शेर आमतौरपर-यूँ मशहूर है।

क़िस्मत की ख़ूबी देखना टूटी कहाँ कमन्द।
दो-चार हाथ जब कि लबेबाम रह गया॥

[1]दुखी, कुम्हलाया हुआ, [2]अवकाश, [3]फूलोंकी सुगन्धिका भार, [4]दिलका चिडचिड़ापन, [5]भारस्वरूप।

समझके शीशयदिलको पटकियो ऐ बुतेमस्त !
बजाये बादा[1] लहू है इस आबगीने[2]में ॥*

यह जानता मैं नहीं हूँ कि दिल है क्या 'क़ायम' ?
पर इक ख़लिश-सी रहे है मुदाम[3] सीनेमें ॥

दिल गँवाना था इस तरह 'क़ायम' !
क्या किया हाय तूने ख़ानाख़राब[4] !

ले गया ख़ाकमें हमराह अपना दिल 'क़ायम' ।
शायद इस जिन्सका[5] याँ कोई खरीदार न था ॥

न दिल भरा है न अब नम रहा है आँखोंमें ।
कभू जो रोये थे, खूँ जम रहा है आँखोंमें ।
मुआफ़क़तकी[6] बहुत शहरियोंसे मैं, लेकिन ।
वही ग़ज़ाल[7] अभी रम रहा है आँखोंमें ॥

किसे गुलगश्तेगुलशनकी हविस है ।
असीरीका जिगरपर दाग़ बस[8] है ॥
न पूछो मुझसे गुलशनकी हक़ीक़त ।
बरस गुज़रे कि मैं हूँ और क़फ़स है ॥

---

[1]शराब; [2]प्यालेमे, [3]सदैव,

*कुछ-कुछ इसी मज़मूनसे लड़ता हुआ किसीका एक शेर और याद आया ।

हमारे शीशयेदिलको सम्भलकर हाथमें लेना ।
नज़ाकत इसमें इतनी है नज़रसे जब गिरा टूटा ॥

[4]अभागे; [5]वस्तुका, [6]मेल-जोल बढाया,
[7]मृगनयनी; [8]पर्याप्त ।

अब तो नै गुल न गुलसिताँ है याद ।
उसी मुखड़े की हर ज़नाँ है याद ॥
आह ! ए पीरेचर्ख !! 'क़ायम' नाम।
याँ जो रहता था, इक जवाँ, है याद ?

हविस है इश्ककी अहलेहवाको,[1] हम तो मियाँ !
सुनेसे नाम मुहब्बतका जर्द होते हैं[2] ॥

क्यो न रोऊँ मैं देख खन्दयेगुल[3] ।
कि हँसे था वोह बेवफ़ा भी यूँ ही ॥

कोई मुख्तार कहो या कोई मजबूर हमे ।
हम समझते है जहाँतक कि है मक़दूर[4] हमें ॥

न कर गरूर तू मुनअ़म[5] ! कि एक र्गादशमे ।
फ़क़ीरका-सा पियाला है ताजेशाहीका ॥

'कायम' कदम सम्भालके रख कूएइश्क़में[6] ।
यह राह बेतरह[7] है मिरी जान ! देखना ॥

'क़ायम' आता है मुझे रहम जवानीपै तेरी ।
मर चुके है इसी आजारमे[8] बीमार बहुत ॥

वहारे उम्र है 'क़ायम' कोई दिन ।
इसे ज्यूँ गुल पियारे काट हँसकर ॥

खुश्कोतर फूँकती फिरती है सदा आतिशेइश्क़[9] ।
बचियो इस रंजसे ऐ पीरोजवाँ, सुनते हो ?

---

[1]शेखीबाज़ोंको; [2]पीले पड जाते है; [3]फूलोकी मुस्कराहट;
[4]सामर्थ्य, [5]धनिक, [6]प्रेमपथमे;
[7]भूलभुलैया; [8]रोगमे; [9]प्रेम-अग्नि ।

हमसे मिले न आप तो हम भी न मर गये।
कहनेको रह गया ये सुख़न, दिन गुज़र गये॥

फिरे ज़माना जहाँतक है हमसे या न फिरे।
किसूके फिरने न फिरनेसे क्या, खुदा न फिरे॥

एक जागहपै नहीं है मुझे आराम कहीं।
है अजब हाल मेरा, सुबह कहीं, शाम कहीं॥

घुल गया आपी-आप कुछ 'कायम'।
क्या बला इस जवानपर आई?

बरंगे गुंचा बहार इस चमनकी सुनते थे।
पै ज्यों ही आँख खुली मौसमे खिज़ाँ देखा॥

न कहते थे तुझे 'क़ायम' कि दिल किसीको न दे।
मज़ा कुछ इसका भला तूने ऐ मियाँ! चक्खा?

कब मैं कहता हूँ कि तेरा मैं गुनहगार न था।
लेकिन इतनी तो अक़ूबतका[1] सज़ावार न था॥

एवज़तरबके[2] गुज़िश्तोंका[3] हमने ग़म खींचा[4]।
शराब औरोंने पी और ख़ुमार[5] हम खींचा॥

पल मारते करे है इशारोंसे मुत्तहम[6]!
टुक इस सितमज़रीफ़का बोहतान[7] देखना॥

---

[1]दण्ड, कष्टका, [2]खुशीके बदले; [3]भूतकालका अथवा अपने स्वर्गासीन इष्टजनोंका, [4]दुख माना; [5]नशेके उतारकी अवस्था, जो नशेबाजको बडी अरुचिकर होती है; [6]अपराधी; [7]दोषारोपण।

गो तग़ाफ़ुलसे[1] मेरा काम[2] हुआ।
पर भला तू तो नेक नाम हुआ॥

सेहतका जीमें चाव न आजारकी[3] हविस[4]।
नागुफ़्तनी[5] है कुछ तेरे बीमारकी हविस॥

सीखे हो किससे सच कहो प्यारे यह चाल-ढाल।
तुम इक तरफ़ चलो हो तो तलवार इक तरफ़॥
किस बातपर तेरी मैं करूँ एतबार हाय!
इकरार इक तरफ़ है तो इन्कार इक तरफ़॥

आमादये सोख़्तन[6] हूँ इक बार।
ऐ बर्क़![7] मेरे भी आशियाँ[8] तक॥

तेरे दामन तलक ही पहुँचूँ—और
ख़ाक होनेसे कुछ मुराद नहीं॥

आशिक न था मैं बुलबुल! कुछ गुलके रंगोबूका।
इक उन्स हो गया था इस गुलसिताँसे मुझको॥

एक हमीं ख़ार थे आँखोंमें सभीके सो चले।
बुलबुलो! खुश रहो अब तुम गुलोगुलजारके साथ॥

हमनशीं[9]! ज़िक्रेयार कर कुछ आज।
इस हिकायतसे जी बहलता है॥

ज़ालिम! ख़बर तो ले, कहीं 'क़ायम' ही यह न हो।
नालाँओमुतजरब[10] पसेदीवार[11] है कोई॥

---

[1]उपेक्षासे, [2]मैं नष्ट हो गया, [3]रोगकी; [4]अभिलाषा; [5]न कहने योग्य; [6]जलनेको आतुर; [7]बिजली; [8]घोसला, निवासस्थान; [9]साथी; [10]चीखता और तड़पता; [11]दीवारके पीछे।

रोज़ोशब[1] है हालते-अंजामे-मयनोशी[2] मुझे।
किसकी आँखोंने दिया पैग़ामेबेहोशी मुझे ?

आना है तो आ वगर्ना प्यारे।
हम आपसे[3] आज जा रहे हैं॥

आप जो कुछ क़रार करते हैं।
कहिये, हम एतबार करते हैं॥

चलिये 'क़ायम' कि रफ़्तगाँ[4] अपना।
देरसे इन्तज़ार करते हैं॥

—तनक़ीदी हाशिएसे।

वह है कौन दिन कि तेरे लिये मुझे तुझ गलीमें गुज़र नहीं॥
है यह क्या सितम कि तुझे सजन! मेरी अब तईं भी खबर नहीं॥

ग़ैरसे मिलना तुम्हारा सुनके गो हम चुप रहे।
पर सुना होगा कि तुमको इक जहाँने क्या कहा ?

ज़ालिम तू मेरी सादा दिलीपै तो रहमकर।
रूठा था आप तुझसे मैं और आप मन गया॥

बुतोंकी दीदको जाता हूँ दैरमें 'क़ायम'!
मेरा कुछ और इरादा नहीं, ख़ुदा न करे॥

—इन्तकादियात भा० २ से

२५ जुलाई १९४९ ई०

---

[1]दिनरात,
[2]शराबके नशेकी-सी अवस्था;
[3]अपनी जानसे जा रहे हैं अर्थात् मर रहे हैं;
[4]स्वर्गस्थ।

असर

ख्वाजा पीरमुहम्मद 'असर' दर्दके छोटे भाई थे। प्रथम श्रेणीके शायर और सगीतमे पारगत थे। समवेदनशील हृदय रखते थे। ईश्वर भक्त फकीर थे। दर्दके बाद यही मसनदे दरवेशीपर आसीन हुए। 'ख्वाबोखयाल' मनसवी उनकी श्रेष्टतम कृति है। खेद है कि उनका जीवन-परिचय इससे अधिक नही मिलता। असरके बड़े भाई ख्वाजा-मीर 'दर्द' सम्भवतः असरके कविता-गुरु थे।

मजनूँ गोरखपुरीके शब्दोमे—"असरने अपनी तमाम उम्र गज़ल-गोईमे लगादी। इश्क और वारदातेइश्क उनका मौज़ूए सुखन (कविताका विषय) था और फिर उन्होने जिस सादगी और सहूलियत, जिस दर्दमन्दी और दिलसोजीके साथ इन वारदातेइश्कको बयान किया है, वह उनको एक जुदागाना असलूबका मालिक माननेमे मजबूर करते है।"[1]

"असरको जज्बात (भावों)की पुख्तगीके साथ ज़बानकी पुख्तगी भी वैसी ही नसीब हुई। वे आपबीतीको जगबीती बना देते हैं। मुआमलातेइश्कको ऐसी बरजस्तगी और बेतकल्लुफ़ीसे बयान करते हैं कि हर एक यही समझता है कि मेरे दिलकी बात कही गई है। जो बाते वे कहते है दिलको मोह लेती है।"[2]

"असर सूफी थे, जाहिद थे, इबादतगुज़ार थे, लेकिन कलामके

---

[1] तनकीदी हाशिये, पृ० ९७

[2] तनकीदी हाशिये, पृ० ९९

तेवर बताते हैं कि वे इस मंज़िलपर किस रास्तेसे पहुँचे हैं[1] और किन खतरातेइश्कसे उनको गुज़रना पड़ा है।"

"कहते हुए डरता हूँ कि कही बेअदबी न हो। वर्ना शायद इससे इनकार करना इन्साफ न हो कि असरकी ज़बानमे 'मीर'से ज़्यादा तल्ख़ी, तंज़ और घुलावट मौजूद है।"[2]

गर हम ही हस हैं आह ! तो हम-हस कभू नहीं।
और तू ही तू है सब कहीं तो हम कहाँ नहीं ?

दिलन मुझसे 'असर' किया सो किया।
क्या कहूँ ? महरबान अपना है॥

जो सज़ा दीजे है बजा मुझको।
तुझसे करनी न थी वफ़ा मुझको॥
वही मैं हूँ 'असर' वही दिल है।
अब ख़ुदा जाने क्या हुआ मुझको॥

बेवफ़ा तेरी कुछ नहीं तक़सीर।
मुझको मेरी वफ़ा ही रास नहीं॥

कभी दोस्ती है कभी दुश्मनी।
तेरी कौन-सी बातपर जाइये॥

सर्फ़ेग़म,[3] हमने नौजवानी की।
वाह, क्या ख़ूब जिन्दगानी की॥

---

[1]साफ कहिये कि 'असर' भी 'मोमिन'की तरह काबेको गये मगर 'कूएबुताँ होकर'।

[2]तनकीदी हाशिये, पृ० ११४

[3]ग़मकी भेट।

आहके साथ दिल निकल न गया।
आह ! ऐ आह !! यह खलल न गया॥

इतना बतलाओ, ग़मग़लत, प्यारे !
कौन-सी तेरी बातपर कीजे॥

कर दिया कुछ-से-कुछ तेरे ग़मने।
अब जो देखा तो वह 'असर' ही नहीं॥

दिलेपुरइज़्तराबने[1] मारा।
इसी खानाखराबने मारा॥

दिलजलोंका है दिलकी लाग इलाज।
आगके जूँ जलेका आग इलाज॥

आह सारा है यह जहान ग़लत।
दोस्तीका है याँ गुमान ग़लत॥

जो किसीका कभू न यार हुआ।
वही क़िस्मतमे यार अपना है॥

बेवफ़ाई वोह गो हज़ार करे।
याँ वफ़ा ही शुआर[2] अपना है॥

कुछ न पूछो निपट ही मुश्किल है।
औरके हाथमे मेरा दिल है॥

राहपर उनको लगा लाये तो है बातोंमें।
और खुल जाएँगे दो-चार मुलाकातोंमें॥

जब कि तेरा खयाल लाता हूँ।
सारी बातोंको भूल जाता हूँ॥

---

[1]व्यथित हृदयने, [2]स्वभाव।

तू न आया वले[1] 'असर'के तईं।
मरते-मरते भी इन्तज़ार रहा॥

शमा परवानेको जलाती है।
साथ, पर उसके आप जलती है॥
जीते जी तक ब-हसरतो अफ़सोस[2]।
सरको धुनती है हाथ मलती है॥

जीमें अपने जो है सो है प्यारे।
फ़ायदा क्या तुझे जतानेसे॥

राह तकते ही तकते हम तो चले।
आइये भी कहीं जो आना है॥
कभू मेरा भी कहना मानियेगा।
जो कहा तूने, मैंने माना है॥

अगर ऐसा ही अब सताइयेगा।
खैर जीता मुझे न पाइयेगा॥
दिल हरइकसे लड़ाते फिरते हो।
आँख तो हमीसे भी लड़ाइयेगा॥
'असर' इतना तो इल्तमास[3] करूँ।
हर किसूकी दग़ा न खाइयेगा॥
जानतक दो जिसे कि चाहो तुम।
दिलको टुक देखकर लगाइयेगा॥

बस[4] हो या रब! यह इम्तहान कहीं।
या निकल जाय अब ये जान कहीं॥

---

[1] लेकिन; [2] अभिलाषा और खेदसहित;
[3] प्रार्थना; [4] समाप्त।

क्या कहूँ दिलकी मै परेशानी।
दिल कही, मै कहीं, ध्यान कहीं॥

देखता ही नही वोह मस्तेनाज़।
और दिखलाऊँ हालेज़ार किसे॥
ख़ूब देखे 'असर'ने क़ौलोक़रार।
अब तेरे क़ौलपर क़रार किसे॥

काम अपना 'असर' तमाम हुआ।
इस दिले नाबकारके हाथों॥

कभू करते थे महरबानी भी।
आह! वोह भी कोई ज़माना था॥
क्या बताएँ कि इस चमनके बीच।
कहीं अपना भी आशियाना था॥
होशियारोंसे मिलके जानोगे।
कि 'असर' भी कोई दिवाना था॥

देखना टुक 'असर'से नज़रें मिला।
क्या हुए थे क़रार आँखोंमें॥

हाल अपने पै मुझको आप 'असर'।
रहम बेअख़्तयार आता है॥

—तनक़ीदी हाशियसे

'असर' कीजिये क्या, किधर जाइये।
मगर आप ही से गुज़र जाइये॥
बेवफ़ाईपै तेरी जी है फ़िदा।
क़हर होता जो बावफ़ा होता[1]॥

---

[1]"चकवस्त'ने भी इसी मज़मूनको ख़ूब बाँधा है—

पहले सौ बार इधर-उधर देखा।
जब तुझे डरके इक नज़र देखा[1]॥

—इन्तक़ादियात, भा० २, पृ० ११०

पूछ मत हालेदिल मिरा मुझसे।
मुज़्तरिब हूँ मुझे हवास नहीं॥

बेवफ़ा तेरी कुछ नहीं तक़सीर।
मुझको मेरी वफ़ा ही रास नहीं॥

यूँ ख़ुदाकी ख़ुदाई बरहक़ है।
पर 'असर'की हमें तो आस नहीं॥

तुझ सिवा कोई जलवागर ही नहीं।
पर, हमे आह! कुछ ख़बर ही नहीं॥

दर्देदिल छोड़ जाइये सो कहाँ?
अपने बाहर तो याँ गुज़र ही नहीं॥

तेरी उम्मीद छुट नहीं सकती।
तेरे दरके सिवाय दर ही नहीं॥

हाल मेरा न पूछिये मुझसे।
बात मेरी तो मोतबर ही नहीं॥

हज़ारों जान देते हैं बुतोंकी बेवफ़ाईपर।
अगर इनमेंसे कोई बावफ़ा होता तो क्या होता॥

[1]मीरने क्या खूब फ़र्माया है—

देख लेता है वोह पहले चारसू अच्छी तरह।
चुपकेसे फिर पूछता है 'मीर' तू अच्छी तरह॥

ऐसेके ख़ैरख्वाह हुए हम कि जिसको आह !
बदख़्वाहमें है फ़र्क़ न कुछ ख़ैरख़्वाहमें ॥

गम ही दिखलाती है सदा क़िस्मत ।
वाह अपनी बनी है क्या क़िस्मत ॥
जिसकी खातिर सभी हुए दुश्मन ।
न हुआ दोस्त वह ही, या क़िस्मत !

तू ही बता बनेगी यूँ ही बात किस तरह ।
बिलफ़र्ज़ दिन कटा, पै कटे रात किस तरह ?

तुझसे न था जो कुछ कि गुमाँ सो यक़ीं हुआ ।
जो तुझसे था यक़ीं सो अब उसका गुमाँ नहीं ॥

यूँ तो क्या बात है तेरी लेकिन ।
वोह न निकला जो था गुमाँ दिलको ॥

बेगुनाहोंसे दिलको साफ़ करो ।
नहीं तकसीर, पर मुआफ़ करो ॥

तू मेरी जान गर नहीं आती ।
ज़ीस्त होती नज़र नहीं आती ॥
कीजे नामहर्बानी ही आकर ।
महर्बानी अगर नहीं आती ॥
हालेदिल मिस्ले शमअ़ रोशन है ।
गो मुझे बात कर नहीं आती ॥
नहीं मालूम दिलपै क्या गुज़री ।
इन दिनों कुछ ख़बर नहीं आती ॥
दिन कटा जिस तरह कटा लेकिन ।
रात कटती नज़र नहीं आती ॥

—निगार, जनवरी १९५०

असरकी मसनवीका नमूना—

कुछ न खुलता था क्या मरज़ है उसे।
आहोजारीसे क्या ग़रज़ है उसे॥
किस लिये ज़ार-ज़ार रोवे है।
किस लिये ढाढ़ें मार रोवे है॥
किस लिये बेहवास रहता है।
किस लिये यूँ उदास रहता है॥
यूँ जो सूखे है, क्या उसे दिक़ है?
या किसी शख़्सपर यह आशिक़ है?
हाल पूछो तो ख़ैर रोने लगे।
और उलटे ख़फ़ीफ़ होने लगे॥
बिन कहे आप ही आप बकता है।
बात पूछो तो मुँहको तकता है॥
एक तो उसके जौरने मारा।
और यारोंके ग़ौरने मारा॥
आह यारब! किधर निकल जाऊँ?
दोस्त, दुश्मनको मुँह न दिखलाऊँ।
दिन कहाँ चैन, रात ख़्वाब कहाँ?
बिन तेरे आये दिलको ताब कहाँ?
नहीं आती है इन्तज़ारसे नींद।
उड़ गई है ख़यालें यारसे नींद॥
मुन्तज़िर तेरा बस कि रहता हूँ।
'कौन है' हर सदापै कहता हूँ॥
कोई हो, ले उठूँ मैं तेरा नाम।
'आ भी ज़ालिम' हुआ है तकियाकलाम॥

शेरोसुख़न

हाथसे अपने बात जाती है।
कहीं आ चुक, कि रात जाती है॥
क़हर है गरमियोंकी दोपहरें।
दिलपै क्या-क्या गुज़रती हैं लहरें॥
सख्त दूभर हैं, जाड़ेकी रातें।
और उसकी हज़ारहा बातें॥
अब न दिन ही कटे न रात कटे।
किस तरह अरसये हयात कटे॥

—तनक़ीदी हाशियेसे

३१ जुलाई १९४९ ई०

२०

ताबाँ

मीर अब्दुलहई 'ताबाँ' इतने हसीन और नमकीन थे कि लोग इन्हे यूसुफ़ेसानी कहा करते थे। गोरे बदनपर स्याह लिबास ख़ूब खिलता था। तत्कालीन चारित्रिक पतनका यह हाल था कि मजहर, मीर, सौदा, जैसे ख्यातिप्राप्त उस्ताद भी इनपर मरते थे और सर्वसाधारणमे तो न जाने कितने इनके तीरेनज़रके घायल थे। लौंडेबाज़ी शायरीमे मन बहलावका साधन नही थी, अपितु वह पहले लोगोके व्यावहारिक जीवनमें घर कर चुकी थी। तभी हृदय-सरोवरके विकार काईरूपमे इस घिनौने ढगपर कागज़पर आने लगे थे। यहाँतक कि बादशाहने जब इनके सौन्दर्य-की गन्ध पाई तो वह भी अपनी मान-मर्यादाको भूलकर इन्हे देखनेके लिये बेचैन हो उठा, और जुलूसका बहाना बनाकर इनके मकानके आगेसे गुज़रा और जी भरकर देखनेकी नीयतसे वहाँ हाथी ठहरवाकर पानी पीकर आगे बढ़ा। फाटक हब्शख़ाँसे जो रास्ता लाहौरी दर्वाज़ेकी तरफ निकलता है, उसी फाटकपर 'ताबाँ'का कमरा था और इस रास्तेसे कभी शाही जुलूस नही निकले थे; क्योकि यहाँ तो शहरकी फ़सील (प्राचीर) थी और फसीलके बाहर-बाहर कौन ऐसा बावला होगा जो अपना जुलूस निकलवायेगा? परन्तु बादशाहके तो दिलोदिमागपर हुस्नपरस्तीका भूत सवार था। कौन-सी बात उपयुक्त है, और कौन-सी नही, यह सोचने-समझनेका उसे तब होश ही कहाँ रहा होगा।[1]

---

[1] विषयासक्त चित्तानां गुणः को वा न नश्यति।
न वैदुष्यं, न मानुष्यं नाभिजातं न सत्यवाक॥
—वादीभिसूरि

'तावाँ'पर जहाँ अनेक जान फिदा किये हुए थे, वहाँ वह ख़ुद भी एक सुलेमान छोकरेको दिल दे बैठे थे। माशूक भी किसीपर आशिक हो, तभी उसे आशिकोके हृदयमे सुलगनेवाली आगका ज्ञान होता है। आशिकोकी उपेक्षा करने, उन्हे विरह-अग्निमे जलाने-सतानेसे कितना कष्ट होता है, यह माशूक तभी जान सकता है, जब उसका भी दिल किसी पर आये। बकौल 'ग़ालिब'—

आशिक हुए हैं आप भी इक और शख़्सपर।
आख़िर सितमकी कुछ तो मकाफात चाहिए॥

मालूम होता है 'तावाँ' असफल प्रेमी रहे, या सुलेमानने अन्ततक मुहब्बत नही निभाई। 'तावाँ' कफेअफ़सोस मलते हुए कहते हैं—

सुलमाँ! क्या हुआ गर तू नजर आता नहीं मुझको।
मेरी आँखोंकी पुतलीमें तेरी तसवीर फिरती है॥

तावाँ शराव बहुत पीते थे। हर वक़्त नशेमे चूर रहते थे। अल्हड़ जवानी, कयामत ढानेवाला हुस्न, गदराया हुआ जोबन और फिर नशेमें चूर! वकौल दाग़—

इस अदाका कहीं जवाब भी है?

तावाँने लोगोके समझाने-बुझानेपर शराब छोडी भी तो एक सप्ताहमें इस दुनियासे कूच कर गये[1]। उनकी इस जवान मौतपर सारे दिल्ली शहरने शोक मनाया।

(विषयासक्त मनुष्योके कौन-से गुण नष्ट नही होते? न उनमे विद्वत्ता रहती है, न मनुष्यता रहती है, न स्वाभिमान रहता है और न सत्य वचन ही रहता है।)

[1]शायद इसीलिये कि जन्नतमे कौसरपर बैठकर मनमानी पियेंगे।

वह घबराकर जनाजा देखने बाहर निकल आये ।
किसीने कह दिया मय्यत जवाँ मालूम होती है ।।

—अज्ञात

ताबाँकी इस जवाँ मौतपर उर्दू-शायरीके हर तज़करेनवीसने आँसू बहाये हैं । मीर' जैसे बद्दिमाग़ने भी जो शाजोनादर ही किसीकी प्रशंसा करते थे, लिखा है—

दाग़ है ताबाँ अलैहिर्रहमताका दिलपै 'मीर' ।
हो निजात उसको, बिचारा हमसे भी था आश्ना ।।

ताबाँ किसके शिष्य थे ? इसपर लोग एकमत नही है । शेफ्ता इन्हें 'सौदा'का शिष्य लिखते है । 'गुलशनेहिन्द' और 'गुलज़ारेहिन्द'के लेखक इन्हे 'मज़हर' और 'सौदा' दोनोका शिष्य बताते हैं । मुसहफी इन्हें 'शाहहातिम' और मुहम्मदअली 'हशमत'का शिष्य प्रमाणित करते है । मीरने भी 'हशमत'को ताबाँका उस्ताद तस्लीम किया है । स्वयं ताबाँ भी हशमतके प्रति इस प्रकार श्रद्धाका परिचय देते है—

परस्तिश क्यों न दुनियामें करें हम उसकी ऐ 'ताबाँ' !
हमारा क़िबला हशमत, दीन हशमत, रहनुमा हशमत ।।

ताबाँके कलाममे मज़हर और हातमका रग झलकता है, परन्तु सौदाकी कोई खसूसियत नही पाई जाती । ताबाँ इतने रूपवान और सजीले थे कि जो उन्हे देखता था गरवीदा हो जाता था । यही कारण है कि हर उस्ताद इन्हे अपना शिष्य बनानेको उत्सुक रहता था, किसी

न वहाँ कोई जाहिद होगा न नासेह । न नये रगरूट होनेकी झिझक । ताबाँ जैसे पियक्कड़पर यह फब्ती कौन कस सकता था ?

जिनको पीनेका तरीका न सलीका मालूम ।
जाके कौसरपै यकायक वोह पिएँगे क्योंकर ?

वहाने तावाँकी मुलाकातके लिये लालायित रहता था। सौदा, हातिम, मज़हर, मीर, सभी तावाँकी कविता-संशोधन करनेमे गौरव और सुख समझते थे। मज़हर तो भरी महफिलमे तावाँकी शोख़ियों और बेअदबियोसे प्रसन्न होते थे। और लोगोकी नज़रे बचा-बचाकर इन्हीको घूरते रहनमे जीवन सफल समझते थे। तावाँके कलामकी प्रशसा यूँ तो सभीने की है, परन्तु मीर जैसे ख़ुदाये-सुख़नने भी तारीफोतोसीफके दरिया बह दिये है। "नौजवाँ वामज़ाक', 'बिसयार ख़ुश फिक्र', 'शायरेख़ुशज़ाहिर', गरज़ कि क्या-क्या नही कहा है। मीरका किसीकी ज़बानेरंगीको बर्गेगुल (फूलोकी पखड़ी)से भी पाकीज़ातर (पवित्र, कोमल) बताना कोई मामूली ख़िराजेतहसीन (कविताकी प्रशंसा करना) नही है[१]।"

---

[१]तनकीदी हाशिये, पृ० १३७

अख़गरको[1] छिपा राखमे मैं देख यह समझा।
'ताबाँ' तू तहेख़ाक भी जलता ही रहेगा॥

उड़ाये सबा खाक मेरी अगर तू।
तो कूचेमें उस बेवफ़ा ही के लेजा॥

आश्ना हो चुका हू मैं सबका।
जिसको देखो सो अपने मतलबका॥
हम तो ताबाँ हुए हैं लामजहब[2]।
मजहला[3] देख सबके मज़हबका॥

रखता था एक जी सो तेरे ग़ममें जा चुका।
आख़िर तू मुझको खाकमें ज़ालिम मिला चुका॥
बेताबियोंका इश्क़में करता है क्यों गिला।
'ताबाँ' अगर यह दिल है तो आराम हो चुका॥

बेवफ़ाओंसे दिलमें है 'ताबाँ'।
और सब कुछ करूँ, वफ़ा न करू॥

है आरज़ू यह जीमें उसकी गलीमें जावे।
और ख़ाक अपने सरपर मनमानती उड़ावें *॥

---

[1]आगकी चिनगारीको;

[2]धर्महीन;

[3]अज्ञानता;

*एक तरफ़ 'ताबाँ'की यह आरज़ू है, दूसरी तरफ चकबस्तकी आरज़ू देखिये—

'रख दे कोई ज़रासी ख़ाके वतन कफ़नमें'

कहते हैं असर होगा रोनेमें, ये हैं बातें।
एक दिन भी न यार आया रोते ही कटी रातें॥

सौदामें[1] गुजरती है क्या ख़ूब तरह 'ताबाँ'।
दो-चार घड़ी रोना, दो-चार घड़ी बातें* ॥

मैं दिल खोल 'ताबाँ'! कहाँ जाके रोऊँ।
कि दोनों जहाँमें फ़रागत नहीं है॥

बयाँ क्या करूँ नातवानी[2] मैं अपनी।
मुझे बात करनेकी ताकत कहाँ है?

ग़म वस्लमें है हिज्रका, हिजराँमें वस्लका।
हरगिज किसी तरह मुझे आराम ही नहीं॥

किससे फरियाद करूँ मैं कि वोह हरजाई है।
आह इस बातमें मेरी भी तो रुसवाई है॥

गुल जमींसे जो निकलते हैं बरंगेशोला[3]।
कौनजाँ सोख़्ता[4] जलता है तहेख़ाक हनूज़[5]॥

---

[1]उन्मादावस्थामें;

*यह शेर 'सौदा' जैसे उस्तादके शेरसे हू-ब-हू लड़ गया है। मुशायरोंमें ग़ज़ल पढते समय किन्ही दो शायरोका, एक ही मज़मून, एक ही जैसे शब्दोमे बाँधना कमालेशायरी समझा जाता है—

आशिककी भी कटती है क्या ख़ूब भली रातें।
दो-चार घड़ी रोना, दो-चार घडी बाते॥

—सौदा

[2]निर्बलता; [3]आगकी तरह; [4]दिलजला; [5]अभीतक।

तू देख मुझको नजअमें[1] मत कुढ़ कि मेरे बाद ।
मुझसे बहुत हैं, एक न होगा तो क्या हुआ ?

अजब अहवाल है 'ताबाँ'का तेरे ।
कि रोना रात-दिन और कुछ न कहना ॥

हमको तुम बिन एकदम ऐ जान ! जीना है मुहाल ।
तुम तो होते हो जुदा लेकिन हमारा क्या इलाज ?

तू भली बातसे भी मेरी ख़फ़ा होता है ।
आह ! यह चाहना ऐसा ही बुरा होता है ॥

—तनक़ीदी हाशियेसे

नहीं है दोस्त अपना, यार अपना, महर्बां अपना ।
सुनाऊँ किसको ग़म अपना, अलम अपना, बयाँ अपना ॥

रहता हूँ ख़ाकोख़ूंमें सदा लोटता हुआ ।
मेरे ग़रीब दिलको इलाही यह क्या हुआ ?
मैं अपने दिलको ग़ुंचयेतसवीरकी तरह ।
या रब ! कभू ख़ुशीसे न देखा खिला हुआ ॥
नासेह ! अबस[2] नसीहते बेहूदा तू न कर ।
मुमकिन नहीं कि छूट सके दिल लगा हुआ ॥

जफ़ासे अपनी पशेमाँ न हो, हुआ सो हुआ ।
तेरी बलासे मेरे जीपै जो हुआ, सो हुआ ॥
सबब जो मेरी शहादतका[3] यारसे पूछा ।
कहा कि—'अब तो उसे गाड़ दो, हुआ सो हुआ' ॥

---

[1] मृत्युसमयमें; [2] व्यर्थ;
[3] बलिदानका ।

भले-बुरेकी तेरे इश्कमें उड़ादी शरम।
हमारे हकमें कोई कुछ कहो, हुआ सो हुआ॥
न पाई खाक भी 'ताबाँ'की हमने फिर जालिम!
वोह एकदम ही तेरे रूबरू हुआ सो हुआ॥

जब पान खाके प्यारा गुलशनमें जा हँसा है।
बेअख्तियार कलियाँ तब खिलखिलाइयाँ हैं॥

—आबेहयातसे

१० अगस्त १९४९ ई०

२१

यक़ीन

इनामुल्लाख़ाँ 'यकीन' मिर्जा 'मजहर'के शिष्य थे। २५ वर्षकी आयुमें इन्तकाल फर्मा गये। अफसोस कि उम्रने वफा न की वर्ना मुसहफ़ीकी राय यह थी कि मीरो मिर्जाका यकताईका दावा बाकी न रहता। ये नवाब जहीरुद्दीनके बेटे थे।

मुफ़्त कब आज़ाद करती है गिरफ़्तारी मुझे।
जी'ही लेके छोड़ेगी आख़िर यह बीमारी मुझे॥

'यक़ीं'की वाक़येकी सुन ख़बर वोह बदगुमाँ बोला—
"यह दीवाना मगर ऐसा न था बीमार, क्या कहिये ?"

—इन्तक़ादियात, भा० २

न हुआ हाय 'यक़ीं'! वर्ना दिवाना होता।
आज इस तरहका देखा है परीज़ाद कि बस!

ख़ुदा देता मुझे गर मीरसामानी ख़ुदाईकी।
तो मैं इन बुलबुलोंको गुलशनोंका बाग़बाँ करता॥

सरीरेसल्तनतसे[1] आस्तानेयार बहतर था।
हमें ज़ुल्लेहुमासे[2] सायेदीवार बहतर था॥

---

[1]राज्यसिहासनसे।

[2]हुमा पक्षीकी छायासे (रवायत ये है कि हुमा जिसके सरपर बैठ जाता है, वह बादशाह होता है।)

बहार आखिर[1] हुई है अब तो सीने दे गरीबाँको।
'यक़ीं' करता है कोई इस कदर दीवानापन, बसकर ॥

मजनूँकी खुशनसीबी करती है दाग़ दिलको।
क्या ऐश कर गया है जालिम दिवानापनमें ॥

यह पूछो तो कि क्या यह सरज़मीं मजनूँका मदफ़न है।
चली आती है यासअंगेज़[2] यादे उस बयाबाँसे ॥

गिरेबाँ चाक करनेसे हमारे तुझको क्या नासेह !
हमारे हाथ जाने और हमारा पैरहन[3] जाने ॥

दिल छोड़ गया हमको दिलबरसे तवक़्क़ोह[4] क्या ?
अपनेने किया यह कुछ, बेगानेको क्या कहिये ॥

—तनक़ीदी हाशिये

ख़फ़ीफ़[5] मुझसे उलझकर अबस[6] हुआ वाइज़।
कि मैं तो मस्त था उसको भी क्या शऊर न था ॥

तेरी उल्फ़तसे मरना खुश नहीं आता मुझे वर्ना।
यह एसा कारेआसाँ इसक़दर दुश्वार क्यों होता ?

शिकोहे हुस्नसे[7] आँसू हमारे सूख जाते है।
'यक़ीं' सूरजके आगे कब असर रहता है शबनमका ॥

आँखसे निकले पै आँसूका खुदा हाफ़िज़ 'यक़ीं' !
घरसे जो बाहर गया लड़का सो अबतर हो गया ॥

---

[1]समाप्त; [2]निराशाभरी; [3]वस्त्र;
[4]आशा; [5]अपमानित, [6]व्यर्थ,
[7]सौन्दर्य्यकी आभासे ।

मेरा जो काम वफ़ा था सो हो सका न 'यक़ीं'।
वगर्ना उसकी जफ़ामें तो कुछ क़ुसूर न था ॥

सच कहो ऐ बलबुलो ! किस बाग़से आती हो तुम ?
है हमारे भी तुम्हें कुछ आशियानेकी ख़बर ?

कोई दिन और करने दो जुनूँ मुझको बहारोंमें।
अबस सीते हो इसको क्या रहा है अब गरीबाँमें ॥

शिकवा जफ़ाएयारसे करना वफ़ा नहीं।
बन्दोंको एतराज़ ख़ुदापर रवा नहीं ॥

काबेमें हम गये, न गया पर बुतोंका इश्क़।
इस दर्दकी ख़ुदाके भी घरमें दवा नहीं ॥

फ़िक्र मरहमकी मेरे वास्ते मतकर नासेह !
ख़ूब होता नहीं इस इश्क़का नासूर कभी ॥

नासहो ! यह भी कुछ नसीहत है ?
कि 'यक़ीं' यारसे वफ़ा न करे ॥

—निगार जनवरी ५०

११ अगस्त १६४६ ई०

२२

बेदार

पीर मुहम्मदअली 'बेदार' दिल्लीमे उत्पन्न हुए और वही शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की। बेदार फारसीमे फिराकके और उर्दू-शायरीमे दर्दके शिष्य थे। मौलाना फखरुद्दीनसे प्रभावित होकर फकीराना वेश-भूषामे रहते थे। बेदारकी भाषा मँजी और निखरी हुई है। उनके भावोमें भी व्यथा और टीस घुली-मिली हैं। बेदारके दीवानमे चारित्रिक, पारलौकिक और प्रेम सम्बन्धी यूँ तो सभी तरहके अशआर मिलते हैं; परन्तु अपने अन्य समकालीन कवियोकी तरह इनका भी मुख्य ध्येय कूचये इश्क़की सैर करना रहा है। इनकी भाषामे भी लालित्य और कोमलताका अच्छा परिचय मिलता है।

सूफियाना रग—

कुछ न एधर[1] है नै उधर तू है।
जिस तरफ कीजिये नज़र तू है॥
वह तो 'बेदार' है अयाँ[2] लेकिन।
उसके जलवेसे बेखबर तू है॥

इस हस्तियेमौहूम[3] पै ग़फ़लतमें न खो उम्र।
'बेदार'! हो आगाह, भरोसा नहीं दमका॥

'बेदार' वह तो हरदम सौ-सौ करे है जलवे।
इसपर भी गर न देखे तो है कुसूर तेरा॥

---

[1]इधर, [2]प्रकट, [3]क्षणिक जीवन।

शिकवा क्या कीजे अपनी ग़फ़लतका ।
नाम 'बेदार' ख़्वाबमें रहना ॥

कहीं-कहीं मीर-दर्दका रंग झलकता है—

देता नहीं दिल लेके वोह मग़रूर किसीका ।
सच है कि न ज़ालिमपै चले ज़ोर किसीका ॥
'बेदार' मुझे याद उसीकी है शबोरोज़ ।
नै बात किसीकी है, न मज़कूर किसीका ।

हमपै सौ ज़ुल्मोसितम कीजियेगा ।
एक मिलनेको न कम कीजियेगा ॥
गर यही ज़ुल्फ़ो यही मुखड़ा है ।
ग़ारत दैरोहरम[1] कीजियेगा ॥

किस-किसका दिल न शाद किया तूने ऐ फ़लक[2] !
इक मैं ही ग़मज़दा[3] हूँ कि नाशाद[3] रह गया ॥
'बेदार' ! राहेइश्क किसीसे न तय हुई ।
सहरामें[4] क़ैस[5] कोहमें[6] फ़रहाद रह गया ॥

जो अबके छोड़े मुझे ग़म तेरी जुदाईका ।
तमाम उम्र न लूँ नाम आशनाईका ॥

देखते ही उसके सौदा[7] हो गया ।
क्या हुई 'बेदार' ! वोह दानाइयाँ[8] ॥

'बेदार' ! छुपायेसे छुपते हैं कहीं तेरे ।
चेहरेसे नुमायाँ हैं आसार मुहब्बतके ॥

---

[1]मन्दिर, मस्जिद, [2]आस्मान; [3]सुखरहित; [4]जंगलमें; [5]मजनूँ; [6]पर्वतमें, [7]उन्माद; [8]चतुराइयाँ ।

सूरत उसकी समा गई दिलमें ।
आह ! क्या आग भा गई दिलमें ॥

न वफ़ा है न महरो-उलफ़त[1] है ।
ऐ सितमगर ! यह क्या क़यामत है ?

न बुतकदेसे काम न मतलब हरमसे था ।
महवे ख़यालेयार[2] रहे, हम जहाँ रहे ॥

आह जिस दिनसे तुझसे आँख लगी ।
दिलपै हर रोज़ एक नया ग़म है ॥

उसके मज़कूरके[3] सिवा 'बेदार' ।
और कुछ बात ख़ुश[4] नहीं आती ॥

शिताब[5] आ, कि नहीं ताबे इन्तज़ार मुझे ।
तेरा ख़याल सताता है बार-बार मुझे ॥

छोड़कर कूएबुताँ जाता तो है काबेको ।
जल्द फिरयो तुझे 'बेदार' ख़ुदाको सौंपा ॥

—तनक़ीदी हाशियेसे

हम ख़ाक भी हो गये प लेकिन ।
जीसे न तेरे ग़ुबार निकला ॥

१२ अगस्त १९४९ ई०

---

[1] कृपा और प्रेम, [2] प्रेयसीके ध्यानमें लीन; [3] ज़िक्रके;
[4] पसन्द; [5] शीघ्र ।

२३

ज़िया

ज़ियाउद्दीन 'ज़िया' देहलवी थे, परन्तु देहलीकी तबाहीके बाद फ़ैज़ाबाद और फ़ैज़ाबादसे लखनऊ चले गये थे; किन्तु वहाँ भी न जम सके और चन्द दिनके बाद राजा शिताबरायके साहबजादेके पास अजीमाबाद चले गये। वहाँ इनको आदर मिला, और वहीं इन्होंने समाधि पाई।

कलकी रुसवाई तुझे क्या कम न थी ऐ नंगेख़ल्क़[1]!
उसके कूचेमें 'ज़िया'! तू आज फिर जाने लगा!

मैंने कल पूछा 'ज़िया'से दिल किधरको खो दिया?
उसने कूचेको तेरे बतलाके टप-से रो दिया॥

बरस ऐ अब्र! जितना चाहे तू अब तेरी बारी है।
कभी दिल था तो मैं रो-रोके एक दरिया बहाता था॥

कौनसे ज़ख़्मका खुला टाँका?
आज फिर दिलमें दर्द होता है॥

—इन्तक़ादियात, भा० २

रुसवाइयोंकी अपने मुझे कुछ हविस नहीं।
नासह! मैं क्या करूँ कि मेरा दिलपै बस नहीं॥

राज़ेदिल हैं पूछते और बोलने देते नहीं।
बात मुँहपै आ रही है, लब हिलाना है मना॥

१३ अगस्त १९४९

---

[1] संसारमें बदनाम।

२४

हसन

[ई० स० १७३६--१७८६]

मीर गुलाम 'हसन' मीर गुलाम हुसैन ज़ाहकके पुत्र और ख्वाजा दर्दके शिष्य थे। दिल्लीमे उत्पन्न हुए थे, परन्तु देहलीकी तबाहीके वाद फैज़ावाद नवाव सालारजगकी मुलाजमतमे चले गये थे। जब १७७५मे नवाव आसफ़ुद्दौला सिंहासनारूढ हुए और फैज़ावादको बदलकर लखनऊ राजधानी वनाई तो हसन भी लखनऊ पहुँच गये थे। वही १७७६मे इन्होने समाधि पाई।

हसनकी भाषा अत्यन्त सरल और मधुर है। मालूम होता है कलमसे फूल झड़ रहे हैं। उन्होने गजल, रुबाई, मसनवी, मर्सिया सभी खूब लिखे हैं। मसनवी लिखनेमे तो कमाल किया है। उनकी 'सहरुलवयान' और 'मसनवी मीर हसन' दो मसनवियाँ उर्दूमे अपना जवाब नही रखती। इनकी गज़ले भी 'मीर' और 'सोज'की गजलोंका-सा लुत्फ देती है।

मसनवीका नमूना—

इस मसनवीकी सक्षिप्त कहानी इस प्रकार है कि एक निस्सन्तान बादशाहके राम-राम करके पुत्र हुआ, उसे १३वे वर्षमे एक परी उठाकर ले गई। वहाँ यह शहज़ादा एक और बादशाहजादीसे गुप्त रूपसे मिलने लगा। परीको मालूम हुआ तो उसने क्रोधमे आकर शाहज़ादेको एक बियावान जगलके सूखे कूएँमे कैद कर दिया और ऊपरसे लाख मनका पत्थर रखवा दिया। वादशाहज़ादीको यह सब स्वप्न द्वारा मालूम हो

गया। उसने अपनी सहेली (मन्त्रीकी पुत्री)से रो-रोकर सब हाल बताया तो वह जोगन बनकर उसकी खोजमे निकली —

न सुध-बुधकी ली और न मंगलकी ली।
निकल शहरसे राह जंगलकी ली॥

लिये बीन फिरती थी 'सहरानवर्द'[1]।
तन चाक-चाक और रुख़ ज़र्द-ज़र्द॥

बिछा मिरगछालेको और लेके बीन।
दुज़ानू[2] सम्हलके वोह ज़ुहरा जबीन[3]॥

किदारा बजाने लगी शौक़में।
लगी दस्तोपा मारने शौक़में॥

बँधा उस जगह इस तरहका समाँ।
सबा भी लगी रक़्स[4] करने वहाँ॥

जोगन बनी वज़ीरज़ादी सितार बजा ही रही थी कि एक परीज़ादा आस्मानसे जा रहा था। नीचे उतरकर जोगनको देखा तो बेहोश हो गया। होश आनेपर वज़ीरज़ादीसे बाते करनी चाही तो—

कहा हँसके जोगनने "हर बोल, हर।
जहाँसे तू आया चला जा उधर"॥

धरी उसने काँधेपै जब अपने बीन।
चली लेके अँगड़ाई ज़ुहरा जबीन॥

परीज़ादने तब पकड़ उसका हाथ।
शिताबी बिठा तख़्तपर अपने साथ॥

जब परीज़ादा जोगनको अपने यहाँ ले आया और अपनी प्रेम-अभि-

---

[1]जंगल-जगल; [2]घुटनोके बल; [3]देदीप्यमान मस्तकवाली; [4]नृत्य।

लाषा प्रकट की तो उसने शहज़ादेको अमुक कुएँसे निकाल दिये जानेकी शर्तपर विवाहकी स्वीकृति दे दी। कुएँसे शाहज़ादा निकाल लिया गया और वह अपने साथ उस शहज़ादे और परीज़ादेको लेकर अपने देशमे पहुँची और दोनोंको बागमे छिपाकर बदरेमुनीर शहज़ादीके पास गई और बोली—

तेरा क़ैदी जाकर छुड़ा लाई हूँ।
और इक और बन्धुवा उड़ा लाई हूँ॥

सो एकको जाके लाती हूँ मैं।
हवा दूसरेको बताती हूँ मैं॥

यह सुन शाहज़ादी हँसी खिल-खिला।
कहा क्यों उड़ाती है नजमुलनिसाँ?

यह सुनकर शिताबी गई वोह निगार।
लिया जाके आहिस्ता उनको पुकार॥

छुपाये हुए ला बिठाया वहाँ।
वोह खिलवतका[1] जो था क़दीमी मकाँ॥

ग़रज़ देरतक मिलके रोते रहे।
जुदाईके दाग़ोंको धोते रहे॥

फिर इनके विवाह होते हैं और अपने-अपने देश सकुशल पहुँच जाते हैं। 'हसन'की मसनवीमें भाषाकी सरलताके साथ ही प्रवाह है; ज़बान ऐसी है कि मालूम होता है आज ही लिखी गई है।

हसनकी हिजोका नमूना—

हमने जबसे लिया है याँ इक घर।
दो रूपये के तईं किराये पर॥

---

[1]एकान्तक।

पहले उस घर की ख़ूबी यह पाई ।
आते ही घरमें मुझको तप आई ॥
सीढ़ी इक बाँसकी पुरानी-सी ।
आने-जानेके वास्ते है धरी ॥
घरमें है धूपसे कबाब सभी ।
घरसे निकले न आफ़ताब कभी ॥
क्या कहें किस तरहसे जीते हैं ?
ख़ाक खाते हैं कीच पीते हैं ॥

ग़ज़लोंके कुछ शेर—

उस शोख़के जानेसे अजब हाल है मेरा ।
जैसे कोई भूला हुआ फिरता है कुछ अपना ॥

फिर छेड़ा 'हसन'ने अपना क़िस्सा ।
बस आजकी शब भी सो चुके हम ॥

दिलको खोया है कल जहाँ जाकर ।
जीमें है आज जी भी खो आऊँ ॥

उस बुतकी ज़िन्दगीसे न आज़ाद हो 'हसन' ।
यह बात भी कहीं न ख़ुदाको बुरी लगे ॥

इज़हारे ख़मोशीमें है सौ तरहकी फ़रियाद ।
ज़ाहिरका यह परदा है कि मैं कुछ नहीं कहता ॥

न रहती थीं आहें न थमते थे आँसू ।
'हसन' ! तुझको क्या रात था ग़म किसीका ?

तेरे हमनामको जब कोई पुकारे है कहीं ।
जी धड़क जाता है मेरा कि कहीं तू ही न हो ॥

जानोदिल हैं उदास-से मेरे ।
उठ गया कौन पाससे मेरे ॥

वह जबतक कि ज़ुल्फ़ें सँवारा किया ।
खड़ा उसपै मैं जान वारा किया ॥
अभी दिलको लेकर गया मेरे आह ।
वोह चलता रहा मैं पुकारा किया ॥
क़ुमारेमुहब्बत[1] में बाज़ी सदा ।
वोह जीता किया और मैं हारा किया ॥
किया क़त्ल और जान-बख़्शी भी की ।
हसन उसने अहसाँ दुबारा किया ॥

१४ अगस्त १९४९ ई०

[1] प्रेम-द्यूतक्रीडामें ।

२५

बयान

ख्वाजा अहसन अल्लाखाँ 'बयान' मिर्ज़ा मजहरके शिष्य थे। आप अन्तिम दिनोंमे दिल्लीसे हैदराबाद चले गये थे। जो सलासत व सादगी गजलके लिये जरूरी है, वह बयानके क़लाममे नही पाई जाती।

मसलहत तर्के इश्क़ है, नासेह !
एक यह हमसे हो नहीं सकता ॥

रुसवा अभीसे करती है ऐ चश्मेतर मुझे।
आना है उसकी बज्ममें बारे दिगर[1] मुझे ॥

कहता नहीं मै अर्शपै ऐ नाला ! जा पहुँच।
कानों तलक तो उसके तू ऐ नारसा[2] ! पहुँच ॥

अर्श[3] तक जाती थी, अब लबतक भी आ सकती नहीं।
रहम आता है 'बयाँ' ! अब मुझको अपनी आहपर ॥

साफ़ मुँहपर मै नहीं कहता कि होगा उसके पास।
वर्ना क्या वाक़िफ़ नहीं मै दिल है मेरा जिसके पास ॥

काफ़िर हूँ गर जियादा कुछ इससे आरजू हो।
इक बेख़लल मकाँ हो, बस मै हूँ और तू हो ॥

'बयाँ' कौन है ? अब तलक पूछते हो।
तग़ाफ़ुलके[4] क़ुरबाँ ! तजाहुलके[5] सदक़े ॥

—तारीखे अदबे उर्दूसे

---

[1]दूसरी बार; [2]न पहुँचनेवाले; [3]आस्मान; [4]उपेक्षाके; [5]अपरिचित होनेका ढोंग।

२६

अफ़सोस

मीर शबीरअली 'अफसोस' के पिता मुज़फ़्फ़रखाँ—अन्तिम दिनोंमे देहलीसे नवाब शुजाउद्दौलाकी सरकारमे लखनऊ आ गये थे। लखनऊमे ही अफसोसका विकास हुआ। ये हैदरअली 'हैरां' और मीर 'सोज़' से शायरीमे मशविरा लिया करते थे। सन् १८०९मे मृत्यु हुई।

क्या फ़ायदा जो पूछे तू अहवाले दिल 'अफ़सोस' से।
मुँह देख रो देता है वह पर, बात कुछ कहता नहीं॥

बेताब बहुत हूँ आज यारो!
टुक ले चलो उसके पास मुझको॥

क्या जाने ये आह है कि क्या है?
कुछ आग-सी आई है जबाँपर॥

मंज़िले इश्कतक न पहुँचा आह।
मै तो चलते ही चलते हार गया॥
पाससे उसके सब गये खुरसन्द[1]।
एक 'अफ़सोस' सोगवार गया॥

इन्तक़ादियात, भा० २, पृ० ११३

क़फससे छुटनेकी उम्मीद ही नहीं 'अफसोस'।
हसूल[2] क्या है जो मुजदा[3] बहारका पहुँचा॥

---

[1]प्रसन्न, [2]लाभ; [3]सुख-समाचार।

क्या लिखूँ उसको मैं अहवाल यह कहना क़ासिद !
बेहवासीके सबब ताक़ते तहरीर नहीं ॥

देखते ही उसे हाजिर हुए मर जानेको।
वही अशख़ास जो वाँ आये थे समझानेको ॥

सूरत तुझे हक़ने दी परी-सी।
पर आदमीयत न दी जरी-सी ॥

कुछ बात मुझसे कर नहीं सकते हजार हैफ़।
मुद्दतमें तुम मिले भी तो ग़ैरोंके घर मिले ॥

—निगार जनवरी ५०

२७

लुत्फ़

मिर्ज़ा अली 'लुत्फ' के पिता काज़िमबेगख़ाँ दिल्लीमें नादिरशाहके आक्रमणके बाद आये और शाही दरबारमे वाबिस्ता हो गये।

पासे नामूसे मुहब्बत[1] फ़र्ज़ है परवानावार[2]।
शमअ़सा[3] सोजेशबे हिजराँ[4] ज़बाँपर लाएँ क्या ?

---

[1]मुहब्बतकी इज्ज़तका ध्यान; [2]परवानेकी तरह;
[3]शमअ़की तरह; [4]विरह रात्रिकी व्यथा।

२८

हसरत

मिरज़ा जाफरअली 'हसरत' लखनऊके थे और रायसरूपसिंह 'दीवाना' के शिष्य थे। दो दीवान छोड़े हैं। 'जुरअत' और 'हसन' इन्हीके शिष्य थे। इनका कलाम पाकीजा होता था और जबानकी सफाई और मौजूनीए तरकीबके लिहाजसे खास पायेका।

खुदा हाफ़िज़ हैं क्यों महफ़िलमें उसका नाम आता है।
तड़पनेसे मेरे दिलको अभी आराम आया था॥

बहारें हमको भूलीं, याद है इतना कि गुलशनमें।
गिरेबाँचाक करनेका[1] भी एक हंगाम[2] आया था॥

यह भी इक सितम था कि ख़्वाबमें मुझे अपनी शक्ल दिखा गये।
कभी नींद बरसोंमें आई थी सो वे इस तरहसे जगा गये*॥

यह शेर तो उनका ज़र्बुल मिसल हो गया है—

तुम्हें ग़ैरोंसे कब फ़ुरसत हम अपने ग़मसे कब ख़ाली।
चलो बस हो चुका मिलना, न तुम खाली न हम ख़ाली॥

—इन्तक़ादियात, भा० २

---

[1]कपड़े फाडनेका; [2]समय।

*मुझको न इन्तजारमें नींद आये उम्रभर।
आनेका वादा कर गये आये जो ख़्वाबमें॥

—ग़ालिब

मस्त मैं तो हो गया तेरी निगहसे साक़िया !
अब नहीं मुझमें रहा है और पैमानेका होश ॥

आख़िर तेरे ग़ममें मर गये हम ।
भरना था जो दुख सो भर गये हम ॥

किस-किस तरहसे हमने किया अपना जी निसार[1] ।
लेकिन गईं न दिलसे तेरे बदगुमानियाँ ॥

जो बेताबी दिलेउश्शाक़की[2] बातिल[3] समझते थे ।
मेरे सीनेपै आकर इन दिनों वे हाथ धर देखें ॥

हुए हम बुतके बन्दे बिरहमनसे राह[4] करते हैं ।
हरमके रहनेवालो, तुमसे इश्क़ अल्लाह करते हैं ॥

दश्तमें कर चलनेकी तदबीर होना हो-सो-हो ।
तोड़ दीवाने तू अब जंजीर होना हो-सो-हो ॥

मौत आजाये कहीं इस दिले शैदाईको ।
रोज समझाये कहाँतक कोई सौदाईको[5] ॥

आती है बात-बातपर हरदम ।
रंजिशें दरम्यान क्या कीजे ?

न जाने क्या तुझे उल्फ़त थी गुलसे ऐ बुलबुल !
कि अपने जीसे गई, पर चमनसे तू न गई ॥

पटकने दे मुझे सर उसके आस्तानेसे ।
ख़बर करूँ हूँ मैं अपनी इसी बहानेसे ॥

---

[1]न्यौछावर; [2]आशिकके दिलकी; [3]झूठी; [4]मेलजोल; [5]पागलको ।

सुराग़[1] पूछूँ मैं क्या अश्को-आहका दिलसे।
कि इस दयारसे हो कितने क़ाफ़िले निकले॥

जिगरके ज़ख़्मोंको जाना था भर चले 'हसरत'।
ख़राशे नाख़ुने ग़मसे[2] वोह सब छिले निकले॥

दिलको ले आये थे उस कूचेसे होकर हम ख़फ़ा।
पर दिलोजाँ हमपै अब मिलकर बला लाये बहुत॥

रोना नहीं जो यारो अपना दयार छूटा।
मरना है यह कि हमसे अब कूए यार छूटा॥
गर रंजे राह खींचा तो कुछ अलम नही है।
है यह अलम कि हमसे वोह रहगुज़ार छूटा॥

—निगार, अगस्त १९४६

तेरा तो तब एतबार कीजे।
जब होवे कुछ एतबार अपना॥

ऐ दिल अगर तड़पना तेरा यही रहेगा।
काहेको तू जियेगा, काहेको जी रहेगा॥

भूलता ही नहीं, वोह दिलसे उसे।
हमने सौ-सौ तरह भुला देखा॥

कल किसीने जो कहा मरता है आशिक़ तेरा।
हँसके ग़ैरोंकी तरफ़, कहने लगा "और सुना?"॥

देखते ही शमअ़को जाता है परवानेका होश।
आह! पर रहता है क्योंकर उसको जल जानेका होश?

—निगार, जुलाई १९४६

---

[1]खोज। [2]ग़मरूपी हाथोके कुरेदनेसे।

२६

हिदायत

हिदायत अल्लाखाँ 'हिदायत' भी 'दर्द'के शिष्य थे।

जी तो करता नहीं कूचेसे तेरे जानेको।
गर तेरी इसमें ख़ुशी है तो चला जाता हूँ॥

भला बता तो मेरी जान! कुछ 'हिदायत'ने।
तुम्हारे जौरसे शिकवा कभी किया होगा?
मगर यही ना कि बेअख़्तियार होके कभी।
कुछ और बस न चला होगा, रो दिया होगा॥

—इन्तक़ादियात, भा० २

नातवानीका[1] भी अहसाँ है मिरी गर्दनपर।
कि तेरे पाँवसे सर मुझको उठाने न दिया॥

वोह क्या करे कि मुहब्बतका मक़्तज़ा[2] है यही।
वगर्ना फ़ायदा उसको मेरे सतानेसे?

शबेहिजरॉमें तेरे, सुबहके होते-होते।
इस्तख़्वाँ[3] शमअ़सिफ़त[4] बह गये रोते-रोते॥

—दीवानेदर्द

---

[1]निर्बलताका, [2]तक़ाज़ा; [3]हड्डियाँ, [4]मोमबत्तीकी तरह।

३०

फ़िराक़

हकीम सना उल्लाह 'फ़िराक' भी दर्दके मशहूर शिष्य थे ।

दिल थामता कि चश्मपर करता तेरी निगाह ।
सागरको देखता कि मैं शीशा सम्हालता ।।

गो दर्देसरए नासेह ! है गर्दिशे पैमाना ।
पर हमको तो सन्दल है ख़ाकेदरे मयख़ाना ।।

असीरोंकी क़सम तुझको, सबा ! सच कह कि गुलशनमें ।
कोई उन हमनवाओंमें[1] मुझे भी याद करता है ?

—दीवानेदर्द

---

[1]साथियोंमे ।

३१

हज़ीं

मीर मुहम्मद 'हज़ी' मज़हरके शिष्य थे और दिल्ली छोडकर अज़ीमाबादमे नवाब साहबके पास चले गये थे।

हाल ऐ क़ासिद ! मेरा जो कुछ कि तू जाता है देख।
इस तरहसे उससे मत कहियो कि वह महजूब[1] हो ॥

कुछ कहा शायद उसने क़ासिदसे।
दिलमें मेरे थोह इज़्तराब[2] नहीं ॥

हर नसीहत मैं तेरी मानूँगा ऐ नासेह ! पर एक।
दिलबरोंके देखनेमें जी मेरा नाचार है ॥

—तारीख़े अदबे उर्दू

१५ अगस्त १९४९ ई०

---

[1]शर्मिन्दा; [2]बेचैनी।

३२

मुसहफ़ी

गुलाम हमदानी 'मुसहफी'के पिता शेख वलीमुहम्मद अमरोहेके रहनेवाले थे; किन्तु मुसहफी युवावस्थामें ही शाहआलम बादशाहके शासन-कालमे दिल्ली आ गये थे। बचपनसे ही शिक्षाकी ओर रुचि थी और शेरोसुखनका स्वाभाविक शौक़ था। अतः मुसहफ़ी दिल्ली-जैसे शायरीके केन्द्रमे आकर अभ्यास करते-करते अच्छे शायरोंमें गिने जाने लगे। यह मीर, दर्द, सौदा और सोज जैसे वयोवृद्ध ख्यातिप्राप्त अनुभवी शायरोंका युग था। अतः मुसहफीपर भी इन सबकी छाप पड़ी। ये भी देहलवी वज़ह-क़तहके सोलह आने पाबन्द हो गये। इनकी शायरीमें भी उक्त उस्तादोंका रंग झलकने लगा; परन्तु इन दिनों मुग़लशासनका सूर्य अस्त हो रहा था और दिल्ली उजडती जा रही थी। धीरे-धीरे मीर, सौदा, सोज वग़ैरह जैसे बाकमाल उस्ताद दिल्ली छोड़ चुके थे। केवल 'दर्द' अपने पहलूमे दर्द छुपाये पड़े रह गये थे। जब अहले देहली और ख्याति-प्राप्त शायर दिल्ली छोड़नेपर लाचार हो गये, तब मुसहफी तो आखिर परदेशी थे, कबतक टिकते और क्या खाकर दिल्लीमें रहते ? मजबूरन इन्हे भी दिल्ली छोडनी पड़ी।

मुसहफी दिल्लीसे टाण्डा (ज़िला फैज़ाबाद) गये और वहाँ 'क़ायम' चान्दपुरीके अनुग्रहसे नवाब मुहम्मदयारखाँके दरबारमें मुलाज़िम हुए; किन्तु नवाबी शासनके पतनके बाद इन्हे टाण्डा भी छोड़ना पड़ा। टाण्डेसे लखनऊ गये, परन्तु वहाँ भी न जम सके और दिल्ली वापिस चले आये।

यहाँ भी दुर्भाग्यने साथ न छोड़ा और इन्हें फिर दिल्ली छोड़कर लखनऊ जाना पड़ा। सौभाग्यसे इस बार लखनऊमे मिर्ज़ा सुलेमान शिकोहकी सरकारमें इनकी पहुँच हो गई और धीरे-धीरे इनकी धाक बैठ गई। लखनऊमे इनके अनेक शिष्य हो गये और मिर्ज़ा सुलेमान भी अपना कलाम दुरुस्त कराने लगे। किन्तु—

पिनहाँ था दामेसख़्त क़रीब आशियानेके,
उड़ने न पाये थे कि गिरफ़्तार हम हुए॥

'इंशा' और 'जुरअत'के पहुँचनेपर फिर इन्हे दुर्भाग्यने आ घेरा। उनकी शोख़बयानी, चुलबुली तबियत, मसखरे स्वभाव और भाण्डपनेके सामने इनकी शायरी दबकर रह गई। ढोल-ताशोके आगे बुलबुलके नग्मे किसको सुनाई देते? बक़ौल 'अकबर'—

तुमसे उस्तादोंमें मेरी शायरी बेकार है।
साथ सारंगीका बुलबुलके लिये दुश्वार है॥

लाचार मुसहफ़ीको भी अपना रंग बदलना पड़ा, और इस पिंजरेके सुग्गेको वह सब बोल बोलने पड़े जो पिंजरेवाला और लखनऊका बहुमत चाहता था। जो मुसहफी दिल्लीमे इस तरहके नग़मये पुरदर्द छेड़ता था—

तेरे कूचे इस बहाने मुझे दिनसे रात करना।
कभी इससे बात करना, कभी उससे बात करना॥

कभू तकके दरको खड़े रहे, कभी आह भरके चले गये।
तेरे कूचेमें अगर आये भी तो ठहर-ठहरके चले गये॥

कुंजे क़फ़समे हम तो रहे 'मुसहफ़ी' असीर।
फ़स्लेबहार बाग़में धूमें मचा गई॥

वही मुसहफ़ी लखनवी साजपर इस तरह अलापने लगा—

आया लिये हुए जो वह कल हाथमें छड़ी।
आते ही जड़ दी पहली मुलाकातमें छड़ी॥

आँखोंमें उसकी मैंने जो तसवीर खींच ली।
सुरमेने उसकी चश्मके शमशीर खींच ली॥

जुम्बिशेलबने[1] तेरी, मेरी जबाँ कर दी बन्द।
तूने कुछ पढ़के अजब मुझपै यह मन्तर मारा॥

पानी भरे हैं यारो! वाँ करमजी दुशाला।
लुंगीकी सज दिखाकर सकनीने[2] मार डाला॥
काँधेपै मशक लेकर जब क़दको खम करे है।
काफ़िरका नशयेहुस्न[3] हो जाये है दुवाला॥
दरियाएक़दमें क्योंकर हम नीम कद न डूबें।
लुंगीके रंगमें जब वाँ ताकमर[4] हो लाला॥

मुसहफीने अपना असली शायराना भेष छोडकर यह बहुरुपियेका स्वाँग क्यों भरा? दिल्लीके दाखिली रंगमे सरावोर होते हुए भी उसने खारिजी रंगसे होली क्यो खेली? इस 'क्यों'का सीधा-सादा जवाब यही है कि दिल्ली उजड़नेके कारण, भरण-पोषणके लिये इन्हे लखनऊ जाना पड़ा, और लखनऊका वातावरण ही उस समय दिल्लीसे विपरीत था। वहाँके नवाब, रईस, ओहदेदार सभी रंगरेलियोमे मस्त थे। बाज़ारी औरतों और छोकरोपर फिदा थे। इसलिये लखनऊकी शायरी भी चूमा-चाटी, कंघी-चोटी और बाज़ारू इश्ककी तरफ मुड गई। मुसहफी इस तेज बहावमे पाँव जमाये न रह सके और थककर वे भी बह गये। देश-

---

[1]ओष्ठ-कम्पनने, [2]सक्केकी स्त्रीने, [3]सौन्दर्य्यमद, [4]कमर तक।

कालके वातावरणके समक्ष हर कोई नही ठहर सकता। तेज बहावमें पानी काटकर सीधे जानेवाले कितने होते है ?

उस समयकी बात जाने दीजिये, वह तो युग ही ऐसा था। वर्त्तमान उन्नतिशील युगमे भी फिल्म-जगतमें क्या हो रहा है ? जिस प्रकारके अश्लील, कामुक, घिनौने, बेहूदा और ऊल-जुलूल चित्र निर्माण हो रहे है, सभी जानते हैं। अपना राज्य है, सदाचारी, विवेकशील और सयमी सरकार शासक हैं। जनता भी काफी शिक्षित और सुरुचिपूर्ण है, फिर भी फिल्मोंका ढर्रा बदलता नही।

वही रफ़्तार बेढंगी जो पहले थी, सो अब भी है।

एक भी पूँजीपतिमे यह साहस नही कि इस प्रचलित रुचिके विपरीत चित्रनिर्माणमे पूँजी लगा सके। मुशी प्रेमचन्दके बाद एक भी ऐसा लेखक नही जो चित्रव्यवसाइयोके संकेतपर नाचनेको प्रस्तुत न हो। और ऐक्टर-ऐक्ट्रेसोंकी तो बिसात ही क्या ? नामी-से-नामी नायक और नायिका भी कठपुतलीकी तरह निर्जीव बने हुए है। और तो और, सेन्सर भी आँख मूँदकर इन चित्रोंको पास करता रहता है।

फिर वह तो वह युग था जब शायर अपनी आत्मा बेचकर नवाबो-रईसोंकी कृपा बनाये रखनेके लिये एक दूसरेको नीचा दिखानेका प्रयत्न करते थे। जुरअत और इंशा जब लखनऊ पहुँच गये तो मुसहफ़ीसे इनकी छेड़-छाड़ चलने लगी। एक रोज मुसहफीने मिर्ज़ा सुलेमान शिकोहके जल्सेमे एक गजल पढी जिसका मक़्ता यह था--

था 'मुसहफ़ी' यह माइलेगिरियाँ[1] कि पसअजमर्ग[2]।
थी उसकी धरी चश्मपै ताबूतमें[3] उँगली॥

'मुसहफी' गज़ल पढ़कर चले गये तो ईर्षालुओंने इस गजलकी

---

[1]रोता हुआ; [2]मरनेके बाद; [3]अर्थीमे।

ऐसी अश्लील पैरोड़ी कही कि पढने-सुननेमे भी हया आती है ।

हाँ मक़्ता अलबत्ता अश्लील नही है—

था मुसहफ़ी काना, जो छुपानेको पसअज़मर्ग ।
रक्खे हुए था आँखपै ताबूतमें उँगली ॥

मुसहफ़ीको जब इस पैरोड़ीका इल्म हुआ तो चराग़पा हो गये और ९ अशआ़रकी एक गज़ल कही । जिसके तीन शेर ये है—

मुद्दतसे हूँ मैं सरख़ुशे सहबायेशायरी[1] ।
नादाँ है जिसको मुझसे है दावाएशायरी ॥

फबता नहीं है बज़्मेअमीरानेदहरमें[2] ।
शायरको मेरे सामने ग़ोग़ाए शायरी ॥

इक तुरफ़ा[3] ख़रसे[4] काम पड़ा है मुझे कि हाय !
समझे है आपको वोह मसीहाये शायरी[5] ॥

धीरे-धीरे चख़-चख़ और छेड़-छाड़ बढती गई। अपना-अपना पाण्डित्य प्रदर्शन करनेके लिये कठिन-से-कठिन और विचित्र-से-विचित्र क़ाफ़िये रदीफोमे गज़ल कहने लगे और उन्हीमे एक दूसरेपर फब्तियाँ भी कसने लगे । यहाँ हम इस तरहकी गज़लोंके बतौर नमूना एक-एक दो-दो शेर दे रहे है —

जुरअत—तेरे दौरमें हो मयकश कोई क्या, फ़लक ! कि तेरी ।
वोह है शक्ल जूँ धरा हो क़दहे शराब[6] उलटा ॥

तलब उससे कल जो मयकी तो भरा हुआ ज़मींपर ।
मुझे शोखने दिखाकर क़दहे शराब, उलटा ॥

---

[1]कविताके नशेमे चूर, [2]ससारके अमीरोकी महफिलमे;
[3]अजीब, [4]गधेसे; [5]शायरीका अवतार; [6]शराबका प्याला ।

इंशा— मुझे क्यों न आवे साक़ी! नजर आफ़ताब उलटा।
कि पड़ा है आज ख़ुममें[1] क़दहेशराब उलटा॥
अभी झड़ लगावे बारिश, कोई मस्त भरके नारा
जो ज़मींपै फेंक मारे क़दहेशराब उलटा॥

मुसहफ़ी—मेरे हालपर मुग़ॉने[2] यह करम किया कि सुन-सुन।
मेरे पीके सरपै रक्खा क़दहेशराब उलटा॥

जुरअत—किसी नुस्ख़ेमें पढ़े था, वोह मुक़ामे दिलनवाज़ी[3]।
मुझे आते जूँ ही देखा, वरक़े किताब उलटा॥

इंशा— ग़ज़ल और क़ाफ़ियोंमें न कहे सो क्योंकि 'इंशा'।
कि हवाने ख़ुदबख़ुद आ वरक़े किताब उलटा॥

मुसहफ़ी—सरेलोह[4] उसकी सूरत कहीं लिख गया था 'मानी'[5]।
उसे देखकर न मैंने वरक़े किताब उलटा॥

जुरअत—मेरे सौ सवाल सुनकर वोह रहा ख़मोश बैठा।
नहीं यह भी कहनेकी जा[6] कि मिला जवाब उलटा॥

इंशा— अजब उलटे मुल्क के हैं अजी आप भी कि तुमसे
कभी बात की जो सीधी तो मिला जवाब उलटा॥

मुसहफ़ी— मैं लिखा है ख़त तो क़ासिद पै[7] यह होगा मुझपै अहसाँ।
इन्हीं पॉव फिरके तू आ जो मिले जवाब उलटा॥

इंशा— यह अजीब माजरा है कि बरोज़े ईदे क़ुरबाँ।
वह ज़िबह भी करे है वही ले सवाब[8] उलटा॥

---

[1]घड़ेमें; [2]मालिक मधुशालाने; [3]प्रेम करनेका ढंग;
[4]चक्रपर; [5]एक प्रसिद्ध चित्रकार; [6]स्थान;
[7]परन्तु; [8]पुण्य।

मुसहफी— मैं अजब यह रस्म देखी मुझे रोजे ईदे क़ुर्बां।
वही जिबह भी करे है वही ले सवाब उलटा ॥

इशा— तोड़ूँगा ख़ुमे बादयेअंगूरकी[1] गरदन।
रख दूँगा वहाँ काटके इक हूरकी गरदन ॥

मुसहफी— सर मुश्कका[2] है तेरा तो काफूरकी गरदन।
ने मुएपरी[3] ऐसे न यह हूरकी गरदन ॥

इशा— तब आलमेमस्तीका मजा है कि पड़ो हो।
गरदनपै मिरी उस बुते मख़मूरकी[4] गरदन ॥

मुसहफी— इक हाथमें गरदन हो सुराहीकी मजा है।
और दूसरेमें साक़िये मख़मूरकी गरदन ॥

इशा— परतौसे चाँदनीके है सहने बाग ठंडा।
फूलोंकी सेजपर आ, करदे चिराग़ ठंडा ॥

मुसहफी— पीरीसे हो गया यूँ इस दिलका दाग़ ठंडा ॥
जिस तरह सुबह हुइये करदे चिराग ठंडा ॥

इशा— मयकी सुराही ऐसी ला बर्फ़में लगाकर।
जिसके धुएँसे होवे साक़ी ! दिमाग ठंडा ॥

मुसहफी— सरगरमेसैरे[5] गुलशन क्या खाक हो कि अपना।
नज़लेसे हो रहा है आपही दिमाग़ ठंडा ॥

यही गज़ले फिर धीरे-धीरे हिजोका रूप लेने लगी। गरदनवाली गज़लमे मगरूरकी गरदन बँधते-बँधते लंगूरकी गरदन बँधन लगी। एक दूसरेकी गज़लोमे दोष निकाले जाने लगे। धीरे-धीरे यही गज़ले प्रति-

---

[1]अंगूरकी शराबका घडा; [2]कस्तूरीका; [3]परीके बाल, [4]मदोन्मत्तकी, [5]सैर करनेमे व्यस्त।

द्वन्द्विताका थपेड़ा खाकर हिजोका रूप धारण कर बैठी। मुसहफ़ी बेचारा वयोवृद्ध और शुद्ध कलाकार इंशा–जैसे मसखरे और शोख़ तबियतके सामने कबतक ठहरता ? मौलाना आज़ादके शब्दोंमे––

"इंशाने बहुत-सी जटिल और फ़हाश हिजो ऐसी कही कि जिनका एक-एक मिसरा हज़ार कमची और चाबुकका तड़ाका था।"[1]

यह पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता और हिजोबाजी दरबारतक ही सीमित न रही, अपितु यह नवाबी साँड़ बाज़ारोंमे भी घूम-घूमकर लड़ने लगे। पहले मुसहफ़ीके शिष्य शोहदोंका स्वाँग बनाकर बाज़ारोमें इशाकी हिजो कहते हुए उनके घर पहुँचे। फिर इंशाने इसके जवाबमे एक बारात निकाली। कुछ लोग हाथियोपर थे, कुछ डडे बजाते हुए हिजो कह रहे थे, कुछके हाथमे गुड्डे-गुड़िया थे। दोनोको लडाते जाते थे और यह पढ़ते जाते थे––

स्वॉग नया लाया है देखना चर्ख़ेकुहन।
लड़ते हुए आये है मुसहफ़ी और मुसहफ़न[2]॥

इन मार्कोमे मिर्ज़ा सुलेमान शिकोहने और अधिकांश अमीरोंने इशाका साथ दिया, क्योंकि इशा अपनी रगीन मिज़ाजी और लखनवी रगमे सराबोर होनेके कारण हर दिल अज़ीज़ बने हुए थे। एक बार तो इन लोगोंने शहर कोतवालसे कहकर मुसहफ़ीके जवाबी स्वांगको रूकवा भी दिया था। इस हरकतसे मुसहफीको जो आघात पहुँचा, वह उन्होंने इस तरह व्यक्त किया है––

जाता हूँ तेरे दरसे कि तौक़ीर[3] नही याँ।
कुछ इसके सिवा अब मेरी तदबीर नहीं याँ॥

---

[1]आबेहयात, पृ० ३२४ [2]मुसहफीकी स्त्री,
[3]इज़्ज़त।

ऐ 'मुसहफ़ी' ! बेलुत्फ़ है इस शहरमें रहना ।
सच है कि कुछ इंसानकी तौक़ीर नहीं याँ ॥

किन्तु जबर्दस्त मारे और रोने न दे। अतः मुसहफीने तुरन्त मिर्ज़ा शिकोहकी खुशामदमें ४१ शेरोंका एक कसीदा पढ़ा। जिसमे अपनेको अत्यन्त तुच्छ और निरीह बताते हुए मिर्ज़ा शिकोहको आस्मानपर बिठाने-का प्रयत्न किया है।

मुसहफी उर्दू-शायरीके दुराहेपर खड़े हुए हैं। वे दिल्ली और लखनऊकी दो भिन्न धाराओंके अकेले प्रतीक हैं। एक तरफ उन्होंने मीर, सौदाका अन्तिम युग देखा था। दूसरी ओर जुरअत और इंशाके मार्कोंमे हिस्सा ले रहे थे। उनके कलाममे जहाँ मीर, सोज़, दर्द और सौदाकी व्यथा मिलती है, वही इशा और जुरअतकी रंगीनियाँ भी।

"मुसहफ़ीका यह दुर्भाग्य था कि उन्हे इंशा और जुरअत जैसे भाँड़ोसे पाला पडा। जहाँतक शायरी और उसकी फितरतका सवाल है, मुसहफ़ी और इशामे कोई मुनासबत नही।"[१]

"मुसहफीके कलाममे उस शोहदेपनका शायबा बहुत कम है, जिसकी जुरअत वगैरहके यहाँ बहुतायत है। इनकी शायरी खालिस शायरी है। इनके अन्दर जितनी नज़ाकते और लताफ़ते और जितनी रगीनियाँ मिलती है, उनकी ज़बान और तर्ज़ेअदामे जो सजावट और तरहदारी होती है, वह सब उनके ज़ौकेशायरी और मुतायलेका नतीजा है।....मुसहफी उर्दूके पहले शायर है, जिन्होंने गज़लके अशआरमें रंग और फ़िजाका अहसास पैदा किया।"[२]

"मुसहफीके नग़मे अबसे पौने दो सौ बरस पहले हिन्दुस्तानकी फ़िज़ामे

---

[१]तनक़ीदी हाशिये, पृ० १७८

[२]तनकीदी हाशिये, पृ० १९३-१९४

गूँजते थे; पहले दिल्लीसे फिर लखनऊ से। इन्ही नग़मोंकी नरम आँच 'आतिश' व दीगर शागिर्दानेमुसहफी-ओ-आतिशकी शोलानवाइयाँ बन गईं। मुसहफीके नग्मोंकी पखड़ियोंने वोह दाग बेल डाली कि नासिख और खान्दानेनासिखतक शायरोंने उनसे फूल और कलियाँ चुनकर अपने दामन भर लिये। 'अनीस'के मरसियो, सलामों और रुबाइयोंमे ज़बान जिस तरह साँचेमे ढली हुई है, उनके मिसरोंकी नरम रवी, बयानकी रगीनी और निखार हमे मुसहफीकी याद दिलाते है। 'शाद' अजीमाबादी-के बहुतसे अशआर और मुतअद्दद गज़ले, सूबे बिहारके वे शायर जो वहाँके मजाक़ेसुखनके नुमाइन्दे कहे जा सकते है, सब हमे इसी रगे तबीयत, इसी जमालयाती मिजाजकी याद दिलाते है, जिसकी पहली रगारग झलकियाँ मुसहफीने दिखाई थी। 'अमीर' और उनके शागिर्द और शागिर्दोंके शागिर्द तो खान्दाने मुसहफीसे मुत्तलिक है, अगर्चे कभी ज्यादा कभी कम।"[1]

"मीर और मुसहफीमे वही फ़र्क है जो दोपहर और गरूबेआफताबके वक़्तमे पाया जाता है। जिस तरह शामको अफताबमे सातों रग झलकने लगते है, उसी तरह रगीनफिज़ामे वह खारजीयत निखरती और सँवरती है, जिसकी झलक मुसहफीकी शायरीमे मिलती है। अगर हम संगीतके इस्तआरेको काममें लाये तो यूँ कह सकते है कि मुसहफीके नग़मोमे वही दिलफरेब कैफियत पैदा हो गई है, जो आवाजमे पत्ती लग जानेसे पैदा होती है।"[2]

"बाज ज़मीनोंमे 'इशा' और 'मुसहफी'की गजले है, मगर इशाकी शोख़ी और गरमागरमी इतनी बेपनाह चीज है कि 'मुसहफी' दब जाता है; लेकिन यह रग मुसहफीके शायानेशान भी न था, इसलिये वह इंशाकी तरह खुल खेलनेसे माज़ूर था। 'गालिब' और 'अनीस' मामूली

---

[1]अन्दाजे, पृ० ८९; [2]अन्दाज़े, पृ० ३९-४०

लोग न थे; लेकिन अनीस, गालिबके अन्दाजमे एक गज़ल भी नही कह सकते थे, और न गालिब अनीसके अन्दाजमे मरसिये कह सकते थे। इनमेंसे कोई एक दूसरेका रग उडाना चाहता तो मुँहकी खाता। गज़ल ही को ले लीजिये। 'गालिब' जराफत, शोख़ी, और तंजके बादशाह हैं; लेकिन 'दाग'के चंचल रंगमे 'गालिब'से भी गजल न होती और 'दाग'से 'गालिब'की शोख़ी न निभती। इसलिये अगर 'मुसहफी' वोह शोख़ी व तर्रारी न दिखा सके जो 'इंशा'के लिये मखसूस थी, तो हम यह नही कह सकते कि 'मुसहफी' किसी तरह भी 'इंशा'से कम थे। यह बात याद रहे कि बडे-से-बडा शायर इसलिये वड़ा नही है कि वह अपने रगमें लासानी है या निहायत कामयाव है; बल्कि इसलिये भी बड़ा है कि वह दूसरेके रगमे कहनेसे माजूर है। हकीकी शायरीमें कुछ माजूरियाँ भी शामिल होती हैं। शायर बहरूपिया नही होता। 'इशा' और 'मुसहफी'की जो हमतरह गजले मिलती है और जिनमे 'इंशा' और 'मुसहफी'ने अपने-अपने रगको कामयाबीसे निभाया है, उन्हे देखकर यह कहना पडता है कि 'इशा'की गजले अपनी जगहपर है और मुसहफ़ीकी अपनी जगहपर। हरचन्द कि 'मुसहफी'के कलाममें तरन्नुम, सलासत और रंगीनी सब कुछ है और जबानके मामलेमे भी 'मुसहफी'को 'इंशा'-पर तफ़व्वुक हासिल है और मानवियत (अर्थकी गहराई) मे तो वोह इंशासे कोसों आगे है, लेकिन इसको क्या कहा जाय कि सतही बल्कि बाज़ारी जज्बात भी ज़ोरेबयान और जोशेबयानसे निखर आते हैं और यही एक आँचकी कसर 'मुसहफी'के बयानको पूरी तरह निखरने नही देती। बात यह है कि 'मुसहफी' और 'इशा'की उन ग़ज़लोंका एक साथ फ़ैसला करना ऐसा ही है, जैसा कुदरती फूलों और आतिशबाज़ीके फूलोंका मुकाबिला करना। इंशाकी शायरी हमारे वजदान (जाननेकी शक्ति)की ज़ाहिरी सतहको ले उडती है, और हममें मुत्तासिर (प्रभावित) होनेकी सलाहियत ही नही रह जाती; लेकिन इस

असरसे बचकर हम अपने दिलकी धड़कनोको इशा और मुसहफीकी हमतरह गजलोसे हमआहंग करने (सुर मिलाने)की कोशिश करें तो 'इंशा' साजेबेआहग (बेसुरा साज) होकर रह जायगा और मुसहफी साजे ब-आहग (सुर मिला हुआ साज) साबित होगा। इशा हमारे तखैय्युली समाअ़त (कल्पना रूपी कानो)को तशफ़्फी (सन्तोष) नही बख़्शता और मुसहफी सामअनवाजी करता (मधुर कविता सुनाता) है।"[1]

"बहरहाल लखनऊकी ज़बान वजह करनेमे मुसहफीका खास हिस्सा है। मुसहफी एक खास बातमे तमाम उस्तादोंसे बढ़े हुए है। यानी जो सफाई और रवानी (प्रवाह) उनके कलाममे है, वह मीर, सौदा, जुरअत और इशा किसीके कलाममे नही पाई जाती।"[2]

नियाज फ़तहपुरीके शब्दोमे—"मुसहफी अपनी हमागीर तबियतके लिहाज़से सौदा थे; मगर तगज़्ज़ुलमे यकीनन सौदासे बुलन्द मर्तबा रखते थे। मुश्किल बहरोमे बगैर किसी तकल्लुफके बहतरीन अशआर निकालना उनकी खसूसियत थी; और पुरगोई (अधिक कहने)का यह आलम था कि बावजूद हजारो गजले फरोख्त कर देनेके आठ दीवान अपने बाद छोड गये है। माना कि हुकूमतेवक़्त (तात्कालीन शासकों)ने इनकी कद्र न की, लेकिन लखनऊकी शायरी हमेशा इनकी ज़ेरबारे अहसान रहेगी, क्योंकि बादके जितने नामवर शायर हुए है, वे सब मुसहफीके शागिर्द या शागिर्दोके शागिर्द थे।"[3]

मुसहफी ७६ वर्षकी आयुमे समाधिको प्राप्त हुए।

---

[1] अन्दाज़े, पृ० ७४-७६

[2] अन्दाज़े, पृ० ८७

[3] इन्तकादियात भा० २, पृ० ११८

देख उसको इक आह हमने करली ।
हसरतसे निगाह हमने करली ॥
क्या जानें कोई कि घरमें बैठे ।
उस शोख़से राह हमने करली ।
दी ज़ब्तमें जबकि 'मुसहफ़ी' जान ।
शर्म उसकी गवाह हमने करली ॥

कभू तकके दरको खड़े रहे, कभू आह भरके चले गये ।
तेरे कूचेमें जो हम आये भी तो ठहर-ठहरके चले गये[1] ॥

हम तो उस कूचेमें घबराके चले आते हैं ।
दो क़दम जाते है, फिर जाके चले आते हैं ॥
वोह जो मिलता नहीं, हम उसकी गलीमें दिलको ।
दरोदीवारसे बहलाके चले आते हैं ॥

खींचकर तेग यार आया हैं ।
इस घड़ी सर झुका दिये ही बने[2] ॥
यारका सुबहपर है वादये वस्ल ।
एक शब और भी जिये ही बने ॥

---

[1] होगा किसू दीवारके सायेमें पड़ा 'मीर' ।
क्या काम मुहब्बतसे उस आरामतलबको ॥
कहता था किसीसे कुछ, तकता था किसीका मुँह ।
कल 'मीर' खड़ा था याँ, सच है कि दीवाना था ॥

[2] अभी हूँ मुन्तज़िर जाती है चश्मेशौक़ हर जानिब ।
बुलन्द उस तेग़को होने तो दो, सर भी झुका लूँगा ॥

अब तो इस दर्दे दिलकी ताब नहीं।
'मुसहफ़ी' कुछ दवा किये ही बने॥

ख़्वाब था, या ख़याल था, क्या था?
हिज्र था, या विसाल था, क्या था?
जिसको हम रोजे हिज्र समझे थे।
माह था या वो साल था, क्या था?
'मुसहफी' अब जो चुप तू बैठा था।
क्या तुझे कुछ मलाल था, क्या था?

यादे अय्याम बेक़रारिये दिल।
वह भी यारब! अजब जमाना था॥

हम समझे थे जिसको 'मुसहफ़ी'! यार।
वह ख़ाना ख़राब कुछ न निकला॥

प्यार तो आया था मेरे जीमें रात।
पर मैं तेरी वजहसे डरकर[1] गया॥

चली भी जा जरसे गुंचाकी सदा[2] पै नसीम!
कहीं तो काफ़िलये नौ बहार ठहरेगा॥

हादसे[3] होते है ज़मानेमें।
इस क़दर इनक़लाब किस दिन था?[4]

---

[1]डर गया काफी था यहाँ 'कर' व्यर्थ है, परन्तु उन दिनों यह जायज था।

[2]कलीके चटखनेकी आवाज। [3]घटनाएँ;

[4]मसाइब और थे पर दिलका जाना।
अजब इक सानहा-सा हो गया है॥ —मीर

भटका फिरा है तेरी दिल इक अदाका मारा।
कह किस तरफ़को जाये अब यह ख़ुदाका मारा ?

जुम्बिशेलबने[1] तिरी मेरी ज़बॉ करदी बन्द।
तूने कुछ पढ़के अजब मुझपै यह मन्तर मारा॥

'मुसहफी' कहते हैं राहेइश्कमें मारा पड़ा।
कौन जाने क्या हुई इस बेवतनकी सरगुजिश्त[2]॥

क्या यारके दामनकी खबर पूछो हो हमसे ?
यॉ हाथसे अपना ही गिरेबान गया था॥

शमये शबेफ़िराक बने हम तो 'मुसहफ़ी'।
हम दिलजलोंको इश्ककी महफिलसे क्या ग़रज़ ?

वही ठोकर है और वही अन्दाज़।
अपनी चालोंसे तू न आया बाज़॥

जिस बयाबाने खतरनाकमें अपना है गुज़र।
'मुसहफी' क़ाफिले उस राहमें कम निकले हैं॥

बिन देखे जिसको पलमें आँखें भर आइयॉ हों।
क्या क़हर है जो उससे बरसों जुदाइयाँ हों॥

एक दिन रोके निकाली थी मैं वॉ कुल्फ़तेदिल[3]।
आजतक दामनेसहरा है गुबारआलूदा[4]॥

मैं तेरे वास्ते सर पटकूँ हूँ दीवारोंसे।
चैन किस तरह तुझे खानाख़राब आता है॥

---

[1]ओष्ठ-कम्पनने; [2]हालत।
[3]दिलकी भड़ास; [4]धूल-धूसरित

दामनकी एक झपकने मदहोश कर दिया है।
मिसले चिराग़ हमको ख़ामोश कर दिया है॥

तुम रात वादा करके जो हमसे चले गये।
फिर तबसे ख़्वाबमें भी न आये, भले गये॥

पुकारता है तुझे 'मुसहफ़ी' जवाब तो दे।
खड़ा रहे यह तेरे आस्ताँपै, या फिर जाय?

हैरान है किसका, जो समन्दर—
मुद्दतसे रुका हुआ खड़ा है॥

तू देखते ही उसको जो दीवाना हो गया।
सच कहियो 'मुसहफ़ी' तेरे क्या जीमें आगई॥

उठने लगे जो वोह मेरी बालींसे[1] वक़्तेनज़ा[2]।
निकला यही ज़बानसे आहिस्ता "क्या चले?"

मुलज़िम तेरी बातोंसे हमें आप ही होना।
और तुझको किसी बातमें इलज़ाम न देना॥

ऐ 'मुसहफ़ी'! अफ़सोस कहाँ था तू दिवाने?
कल उसके तईं हमने अजब आनमें देखा॥

जब कोहोबयाबाँमें जा हमने क़दम मारा।
फ़रहाद न कुछ बोला, मजनूँने न दम मारा॥

कल उसे मैं ले चला था सैरे गुलशनकी तरफ़।
कुछ समझकर साथसे मेरे वह टलकर रह गया॥

---

[1]सिरहानेसे;
[2]मृत्युके वक़्त।

'मुसहफ़ी' ! हम तो ये समझे थे किहोगा कोई ज़ख़्म ।
तेरे दिलमें तो बहुत काम रफ़ूका निकला ॥

तू गया प्यारे सफ़रको, छोड़कर मेरे तईं ।
रफ़्ता-रफ़्ता मैं तेरे जीसे बिसरकर रह गया ॥

शबे हिजरां थी, मैं था, और तनहाईका आलम था ।
ग़रज़ उस शब अजब इक बेसरोपाईका आलम था ॥

हुस्न उसका अब समाँ कुछ और दिखलाने लगा ।
चाँद-सा परदेसे वोह मुखड़ा नज़र आने लगा ॥
या वोह आलम था कि कोई उससे वाक़िफ़ भी न था ।
या यह आलम है कि आलम उसपै मर जाने लगा ॥

कभी जो यूँ भी मिले तुम तो महर्बानी है ।
ग़रज़ वह वस्लका वादा तो दरकिनार रहा ॥
मिले न आके कभी 'मुसहफ़ी'से तुम अफ़सोस ।
उमीदवार तुम्हारा उमीदवार रहा ॥

भीगेंसे तेरा रंगेहिना और भी चमका ।
पानीमें निगारीं[1] कफ़ेपा[2] और भी चमका ॥
जूँ-जूँ कि पड़ी मुँहपै तेरे मेंहकी बूँदें ।
जूँ लालयेतर[3] हुस्न तेरा और भी चमका ॥

दिल ले गया है मेरा वह सीमतन[4] चुराकर ।
शरमाके जो चले है सारा बदन चुराकर ॥

---

[1]चमकीला; [2]तलवा; [3]लालेके ताज़ा फूलकी तरह ।
[4]शुभ्रवदनी;

आस्तीं उसने जो कुहनीतक चढ़ाई वक़्ते सुबह।
आरही सारे बदनकी बेहिजाबी हाथमें ॥

मुझे रहम आये है हसरतपै आह! उस मुर्ग़े बेपरकी।
कि उड़ सकता न हो और हो ब-ज़ेरेआशियाँ[1] बैठा ॥

हसरतपै उस मुसाफ़िरे बेकसके रोइये।
जो थकके बैठ जाता हो मंज़िलके सामने ॥

तुझे किसने रोक रक्खा तेरे जीमें क्या यह आई?
कि गया तू भूल ज़ालिम इधर इल्तफ़ात[2] करना ॥

जब कि तू उसमेंसे झाँके है सितारोंकी तरह।
जगमगाती है तेरे ग़ुरफ़ेकी[3] जाली, क्या ख़ूब?

हमसायगीपर[4] यारके क्या दिलको ख़ुश करूँ।
मुझसे तो ह खिंचा[5] वोह हयादार बेतरह ॥

कहाँ तलक फिरें उड़ते इधर-उधर सैयाद!
तेरे ही नज़्र है अब ले यह मुश्तेपर[6] सैयाद!!

जो हाथ दिलबरोंके दामनको खींचते थे।
वे खिंचके रह गये हैं कैसे कफ़नके अन्दर ॥

देखा था एक दिन कहीं उस गुलको बाग़में।
आवारये चमन है नसीमो-सबा हनूज़[7] ॥

---

[1]घोंसलेके नीचे; [2]कृपा-कटाक्ष, [3]खिड़कीकी; [4]पडोसी होनेपर; [5]नाराज़. [6]मुट्ठीभर पंख; [7]अभीतक।

जीमें आता है कि बोसा कफ़ेपाका[1] ले लूँ।
रंग होटोंपै तेरे ताज़ा हिनाका ले लूँ॥

तुम्हारे वादोंपै हमको तो अब नहीं ठहराव।
मगर[2] नया कोई उम्मीदवार ठहरेगा॥

सोया था लिपटकर मैं उस साथ, वले[3] उसने।
पहलूसे मेरे पहलू तासुबह जुदा रक्खा॥

किसीको गर्मिये तक़रीरसे अपने लगा रक्खा।
किसीको मुँह छुपाकर नर्मिये आवाज़से मारा॥

इश्कसे मेरे जो घबराया तो फिर नाचार हो।
आके घर मेरे वोह मुझको आप समझाने लगा॥

अँगड़ाई लेकर अपना मुझपर ख़ुमार डाला।
काफ़िरकी इस अदाने बस मुझको मार डाला॥

जमनामें कल नहाकर जब उसने बाल बाँधे।
हमने भी अपने दिलमें क्या-क्या खयाल बाँधे॥

तू दरको शौक़से रख बन्द पर न इतना भी।
कि आवे जो कोई, वोह होके बदगुमाँ फिर जाय॥

कहता था वोह शब डालके बाहोंको गलेमें।
गर्दनपै तेरे है कई अहसान हमारे॥

—अन्दाज़ेसे

ओ दामन उठाके जानेवाले।
टुक हमको भी खाकसे उठाले॥

---

[1] तलवेका; [2] शायद, [3] लेकिन।

अब कहाँ हम, कहाँ वोह कुंजेक़फ़स ।
कोई दिन वाँ भी आबोदाना था ।।

मत मेरे रंगे ज़र्दका चर्चा करो कि याँ ।
रंग एकसा किसीका हमेशा नहीं रहा ।।

तुझे ऐ मुसहफ़ी ! क्या है ख़बर दर्देमुहब्बतकी ।
न ऐ बेदर्द मेरे सामने ले नाम दरमाँका[1] ।।

सदमे सौ दिलपै हुए हमने न जाना क्या था ।
हायरे ज़ौक़ ! वोह उलफ़तका ज़माना क्या था ।।

कहता न था मै ऐ दिल ! जाना न उस गलीमें ।
आख़िर तू मुझपै आफ़त ख़ाना ख़राब लाया ।।

फ़लक गर हँसाता है मुझपर किसीको ।
मैं हँसकर फ़लककी तरफ़ देखता हूँ ।।

क्या करें जाके गुलसिताँमें हम ।
आग रख आये आशियाँमें हम ।।

छुपाया तुमने मुँह ऐसा कि बस जी ही जला डाला ।
तग़ाफ़ुलने तुम्हारे ख़ाकमें हमको मिला डाला ।।

हरगिज़ वोह दस्तो बाज़ू हिलते कभी न देखे ।
जो तीर उसने मारा सो बेगुमान मारा ।।

मुहब्बतमें सादिक़ यह अग़यार ठहरे ।
हम इक बात कहकर गुनहगार ठहरे ।।

—तनक़ीदी हाशिये

१० जुलाई १९४९ ई०

---

[1] इलाजका ।

३३

इंशा

[१८१७ ई०]

सैयद इशा अल्लाख़ाँ 'इशा' इसमे शक नही कि बलाके ज़हीन थे, और दुनियाकी ऐसी कोई बात नही, जिसे वे शेरमे न कह सकते थे। परन्तु गजल जिस चीजका नाम है, वह उनके हिस्सेमे न आ सकी। भाग्य बेशक बहुत अच्छा था कि नवाब सआदतअलीख़ाँकी नज़रोंमे चढ गये, और मुसहफी-जैसे उस्तादकी कुछ न चली।[1]

इशा मुर्शिदाबादमे उत्पन्न हुए और शाहआलम बादशाहके शासन-कालमे दिल्ली आये और अपने चातुर्य्य तथा मसखरेपनके कारण सबपर छा गये। दरबारी और बाहरी शायरोसे बड़ी नोक-झोक रखते थे। शाहआलमके मुफलिस होनेपर नवाब आसफुद्दौलाके शासनकालमे लखनऊ चले गये और वहाँ भी मिर्ज़ा सुलेमान शिकोह (शाहआलम बादशाहके पुत्र) के दरबारमे प्रभाव जमा लिया। यहाँ मुसहफी-जैसे योग्य उस्ताद पहलेसे विद्यमान थे, परन्तु इशाने इन्हे नीचा दिखाकर इनका स्थान हथिया लिया। और शनै.-शनै वहाँसे सआदतअलीख़ाँके दरबारमें पहुँच गये और वहाँ बडा गौरव प्राप्त किया, किन्तु नवाबके दिलमे इनकी ओरसे बाल आ गया और अन्त समय इनका अत्यन्त निर्धनतामें व्यतीत हुआ।

इशा विद्वान और चतुर थे, किन्तु खेद है कि उन्होने अपनी बुद्धि-

---

[1] इन्तकादियात भाग २, पृ० ११६

बलका सही उपयोग न करके व्यर्थके मसख़रेपन और इधर-उधरकी बातोंमे व्यतीत कर दिया। आजादके शब्दोंमे इशाकी गजलोके दीवानमें—— "अजब तिलिस्मातका आलम है। ज़बानपर कुदरते कामिल, बयान-का लुत्फ, मुहावरोंकी नमकीनी, तरकीबोकी ख़ुशनुमा तराशे, देखनेके क़ाबिल है, मगर यह आलम है कि अभी कुछ है अभी कुछ है। जो गज़ले या गजलोंमे अशआ़र बाउसूल हो गये, वे ऐसे है कि जवाब नही, और जहाँ तबियत और तरफ जा पड़ी, वहाँ ठिकाना नही, ग़जलोंमे फिर उसूलकी पाबन्दी नही।"[१]

इशा मुशायरेमे या दरबारमे जाते तो एक तरफ आदाबे माक़ूलियतसे सलाम किया। एक तरफ मुस्करा दिया, एक तरफ मुँह चिड़ा दिया। कभी दिल्लीके बाँके, कभी आधी दाढी मुंडा ली, कभी भवे साफ करा ली। इसमे शक नही कि किसी जलसेमे इशाका आना, भाँडके आनेसे कम न था। मुसहफीने कुछ झूठ नही कहा——

वल्लाह कि शायर नहीं तूँ भाण्ड है भड़वे[२]।

---

[१]आबेहयात, पृ० २७१

[२]आबेहयात, पृ० २८३

झिड़की सही, अदा सही, चीनेजबी[1] सही।
यह सब सही, पर एक 'नही'की नहीं सही॥

गर 'नाजनी' कहनेसे बुरा मानते हो आप।
मेरी तरफ़ तो देखिये, मैं नाजनीं सही॥

कोई दुनियासे क्या भला माँगे।
वह तो बेचारी आप नंगी है॥

जिगरकी आग बुझे जिससे जल्द वोह शय[2] ला।
लगाके बर्फ़मे साक़ी ! सुराहिये मय ला॥

नज़ाकत उस गुलेरानाकी देखिये 'इंशा' !
नसीमे सुबह जो छू जाये रंग हो मैला॥

खयाल कीजिये क्या आज काम मैंने किया।
जब उनने दी मुझे गाली, सलाम मैंने किया॥

दीवार फाँदनेमे देखोगे काम मेरा।
जब धमसे आ कहूँगा "साहब ! सलाम मेरा"॥
हमसाये आपके मै लेता हूँ इक हवेली।
इस शहरमें हुआ गर चन्दे[3] मुकाम मेरा॥
पूछा किसीने मुझको उनसे कि कौन है यह।
तो बोले हँसके "यह भी है इक ग़ुलाम मेरा"॥
महशरकी तिश्नगीसे क्या खौफ़ सैयद 'इंशा' !
कौसरका जाम देगा मुझको इमाम मेरा॥

---

[1]माथेकी त्यौरी; [2]वस्तु; [3]कुछ दिन।

है जोरे हुस्नसे वोह निहायत घंमडपर।
नामे खुदा निगाह पड़े क्यों न डंडपर॥

यह जो महन्त बैठे हैं राधाके कुंडपर।
औतार बनके गिरते हैं परियोंके झुंडपर॥

एक बहुत बड़ी ग़ज़लका नमूना

मैंने जो कहा—हूँ मैं तेरा आशिक़े शैदा—ऐ कानेंमलाहत[1]।
फ़रमाने लगे हँसके "सुनो और तमाशा—यह शक्ल, यह सूरत" ?

आये जो मेरे घरमे वह सब राहेकरमसे—मैं मूँद दी कुण्डी।
मुँह फेर लगे कहने तअाज्जुबसे कि "यह क्या—ऐ तेरी यह ताकत" ?

लूटा करें इस तरह मजे ग़ैर हमेशा—टुक सोचो तो दिलमें।
तरसा करे हर वक़्त यह बन्दा ही तुम्हारा—अल्लाहकी क़ुदरत॥

दीवारे चमन फाँदके पहुँचे जो हम उनतक—इक ताककी ओझल।
तरसाँ[2] हो यह फ़रमाने लगे कूटके माथा—ऐ वाये फ़जीहत !

शब महफ़िले होलीमें जो वारिद हुआ जाहिद—रिन्दोंने लिपटकर।
दाढ़ीको दिया उसकी लगा बजरे फतूना—और बजने लगी गत॥

—आबेहयातसे

गर यार मय पिलाये तो फिर क्यों न पीजिये।
जाहिद नहीं, मैं शेख नहीं, कुछ वली नहीं॥

अजीब लुत्फ़ कुछ आपसकी छेड़-छाड़में है।
कहाँ मिलापमें वह बात जो बिगाड़में है॥

---

[1]मनमोहक, [2]डरकर।

गुस्सेमें हमने तेरे बड़ा लुत्फ़ उठाया।
अब तो अमूमन[1] और भी तक़सीर[2] करेंगे॥

—इन्तकादियात, भाग २

"काश! इंशाने अपने ख़ास रंगको सलीक़े और क़रीनेसे निभाया होता और नई राह निकालकर इतना न बहकते तो आज वोह ज़बरदस्त साहबेतर्ज़ होते; क्योंकि इंशाके मख़सूस रंगमें अगर उसे मुस्तकिल तौरपर सलीक़ेसे बरता जाय तो एक नई किस्मकी ग़ज़लगोईका इमकान है। अगर इंशाको अहलेदिल या संजीदा लोगोंकी सुहबत नसीब हुई होती, तो बड़ा जबर्दस्त शायर होता। मैं कहता हूँ कि इंशाको ख़ुद अपनी सुहबत अगर नसीब हुई होती तो वह ग़ज़बका शायर होता। अफ़सोस कि ख़ुद अपनी सुहबत इंशाको उस वक़्त नसीब हुई जब वह ख़त्म हो चुके थे। इंशाका फ़ितरीमिलान (स्वाभाविक झुकाव) अहले देहली या संजीदा लोगोंके मिज़ाजसे मेल नहीं खाता था। वह मीर, सौदा, मुसहफ़ीके ज़ुमरेमें शरीक होनेके लिये नहीं बना था।....'जुरअत' और 'इंशा' मुसलसल (क्रमबद्ध) ग़ज़लोंके लिये भी ख़ास तौरपर मुनासिब तबियतें लेकर आये थे। इंशाके चन्द शेर सुनिये, जिनपर मुसहफ़ीको भी तबा आज़माई करनी पड़ी।

सज गर्म, ज़बाँ गर्म, निगह गर्म, अदा गर्म।
वोह सरसे है ता नाख़ुने पा, नामे ख़ुदा गर्म॥

परतौसे चाँदनीके है सहने बाग़ ठंडा।
फूलोंकी सेजपर आ, करदे चिराग़ ठंडा॥

लेके मैं ओढ़ूँ, बिछाऊँ या लपेटूँ क्या करूँ?
रूखी, फीकी, सूखी, साखी महरबानी आपकी॥

---

[1] प्राय; [2] अपराध, बे-अदबी।

"या इंशाकी आफ़ताब उलटा, नकाब उलटावाली ग़ज़ल। यह रंग ईशासे पहले उर्दू गजलमें था ही नहीं।....इशाने अपने और अपने रंगके साथ बेऐतदाली (अव्यवस्था) यह बरती कि खारजी चीज़ोंको मसलन चोटी, दुपट्टा, इज़ारबन्द, चूड़ियो और जूतियोंको ले लिया और अपने मसखरेपनको नक़्काली बना दिया"[1]

नवाबसे अनबन होनेके बाद इशाको अनेक दुर्दिनोंका सामना करना पड़ा। उनके स्वभावमें से मसखरापन जाता रहा और हृदय पीड़ा और व्यथासे भर गया। इंशा जब दरबारी मुसाहबतसे दूर हुए तो उनके ऊपर आर्थिक चिन्ताओं और मानसिक वेदनाओंका तो पहाड़ टूट पड़ा; परन्तु वह सोज़ोगुदाज़ जो तगुज्जुलका प्राण है और बगैर दिल जलाये नसीब नही होता, उन्हे मिल गया। अतः इन दिनों इंशाने जो लिखा है, वही कलाम उनकी स्मृतिको बनाये रखनेमे सहायक हुआ है। इन दुर्दिनोंमें कही गई इस इस गजलको पढते-पढते कलेजा मुँहको आने लगता है—

कमर बाँधे हुए चलनेको याँ सब यार बैठे हैं।
बहुत आगे गये बाक़ी जो है तैयार बैठे हैं॥

न छेड़, ऐ निकहतेबादे[2] बहारी, राह लग अपनी।
तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं, हम बेज़ार बैठे है॥

तसव्वुर[3] अर्श[4] पर है और सर है पाये साक़ीपर।
ग़रज़ कुछ और धुनमें इस घड़ी मयख्वार बैठे है॥

बसाने नक़्शपाये रहरवाँ[5] कूएतमन्नामें[6]।
नहीं उठनेकी ताक़त, क्या करें? लाचार बैठे है॥

---

[1]अन्दाज़े, पृ० ७२-७४ [2]सुगन्धित वायु; [3]ध्यान; [4]आकाश; [5]मुसाफिरके चरणचिन्हीोंकी तरह, [6]अभिलाषाओंके कूचेमे।

यह अपनी चाल है उफ़्तादगीसे[1] अब कि पहरों तक।
नजर आया जहाँपर सायए दीवार, बैठे हैं ॥

कहाँ सब्रोतहम्मुल[2]? आह! नंगोनाम क्या शै है?
मियाँ! रो-पीटकर इन सबको हम यकबार बैठे हैं ॥

नजीबोंका[3] अजब कुछ हाल है इस दौरमें यारो।
जहाँ पूछो यही कहते हैं, "हम बेकार बैठे हैं" ॥

भला गरदिश फ़लककी चैन देती है किसे 'इंशा'!
ग़नीमत है कि हमसूरत यहाँ दो चार बैठे हैं ॥

१४ जुलाई १९४९

---

[1] निर्बलतासे; [2] संतोष; [3] कुलीन मनुष्योंका।

३४

जुरअत

शेख क़लन्दर अलीबख्श 'जुरअत' के पिता हाफिज़ अमान दिल्ली-निवासी थे। और इनके पूर्वज बादशाही सल्तनतमे दरबानीका कार्य्य करते थे। नादिरशाही हमलेके बाद ये लोग फैजाबाद आ गये और यही जुरअतका लालन-पालन हुआ। मौलाना आजाद लिखते है—

"मियाँ जुरअतकी खुशमिज़ाजी, लतीफ़ागोई, मसखरेपनकी हदसे गुज़री हुई थी; और उस वक़्तके हिन्दुस्तानके अमीरोंको न इससे ज़रूरी काम था, न इससे ज्यादा कोई नेअ्मत। मिर्जा कतील, सैयद इंशा और शेख जुरअतका यह हाल था कि घरमे रहने न पाते थे। आज एक अमीरके यहाँ, दूसरे दिन दूसरे अमीर आये और सवार किया और साथ ले गये। ४-५ दिन वहाँ रहे। कोई और नवाब आये, वहाँसे वे ले गये। जहाँ जाये, आरामोआसाइशसे ज्यादा ऐशके सामान मौजूद। रात-दिन क़हक़हे और चहचहे। एक बेगम साहिबाने घरमे उनके चुटकले और नक़्ले सुनी। बहुत खुश हुईं; और नवाब साहबसे कहा—"हम भी बाते सुनेगे, घरमे लाकर खाना खिलाओ।" परदे या चिलमने छुट गईं। अन्दर वे बैठी और बाहर जुरअत बैठे। चन्द रोजके बाद खासखास बीबियोंका बरायेनाम परदा रहा। बाकी घरवाले आमनेसामने फिरने लगे। रफ़्ता-रफ़्ता यगानगीकी यह नौबत हुई कि आप भी बाते करने लगी। घरमे कोई दादा, नाना, कोई मामू-चचा कहने लगी। जुरअत-की आँखे दुखनी आईं तो चन्द रोज़ जोफेबसर (क्षीण-दृष्टि)का बहाना करके जाहिर किया कि आँखे माज़ूर (बेकार) हो गई। मतलब यह

था कि अहलेहुस्नके दीदारसे आँखे सेक पाये। चुनाचे बेतकल्लुफ घरोंमें जाने लगे। अब परदेकी जरूरत भी क्या? यह भी कायदा है कि मियाँ-बीवी जिस महमानकी बहुत खातिर करते है, नौकर उससे जलने लगते है। एक दिन जुरअत सोकर उठे। उन्होंने लौडीसे बड़े आफ़ताबेमे पानी भरनेको कहा। लौडी न बोली, उन्होंने फिर पुकारा। लौडीने जवाब दिया कि बीवी जाए ज़रूर (पाखाने)मे ले गई है। जुरअतके मुँहसे निकल गया—"दीवानी हुई है, सामने तो रक्खा है, देती क्यों नही?" बीवी दूसरे दालानमे थी। लौडी गई और कहा कि—"यह मुआ कहता है कि मै अन्धा हूँ। यह तो खासा सुभक्का है। अभी मेरे साथ यह वारदात गुजरी।"[1] जुरअतके नकली अन्धेपनका इस तरह भेद खुल गया। लेकिन कुदरतका करिश्मा देखिये कि फिर ये सचमुच अन्धे हो गये। जुरअतकी जुरअत देखिये कि परदेमे रहनेवाली सुन्दरी युवतियोके सौन्दर्य-पान करनेकी कितनी अजीबोग़रीब जुरअत की। मगर क़ुदरत-को परदेवालियोंकी यह बेपर्दगी भली मालूम न दी और उसने अन्धा होनेके शौकीन जुरअतको सचमुच अन्धा करके उसकी हृदयगत अभि-लाषाओंको पूर्ण न होने दिया। हाँ, दिखावटी अभिनयको वास्तविक रूप अवश्य दे दिया।

जुरअतको सगीतका भी शौक था। सितार अच्छा बजा लेते थे। जफरअली 'हसरत'से शायरीमे परामर्श लेते थे। शुरूमे मुहब्बतखाँकी सरकारमे नौकर हुए। बादमे मिर्जा सुलेमान शिकोहके दरबारसे सम्ब-न्धित हो गये। ये विशेष पढे-लिखे न थे, परन्तु अपनेको मीर-जैसा समझते थे;[2] किन्तु कहाँ मीर और कहाँ जुरअत? चाँद और जुगनू-

---

[1]आबेहयात, पृ० २३८-३९

[2]"एक रोज मुशायरेमे 'जुरअत'ने ग़ज़ल पढी तो तारीफोंके गुलसे शेरतक सुनाई न दिये। मियाँ जुरअत या तो इस जोशेसरूरमे जो कि

की तुलना ही क्या ? फिर भी जुरअतने मीरकी गज़लोंपर गज़ले कहनेकी जुरअत की है।

आबेहयातसे इस तरहके नमूने उद्धृत करके यहाँ दिये जा रहे हैं—

मीर— बुर्क़ेको उठा चेहरेसे वोह बुत अगर आये।
अल्लाहकी क़ुदरतका तमाशा नज़र आये॥

जुरअत— इस परदानशींसे कोई किस तरह बर आये ?
जो ख्वाबमें भी आये तो मुँह ढाँपकर आये॥

मीर— अब करके फ़रामोश तो नाशाद करोगे।
पर, हम जो न होंगे तो बहुत याद करोगे॥

जुरअत— है किसका जिगर जिसपै यह बेदाद करोगे।
लो हम तुम्हें दिल देते हैं, क्या याद करोगे ?

मीर— मुद्दई मुझको खड़े साफ़ बुरा कहते हैं।
चुपके तुम सुनते हो बैठे, उसे क्या कहते हैं ?

जुरअत— आइनये रुख़को तेरे अहले सफ़ा कहते हैं।
उसपै दिल अटके है मेरा, उसे क्या कहते हैं ?

इस हालतमें इन्सानको सरशार कर देता है, या मिज़ाजकी शोख़ीसे, मीर साहबको छेड़नेके इरादेसे एक शागिर्दका हाथ पकड़कर उनके पास गये और कहा कि—"हज़रत ! अगर्चे आपके सामने ग़ज़ल पढ़ना बेअदबी और बेहयाई है, मगर इस बेहूदागोने जो यावागोई की, आपने समाअ़त फरमाई ?" मीर साहब त्योरी चढाकर चुप हो रहे। जुरअतने फिर कहा, मीर साहब हूँ-हाँ करके टाल गये। जब जुरअतने ब-तकरार कहा तो मीर साहबने जवाब दिया—"तुम शेर तो कहना नही जानते हो, अपनी चूमा-चाटी कह लिया करो।"

—आबेहयात, पृ० २४१

जुरअत इतने शोख़ और छिछोरे थे कि शायरोंसे ही नहीं, भाण्डोसे भी उलझ पड़ते थे। करेला भाण्ड दिल्लीका रहनेवाला था। अपने हुनरमे यकता था। नवाब शुजाउद्दौला उसे दिल्लीसे लखनऊ ले गये थे। एक रोज दरबारमे ही उसने जुरअतको नीचा दिखाया। जुरअत चूँकि अन्धे थे, अत. वह अन्धेका रूप बनाकर एक हाथमे लकड़ी लेकर और दूसरे हाथसे टटोलता हुआ अन्धोंकी तरह फिर-फिरकर यह शेर पढने लगा—

सनम सुनते हैं तेरी भी कमर है।
कहाँ है ? किस तरफ़को है ? किधर है ?

इस नक़लसे जुरअत बहुत बिगडे। उन्होंने भी घर आकर भाण्डके लिए हिजो कही। जिसका एक शेर ये है—

अगला भूले बगला भूले, सावन मास करेला फूले।

करेला भाण्डने यह हिजो सुनी तो वह फिर दरबारमे नक़ल करने आया। एक अपने साथीको जच्चा बनाया और उसपर भूतका असर बताकर झाड-फूंक करते-करते कहने लगा—'जुरअत है तो बाहर निकल।"

एक रोज़ जुरअत ये मिसरा गुनगुना रहे थे—

उस ज़ुल्फ़पै फब्ती शबेदैजूरकी[1] सूझी।

दूसरा मिसरा नही लगता था। इतनेमे ही इशा आ गये। उन्होंने मिसरा सुना तो तत्काल बोले—

अन्धेको अँधेरेमें बड़ी दूरकी सूझी।

एक बार नवाब मुहब्बतख़ाँके मुख्तारने जुरअतको जाडेमे

---

[1]काली रातकी।

पोशाक देनेमे मामूली कुछ देर कर दी। जुरअतको इतना सब्र कहाँ ? चट यह हिजो कहकर पोशाक वसूल कर ली।

मुख़्तारीपै आप कीजियेगा न घमण्ड।
कहते हैं जिसे नौकरी है बेरे बेअरण्ड॥
सरमाई दिलाइये हमारी वर्ना।
तुम खाओगे गालियाँ जो हम खायेंगे ठण्ड॥

नियाज़ फ़तेहपुरीके शब्दोंमे—"जुरअत सिर्फ गज़लगो शायर थे और हुस्नोइश्क़को उन्होंने बहुत अदना सतहपर आकर बयान किया है। इसीलिए ये एक ख़ास तर्ज़के मूजिद (आविष्कारक) समझे जाते हैं, जिसमें शोख़ी, बेबाकी (निर्भयता, उद्दण्डता) बल्कि उरियानी (नग्नता, अश्लीलता)का असर गालिब है *।"

लग जा गलेसे ताब अब ऐ नाज़नीं ! नहीं।
है, है, ख़ुदाके वास्ते मतकर "नहीं, नहीं"॥
क्या रुकके वोह कहे है जो टुक उससे लग चलूँ।
"बस-बस परे हो, शौक़ यह अपने तईं नहीं"॥
फ़ुरसत जो पाके कहिये कभू दर्दे दिल सो हाय।
वह बदगुमाँ कहे है कि "हमको यक़ीं नहीं"॥
आतिश-सी फुंक रही है मेरे तन-बदनमें आह।
जबसे कि रूबरू वोह रुख़ेआतिशीं[1] नहीं॥
सुनता है कौन ? किससे कहूँ दर्दे बेकसी[2] ?
हमदम नहीं है कोई मेरा हमनशीं[3] नहीं॥

---

*इन्तक़ादियात, भा० २, पृ० १२०
[1]सुन्दरमुखी; [2]करुण कथा;
[3]पड़ोसी।

आँखोंकी राह निकले है क्या हसरतोंसे जी।
वह रूबरू जो अपने दमेंवापिसीं[1] नहीं॥

याद आता है तो क्या फिरता हूँ घबराया हुआ।
चंपई रंग उसका और जोबन वोह गदराया हुआ॥
बेसबब जो मुझसे है वोह शोलाख़ू[2] सरगर्मेजंग[3]।
मै तो हूँ हैराँ कि ये किसका है भड़काया हुआ?
नोकेमिजगाँ[4] पर दिलेपज़मुर्दा[5] है यूँ सरनगूँ[6]।
शाख़पर झुक आये है जूं फूल मुरझाया हुआ॥
जाऊँ-जाऊँ क्या लगाई है, अजी बैठे रहो।
हूँ मै अपनी ज़ीस्तसे[7] आगे ही उकताया हुआ॥

यह वफ़ा की मैंने तिसपर, मुझे कहते बेवफ़ा हो।
मेरी बन्दगी है साहब, यह मिला ख़िताब उलटा॥

इस ढबसे किया कीजिये मुलाक़ात कहीं और।
दिनको तो मिलो हमसे, रहो रात कहीं और॥

जब यह सुनते है कि हमसाये[8] है आप आये हुए।
क्या दरोबाम पै हम फिरते है घबराये हुए॥

जुज़बेकसी-ओ-यास[9] नहीं है कोई जिस जा, है अपनी वोह तुरबत।
अफ़सोस करे कौन बजुज़ दस्तेतमन्ना,[10] हूँ कुश्तये हैरत[11]॥

---

[1] मृत्युके समय;
[2] गुसैल
[3] लड़नेको उद्यत;
[4] पलकोंके बालोंपर;
[5] मुरझाया दिल;
[6] नतमस्तक;
[7] जिन्दगीसे;
[8] पड़ोसमें;
[9] मजबूरी और निराशाके सिवा;
[10] अभिलाषा रूपी हाथके सिवा;
[11] अचम्भेका मारा हुआ।

जो मैंने कहा उससे दिखा मुझको रुख़ अपना, बस दे न अज़ीयत[1]।
तो क्या कहूँ किस शक्लसे झुँझलाके वह बोला, "तू देखेगा सूरत ?"
दिल देके अजब हम तो मुसीबतमें फँसे हैं, इक परदानशींको।
नै जानेका घर उसके है मक़दूर[2] हमारा, नै रहनेकी ताक़त॥
गर ख़्वाबमें देखे मुझे तो चौंक उठे और, फिर मून्दे न आँखें।
आवाज़ जो मेरी-सी सुने तो वहीं घबरा, खाने लगे दहशत॥

—आबेहयातसे

आये जो मेरे पास तो मुँह फेरकर बैठे।
यह आज नया आपने दस्तूर निकाला॥

ख़ुदा जाने करेगा चाक किस-किसके गरीबाँको ?
अदासे उनका चलनेमें उठा लेना यह दामाँको॥

क्या जानिये कमबख़्तने क्या हमपै किया सहर[3]।
जो बात न थी माननेकी मान गये हम॥

शब उसने तोड़कर मोतीके सुमरन[4] मुझसे गिनवाये।
दिखाया वस्लमें आलम नया अख़्तरशुमारीका[5]॥

चाहकी चितवन मेरी, आँख उसकी शरमाई हुई।
ताड़ ली मजलिसमें सबने, सख़्त रुसवाई हुई॥

—इन्तकादियात भा० २से

वह गया उठकर जिधरको मैं उधर हैरान-सा।
उसके जानेपर भी कितनी देरतक देखा किया॥

---

[1]तकलीफ़; [2]सामर्थ्य;
[3]जादू; [4]मालाके दाने;
[5]तारे गिननेका।

जुरअतके कलाममे तगज़्ज़ुलके अच्छे शेर भी कहीं-कही नज़र आते हैं—

वॉ से आया है जवाबे ख़त कोई सुनियो ज़रा।
मै नहीं हूँ आपमें, मुझसे न समझा जायगा॥

जब तलक करते रहे मज़कूर[1] उसका मुझसे लोग।
जी में कुछ सोचा किया मै और दिल धड़का किया॥

मुल्केदिल मेरा सदा सुनसान ही रहता है आह!
सब नगर बसते है या रब! इस नगरको क्या हुआ॥

ख़ाक हो जाना दिले सोज़ाँका[2] क्या आता है याद।
ख़ाक होते देखते हैं, जब किसी अख़गरको[3] हम॥

लोग सब कहते है इस बीमारे गमको क्या हुआ?
जानते हम भी नहीं है यह कि हमको क्या हुआ॥

दिल है जबतक इश्क़ से इन्कार कर सकते नहीं।
पर, जो वोह पूछे है तो इकरार कर सकते नहीं॥

यारो कहो हरबार न कुछ कानमें अपने।
क्या जानें कि हम बैठे है किस ध्यानमें अपने॥

पड़े हैं बज़्ममें जिस शख़्सपर निगाह तेरी।
वोह मुँहको फेरके कहता है "उफ़ पनाह तेरी"॥

मकतूबाते नियाज़, भाग २, पृ० ६६

"जुरअत गजलगो ज़रूर थे, लेकिन उनकी ग़ज़लसराई तमामतर

---

[1]ज़िक्र; [2]दग्ध हृदयका;
[3]चिनगारीको।

खारजी अन्दाजकी थी। उन्होंने गजलमे एक बिल्कुल दूसरी धुन अख्तियार की थी—यानी मुआमलाबन्दी और अदाबन्दी। उर्दूमें अन्दाज़, अदा और मुआमलेकी शायरी (Poetry of Behaviour) जुरअ्रतसे शुरू होती है। लखनवी दबिस्ताने शायरीके बानी दरअसल जुरअ्रत थे।"[1]

१७ जुलाई, १९४९

[1]तनक़ीदी हाशिये, पृ० १८०

३५

रासिख़

शेख गुलामअली 'रासिख' अज़ीमाबाद (बिहार) के निवासी थे। ये 'मुसहफी' के समकालीन और उनसे दो वर्ष बड़े थे। प्रारम्भमे इन्होंने मशवरये शेरो सुखन 'फ़िदवी' से लिया और जब कलाममे पुख्तगी आगई तो उनसे इसलाह लेना छोड़कर, परोक्षरूपमे 'मीर'के शिष्य बन गये। मीरसे कोई साक्षात् परिचय या पत्र व्यवहार नही था, किन्तु उनका कलाम पढ़कर उनका अनुसरण करने लगे, उनको अपना उस्ताद मानकर उनके रंगमे गज़ल कहने लगे। कलाममे निखार और विकास हुआ तो अपनेको मीरसदृश[1] समझने लगे और मीरकी मृत्युके बाद फख़्रिया फर्माया--

> है 'मीर' गुज़िश्ताके बदल हज़रते 'रासिख़'।
> अब उनको सलामत रखे अल्लाह तआला॥

और आगे चलकर तो वे मीरसे अपनी तुलना करना भी कसरे शान समझने लगे थे। हालाँ कि कहाँ मीर, कहाँ रासिख़?

> 'शफ़ाई' और 'नज़ीरी' का है बदल 'रासिख़'।
> यह उसका फ़ख़्र नहीं गर 'नज़ीर' 'मीर' हुआ॥

---

[1]प्रोफ़ेसर अताउल्लारहमानने दिसम्बर १९५० के 'निगार' मे 'मीर' और 'रासिख' का तुलनात्मक कलाम दिया है।

ये दो बार आसफ़ुद्दौला और ग़ाज़ीउद्दीन हैदरके शासनकालमे लखनऊ भी गये थे । ७६ वर्षकी आयुमे समाधि पाई ।

ज़ब्ते गिरिया[1] तो है, पर दिलमें जो इक चोट-सी है ।
कतरे आँसूके टपक पड़ते हैं दो-चार हनूज़[2] ॥

था जीमें कि दुश्वारिये हिज्र[3] उससे कहेंगे ।
पर जब मिले कुछ रंज-ओ मुहन[4] याद न आया ॥

यूँ मूरिदेजफ़ा[5] इसी तक़सीर[6] पर हुए ।
अहलेवफ़ा थे हम, यह हमारा क़ुसूर था ॥

फ़क़त रंज ही हम तो खींचा किये ।
ग़लत है कि राहत है मेहनत के बाद ॥

दस्तो पा गुमकरदा[7] 'रासिख़' हम तुम्हें पाते हैं आह !
दिल कहाँ खो बैठे साहब ! तुम हुए मफ़्तूँ[8] कहाँ !

आने में सदा देर लगाते ही रहे तुम ।
जाते रह हम जानसे, आते ही रहे तुम !

कुछ न समझे गये किसू से तुम ।
बारे इतना तो हमने समझा है ॥

फ़स्ले गुल लाई शगूफ़े तो बहुत पर तुम बिन ।
दिल ही तसवीरके गुंचेकी तरह वा न हुआ[9] ॥

---

[1]आँसू रोकना; [2]अब भी; [3]विरहकी कठिनाई;
[4]कष्ट [5]अत्याचारके प्रेरक,
[6]दोष; [7]हाथ पैर खोए हुए;
[8]प्रेमासक्त; [9]खिला नही ।

मरना उस बिन कि जीते रहना।
'रासिख' ! कहो क्या क़रार पाया ॥

मत पूछ कुछ मुझ से हाल मेरा।
हैरतजदा क्या बयाँ करेगा ॥

यही कह-कहके मारा अपने बीमारे मुहब्बतको।
"कि तू मरनेसे डरता है, बहुत जी तुझको प्यारा है ॥"

नहीं होशवालों पै कुछ हसद मुझे रश्क है तो उन्हीं पै है।
जिन्हें तेरे जलवेके सामने मेरी तरह बेख़बरी रही ॥

काश मख़सूसेयकनिगह[1] होती।
क्यों तजल्लीएयार[2] आम हुई ॥

१८ दिसम्बर, १९५०

---

[1]एक दर्शकके लिए सुरक्षित,
[2]प्रेयसीकी सौन्दर्य्य-छटा।

३६

हविस

नवाब मिर्ज़ा मुहम्मदतक़ीख़ाँ 'हविस' 'मुसहफ़ी'के शिष्य थे। फ़ैज़ाबादके रहनेवाले थे; परन्तु लखनऊमे शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की थी। इनकी कवितामे 'मीर'की कविता-जैसा आनन्द आता है।

शग़्ले शबे तनहाई[1] किससे कहें हम अपना।
दो-चार घड़ी रोकर बहलाते हैं ग़म अपना॥

आशिक़ तो था 'हविस' कहो दीवाना कब हुआ।
लो उठ गया हिजाब, बड़ा ही गजब हुआ॥

आ चुका था साफ़ मेरे सामने वोह बेहिजाब।
कुछ यूँ ही इक शर्मका परदा-सा हाइल[2] हो गया॥

---

[1]विरहरात्रि काटनेका उपाय,

[2]बीचमे आ गया।

३७

शहीदी

करामतअली 'शहीदी' अब्दुलरसूलखाँके पुत्र और बाँसबरेलीके रहनेवाले थे; किन्तु लखनऊमे अधिकतर रहे। 'मुसहफी'के शिष्य थे। मदीनेकी यात्रामे परलोक सिधारे। इनकी कवितामे भी व्यथा, पीडा काफी पाई जाती है। नातिया (धार्मिक) गज़ले लिखनेमे काफ़ी ख्याति पाई। आशिकाना गजले भी खूब कहते थे।

आम है उसके तो अलताफ़[1] 'शहीदी' सबपर।
तुझसे क्या ज़िद थी, अगर तू किसी क़ाबिल होता॥

अन्दोहेदायमीमें[2] कटे किस खुशीसे ग़म।
गर मुझको ग़म न हो तरबे गाह-गाहका[3]॥

कर चुके नीम निगहपर मेरे दिलका सौदा।
न ख़रीदो, यह अभी और भी अरज़ाँ होगा॥

रहम आता है मुझे इस नौजवानीपर तेरी।
ऐ 'शहीदी'! रात-दिनका रंजोग़म अच्छा नहीं॥

१६ जुलाई, १६४६

---

[1]कृपाये; [2]स्थायी दुःखमें; [3]कभी-कभीकी खुशीका।

३८

रगीन

सम्रादतयारखाँ 'रंगीन'के पिता तूरानसे आकर लाहौरमें मुलाजिम हुए। फिर लाहौरसे नौकरी छोड़कर दिल्ली आये और यहाँ पेशगाहे सुलतानीसे सात हज़ारीका पद और महकमुद्दौला एतज़ाद जगबहादुरका खिताव इनायत हुआ। रगीन' सरधनेमे उत्पन्न हुए थे। जवाँ होनेपर लखनऊमे मिर्ज़ा सुलेमान शिकोहकी नौकरीमे चले गये। ये बहुत अच्छे घुड़सवार और सैनिक थे। हैदराबाद दकनमे निज़ामकी सेनामें तोप-खानेके अफ़सर भी रहे, परन्तु वहाँसे त्यागपत्र देकर स्वतंत्रतापूर्वक घोडों-का व्यापार करने लगे थे। 'इशा'के बडे गहरे मित्र थे।

जवानीकी चौखटपर पाँव रखनेसे पहले ही शायरीमे दामन उलझा चुके थे। 'मीर' जैसे ख्यातिप्राप्त उस्तादका शिष्य बननेकी अभिलाषा थी, किन्तु मीर पुट्ठेपर हाथ कब रखने देते थे?[१] लाचार 'रगीन'

---

[१]'मीर' साहबके पास १४-१५ बरसकी उम्रमे 'रगीन' बड़ी शानो-शौकतसे गये और ग़ज़ल इसलाह (संशोधन)के लिये पेश की। सुनकर कहा—"साहबज़ादे! आप खुद अमीर है, अमीरज़ादे है। नेज़ाबाज़ी, तीरन्दाज़ीकी कसरत कीजिये। शहसवारीकी मश्क फ़रमाइये। शायरी दिलख़राशी और जिगरसोज़ीका काम है। आप इसके दरपै न हो।" जब रंगीनने बहुत इसरार किया तो फरमाया कि "आपकी तबियत इस फ़नके मुनासिब नही। यह आपको नही आनेका। ख्वाहमख्वाह मेरी और अपनी औकात ज़ाया करनी क्या ज़रूरी है?" आबेहयात, पृ० २१८

शाह हातमके शिष्य हुए। फिर मुहम्मदअमान 'निसार'से संशोधन लेने लगे, और शायद 'मुसहफी'से भी कुछ दिनों संशोधन लिया।

रंगीनको भ्रमणका अत्यन्त व्यसन था। अत्यन्त रंगीन और आशिक मिज़ाज थे। धनी और हसीन भी थे। इसलिए बकौल लेखक तारीखे अदबे उर्दू—"जिन्दगी निहायत ऐशोइशरतसे परियोंके जमघटेमें गुज़ारते थे"।[1] इनकी निम्न रचनाएँ मिलती हैं—

१—मसनवी दिलपज़ीर—इसमें शाहज़ादा माहेजबी और रानी श्रीनगरकी कहानी दो हजार शेरोंमें है।

२—ईजादेरंगी—यह एक अश्लील मसनवी है।

३—मसनवी मजहरउलअजायब—इसमें हिकायतें हैं।

४—मजालिसेरंगीन—इसमें तत्कालीन शायरोंका परिचय है।

५—फरसनामा मुसन्नफ—इसमें घोड़ोंकी पहचान और इलाज हैं।

६—चार गज़लोंके दीवान—१ दीवानेरेख्ता, २ दीवानेबेख्ता, ३ दीवाने आमेख्ता और ४ दीवाने अंगेख्ता। तीसरे दीवानमें हजलियात (अश्लील कविताएँ) हैं और शैतानकी प्रशंसामें एक क़सीदा है। चौथा दीवान रेख्तीका है। इसकी भूमिकामें रंगीनने स्त्रियोंके विशेष-विशेष मुहाविरे उनके पारिभाषिक शब्दोंके अर्थ और बाज़ारी औरतोंकी बोल-चालके नमूने दिये हैं, और फिर रेख्ती गज़लें हैं।

भाग्यका खेल देखिये कि एक सुलझा हुआ सैनिक तलवार और नेज़ेके हाथ दिखाते-दिखाते किस जालमें फँस गया! जिसके तीर बेख़ता होते थे, वही बाजारू औरतोंकी नजरोंसे घायल हो गया! जिसकी आवाज़में सिंहोंकी गरज होनी चाहिए थी, वही ज़नानी बोली बोलने लगा! जिसके जिस्मपर कभी जिरहबख्तर ज़ेब देता था, वही ज़नाने

---

[1]तारीखे अदबे उर्दू, पृ० २३८

लिबासको तरजीह देने लगा। रंगीनके शेर क्या थे, मानों कोक शास्त्रके श्लोक थे। भला इसे शेर क्योंकर कहिये—

चली वाँसे दामन उठाती हुई।
कड़को कड़ेसे बजाती हुई॥

रंगीनके मिज़ाजमे रंडीबाजीसे जो शोहदापन आ गया था, उसने रेख़्ताको छोड़कर रेख़्ती इसलिए ईजाद की कि भले आदमियोंकी बहू-बेटियाँ पढ़कर मश्शाक हो और यह उनके साथ अपना मुँह काला करे। भला यह कलाम क्या है?

ज़रा घरको रंगीके तहकीक़ करलो।
कि याँसे है कै पैसे डोली कहारो॥

मर्द होकर कहता है—

कहीं ऐसा न हो कम्बख़्त "मै मारी जाऊँ।"[1]

तारीख़े अदबे उर्दूका योग्य लेखक कहता है—"इस किस्मके शेर जज्बाते नफ्सयाती बरअंगेख़्ता करने (कामवासना सम्बन्धी विचारोंको भड़काने)की गरज़से कहे जाते थे, और इसी वजहसे वोह निहायत फहाश (अश्लील) और मख़रूबे अख़लाक (चरित्रको नष्ट करनेवाले) और शुरफ़ा (भले मनुष्यो)के कानो तक को नागवार होते थे। ऐसी कुल चीज़े जो औरतोके पढ़नेके क़ाबिल नही होती, गैरमुहज्ज़ब (असभ्य) और फहाश (अश्लील) होती है। ख़ुदाका शुक्र है कि यह सनफ़े शायरी जमानेके साथ बहुत बदल गई है, और तकरीबन अब मतरूक (अव्यवहृत) है।[2]

८० वर्षकी आयुमे रगीन परलोक सिधारे।

---

[1]आबेहयात, पृ० ११०

[2]तारीख़े अदबे उर्दू, पृ० २८

'रंगीन' और 'इशा'का दीवानेरेख्ती अश्लीलताका भंडार है। उसमेसे एक भी शेर देने योग्य नही है, परन्तु प्रसगवश कुछ-न-कुछ उल्लेख करना आवश्यक है। इसीसे बाध्य होकर कुछ नमूने इस तरहके दिये जा रहे है, जिनमे कम-से-कम अश्लीलता है—

अब आठ पहर तुझसे माँगूँ हूँ दुआ यह मैं।
बन्दीको पड़े हूका 'रंगीं'की न चाहतका ॥

सोच इसका न हो गर मुझको तो फिर किसको हो?
जानती तू नही क्या पॉव है भारी[1] अन्ना ॥

आज लश्कर वोह सिधारा यह कहा क्यो अन्ना?
तूने गुल्ली-सी यह क्या छातीमें मारी अन्ना ॥

होनी जो होवे सो हो बन्दी मिलेगी शर्ती[2]।
वस्लकी उससे जबॉ अब तो मै हारी अन्ना ॥

टके तिसपै मोती है बेरब्त दाने।
यह उस जूतेवालेके सर मार जूता ॥

या रब! शबेजुदाई तो हरगिज़ न हो नसीब।
बन्दीको यूँ जो चाहै तो कोल्हूमें पेल डाल ॥

बाजी! न कर नसीहतेबेजा जले है दिल।
है आग-सी जो सीनेमें उसको कुडेल डाल ॥

खुदा जाने कि हाथापाई कर किससे लडी कूका[3]।
कि उसने चूडियॉ की अपनी चकनाचूर मेलेमें ॥

---

[1]गर्भवती है; [2]अवश्य,
[3]दाईकी लड़की।

छुपके मिल-मुझसे दुगाना,[1] तेरे वारी जाऊँ।
मुफ़्तमें ऐसा न हो मैं कहीं मारी जाऊँ॥

यह मुनासिब नहीं 'रंगीं' कि मैं अपने घरतक।
शहरमें करती हुई नाला-ओ-ज़ारी[2] जाऊँ॥

तू आज न आवे तो लहू पीवे हमारा।
तुझ बिन नहीं कुछ सैर शबेमाहकी, गुइयाँ[3]॥

जुदी उससे भला कबतक रहूँ मैं।
बुरी उससे भला कबतक रहूँ मैं॥

इलाही करे निकलें तालूमें गिलटी।
यह जैसी ज़बाँ तुमने खोली कहारो॥

मुझको रोता देखकर बोली ददा[4] "ज़ारी[5] न कर—
तेरे सदक़े होके मैं मर जाऊँ, जी भारी न कर॥"

ज़ोफ़ने 'रंगी' किया मेरा यह हाल।
दिलमें आकर इश्कका जो घर हुआ॥

फाँसकी मानिन्द दम खटके है आह!
साँस भी लेना मुझे दूभर हुआ॥

१८ अगस्त, १९४९

---

[1] सहेली, [2] रोती, चिल्लाती, [3] सहेली, [4] नौकरानी, [5] रो नही।

अर्वाचीन युग

[दौरे मुताख़्ख़रीन]

आये भी लोग, बैठे भी, उठ भी खड़े हुए ।
मै जा ही ढूँढ़ता तेरी महफ़िल में रह गया ।।

—आतिश

क़ैदे हयात, बन्देग़म, अस्ल में दोनों एक हैं ।
मौतसे पहले आदमी ग़मसे निजात पाये क्यों ?

—ग़ालिब

पूर्वार्द्ध

लखनवी शायर

नवाब गाज़ीउद्दीन हैदर और वाजिदअलीशाह
शासनकालीन ई० स० १८१५ से १८५७ तक

देहलवी शायर

बहादुरशाह 'ज़फर' शासनकालीन ई० स० १८३८ से १८५७ तक

उत्तरार्द्ध

ई० स० १८५७ से १९०० तक

अर्वाचीन युगपर सिंहावलोकन

गज़ल, शायरीपर वातावरण और व्यक्तित्वका प्रभाव,
देहलवी और लखनवी शायरीमे अन्तर,
नासिख़ और आतिश

पूर्वार्द्ध

लखनवी शायर

लखनऊके नवाब शायर

६० अमजदअलीशाह
६१ वाजिदअलीशाह
६२-७४ लखनऊकी बेगमात

देहलवी शायर

७५ शाह्नसीर
७६ ज़ौक
७७ मोमिन
७८ गालिब
७९ ममनून
८० आज़ुर्दा

उत्तरार्द्ध

लखनवी शायर

८१ असीर
८२ अमानत
८३ कलक़
८४ ज़की
८५ दरख़्शा
८६ तसलीम
८७ अमीर मीनाई
८८ जलाल
८९ निज़ाम
९० जावेद

देहलवी शायर

९१ ज़फर
९२ आज़ाद
९३ दाग
९४ शेफ़्ता
९५ तसकीन
९६ नसीम
९७ सालिक
९८ ज़हीर
९९ अनवर
१०० हाली
१०१ मज़हर
१०२ ज़की
१०३ रख़्शा

बादशाह और नवाब शायर

दिल्ली दरबार
लखनऊ दरबार
हैदराबाद दरबार
रामपुर दरबार
टाँडा दरबार
फ़र्रुख़ाबाद दरबार
अज़ीमाबाद दरबार
मुर्शिदाबाद दरबार
टौंक दरबार
अलवर दरबार

सिंहावलोकन

ग़जल—

जिस प्रेममे कामवासना निहित हो, उस प्रेमविषयक कविताको गज़ल कहते है। माँ-बाप, भाई-बहन, पत्नी-सन्तान और इष्ट-मित्रोसे भी प्रेम होता है, किन्तु ये सब व्यक्ति गज़लके उपयुक्त पात्र नही है। जिस व्यक्तिके देखने-सुनने और स्मरण करनेसे काम-वासना उदित हो, उसके सम्बन्धमे अपने मनोभावोको जिस कवितामे प्रकट किया जाय, केवल उसी कविताको गजल कहते है। ईश्वर-भक्ति, देश-प्रेम, कौटुम्बिक-स्नेह, आध्यात्मिक या दार्शनिक विचार, प्राकृतिक वर्णन, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक-स्थिति आदिका वर्णन गज़लका विषय नही[1]।

गज़लका शाब्दिक अर्थ है इश्किया अशआर, औरतोंसे बाते

---

[1]अल्लामा नियाज़ फतेहपुरीके शब्दोमे—"जिस मुहब्बतका ताल्लुक गज़लगोईसे है, वोह मखसूस है उस जज्बेसे, जो जिन्सी कशिश व ख्वाहिशसे पैदा होता है। मुहब्बत माँ, भाई, औलाद वग़ैरह अहबाबसे भी होती है, लेकिन इसमें से कोई गज़लका मौज़ू नही। इसका ताल्लुक सिर्फ ऐसे फर्दसे होता है, जिससे इन्सानमे जिन्सी हैजान पैदा हो सकता है। बाज़ अहबाबको मैने कहते हुए सुना है कि अलावा जिन्सी मुहब्बतके एक चीज़ ज़हनी व रूहानी मुहब्बत भी है जिसे Intellectual love कहते है। लेकिन मै इसको महज़ शायरी समझता हूँ, और इसका ग़ज़लगोईसे कोई वास्ता नही। गजलका ताल्लुक मेरे नजदीक सिर्फ उन जज़बाते मुहब्बतसे है, जो इस गोश्त-पोस्तकी दुनियामे गोश्त-पोश्तसे

करना; वह नज़्म[1] जिसमें--वस्ल,[2] फिराक,[3] इश्क,[4] इश्तयाक.[5] हसरत[6] और यासका[7] वर्णन हो। तात्पर्य यह है कि गजल उस कविता-का नाम है जिसमें प्रेमी अपने वासना विषयक प्रेमका वर्णन करता है। गजलकी १९ वहर (छन्द) नियत है। उसका अपना स्वतंत्र छन्दशास्त्र है, जिसकी पावन्दी गज़ल-रचनाके लिए बहुत जरूरी है।

काम-वासनामें प्रेयसी या प्रेमप्यारेका मिलन और विरह दो मुख्य तत्त्व है। मिलनमें सफलता, मस्ती, ऐश, सुख, मिलन, धन्यवाद, विरहका उलाहना, प्रतिद्वन्द्वीकी बुराई, आत्म-प्रशंसा और भविष्यमें विरह-व्यथासे बचनेके उपाय आदिका वर्णन और विरहके दिनोंमें मनकी उत्सुकता, हृदयकी बेकली, अभिलाषाओंकी भीड़, व्यथा-पीड़ाकी टीस, निराशा, दुःख, शोक, असमर्थता, उन्माद, रुग्णावस्था, निर्बलता, मृत्यु-आलिंगन आदिका वर्णन रहता है। मिलनके क्षेत्रसे विरहका क्षेत्र व्यापक और विस्तृत है। सुखान्त कथानकसे दुखान्त कथानक अधिक समवेदनशील और हृदयस्पर्शी होता है। इसलिए गज़लगोईका सम्बन्ध अधिकतर विरह, व्यथा, पीड़ासे ज्यादा होता है। पेयसीके सौन्दर्य्यका वर्णन भी गजलमें होता है।

इस प्रकार गजलका क्षेत्र सीमित भी है, और विस्तृत भी। सीमित इसलिए कि 'गजल' प्रेम-वासना क्षेत्रके बाहर नही जा सकती और विस्तृत इसलिए कि उस वासनाको प्रकट करनेके साधन-तरीके असीमित हैं।

पैदा होते हैं, और जिनके पूरा करनेकी तमन्ना हर मुहब्बत करनेवालेको होती है।"

--इन्तकादियात, भाग २, पृ० १६२

[1]कविता; [2]सम्भोग, मिलन, [3]विरह, [4]कामुक प्रेम, [5]चाहत, अरमान, [6]अभिलाषा, [7]निराशाका।

अब हम ऐसे कामुक प्रेमीको 'आशिक', उसकी प्रेमासक्तिको 'इश्क़' और उसकी प्रेयसीया प्रेम प्यारेको 'माशूक' या, हबीब कहेंगे।

इश्क तो मनुष्य क्या, पशु-पक्षी भी कर सकते हैं, और उसका इज़्हार भी अपनी योग्यतानुसार सभी कर सकते हैं; परन्तु जैसे हर कोई शिल्पकार, चित्रकार, कलाकार नहीं हो सकता, उसी प्रकार हर मनुष्य गजलगो नहीं हो सकता। यूँ तो अध्ययन और परिश्रमद्वारा प्रत्येक कलामें निपुणता प्राप्त की जा सकती है, किन्तु उसमें कमाल हासिल करनेके लिए व्यक्तिकी प्रकृति, झुकाव, विकास, स्वभाव, निजीरुचि और व्यक्तित्वकी भी आवश्यकता निहायत ज़रूरी है। महात्मा गांधी और रवीन्द्रनाथ ठाकुरके साथ पढ़े हुए हजारों छात्रोंमें से कितने उनके समरूप बने? द्रोणाचार्यसे शस्त्रशिक्षा सीखनेवाले कौरवों-पाण्डवोंमें से अर्जुनके अतिरिक्त एक भी द्वितीय अर्जुन न बन सका, और एकलव्यका निजी रुझान इस ओर था तो वह द्रोणाचार्यसे शिक्षा प्राप्त किये बिना ही अर्जुन-जैसा शब्दभेदी वाण चलानेमें प्रवीण हो गया।

उस्तादोंकी अनुकम्पा, निजी परिश्रम और अभ्याससे अनेक शायर हुए हैं, और होते रहेंगे। अपने मनोभावोंको जो जितने हृदयस्पर्शी, आकर्षक और कलापूर्ण ढंगसे व्यक्त करता है, वह उतना ही अधिक सफल, पूर्ण, और बड़ा शायर होता है। केवल मनके भाव व्यक्त करने और छन्दशास्त्रके नियमानुसार शेर कहनेको शायरी नहीं कहते। शेरके अन्दर शेरियत, मधुरता, कोमलता और सुन्दरता होना लाज़िमी है। गज़लके शेरोंका अन्तरंग यदि निष्प्राण और बहिरंग असुन्दर है, तो वह गजलका शेर नहीं, उसका जनाज़ा है।

एक ही बातको भिन्न-भिन्न शायर अपने निजी ढंगसे बयान करते हैं। वे अपने भावोंकी तूलिकासे कल्पना, उपमा, अलंकार, उदाहरण, और शब्दोंके रंग भरकर विचित्र-विचित्र रूप देते हैं। कुछ केवल रेखाएँ खींचकर रह जाते हैं, कुछ आकार बना पाते हैं, और उनमें एक-दो विरले

शायर आँखोंमें समा जानेवाले और हृदयमे घर करनेवाले मूर्त्तमान भाव चित्रित करते है। आंखोमे समाजानेवाली और हृदयमें घर करने वाली इसी इश्क़िया शायरीको तगज्जुल या गज़ल कहते है।

उदाहरणतः—आशिक विरह-वेदनामे छटपटा रहा है। उसकी शोचनीय अवस्थाका उल्लेख एक शायर इस प्रकार करता है—

"हाल बेचारेका बहुत खराब है आज"

दूसरा शायर कहता है—

"सहर करना बहुत दुशवार है बीमारे हिजरॉका"

तीसरा कहता है—

"हाल उस ग़मज़देका हमसे तो देखा न गया"

बात तो इस तीसरे शायरने भी वही कही है, परन्तु आशिककी विरह-वेदनाका इतना सवेदनशील व्यथासे ओत-प्रोत वर्णन है कि वज्र-हृदय माशूक भी इस मिसरेको सुननेके बाद आशिकके पास बिना जाये नही रह सकता।

बीमारेग़मको दिन-रात हाय-हाय करते-करते किसी प्रकार नीद आ गई है। परिचर्य्या करनेवाले नही चाहते कि उसकी नीद शोरोगुलसे उचट जाये। इसी भावनाको 'सौदा' इस तरह व्यक्त करते है—

'सौदा'की जो बालींपै हुआ शोरे कयामत।
खुद्दामे अदब बोले—"अभी आँख लगी है॥"

इसी भावको 'मीर'ने इन दर्दीले शब्दोंमे प्रकट किया है—

सिरहाने 'मीर'के आहिस्ता बोलो।
अभी टुक रोते-रोते सो गया है॥

'अभी', 'टुक', 'रोते-रोते', सभी शब्द व्यथासे ओत-प्रोत है। गोर

मचानेवालेसे शोर बन्द कर देनेके लिए इससे अधिक नम्रनिवेदन और क्या हो सकता है? जिसे सुनकर शोर मचानेवाला दमबखुद होकर दयादृष्टिसे बीमारेगमको देखने लगता है और उसके हृदयमें भी सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है। शेर पढ़ते-पढते ऐसा मालूम होता है कि शायरके हृदयमे मातृ-प्रेम उमड़ आया है और वह अपने नौजवान बेटेकी नींदको उचाट नही होने देना चाहती, क्योंकि 'बीमारेगम' अभी-अभी टुक रोते-रोते बमुश्किल सोया है।

मोमिन, मीर, दर्दने एक ही मज़मूनको अपने-अपने रगमे इस प्रकार चित्रित किया है—

मेरे तगईरे रंगको मत देख।
तुझको अपनी नजर न हो जाये॥

'मोमिन' अपने माशूकसे कहते है कि "मेरी यह दयनीय स्थिति तेरे सौन्दर्य्यके कारण हुई है। न मै तुझे देखता न बीमार पड़ता। अत. मेरे इस तग़ईरे रंग (अवस्था परिवर्त्तन)को न देख। अन्यथा स्वय तुझे अपनी नज़र लग जायगी। क्योंकि अभीतक तो तू अपने सौन्दर्य्य-प्रभावसे अपरिचित है। मुझे देखनेसे तुझे अपनी करिश्मासाज़ियोंका पता लग जायगा और तुझे स्वयं अपनी नज़र लग जायगी।" अपने रूपसे स्वय रीझने और अपनी ही नज़र लगनेका भाव बिलकुल अछूता और निराला है। माशूकके सौन्दर्यका बखान और अपनी आसक्तिका उल्लेख बडी कुशलताके साथ किया गया है। परन्तु 'मीर' इसी मज़मूनको कैसे संवेदन स्वरमे व्यक्त करते है—

मेरे तग़ईरे हालको मत देख।
इनकलाबात है जमानेके[1]॥

---

[1]समयका हेर-फेर है।

संसार परिवर्त्तनशील है । इस परिवर्त्तनमे अनेक अनहोनी घोटनाएँ होती रहती है । बादशाह दर-दरके भिखारी,[1] और चोर-डाकू बादशाह[2] बन जाते है । इसी भावको मीरने बडे करुण शब्दोमे पेश किया है; किन्तु इस 'तगईरे हाल' का सम्बन्ध माशूकसे नही है । इसमे इश्क़िया भाव नही आ पाया है । इसीलिए यह शेर तग़ज़्ज़ुल (ग़ज़लगोई)से हट गया है । 'दर्द' ने इस कमीको देखिये किस खूबीसे पूरा किया है—

मेरे तगईरे हालपर मत जा ।
यूँ भी ऐ महरबान ! होता है ॥

'महरबान'के तनिकसे सम्बोधनने शेरको जो तगज्ज़ुलका रग दिया है, वह शायराना कमालकी बहुत बडी सनद है ।

उपेक्षापर तीन शायरोकी सीनाफ़िगारी देखिये । एक शायर फ़र्माते है—

तेरे करममे कमी कुछ नहीं, करीम है तू ।
कुसूर मेरा है, झूठा उमीदवार हूँ मैं ॥

स्वामि-सेवा और वफादारीमे प्राण होम दिये, परन्तु उसकी ओरसे जो अर्थ या उत्साह मिलना चाहिए था, वह नही मिला । वह अन्य निठल्ले और बेवफाओको तो मालामाल कर रहा है और जो सबसे अधिक उसकी कृपाका अधिकारी है, उसीको उपेक्षित बना रक्खा है; परन्तु

---

[1] जिनके हगामोसे थे आबाद वीराने कभी ।
शहर उनके मिट गये, आबादियाँ बन हो गईं ॥
—इकबाल

[2] खुदाकी शान है नाचीज़ चीज़ बन बैठे ।
जो बेशऊर थे यूँ बातमीज़ बन बैठे ॥
—इक़बाल

उपेक्षित अपने स्वामीपर रोष नही करता। वह उसे कंजूस भी नहीं समझता। वह स्वयं अपनेको ही "झूठा उमीदवार" और "क़ुसूरवार" समझकर सन्तोष कर लेता है, और अपनी वफ़ादारी और स्वामि-भक्तिमे बाल नही आने देता। अपने रंगका यह बेमिसाल शेर है, किन्तु फ़ानी बदायूनीका शेर मुलाहिज़ा फर्माइये। वे अपने शेरमें कितनी व्यथा बखेरते है !

यारब ! तेरी रहमतसे मायूस नहीं 'फ़ानी'।
लेकिन तेरी रहमतकी ताख़ीरको क्या कहिये ?

आस्तिक कितनी ही शोचनीय स्थितिमे हो। उसका ईश्वरकी दयालुता (रबकी रहमत)मे आशंका करना नास्तिकता और घोर अप-राध है। फानी भी उसकी रहमतसे मायूस (निराश) नहीं है। उन्हें पूर्ण विश्वास है कि एक-न-एक दिन रबकी रहमत होगी और ज़रूर होगी। लेकिन उसकी रहमतमे जो ताख़ीर (विलम्ब) हो रही है, उसीसे घबरा-कर फ़ानी अपने रब से इस ताखीरका सबब पूछते है। "इस विलम्बसे हमारा क्या हश्र होगा ?" यह परिणाम शब्दों द्वारा घोषित किये बिना ही फ़ानीके शेरसे ध्वनित हो रहा है—

का बरसो जब कृषि सुखानी

और यही एक अच्छे शायरका शायराना कमाल है कि उसके मौन रहनेपर भी मनोभाव स्पष्ट पढ़ लिये जाएँ। किन्तु उक्त दो शेरोंमें भी वही इश्किया रंगकी कमी महसूस होती है। माशूककी उपेक्षा ही आशिक़के लिये चिन्तनीय है। उसे स्वामी या ईश्वरकी उपेक्षाकी चिन्ता नहीं। वह तो ईश्वरमे अपने माशूकका जलवा देखता है—

अल्लाह भी मजनूंको लैला नज़र आता है

माशूक़ ही उसका सर्वस्व है। गालिब अपने शेरमें स्पष्टतः माशूक़से

मुख़ातिब नही होते हैं; परन्तु उसीकी उपेक्षाका संकेत इस ख़ूबीसे करते हैं कि तगज्जुलका बेमिसाल शेर बन जाता है—

हमने माना कि तगाफुल न करोगे, लेकिन—
ख़ाक हो जाएँगे हम तुमको ख़बर होनेतक ॥

मिर्जा गालिब अपने माशूकसे मन ही मनमे कहते है कि—"हम यह जानते है कि हमारी दुरवस्थाकी ख़बर पाकर तुम तगाफुल (उपेक्षा, विलम्ब) नही करोगे, हमे देखने अवश्य आओगे, किन्तु तुम्हे ख़बर होनेतक तो यहाँ काम ही समाप्त हो जायगा।" माशूककी उपेक्षाके लिए इस शेरमे जो मिर्जाने भाव भरे हैं, उनकी दाद देनेको हमारे पास उपयुक्त शब्द नही।

इस तरहके हज़ारों शेर पुस्तकमे दिये गये है, जिनसे पाठक स्वयं तगज्जुलका और शेरकी शेरियत और उसकी बुलन्दी-ओ-पस्तीका अनुमान लगा सकेगे। यहाँ तो चन्द शेर मजमूनके सिलसिलेमे उदाहरण स्वरूप दिये गये है।

शायरी पर वातावरण और व्यक्तित्त्व का प्रभाव

जिस प्रकार हर शिलपकार या चित्रकार मुँह बोलती मूर्त्ति या चित्र नही बना सकता, उसी प्रकार हर शायर हृदयस्पर्शी शेर नही कह सकता। शायरीमे तत्कालीन वातावरणके अतिरिक्त शायरके निजी रुझान और व्यक्तिगत प्रकृतिका भी बड़ा हाथ होता है। यदि केवल विद्वता और वातावरण ही शायरीमे मुख्य कारण होते तो समकालीन मीर-ओ-सौदा, मुसहफी-ओ-इंशा, आतिश-ओ-नासिख़, गालिब-ओ-ज़ौकके कलाममे एक रूपता पाई जाती; किन्तु एक ही वातावरणमे उत्पन्न हुए उक्त शायरोके कलाममे पृथ्वी-आकाशका अन्तर है। अतः मानना होगा कि देशकी राजनैतिक व आर्थिक स्थिति, सामाजिक रीति-रिवाज और अन्य वातावरणके अतिरिक्त शायर जिन परिस्थितियोसे गुज़रता है, वे सब परिस्थि-

तियाँ और शायरके निजी स्वभावकी विशेषताएँ उसके कलाममे प्रतिबिम्बित होती है, क्योकि कविका हृदय तो एक दर्पण है जो भिन्न-भिन्न आकृतियोको उनके असल रगमे प्रतिबिम्बित करता रहता है। ससारमें शायरीके अतिरिक्त और जितनी कलाएँ है, उनमे कलाकारका व्यक्तित्त्व छिपा रहता है। चरित्रहीन वैज्ञानिक लोककल्याणकारी और सदाचारी वैज्ञानिक विध्वसकारी विज्ञानका आविष्कार कर सकते है, करते है। कुरूप चित्रकार अपने बनाये चित्रमे ससारका सौन्दर्य्य उँडेल देता है और रूपवान सजीले शिल्पकारसे घिनौनी मूर्त्ति बन जाती है। अर्थात अपने व्यक्तिगत जीवनमे जो वे नही है, वह सब उनकी कलाओसे प्रस्फुटित हो सकता है, किन्तु शायर ऐसा नही कर सकता। उसके लाख प्रयत्न करनेपर भी उसकी शायरीमे उसके हृदयका प्रतिबिम्ब बिना पडे नही रह सकता।

सासारिक चिन्ताएँ और वासनाएँ अधिकाशको सताती है, परन्तु कविका हृदय-दर्पण जैसा स्वच्छ या मलीन होगा, वैसा ही अक्स दिखाई देगा। मानव-हृदयपर कुछ तो अपने चारो ओरके वातावरणका, कुछ घरेलू परिस्थितियोका प्रभाव पडता है और कुछ उसकी निजी विशेषताओका असर पडता है। यह सच है कि परिस्थितियोके कारण श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ मानव दुराचारी एव पतित हो जाते है और कुमार्गरत सुमार्गपर लग जाते है। जो मानव-समूह हमे पतित दिखाई दे रहा है, यदि हम भी उन जैसे वातावरणमे उत्पन्न हुए होते, उन जैसी स्थितियोके बहावमे बहे होते तो बहुत सम्भव है हम भी उन्ही जैसे होते। मनुष्य वातावरण और परिस्थितियोका गुलाम है, परन्तु कुछ ऐसे मानव भी होते है जो प्रतिकूल परिस्थितियोमे भी विचलित नही होते, सीना तानकर खड़े रहते है, और कुछ ऐसे भी होते है जिनकी बहावसे कितनी ही रक्षाकी जाय, वे किनारेपर खडे हुए भी डूब जाते है। कुछ वेश्याके यहाँ जन्म लेनेपर भी अपने शीलरत्नको बचा लेती है। कुछ महात्मा-पुत्र होनेपर

भी कलंकित हो जाते हैं। कुछ स्वभावत. स्टील होते हैं कि न उनपर आग-पानीका प्रभाव होता है, न लुहारके प्रहारका। और कुछ छुई-मुई होते हैं, जो हाथ लगाते ही मुर्झा जाते हैं। इन सबके संस्कार और स्वभाव ही ऐसे होते हैं। पपीहा प्यासा मर जायगा, परन्तु स्वातिबिन्दुके अतिरिक्त और पानी नही पियेगा। हारिल पक्षी उड़ता-फिरता मर जायगा, परन्तु पृथ्वीपर पॉव नही रक्खेगा। सिंहको भूखों मरना मजूर परन्तु कुत्तोंके साथ खाना मजूर नही।

बक़ौल ख़लीलुलरहमान काज़मी—"मीर अगर चाहते भी कि अपने ग़मोंको भुलाकर मुसकराएँ, तो सौदाकी तरह न तो वह अपनी आँखोपर पट्टी बाँध सकते थे और न अपने सीनेपर पत्थरकी सिल रख सकते थे।" मीर और सौदा समकालीन और ज़ाहिरा एक ही वातावरणमे उत्पन्न होते हुए भी अपनी निजी परेशानियों और व्यक्तिगत स्वभावके कारण एक दूसरेसे भिन्न थे। इसीलिए उनके कलाममे भी कोई समानता नहीं मिलती। अपने स्वभावके अनुरूप ही लोग अपनी-अपनी रुचि रखते हैं। एक ही वातावरणमे उत्पन्न हुए सगे भाइयोंमे कोई चित्रकार, कोई कवि, कोई डाक्टर, कोई वकील, कोई नेता और कोई कुमारबाज़ बन जाता है।

शायरीमे भी निजी रुचिका बहुत बड़ा हाथ होता है। कोई गज़ल, कोई नज़्म, कोई रुबाई, कोई मर्सिया, कोई कसीदा, कोई मसनवी, कोई नात और कोई हिजो, रेख़्ती, हज़ल कहना पसन्द करता है; और इनमे भी भिन्न-भिन्न रुचियाँ। गज़लगो होते हुए भी कुछ आशिकाना दर्दोगम-को उभारते है, कुछ जमालयाती (प्रेयसीके सौन्दर्य्य-विषयक) रंग भरते हैं। एक दूसरेके रगमे दख़ल नही रखते। 'गालिब' और 'अनीस' अर्वाचीन युगके दो बहुत बडे शायर हुए है, परन्तु दोनोंका रग बिलकुल जुदा था। गालिब गज़लगोईमे अपना सानी नही रखते तो अनीस मर्सिया निगारीमें अपना हरीफ (प्रतिद्वन्द्वी) नही रखते। गालिब गज़लके

लिए और अनीस मर्सियाके लिए ही पैदा हुए थे। उनका कुदरती मीलान ही इस ओर था। दोनो महान शायर थे, परन्तु एक दूसरेका रंग क़ुबूल करनेकी कोशिश करते तो मुँहकी खाते।

राणा प्रताप बहुत अच्छे योद्धा थे। वे भाले और तलवारका अचूक वार कर सकते थे, किन्तु कालेखाँकी तरह गोलन्दाज़ नही हो सकते थे। अर्जुन और भीम दोनों ही रण-विशारद थे, लेकिन अर्जुन गदा और भीम गाण्डीव धनुषपर तबा आजमाई करते तो दोनों ही मुँहके बल गिरते। महात्मा गाधी अहिंसात्मक प्रयोगोसे भारतको मुक्त करानेमे सफल हुए, वे लेनिनके हिंसात्मक पथपर चलनेका स्वभाव ही लेकर नहीं आये थे। चलते तो किसी झाड़ीमें उलझकर गिर पड़ते। जो व्यक्तिका स्वभाव और शौक़ होता है, उसीके अनुरूप कार्य करनेपर सफलता प्राप्त करता है। मजबूरीकी बात दूसरी है। भीमको रसोइया, अर्जुनको नर्तक, शास्त्रीको पुलिस मत्री और शस्त्रोंके नाम न जानते हुए भी किसीको रक्षामत्री बनना पड़े तो चारा ही क्या है? परन्तु चौखूँटे सूराखमें गोल पेच लगाने जैसी स्थिति ऐसे लोगोकी रहती है। वह अपने कार्यमें कमाल पैदा नही कर सकते। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि शायरीपर देश-काल के वातावरणके साथ-साथ शायरके निजी स्वभाव और रुचिका भी प्रभाव पड़ता है।

बाज़ दफा अपने मनोभाव छिपाकर शायरको वह कहना पड़ता है, जो उससे लोग कहलवाना चाहते है, या वह स्वय अपने अस्ल रूपको छिपाकर दुनियाकी आँखोंमे धूल झोंकनेको मनके विपरीत कहता है; और किसी हदतक वह अपनी इन करिश्मा साज़ियोमे कामयाब भी होता है। लेकिन उसके हृदयगतभाव बहुत दिनोतक दबे नहीं रह सकते। वे तालाबकी काईके समान ऊपरी सतहपर आ ही जाते है। 'ग़ालिब' नही चाहते थे कि उनकी मनोगत पीड़ाओंका किसीको आभास मिले; क्योंकि उनका मोटो था—

"दिलमें हजार गम हों, जबींपर शिकन न हो"

इसीलिए हृदय चलनी होनेपर भी वे अपने मित्रोंमे खूब हँसते-हँसाते थे। उनके एक-एक जुमलेपर हँसीके फव्वारे छूटते थे। उनके पत्रोंको पढकर लोग अपने गमोको भूलकर हँसनेपर मजबूर होते थे; परन्तु यह हँसी गालिबके होठोंपर हमेशा नही थिरक सकती थी। वे दूसरोंके सामने हँस सकते थे, परन्तु अकेलेमे तो उन्हे अपने रिसते नासूरपर मरहम लगाना ही पडता था, जब सूर्यकी तापसे पत्थर पसीज उठता है, तब रजोअलमकी आगसे 'गालिब'का दिल कबतक न पिघलता? वही हृदयकी पिघलन आँखोमे छलकती है तो आँसू,[1] और कागजपर उतरती है तो सोजोगुदाजकी[2] शायरी नाम पाती है।

उसी रजोगमकी हालतमे मिर्जा गालिब जो टेढी-मेढी लकीरे खीच देते थे, वही आज हमारे लिए हदीसे कुरआन बनी हुई है, और वे उनके बेमनके कहे हुए लतीफे और जुमले इस शायरीके पासगमे भी नही ठहरते। जो पपीहाकी पियु-पियु और कोयलकी कूकमे व्यथा होती है, उसे सरोद और वायलिन नही बता सकते। यह कहना कि गालिबकी शायरीमे यह सोज़ोगुदाज़ मुगलिया सलतनतके जवालसे आया, ठीक नही, क्योंकि गालिबके समकालीन जौकको यह सोज़ोगुदाज नसीब नही हुआ। बात दरअस्ल ये है कि गालिबके स्वभावमे ही एक तरहका स्वाभिमान

---

[1] दिल ही तो है, न सगोख्रिश्त, दर्दसे भर न आए क्यों?
रोएँगे हम हजार बार, कोई हमें रुलाए क्यों?
—गालिब

[2] हुस्नेफ़रोगे शमए सुख़न दूर है 'असद'!
पहले दिलेगुदाख्ता पैदा करे कोई॥
—गालिब

और अहमन्यपना था। उनके इस स्वाभिमान और अहमन्यपनेको बराबर ठेस लगती गई और वे दुनियासे बेज़ार होते गये; और हारकर यह कहनेपर मजबूर हुए—

"रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।"

न गुले नग़मा हूँ, न परदयेसाज़।
मैं हूँ अपनी शिकस्तकी आवाज़॥

हाँ, तो यह कहना कि शायरी पर तत्कालीन वातावरणका ही प्रभाव पड़ता है, शत-प्रतिशत सही नही। हमारा कहना है कि शायरीपर शायरके निजी व्यक्तित्व और स्वभावका भी असर होता है। एक ही समय और एक ही वातावरणमे उत्पन्न शायरोंकी भिन्न-भिन्न रुचि होती है। कुछ भरी बहारमे भी बहारको रोते है। कुछ पतझडमे भी गुलशन सजा लेते है। मीर-ओ-सौदाके युगमे ही नजीर अकबराबादी ख़ुद भी हँसता है और दूसरोंको भी हँसाता है। गालिब-ओ-जौकके शिष्य हाली-ओ-आजाद अपने उस्तादोसे भिन्न मार्ग खोज निकालते है।

आँधी-पानीके समय वही केवल घटना नही होती। उस वक़्त भी उसके नीचे अनेक कार्य होते रहते है। युद्धकालमे सैनिकोंको युद्ध मुख्य घटना प्रतीत हो सकती है, परन्तु तब भी प्रणय-विरह, त्याग-सयम आदि न जाने कितने कार्य होते रहते है। एक ही वस्तु चश्मोंके भिन्न-भिन्न रगोंसे बहुरगी दिखाई देती है। एक युवती मरती है तो साधु पुरुषोंको संसारसे विराग हो उठता है, भोजनभट्ट उसकी तेरहवीके दिन गिनते है, महापात्र उसके कफनका मूल्य आँकते है, कुत्ते उसके शरीरको फाड़ खाना चाहते है, और कामुक सोचता है—"कमबख़्तने सोने जैसा शरीर मिट्टीमे तो मिला दिया, परन्तु मुझे नही दिया।"

उर्दू-शायरीमे ऐसे शायर बहुत कम हुए है, जो जनरुचिके तेज़ बहावमें पाँव जमाये खडे रह सके है। अधिकाश गगा गये तो गंगादास और

जमना गये तो जमनादास हुए हैं। हवाका रुख़ देखकर तो सभी चलते हैं, हवाको अपनी इच्छानुसार चलाये, पुरुषार्थी वही कहलाता है।

अपना ज़माना आप बनाते हैं अहले दिल।
हम वोह नहीं कि जिनको ज़माना बना गया ॥

मर्द वोह है जो जमानेको बदल देते है।

तो इस अर्वाचीन युगके पूर्वार्द्धमे लखनवी शायरोंमें 'आतिश' ही एक ऐसा शायर हुआ है जो अंगदकी तरह पाँव जमाये खड़ा रहा है। इंशा और जुरअत दिल्लीसे जाते ही एक पलको सीधे खड़े न रह सके, और लखनवी रगमे सराबोर हो गये। मुसहफी जैसा उस्ताद धारेपर अड़ा रहा, लेकिन उसकी हिम्मतने भी जवाब दे दिया और वह भी इस रौमें डुबकियाँ खाने लगा। कुछ इस धारेमे पड़ना नही चाहते थे, परन्तु उसे रोकनेकी क्षमता भी नही रखते थे। वे इस लखनवी ख़ारिजी रंगसे किनारा काटकर मर्सियागोईकी राहपर मुड़ गये। हम इस युगकी शायरीपर प्रकाश डालनेसे पूर्व लगते हाथ देहलवी और लखनवी शायरीमे क्या अन्तर है यह बतला देना आवश्यक समझते है।

देहलवी और लखनवी शायरीमें अन्तर

देहली स्कूलके शायर प्राय. आशिकका और लखनऊ स्कूलके शायर माशूकका वर्णन करते हैं। दूसरे शब्दोंमे यूँ कहिये कि दिल्लीवाले दाख़िली-[1] रंगकी और लखनऊवाले ख़ारजी[2] रंगकी शायरी करते हैं। दाख़िली शायरी दिलकी शायरी और ख़ारजी शायरी दिमागकी शायरी है।

शेरके अन्तरंगको परिष्कृत करनेको दाख़िली शायरी और उसके बाह्य रूपरंगको निखारने, सँवारनेको ख़ारजी शायरी कहते हैं। दूसरे

---

[1]दाख़िली (Subjective) जी, या मन सम्बन्धी।
[2]ख़ारजी (Objective) वस्तु, पदार्थ, बाह्य सम्बंधी, बाहरी।

शब्दोंमें यूं कहिये कि शेरकी आत्मा दाखिली शायरी, और उसका वाह्य शरीर खारजी शायरी है।

दिल्लीवाले शेरकी आत्मा यानी उसके अन्तरंगको जागृत रखने और परिष्कृत करनेको कलाकी चरमसीमा समझते थे और अह्ले लखनऊ शेरके बाह्य शरीरको रंग-रूप देनेमें कमालेशायरी समझते थे, और इसी अन्तरके कारण दोनों स्कूलोंकी शायरीमे पूरब-पच्छिम जैसा अवधान पड़ गया था। एक बहुत बड़ी खाई दोनों स्कूलोंके बीचमे खुद गई थी जो दोनोंको मिलने नही देती थी।

परन्तु आवश्यक दोनों ही रंग ज़रूरी है। शरीरमे यदि आत्मा न हो तो निर्जीव शरीर किस कामका? प्राणरहित शरीर कितना ही सजाया-सँवारा जाय बदबू दे उठेगा। वह लमहेभरको भी प्यारके योग्य नही रहेगा। उसी तरह आत्मा कितनी ही शुद्ध, पवित्र और उन्नत क्यों न हो, उसका शरीर आगमे झुलसनेसे विकृत और भयावह हो जाता है, या कोढ़से गलित अथवा अन्य रोगोंसे घिनावना और कुरूप हो जाता है तो उसको प्राणोंसे अधिक प्यार करनेवाली पत्नी भी देखकर चीख उठेगी। बच्चे पास आते हुए डरेंगे। अन्तरंग और बहिरंग दोनों ही स्वच्छ और मनोज्ञ हों तभी लोग आकर्षित होते हैं।

दिल्लीवाले कहते हैं—'जान है तो जहान है।' पहले शेरके अन्तरंग-को इतना परिष्कृत करो कि हृदयपर तीरका काम करे। अन्तरंगको परिष्कृत करते हुए शेरका बाह्य रूपरग भी जितना मनोज्ञ बनाया जा सके बनाया जाय, परन्तु बाह्य रूप-रंग सँवारनेमे इतने लीन न हो जाओ कि शेरकी आत्मा ही छटपटाकर मर जाय और तुम्हे उसकी सुधि भी न आये।

आत्म-शुद्धिके साथ शरीर-शुद्धिकी भी आवश्यकता है। तन शुद्ध होगा तो मन भी शुद्ध रहेगा, और जब मन शुद्ध रहेगा तो मन-मन्दिरमे भावनाएँ भी शुद्ध आयेगी। शरीर रोगी, विकारी, मलीन हुआ तो उसके

अन्दर आत्मा कबतक निर्मल रहेगी ? परन्तु शरीरको सजाने-सँवारनेमे इतनी तल्लीनता भी ठीक नही कि आत्माकी सुध-बुध ही न रहे। या यूँ कहिये कि वेश्याओकी तरह महज शरीरको सजाने-सँवारनेकी ख़ातिर आत्मातक बेच दी जाय तो वह शरीर किस कामका ? अपनी आत्मा और विचारोको पवित्र और उन्नत रखते हुए जितना वाह्य शरीर स्वच्छ और कलापूर्ण रखा जाय वही श्रेयस्कर और उचित है।

आत्माको विकसित करनेकी धुनमे न तो शरीरकी उपेक्षा ही हितकर है और न शरीरको सजानेके मोहमे फँसकर आत्माको बिसारना ही ठीक है।

दिल्लीकी दाख़िली शायरी हृदयकी शायरी है और लखनऊकी शायरी मस्तिष्ककी शायरी है। यानी देहलवी शायरोके जो हृदयमे होता है वही उनकी नोकेजबाँसे निकलता है। उसमे बनावट और तकल्लुफ नही होती, इसलिए वह शेर दिलपर असर करता है।

लखनवी शायर अपने हृदयके भावोको दावकर मस्तिष्ककी सहायतासे सोचकर उसे तकल्लुफ और तसन्नोह (बनावट)का जामा पहनाकर पेश करता है, जो आँखोको भला मालूम देता है, और मस्तिष्क सुनकर घूम जाता है, परन्तु इसका हृदयपर कोई प्रभाव नही पडता।

दाख़िली शायरीमे इश्क प्रधान रहता है। यानी आशिकका गमेहिज्र, ख्वाहिशेविसाल, कान्हीदगी, दीवानगी, नाचारगी, उफ्तादगी, नज़्अ, जनाजा, कब्र, हश्र, कयामत, नाला, फुगाँ, वगैरहका वर्णन होता है। खारजी शायरीमे हुस्न प्रधान होता है और माशूकके हुस्न, शोखी, हया, आदिका उल्लेख रहता है। दाख़िली शायरी व्यथा-पीड़ाकी शायरी है। उसे सुनकर हृदयसे 'आह' निकलती है। ख़ारजी शायरी भोग-विलासकी शायरी है, जिसे सुनकर मुँहसे 'वाह' निकलती है।

दिल्ली और लखनऊकी शायरीमे इस अन्तरका कारण यही है कि देहलवी शायरीका विकास मुगलिया सल्तनतके जवालके साथ हुआ। दिल्ली उजड रही थी और उर्दू-शायरी परवान चढ़ रही थी। लखनवी

शायरीने आँखे ही तब खोली जब कि हुकूमते अवध दिन-दूने रात-चौगुने शबाबपर थी। मुगलिया सल्तनतके जवाल और दिल्ली उजड़नेके निम्न-कारण थे—

औरंगज़ेबने अपनी धर्मान्धता, कूटनीतिज्ञता, असहिष्णुता और कठोर स्वभावके कारण हिन्दू-मुसलमानोंको विद्रोही बना लिया था। उसने अकबरकी समधर्म-समभाव नीतिको ठुकराकर हिन्दुओंके मन्दिरोंको विध्वस किया। उनके धार्मिक कार्योंमे हस्तक्षेप किया, उनपर जजिया-कर लगाया और अनेक तरहसे सताया। अत हिन्दुओंमे मुगल सल्तनतके प्रति घृणाके भाव बढते चले गये। औरंगजेबने अपनी असहिष्णुता और कठोर स्वभावके कारण मुगल राज्यके स्तम्भ—सेनापतियो, सूबेदारो, और हुक्मरानोंमे विद्रोहकी आग प्रज्वलित कर दी। वे सब सल्तनतका जुआ फेकनेकी ताकमे रहने लगे। औरंगजेबके शासनकालमे ही राजपूतो, मरहठो और सिक्खोके विद्रोह प्रारम्भ हो गये थे। उसकी आँखे मिचते ही चारो ओर आक्रमण और विद्रोह होने लगे। जो विद्वेष-की आग औरंगजेबने सुलगाई थी, वही हवाका रुख पाकर भडक उठी और उसके वंशजोको भस्मसात् करने लगी। उनमे इस बढते हुए आगके प्रकोपको रोकनेकी क्षमता न थी। सल्तनतके रक्षक ही भक्षक बन बैठे। दक्षिण, बंगाल और अवधके सूबेदार (प्रान्तपति, गवर्नर) मुगल सल्तनतका जुआ फेककर स्वतंत्र शासक बन बैठे। मुगल बादशाह कठ-पुतली बादशाह रह गये। कभी ये सैयद बन्धुओंके इशारेपर नाचते, कभी राजपूतों-मरहठोंके रहमपर जीते और कभी अंग्रेजोंकी कृपादृष्टि प्राप्त करनेमे अहोभाग्य समझते। उत्तरोत्तर मुगल बादशाह अत्यन्त निर्बल, असहाय, अकर्मण्य और विलासी होते गये। देशमे चारो ओर अव्यवस्था फैल गई। लूट-मार, डाकेजनी, धोखा-धडी बढती गई। अकाल और भुखमरीने डेरे डाल दिये। नादिरशाह १७३९ ई०मे कत्ले-आम करके दिल्ली लूटकर चलता बना। अहमदशाह दुर्रानीने १७४८से

१७६७ ई०तक ६-१० बार धावे किये। इसे कुछ ऐसा खून मुंह लगा कि बार-बार खूनकी नदियाँ बहानेपर भी इसकी प्यास नही बुझी। १७३७ई० से मरहठोंके आक्रमण प्रारम्भ हो गये। दिल्लीवालोंको हर वक़्त लुट जानेका खटका और कत्ल होनेका धड़का लगा रहता था। उन दिनों हिन्दू-मुसलमानोमे कोई जंगजू कौम ऐसी न थी, जिसके घोड़े दिल्लीमे न दौड़ा करते हों। दिल्ली शहर घुड़दौड़का मैदान बन गया था।

मुगल बादशाह इन आक्रमणोसे प्रजाकी रक्षा क्या करते, वे स्वयं लुटते और पिटते थे। नादिरशाह इनकी बेगमातको नाचनेपर मजबूर कर गया था। आलमशाह बादशाहकी उसीके गुलाम रहीलाने भरे दरबारमे आँखे निकाल ली थी। मिर्ज़ा शिकोह (शाह आलमके पुत्र) डरकर लखनऊ भाग गये थे। इन दिन-रातके आक्रमण, लूटमार, कत्ल गारतगरी और भुकमरीमे पलकर जो शायरी परवान चढी, उसमे व्यथा-पीडाका होना स्वाभाविक था। बकौल नियाज फ़तहपुरी—"देहलीका शायर एक ऐसा शायर था, जिसने सिवाय महजूरी (विरह-व्यथा)के और कुछ न देखा था, जिसको लज्ज़त, कामयाबी, बहुत कम हासिल हुई थी; जो गरीब था, बेबस था, मजबूरोनाचार था। इसलिए वह सिवाय इसके कि दिन-रात रोता और हाय-हाय करता रहे और कर ही क्या सकता था? बरखिलाफ इसके लखनऊका शायर वह आशिक था, जिसे वस्ल नसीब हुआ। वह शराब पीता था। जवानीके लुत्फ उठाता था और छेड-छाड़ उसका रात-दिनका मशगला था।"[१]

दिल्लीकी इस दर्दनाक हालतसे घबराकर और भूखकी ज्वालासे तग आकर जितने भी नामवर शायर थे सब लखनऊ चले गये। केवल 'दर्द' इस उजड़े दयारमे शायरीकी शमा जलाये बैठे रहे। देहलवी शायरोंको लखनऊ पहुँचनेका आकर्षण यह था कि वहाँके नवाब भी मुगल बाद-

---

[१]रियाज़े रिज़वाँ-ऐतराफात, पृ० ४४

शाहोंकी तरह शायरोका आदर करते थे। उन्हे पुरष्कृत करके उत्साहित करते थे। मासिक वजीफे बाँधकर आजीविकाकी चिन्तासे मुक्त कर देते थे। अवधके नवाब जो अभीतक मुगल बादशाहोके नायब समझे जाते थे, स्वतंत्र शासक बन गये थे। नवाब गाज़ीउद्दीन हैदरने १८१९ई०मे खुदमुख्तारीका एलान कर दिया था। वे अब बादशाह कहलाते थे और अपना सिक्का चलाते थे। लक्ष्मी उनके आँगनमे छम-छम घूमती थी। ऐश्वर्य और विलासिता उनके महलोंमे आँख-मिचौनी खेलते थे। दरबारोमे राजनैतिक गुत्थियाँ सुलझानेके बजाय शतरजकी चाल सोची जाती थीं। अगरेजोके सरक्षणका अभिमान होनेके कारण सैनिक सत्ता नष्ट करके शतरजके मुहरोको मारने-पीटनेमे ही कमालाते जवाँमर्दी समझा जाता था। योद्धाओं और राजनीतिज्ञोके बजाय शायरो, गवैयो, नर्तकियो, भाण्डो और कलाकारोको तरजीह दी जाती थी। दिल्लीके शायरोंकी लखनऊमे खूब आवभगत हुई। लखनऊके नवाब उनके साथ बड़ी इज्ज़त और मुहब्बतसे पेश आये। उन्हे जागीरे, वज़ीफे और इनाम दिये गये। उनकी नाजुक मिजाजी और बद्दिमागी हँसते हुए बर्दाश्त की गईं। बल्कि उनकी इन बातोको उनकी शायरीका कमाल और स्वाभिमान समझकर और भी अधिक सम्मान दिया गया। 'मीर' और 'सौदा' जैसे तुनक मिज़ाजोंको बडी खूबीसे निभाया; परन्तु बादमे यही आदर-सत्कार उर्दू-शायरीके लिये अभिशाप बन गया। मीरोसौदा के बादके शायर, शायर न रहकर भाण्ड, नक्काल, मसखरे और जी हुजूर रह गये। इससे उर्दू-शायरी अपने अस्ल रग अर्थात् देहलवी दाख़िली रगसे हटकर लखनऊके खारजी रगमे रँग गई।

लखनऊमे शायरीकी शमा दिल्लीवाले लेकर गये थे। उनके पहुँचनेसे पूर्व वहाँ एक भी अच्छा शायर नही हुआ था। उनके पहुँचनेसे वहाँ शायरीका शौक आवश्यकतासे अधिक बढ गया। मुशायरे मासिक, फिर साप्ताहिक और फिर दैनिक होने लगे। मुशायरोमे एक दूसरे पर फ़ौकि-

यत हासिल करनेकी धुनमे शायरीमे खूब परिश्रम करने लगे। इस होड और प्रतिद्वन्द्विताके कारण उर्दू ज़बानकी बड़ी तरक्की हुई; परन्तु इसी कसरते शौकके कारण लखनऊमे खारजी शायरीकी बुनियाद पड गई। मौ० खलीलुलरहमान काजमीके शब्दोमे--"खुदमुख्तारीके बाद लखनऊवालोकी जहनियत (विचारो)मे बहुत बडा इनक़लाब हुआ। उन्होने तहजीबी हैसियतसे भी देहलीके असरसे आजाद होना चाहा और वहाँकी हर बुरी-भली चीजको छोडकर एक नये तर्जकी बुनियाद डाली। सादगी-की जगह तसन्नोह (बनावट, तकल्लुफ)ने ले ली। लिबास, बोलचाल, आदाबेमजलिस, गुफ्तगूका तरीका, गरज हर चीजमे मरदानेपनकी जगह (जो दिल्लीकी खसूसियत थी), अब नुसवानियत (ज़नानेपन)ने ले ली। इस नुसवानियतने इसलिए और भी तरक्की की कि हुकूमत दिन-ब-दिन फारिगउलबाली (अकर्मण्यता)की तरफ कदम बढा रही थी। अगरेज़ो-की हिफाजतकी वजहसे फौजकी भी जरूरत नही रही थी। निशापुरी और सालारजगी खान्दानके लोग जो वसीका और पेन्शन पाते थे, बिलकुल खानानशीन (महलोमे रहनेको मजबूर) कर दिये गये। उनको औरतोकी सुहबतके सिवा और किसीकी सुहबत ही नसीब न रही। इसका लाजिमी नतीजा यह हुआ कि उनके लिबास और वजह हीमे ज़नानापन नही आया बल्कि उनकी जबान और खयालात भी औरतोके-से हो गये। चूँकि यही लोग लखनऊ शहरके वजअदार और रईस तसव्वुर किये जाते थे, लिहाजा अकसर अवाम (सर्वसाधारण)ने भी इन्हीकी पैरवी शुरू की। यही नुसवानियत लखनऊकी शायरीमे भी राह पाती गई। इसलिये जजबात (भावो, विचारों)मे गर्मी और पाकीज़गीके बजाय बुज़दिली और सुस्तेपनने ले ली।

"न सिर्फ लखनऊकी तहजीबने बल्कि वहाँकी शायरीने भी देहलीके तमाम पुराने निशानात खुरचकर फेक देनेका तहीया (निश्चय) कर लिया। अहले लखनऊने अब दबिस्ताने देहली (देहली स्कूल)की पाबन्दियोसे-

भी आज़ाद होना चाहा। न सिर्फ आजाद होना चाहा बल्कि उसे खँगालकर पुराने तमाम असेरात (प्रभाव) धो डाले। तसव्वुफको यकक्लम ख़ारिज कर दिया गया। देहलीकी शायरीको तसव्वुफने जहाँ और बहुत-सी चीज़े दी, वहाँ रूहानी (आध्यात्मिक) और वजदानी (समझने और जनानेकी शक्ति) मजामीनके साथ जज्बात (भावो, विचारों)की गर्मी और तेजीका सरमाया (धन) भी दिया। तसव्वुफ ही के असरसे गजलमें दाख़लियत आई और उससे इश्किया शायरीमें खलूस और तासीरका इजाफ़ा हुआ।

"शुअराये देहली हुस्नके बयानमें ख़ारजी मुतअल्लकात (माशूकके ज़ाहिरी सम्बन्ध)के बजाय हुस्नके असरको बयान करते थे। इसलिए उनकी शायरी रम्ज़यत[1] भी है और वह इश्किया शायरी दिलके वारदात (दिलपर गुजरी हुई बातों)के अलावा हयातो कायनात (जीवन तथा ससार)के मसाइल (मामलों)पर भी मुन्तबक (अनुकूल) होती है। लखनऊने तसव्वुफको छोड़ा तो ख़ारजीयतका धारा जोरोंसे बह निकला और शायरी नाम रह गया आज़ाए जिस्मानी (शरीरके अग-प्रत्यग) और उसके मुतअल्लकातके तजज़िए (इन्द्रिय भोग सम्बन्धी अनुभवोंके वर्णन)का। जजबा (भाव) जो शायरीके लिये जरूरी है, उसकी अब लखनउवालोंने ज़रूरत न समझी, और शेर कहनेके लिए न किसी तजुर्बेकी जरूरत या दिलके अहसासात (हृदयके भावनाओ) की। यही वजह थी कि शायरी दिलसे हटकर जबानकी तरफ आ गई। इस ज़बानवाली (केवल साहित्यिक) शायरीमें एक और इजाफा यह हुआ कि दिल्लीकी सादगी छोड़कर अब तसन्नोह (बनावट, कृत्रिमता, तकल्लुफ) अख़्तयार किया गया, और पेचीदगी ही फनकी बुलन्दीका मियार

---

[1]सकेत, भेद, राज, नुक़्ता, मुआमला, मुराद, पोशीदगी, पेचदार बात, नोक-झोक, ताने, निशान।

(आदर्श, लक्ष्य) करार पाई। देहलीके मुहावरे, अन्दाज़ेबयान, सबको तर्क करके ज़बानकी बाकायदा इसलाह (शुद्धि) की गई और उन सबपर लखनऊकी छाप लगाई गई। शायरीके इस रुजहानने एक मुकम्मिल तहरीक (आन्दोलन) की सूरत अख्तयार करली और इस तहरीकके रहनुमा (नेता) 'नासिख़' करार पाये। रियायते लफ़्ज़ी (शब्दोंकी मुनासबत), मुहावरोंका इस्तेमाल, क़ाफ़ियेकी तलाश, मज़ामीनकी पेचीदगी और तसन्नोह (कृत्रिमता, बनावट, तकल्लुफ) यही चीज़ें थीं, जिनपर मुशायरोंमें शायरोंको दाद मिलती थीं। लखनऊकी शायरी एक पहलवानी और करतब बन गई। यह मुशायरे अखाड़े होते थे, जहाँ शायर अपने तमाम दाव-पेंचसे मुसल्ला होकर जाता था। जिसने देहलीकी तक़लीद (अनुकरण) मे कही सादगी या तसव्वुफ़की हदमे कदम रक्खा कि उसपर फ़ौरन कुफ़्रका फतवा सादिर हो जाता था।"[१]

सबसे प्रथम 'हसरत' ने जो देहलीके रहनेवाले थे, नवाब आसफ़ुद्दौलाके शासनकालमे लखनऊ पहुँचकर वहाँकी रुचिको शायरीका रूप देकर लखनऊका एक अलहदा ज़नाना रग क़ायम किया। तबसे कघी-चोटी, चोली-महरमका बयान भी शायरीमे होने लगा। इन्हीके शिष्य जुरअत थे, जो मुआमलेबन्दी (माशूकके ज़ाहिरा सम्बन्ध या बातचीतका नग्न रूप खीचने)की शायरीके लिये मशहूर हुए[२] है। अभीतक लखनवी रगके शायरोंकी बेसिरी फ़ौज थी। उनका कोई सरदार नही था। यह कमी इस युगके शायर 'नासिख़' ने पूरी कर दी, और ये सर्वसम्मतिसे ख़ारजी शायरीके मुसल्लिमउलसबूत (प्रामाणिक और अधिकारी) उस्ताद मान लिये गये, और उनके मरनेके बाद भी उन-जैसा मर्तबा खारिजी रगमें अन्य किसी शायरको नसीब नही हुआ।

---

[१]'निगार' लखनऊ—सितम्बर, १९४८ पृ० १२-१३

[२]हसरत और जुरअतके परिचयके लिये देखिए पृ० १७८ और २११

जहाँ दिल्लीके शायर हृदयगत भावोंका चित्र सीधे-सादे शब्दोंमें मर्मस्पर्शी खींचते थे, वहाँ 'नासिख़' और उनके अनुयायी अपना समस्त ध्यान शेरके बाह्य सौन्दर्य्य और शब्दोकी मुनासबत (रियायत लफ़्ज़ी), कारीगरी, हुनरमन्दी, अनोखी उपमाओ, विचित्र-विचित्र कल्पनाओं, उदाहरणोमे लगाते थे। भावोको साकार रूप देनेके लिये शेर नही लिखते थे, अपितु क़ाफियेकी मुनासबतके लिये पहले मौजूँ शब्द चुनते थे और उन्ही शब्दोका जाल-सा बुनकर शेर गढ देते थे।

उदाहरणतः––गुलशनपर कहनेको उनका अन्तरग नही चाहता है। उसके प्रति उनके हृदयमे कोई आकर्षण नही है, किन्तु गज़लका क़ाफिया गुलशन है, इसलिए उसका बाँधना आवश्यक हो गया है। अतः गुलशन सम्बन्धी गुल, बुलबुल, गुलची, सैय्याद, बागबाँ, आशियाँ और क़फस वगैरह शब्द चुनकर और उनको एक दूसरेकी तुलना, उपमा और मुनासबतमे बैठाकर शेरका ढाँचा खडा कर देते थे। दूसरे शब्द कितने ही उपयुक्त और मुनासिब होते, उन्हे नजरन्दाज़ कर दिया जाता। इस रियायते लफ्जीकी बेइन्तहा पासदारीका नतीजा यह हुआ कि शायरीमेसे सादगी और अकृत्रिमता जाती रही, और तकल्लुफ एव तसन्नोहकी भरमार हो गई। शेरके लिए ऐसे शब्द ढूँढे जाते जो मजमूनसे किसी न किसी तरफसे ज़ाहिरा सम्बन्ध रखते हो। चाहे वे कितने ही नामुनासिब और बेमौके हो। केवल रियायते लफ्ज़ी शेरकी खूबी और शेरकी उम्दगीका दारोमदार रह गई, और इसकी बलिवेदीपर––"दर्द, असर, जज़बात, सादगी, सलासत, (प्रवाह, कोमलता, मधुरता), फसाहत (खुशबयानी, साफ़ और शुस्ता कलाम कहनेकी योग्यता), बलागत (उच्च विचारधारा)–सब भेट चढा दिये गये, और इस कमीको अगराक (मुबालगा) और दो राजकार तशबीहो (अव्यवहृत उपमाओ) ने पूरा किया। इस तर्ज़मे कैफियत (वास्तविकता, सही मनोदशा) और सही जज़बात (मनोभाव)की नाज़ुक तहसील (कोमल सम्बन्ध, घुलावट,

एकरसता) नही होती; और वह रूहकी सही अहतज़ाज़ (आत्माकी प्रतिक्रिया)की पूरी-पूरी रहनुमाई (प्रतिनिधित्व) नही करती। इसमें रंगीन शब्दोंका महज़ एक खुशनुमा घरौंदा होता है, जो नज़रोको अच्छा मालूम देता है, मगर कभी दिलकश नही होता।"[1]

ख़ारिजी रगके शायरोके पेशेनज़र फारसीके शायर 'साइब' और 'बेदिल'का कलाम था। जिसका अध्ययन इन्होने सूक्ष्म दृष्टिसे किया। साइबका ढग था कि शेरके पहले मिसरेमे दावा और दूसरेमे मिसाल होती थी। ये मिसाले कही-कही तो उम्दा और दिलचस्प होती थी, परन्तु अधिकांश बिलकुल साधारण और बेमजे। बेदिलकी शायरीमे नाज़ुक और बारीक उपमाओ, उदाहरणों तथा नाज़ुक ख़यालियोसे काम लिया गया था। मगर उर्दूमे महज़ वह नकल रह गई और एक अजीब गोरख-धन्धा बन गई। कौआ चला हसकी चाल, मगर वह अपनी भी भूल बैठा।

अब लखनऊकी बदनाम-ओ-रुसवा शायरीके चन्द नमूने मुलाहिज़ा कीजिये, जो रियायते लफ़्ज़ो, दुमायनी, मुबालगा, उरियानी (नग्न, अश्लील), ईहाम (श्लेष) और रकीक (बारीक) बातोंसे लबरेज़ (परिपूर्ण) है।

नासिख़—

— १ —

आज होता है दिला! दर्द जो मीठा-मीठा।
ध्यान आया है तुझे किसके लबेशीरींका?

काफिया चूंकि 'शीरी' है, केवल शीरी शब्दकी मुनासबतके लिये पहिले मिसरेमे मीठा-मीठा शब्द ठूंसा गया है।

---

[1]तारीख़े अदबे उर्दू, पृ० २६१

— २ —

जो मीठी-मीठी नज़रोंसे वोह देखे।
कहूँ आँखोंको मैं बादामे शीरीं॥

इस शेरमे 'बादामेशीरी' बाँधना था। अतः बादामकी उपमाके लिए आँख और शीरीकी मुनासबतके लिये मीठी नजरोंके तीर चलाये गये है।

— ३ —

क्या पड़ गया है अक्स तेरी चश्मेमस्तका?
नरगिसकी शाख़ बनगई हर मौज आबमें॥

इस शेरमे 'आब' काफिया बाँधनेके लिये 'चश्मेमस्त'की तलाश की गई, फिर उस 'चश्मेमस्त'के पानीमे 'अक्स' डाला गया, और जब पहले मिसरेमे चश्म आ गई तो उसकी मुशाहबत भला नरगिससे क्यो न दी जाती? और 'चश्मेमस्त'मे जब पानी मौजूद है तो वह दरियाकी 'मौज'से कैसे ख़ाली रहता?

— ४ —

दे दुपट्टा तू अपना मलमलका।
नातवाँ हूँ कफ़न भी हो हलका॥

इस शेरमे काफिया 'हलका' है। चिन्ता हुई क्या चीज हलकी होती है? दिमागपर ज़ोर देनेसे कफन हलका मालूम दिया। फिर ख़याल हुआ कि कफन क्यो हलका हो? हाज़िर मिजाजीने फौरन सहारा दिया। आशिक 'नातवाँ' (दुर्बल) है? इसलिए लाज़मी है कि कफन हलका हो। फिर सोचा गया कफन कौनसे कपड़ेका हो? लट्ठा और खद्दर तो भारी होता है, मलमल हलकी होती है। मगर मलमल मोल कैसे लाई जाय? उसके ख़रीदनेको तो दाम चाहिए, और आशिक़के पास

दाम ढूंढना गोया चीलके घोंसलेमें मांस तलाश करना है। चट खयाल आया कि क्यों न माशूकका दुपट्टा इस कामके लिये मँगा लिया जाय। दामोंकी भी बचत हो जायगी और माशूककी निशानी भी हाथ लग जायगी, और शेर भी नाजुक खयालीका गहवारा बन जायगा।

— ५ —

आतिशे रुखसे आँख सेकते हैं।
क्या ज़मिस्ताँमें काम मनक़लका॥

आँख सेकनेका मुहावरा बाँधना था; परन्तु सेकनेको तो आग चाहिए। चट 'आतिशेरुख' (कपोलकी सुर्खीरूपी अग्नि) तैयार की गई। परन्तु फ़ौरन ही ख़याल आया कि जब सेकनेकी बात कहनी है तो सर्दी (ज़मिस्ताँ) और अंगीठी (मनकल) ज़रूर आने चाहिएँ। वर्ना कोई वग़ैर अँगीठीके या गर्मी वरसातमे सेकनेकी बात समझ लेगा तो बड़ी हँसी होगी।

— ६ —

देखकर तुझको न हो नाराज क्योंकर सब रकीब।
पेश्तर कुत्तोंको भुकवाता है जलवा माहका॥

हाथीको देखकर तो कुत्ते भूँका ही करते थे। 'नासिख'को नई कल्पना सूझी तो 'माहके जलवे' (चन्द्रप्रकाश)को देखकर कुत्ते भूँकने लगे; और जब कुत्ते भूँकने लगे तो उनकी उपमा रकीबसे देकर दिलकी जलन शान्त कर ली। रकीब (प्रतिद्वन्द्वी) माशूकके साथ हर वक़्त कुत्तेकी तरह दुम हिलाता घूमता रहता है और आशिक़से जलता है। यह सब सूझ-बूझ निराली और अनोखी होनेसे चट शेर मौजूँ कर दिया।

— ७ —

वालोंका कुछ असर बगले यारमें नही।
पड़ता है अक्से ज़ुल्फ़े सियह फ़ाम दोशपर॥

शायरकी घिनावनी रुचिका नमूना देखिये। फर्माते हैं—'बगलेयार'में जो बाल दिखाई दे रहे हैं, वे सचमुच बाल नही हैं। वह तो सियहफ़ाम जुल्फोंका कन्धेपर अक्स है। इसी ज़लील ख़यालको बाँधनेके लिये इन शब्दोंकी मिट्टी पलीद की गई है।

— ८ —

मुझको सौदाई बनाया है दिखाकर आँखें।
तुम धतूरेका लिया करते हो बादामसे काम॥

माशूककी आँखोमे ऐसी ख़ूबी है कि जो देखता है, सौदाई हो जाता है। नासिख़को ख़याल हुआ कि सौदाईपन (पागलपन) तो धतूरा वग़ैरह खानेसे होता है। बादाम तो मस्तिष्कको ताकत देते हैं। न कि सौदाई बनाते हैं। चट बादामकी उपमा आँखोंसे दी और सौदाईपनेके लिए धतूरेको रखकर शब्दोंकी मुनासबतमें शेर गढ दिया।

— ९ —

तेरी ऐसी उँगलियाँ हैं इस्तख़्वाँ जिसमें नहीं।
पोर-पोर उनकी मगर ख़ुरमाएतरबेख़स्ता है॥

उँगलियाँ माशूककी इतनी कोमल हैं मानों उनमे इस्तख़्वाँ (हड्डी) तक नही है, और पोर-पोर छुआरा है। इसी कल्पनाकी ख़ातिर इस ब्यूहकी रचना की गई है।

— १० —

तू वह ख़ुरशीद है, उल्टे जो गुलिस्ताँमें नक़ाब।
चेहरये गुलमे तलव्वुन हो वहीं हरवाँका॥

गिरगिट (हरवाँ) रंग बदलता (तलव्वन करता) है। इसी धारणाको लेकर इस शेरकी रचना की गई है। माशूकको सूर्यकी उपमा

दी है और जब सूर्य गुलिस्ताँमें अपना जलवा फेंकता है तो फूल खिलते हैं। उसी फूलके खिलनेको गिरगिटका रंग बदलनेसे मुशाहबत दी गई है।

— ११ —

तेरे तलवे औरोंके मुँहसे सिवा शफ़्फ़ाफ़ हैं।
आयना भी इनके आगे साफ़ झावाँ हो गया ॥

'झावाँ' क़ाफ़िया बाँधनेके लिये तलवोंकी सृष्टि की गई; क्योंकि झावेसे पाँव साफ़ किये जाते हैं; परन्तु माशूकके तलवोंमें मैल कहाँ? वह तो औरोंके मुँह (शायद नासिखके मुँह)से भी शफ़्फ़ाफ होते हैं। जब मुँह आया तो उसके लिये फिर आयना क्यों नहीं आता?

— १२ —

हूँ मैं आशिक़ अनारे पिस्ताँ का।
हो न तुरबतपै जुज़ अनार दरख़्त ॥

जीते-जी तो माशूकके अनारे पिस्ताँ (स्तनरूपी अनार) छूने नसीब नहीं हुए। जीते-जी तो हिज्रेयारमें जलते ही रहे। मरनेपर भी क्या जलन शान्त होगी? अन्दर दिल दहकता रहेगा, और ऊपरसे कब्र धूपमें जलती रहेगी। क़ब्रपर घरवाले शायद दरख़्त लगा दें, इसी ख़यालसे नासिख़ वसीयत करते हैं कि जुज़ अनार (अनारके सिवा) और कोई दरख़्त क़ब्रपर न लगाया जाय, ताकि यारके अनारे पिस्ताँका तसव्वुर बराबर बना रहे और कुछ जीका ताप कम हो सके।

इसी तरहके ख़ारजी अशआर इस युगके ख्यातिप्राप्त चन्द शायरोंके हम और दे रहे हैं। उनकी तशरीहकी आवश्यकता नहीं। आशा है पाठक अब स्वयं इन ख़ारजी रंगके अशआरमेंसे—रियायते लफ़्ज़ी,[1]

---

[1]शब्दोंकी मुनासबत,

इहामगोई,[1] मुआमलेबन्दी,[2] सौकयाना,[3] आमता,[4] बुलहविसी[5] और इब्तज़ाली[6] शेरोंको परख सकते हैं।

आतिश—

— १३ —

बोसेबाज़ीसे[7] मेरी होती है ईज़ा[8] उनको।
मुँह छिपाते हैं जो होते हैं मुँहासे पैदा॥

— १४ —

लबेशीरींकी[9] तिरी चाशनी मुमकिन न हुई।
रससे शक्कर हुई शक्करसे बतासे पैदा॥

— १५ —

न फूल बैठके बालाएसरव[10] ऐ क़ुमरी[11]।
चढ़े जो बाँसके ऊपर यह काम नटका है॥

---

[1] दुमायनी;
[2] आशिक-माशूकके परस्परके गुप्त सम्बन्धोंका बयान,
[3] बाज़ारी स्त्रियों-सम्बन्धी;
[4] रस्मी, अदना, मामूली,
[5] विषयवासना-सम्बन्धी;
[6] ज़लील, हकीर, आम, कमीने;
[7] चुम्बन लेनेसे, [8] तकलीफ;
[9] मधुर ओठको,
[10] सरू पेड़की उँचाईपर;
[11] क़ुमरी एक प्रकारकी चिड़िया है जो सरूके पेड़पर ज्यादा बैठती है।

दी है और जब सूर्य गुलिस्ताँमें अपना जलवा फेंकता है तो फूल खिलते हैं। उसी फूलके खिलनेको गिरगिटका रंग बदलनेसे मुशाहबत दी गई है !

— ११ —

तेरे तलवे औरोंके मुँहसे सिवा शफ़्फ़ाफ है।
आयना भी इनके आगे साफ़ झावाँ हो गया ॥

'झावाँ' क़ाफिया बाँधनेके लिये तलवोंकी सृष्टि की गई; क्योंकि झावेंसे पाँव साफ किये जाते हैं; परन्तु माशूकके तलवोंमे मैल कहाँ ? वह तो औरोंके मुँह (शायद नासिखके मुँह)से भी शफ़्फाफ होते हैं। जब मुँह आया तो उसके लिये फिर आयना क्यों नही आता ?

— १२ —

हूँ मै आशिक अनारे पिस्ताँ का।
हो न तुरबतपै जुज़ अनार दरख़्त ॥

जीते-जी तो माशूकके अनारे पिस्ताँ (स्तनरूपी अनार) छूने नसीब नही हुए। जीते-जी तो हिज्रेयारमे जलते ही रहे। मरनेपर भी क्या जलन शान्त होगी ? अन्दर दिल दहकता रहेगा, और ऊपरसे क़ब्र धूपमे जलती रहेगी। कब्रपर घरवाले शायद दरख़्त लगा दे, इसी ख़यालसे नासिख़ वसीयत करते हैं कि जुज़ अनार (अनारके सिवा) और कोई दरख़्त कब्रपर न लगाया जाय, ताकि यारके अनारे पिस्ताँका तसव्वुर बराबर बना रहे और कुछ जीका ताप कम हो सके।

इसी तरहके खारजी अशआर इस युगके ख्यातिप्राप्त चन्द शायरोके हम और दे रहे हैं। उनकी तशरीहकी आवश्यकता नहीं। आशा है पाठक अब स्वय इन खारजी रगके अशआरमेसे—रियायते लफ़्ज़ी,[1]

---

[1]शब्दोकी मुनासबत;

इहामगोई,[1] मुआमलेबन्दी,[2] सौकयाना,[3] आमता,[4] बुलहविसी[5] और इब्तज़ाली[6] शेरोंको परख सकते है।

आतिश—

– १३ –

बोसेबाज़ीसे[7] मेरी होती है ईज़ा[8] उनको।
मुँह छिपाते हैं जो होते हैं मुँहासे पैदा॥

– १४ –

लबेशीरींकी[9] तिरी चाशनी मुमकिन न हुई।
रससे शक्कर हुई शक्करसे बतासे पैदा॥

– १५ –

न फूल बैठके बालाएसरव[10] ऐ क़ुमरी[11]।
चढ़े जो बाँसके ऊपर यह काम नटका है॥

---

[1]दुमायनी,
[2]आशिक-माशूकके परस्परके गुप्त सम्बन्धोंका बयान,
[3]बाज़ारी स्त्रियो-सम्बन्धी;
[4]रस्मी, अदना, मामूली,
[5]विषयवासना-सम्बन्धी;
[6]ज़लील, हकीर, आम, कमीने;
[7]चुम्बन लेनेसे, [8]तकलीफ,
[9]मधुर ओठको,
[10]सरू पेड़की उँचाईपर;
[11]क़ुमरी एक प्रकारकी चिड़िया है जो सरूके पेडपर ज्यादा बैठती है।

– १६ –

यह जानते तो तुम्हें हम न बाँधने देते ।
कमरके साथ लपेटेगा नाफ़को पटका ॥

– १७ –

बेताब दिलको तसर्की[1] होती है दीदेख़तसे[2] ।
वोह बूटी है यह जिससे पारेको मारते हैं ॥

– १८ –

किया उस्तादको शागिर्द उस तिफ़्लेपरीरूने[3] ।
पढाया रोज बिसमिल्लाह इल्मेइश्क मुल्लाको ॥

रिन्द––

– १९ –

है अयाँ हालेसग[4] असहाबे कहफ़[5] ।
जानवरकी आदमीयत देखली ॥

---

[1]तसल्ली, [2]पत्र देखनेसे,
[3]कमसिन परीने; [4]कुत्तेका हाल;
[5]वे सात शख़्स जो ज़ालिम बादशाह 'दकियानूस'के खौफ़से जाकर एक गार (खोह)मे छिप गये । उनके साथ एल कुत्ता भी था, जिसका नाम 'कतमीर' था । भावार्थ यह है कि आदमी, आदमीको सताता है, परन्तु कुत्ता-जैसा जानवर मुसीबतमे काम आता है, और यही उसकी आदमीयत है ।

– २० –

सारी रगें हुई हैं तनेज़ारपै[1] नमूद[2]।
नाताक़तीने जिस्मको मिसतर[3] बना दिया ॥

– २१ –

रोनेकी तुझे लहर जो ऐ चश्मेतर आई।
कोसों नज़र आयेगा न टापू न तराई ॥

– २२ –

आता है नाम आवारियें[4] कोहकनपै रश्क।
इस मुड़चिरेने फोड़के सर क्या नमूद की!

– २३ –

वोह साथ रखते हैं इस तरह मजमये उश्शाक़[5]!
सहाबा[6] साथ लिये जिस तरह रसूल चले ॥

– २४ –

क्योंकर निभेगी हमसे मुलाक़ात आपकी?
वल्लाह क्या ज़लील है औकात आपकी ॥

---

[1]निर्बल शरीरपर, [2]प्रकट;
[3]वह कागज जिसपै सतरे खीचनेको डोरे लगा देते है।
[4]मुझे 'फरहाद'की प्रसिद्धि (नाम)पर ईर्ष्या (रश्क) होती है। इस मुड़चिरेने सिर्फ सर फोड़कर ख्याति प्राप्त कर ली।
[5]आशिकोंका दल;
[6]हज़रत मुहम्मद रसूलकी महफिलमे हाजिर होनेवाले लोग।

— २५ —

हरजाईपनकी आपके कुछ इन्तहा नहीं।
कटता है दिन कहीं तो कहीं रात आपकी ॥

— २६ —

मजनूँको किस कदर सगेलैला[1] अज़ीज़ था।
दीवाने हैं जो हम तेरे कुत्तेको 'तू' कहें ॥

— २७ —

ख़लील—

बगलमें बैठिये दिलकी तरहसे आप आकर।
मैं पाँव पड़ता हूँ उठिये न दर्देसरकी तरह ॥

— २८ —

वस्लकी शब पलंगके ऊपर।
मिस्ल चीतेके वोह मचलते हैं ॥

— २९ —

क्या लिखूँ शोरिशेदिल[2] काग़ज़में।
ताव[3] काकुलकी[4] तरह खाइयेगा ॥

— ३० —

हम क्या क़ुमारेइश्क़में[5] घातें बताएँगे ?
वोह ख़ुद जुआरियोंसे भी ज्यादा हैं चालिये ॥

---

[1]लैलीका कुत्ता; [2]दिलकी बेताबी; [3]बल, [4]ज़ुल्फोंकी; [5]इश्ककी बाज़ीमे।

— ३१ —

सीनेपै नहीं घाव तेरी तेग़का क़ातिल !
यह दिलमें मेरे नींव मुहब्बतकी पड़ी है ॥

— ३२ —

सबा—

सुबहे शबेविसाल[1] है क्यों नाराज़न[2] न हूँ ?
पड़ती है मोगरी मेरे दिलपर गजरके साथ ॥

— ३३ —

कौन पूछेगा उसे ज़ुल्फ़ेबुतॉंके[3] सामने ?
ज़ाहिदो ! बिलफ़र्ज़ दाढ़ीपर ख़ुदाका नूर है ॥

— ३४ —

सन्दल-सी[4] वोह कलाइयाँ अपने गलेमें हों ।
हथफेरियाँ नसीब हों चन्दन-सी रानपर[5] ॥

— ३५ —

रूपपर है यारका बाग़े जवानी देखिये ।
क्या शगूफ़ा लाये सीनेका उभार अबकी बरस ॥

— ३६ —

पैग़ामेवस्लपर वोह मेरी बोटियाँ उड़ाएँ ।
दाँतोंसे दे जवाब जवाबे सवालका ॥

---

[1]मिलनयामिनीका प्रातःकाल; [2]आह करना;
[3]प्रेयसीके ज़ुल्फोंके समक्ष, [4]चन्दन-जैसी;
[5]जाँघ पर ।

वजीर—

— ३७ —

सब्ज़ये खत देखकर हाथोके तोते उड़ गये।
जानवर सदकेमें छूटे, दो कुछ अब सैयादको ॥

एकसे छः तक और आठ, ग्यारह, पन्द्रह, सत्ताईस और तीस नम्बरके 'रियायते लफ़्ज़ी'के शेर हैं, क्योंकि इनमें केवल शब्दोकी मुनासबत वैठानेके लिए तत्सम्बन्धी शब्दोको चुनकर शेर गढ़े गये हैं।

तेईस, चौबीस, पच्चीस और इकत्तीस नम्बरके शेरोंसे बाज़ारी इश्क टपकता है। ऐसे शेरोंको 'सौकयाना' शेर कहते है।

चौदह, सोलह, सत्तरह, बाईस, छब्बीस, बत्तीस और चौंतीस नम्बरके शेर अदना और मामूली दर्जेके हैं। ऐसे घटियल शेरोंको 'आमता' कहते हैं।

अट्ठाईस, तैंतीस, पैंतीस, सैंतीस और उन्तालीस नम्बरके शेरोंसे इन्द्रिय-लोलुपता, अश्लील वासना प्रकट होती है। ऐसे शेर 'बुलहविस' कहलाते हैं।

सात, बारह, तेरह, उन्तीस, छत्तीस और अड़तीस नम्बरके शेर जलील, हकीर, आम और कमीने विचारोंसे ओत-प्रोत हैं। ऐसे शेरोंको 'इब्तज़ाल' कहते हैं।

नौ, दस, अठारह, बीस, इक्कीस नंबर के शेर केवल उपमा, उदाहरणके लिए रचे गये हैं। इन्हें मुशाहबती इस्तआरिया शेर कहते हैं।

मुआमलाबन्दीके शेरोंमे माशूककी हरकत, ढग, तौर-तरीक़े और आशिक-माशूकके गुप्त सम्बन्धोका ज़ाहिरा बयान होता है। बतौर नमूना 'जुरअत'के चन्द शेर दिये जा रहे हैं—

देखा तो यूँ वोह कहके लगे मुँहको ढाँपने।
"कम्बख़्त फिर लगा मुझे नज़रोंसे भाँपने"॥

जब यह सुनते हैं, वोह हमसायेमें[1] हैं आये हुए।
क्या दरो-बामपै[2] हम फिरते हैं घबराये हुए!

इस ढबसे किया कीजिये मुलाक़ात कहीं और।
दिनको तो मिलो हमसे, रहो रात कहीं और॥

इक वाक़िफ़कार अपनेसे कहता था वोह यह बात—
"जुरअतके जो घर रातको महमान गये हम॥

क्या जानिये कम्बख़्तने क्या हमपै किया सहर[3]।
जो बात न थी माननेकी, मान गये हम॥"

बाल हैं बिखरे, बन्द हैं टूटे, कानमें टेढ़ा बाला।
जुरअत हम पहचान गये, कुछ दालमें काला-काला॥

जबतलक करते रहे मज़कूर[4] उसका मुझसे लोग।
जीमें कुछ सोचा किया मैं, और दिल धड़का किया॥

इस तरहके मुआमलेबन्दीके और अशआर मध्यवर्ती युग के अध्यायमे इंशा, जुरअत, मुसहफी आदिके कलाममे ढूँड़े जा सकते हैं। नुसवानी (ज़नाने) अशआर भी इसी अध्यायमे हसरतके कलाममे मिलेगे।

ईहामगोईमें ऐसे शब्द शेरमे चुनकर रक्खे जाते हैं, जिनके दो अर्थ निकलते हैं। जैसे—

दुख़्तरे दर्ज़ीका सीना देखकर।
जीमें आता है कि मलमल दीजिये॥

---

[1]पड़ोसमे, [2]छतपर, दरवाज़ेपर, [3]जादू; [4]जिक्र।

झूमके पहनो न साहब झूमके ।
झूमके ले लेंगे बोसा झूमके ।।

इस इहामगोईमे लोगोंने बड़ी गन्द बखेरी है। तहज़ीब गवारा नही करती कि इस तरहके फोहश-अश्लील शेर दिये जाएँ। उक्त शेर देनेमें ही हम बड़े नादिम हो रहे है।

हर ज़बानकी शायरी उस ज़बानके बोलने-जाननेवालोका आयना होता है, जिसमे उस देशकी सभ्यता-सस्कृति और विचारधारा-का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई देता है। ख़ारजी शायरीमे इस युगकी लखनवी तहज़ीब-ओ-तमद्दुनका अक्स साफ दिखलाई पड रहा है। इस खारजी शायरीसे उस ज़मानेके लिबास, ज़ेवर और शृगारोपयोगी वस्तुओंकी अच्छी खासी सूची बन सकती है। उस वक़्तके लोगोंकी अभिलाषाएँ कितनी कुरुचिपूर्ण थी, उनका इश्क कितना जलील और बाज़ारू था, यह सब उन्हीका कलाम गला फाड-फाडकर बतला रहा है।

इस युगमें शब्दोकी काट-छाँट, नये-नये लफ़्ज़ोकी तलाश, अलफ़ाज़की तहक़ीक और शब्दोंकी मुनासबतका बडा ख़याल रखा जाता था। खारजी शायरीके आविष्कारक और प्रामाणिक शायर 'नासिख़' और उनके शिष्यों, परशिष्योकी बदौलत यह ख़ारजी रंग लखनऊ और राम-पुरमे फैल गया। यही लोग उन दिनों भाषाविज्ञ समझे जाते थे। बहर, सहर, मुनीर, जलाल, बर्क़, वाजिदअलीशाहु, अख़्तर, असीर, वग़ैरह उचित और शुद्ध शब्दोके निर्वाचनमें बड़ा परिश्रम करते थे। "इस छान-बीनका यह नतीजा हुआ कि बहुतसे अलफाज़ ख़ारिज कर दिये गये और लुगाते शेर (कविताशब्दकोष) बहुत कम रह गये। इस वजहसे ज़बानमे एक करख़्तगी (कड़ापन, सख़्ती) पैदा हो गई, क्योंकि जो अलफाज़ और मुहावरे मुन्तख़िबशुदा थे, वे सिर्फ मुकर्ररकरदा तरीक़ोंपर

इस्तेमाल किये जा सकते थे। इसकी ख़िलाफवरजी मायूब (दूषित) समझी जाती थी।"[1]

इस नवीन रंगने दिल्ली और लखनऊकी भाषामें भी अन्तर डाल दिया। यानी बहुतसे ऐसे शब्द दिल्लीमे पुलिंग बोले जाते हैं, वे लखनऊमें स्त्रीलिंग समझे जाते हैं, और जो लखनऊमें पुलिंग इस्तेमाल होते हैं, वे दिल्लीमे स्त्रीलिंगमे बोले जाते हैं। इस रिवाजका प्रचलन 'नासिख़'के शिष्य अमीरअली 'ओस्त' 'इश्क'ने किया, और यह भेद तबसे अबतक बराबर बना हुआ है। दिल्लीवाले बुलबुलको स्त्रीलिंग और लखनवी पुलिंग लिखते है; परन्तु सौदाने देहलवी होते हुए भी बुलबुलको एक जगह पुलिंग लिखा है—

सुने है मुर्ग़े चमनका तू नाला ऐ बुलबुल।
बहार आनेकी बुलबुल ख़बर लगा कहने॥

लखनवी अक्सर अब भी पुलिंग बाँधते है—

करेगा तू मेरे नालोंकी हमसरी बुलबुल।
शऊर इतना तो कर जाके जानवर पैदा॥

—सरूर

सैरे चमनको चलिये बुलबुल पुकारते हैं

—आतिश

लखनऊका यह दौर शायद अर्सेतक कायम रहता अगर दिल्लीमें ग़ालिब और मोमिन न हुए होते। इस दौरकी शायरीकी आलोचना करते हुए अल्लामानियाज़ फतहपुरी फर्माते हैं—"गालिबने रामपुर पहुंचकर लखनऊकी शायरीको काफी मुतास्सिर (प्रभावित) किया, और आखिरकार लखनऊमे 'जलाल'-जैसे कहनेवाले पैदा हुए, और

---

[1]तारीख़े अदबेउर्दू, पृ० २६३

नासिख़की पैदा की हुई बेहूदगियाँ रफ़्ता-रफ़्ता कम हुई। नासिख़ने ग़ज़लगोईको तबाह और बरबाद करनेमे कोई कसर उठा नही रक्खी। लेकिन ज़बानकी तहज़ीब व शाइस्तगीके लिहाज़से नासिखकी खिदमत, बहुत अहम है, क्योकि मीरहसन-ओ-शाहनसीर[1] मीर-ओ-सौदा,[2] मुसहफी-ओ-इशा तकके ज़मानेके तमाम सक़ील अल्फ़ाज़ और नामानूस मुहावरात इसने तर्क करके जबानको एक सैकलशुदा आयने (दर्पण)की सूरत दे दी। इसलिए जिस हदतक सिर्फ ज़बानकी इस्लाहका ताल्लुक है, 'नासिख़'की ख़िदमात निहायत वज़नी नजर आती है, और इसी निसबतसे देहलीपर लखनऊको तरजीह देनी पडती है। लेकिन तग़ज्जुलके लिहाज़से लखनऊको देहलीसे कोई निसबत नही है, और सिवाय चन्द शायरोके कि उन्होने तो वेशक जजबात निगारी (हृदय-उद्गारोके स्पष्टीकरण)से काम लिया है। बाकी सबने जिला-जुगत हीमे वक़्त जाया किया। देहलीमे भी इहामगोई और रियायते लफ्ज़ोकी मिसाले मिलती है, लेकिन बहुत कम, और अगर शाहनसीर और जौकको अलहदा कर दिया जाये तो कोई एक शायर भी ऐसा नही निकलेगा कि जिसने अपनी गजलगोईकी बुनियाद जज़बातनिगारी (दाखिलियत) पर कायम न की हो।

"लखनवी शायरीका यह बदनुमाँ धब्बा अमीर मीनाईके वक़्ततक रहा। लेकिन उसके बाद शागिर्दाने मोमिन-ओ-गालिबका कलाम फिर मकबूल होने लगा, और खुद अहले लखनऊने भी आख़िरकार इसको

---

[1]मीरहसन-ओ-शाहनसीरके ज़मानेमे लोहू, नित, निपट, टुक, जग, हैगा, मिखवाह, मत, कभू, समेत वगैरह, अल्फाज़ कसरतसे इस्तेमाल होते थे। नासिख़ने इन सबको तर्क कर दिया।

[2]मीर-ओ-सौदाके अहदके अधर, बीच, तईं, करियों, लागा, तुझबिन, फिरे है, मियाँ, सजन खोज, रुलजाना, वले, देवे, वग़ैरह सैकड़ों अल्फाज़ोकी इसलाह की।

महसूस किया कि शायरी नाम ज़िला-जुगतका नहीं बल्कि वारदाते कल्ब (दिलकी आवाज़)से बहस करनेका है। सबसे पहले यह अहसास 'जलाल'-को हुआ। उसके बाद जब शुअरायेदिल्लीने रामपुर पहुँचकर लखनवी शायरोंको मुत्तास्सिर (प्रभावित) किया तो रफ्ता-रफ़्ता वोह तमाम नुक़्स-ऐब दूर होने लगे। हत्ता कि इस वक़्त (वर्त्तमान युगमे) कोई एक भी काबिलेज़िक्र लखनवी शायर ऐसा नही है जो दिल्ली स्कूलका पैरो (अनुयायी) नही है। बरखिलाफ इसके, दिल्लीकी हालत यह हुई कि शागिर्दाने ग़ालिबके बाद देहलीमे कोई शायर पैदा नही हुआ, और हुए भी तो 'साइल' और 'बेख़ुद' इतने अदना दर्जेके कि गरीबोको देहली स्कूलमे तो खैर क्या जगह मिलती, लखनऊ स्कूलने भी न पूछा; और यह दिल्लीकी वोह आखिरी और हकीकी तबाही है कि इसपर जितना भी मातम किया जाय कम है।

"दिल्लीकी सरज़मीनसे सबसे अखीरमे दाग उभरे, लेकिन उनको दिल्ली स्कूलका शायर कहना दुरुस्त नही, क्योंकि उनके यहाँ सोज़ो-गुदाज़ बहुत कम पाया जाता है। उन्होने शायरीने 'जुरअत'की तकलीद (अनुकरण) की। इसलिए उन्हे लखनवी रंगका गज़लगोशायर कहना चाहिए। लेकिन 'नासिख़' के दौरका नही, 'जलालो-अमीर'के दौरका, और अगर इनमे कोई फर्क था तो सिर्फ यह कि जिस बाजारू रगकी शायरी दागने की उसके लिये वह पैदा हुए थे, और 'अमीर' उसके भी अहल (योग्य) न थे। रह गये 'जलाल' सो वह यकीनन दागसे बहतर और अमीरसे बदरजहा बहतर कहनेवाले थे। आखिर कुदरत सरज़मीने अवधसे 'जलाल'को पैदा न करती तो 'नासिख़'के गुनाहोंका कफ्फारा (प्रायश्चित्त) किसी तरह मुमकिन ही न था। बयानकी सफाई, नुदरते बयान, हलावत, मलाहत, इसके यहाँ क्या नही है।"[1]

---

[1]इन्तकादियात, भाग २, पृ० १९९-२०१

वर्त्तमानयुगमे जितने भी शायर है, चाहे वे कहीके भी है, देहलवी रंगमे गजल कहते हैं। अर्वाचीन युगके लखनवी शायरोंमे 'आतिश'का मर्तबा बहुत बुलन्द है। आतिश जिस शायरोंके क्षेत्रमें पाँव रखते है उसे पूर्ववर्त्ती और समकालीन शायरोंने वीभत्स बना दिया था। बकौल मौ० खलीलुलरहमान काजमी—"इंशा, जुरअत, और रगीनने जो सरमाया छोड़ा था, उसपर दिन-ब-दिन लखनऊका वह रंग चढ़ता जा रहा था जो 'अमानत'की इन्द्रसभाके लिए जमीन तैयार कर रहा था। सौकयत और इब्तजालने रेख्ता और रेख्तीकी हदोको मिला दिया, और फहाश-ओ-उरयानी (अश्लीलता व नग्नता)का वोह सैलाब उमड़ पड़ा कि जिसको देखकर बकौल आज़ाद—शराफत आँख नीची कर लेती थी"।[1]

नासिख और आतिश—

आतिशकी प्रकृति और स्वभाव जिन तत्त्वोसे बने थे, उनको देखते हुए उनके लिए उपयुक्त क्षेत्र गजलगोईका था, और सौभाग्यसे यही उन्होंने चुना भी। आतिशके अन्दर जो तेवर, बलवला, बाँकपन, मस्ती, उच्च कल्पना, मौलिक उपज और भावना थी, वही उनकी वाणीसे प्रस्फुटित हुई। आतिशकी शायरी भी आतिशी (आग्नेय) है। मौ० मुहम्मद हुसैन आज़ादने मीर-ओ-सौदा, मुसहफी-ओ-इशा, गालिब-ओ-ज़ौककी तरह आतिश-ओ-नासिखको भी एक दूसरेका प्रतिद्वन्द्वी लिखा है; परन्तु वास्तविकता यह है कि न वे सब एक दूसरेके प्रतिद्वन्द्वी थे और न आतिश-ओ-नासिख ही एक दूसरेके हरीफ थे। समकालीन होना और एक दूसरेका ईर्षालु होना और बात है और हरीफ या प्रतिद्वन्द्वी होना और बात है। महात्मा गाधीकी अच्छी-से-अच्छी बातसे मि० जिन्ना नफरत करते थे। वे पूरबकी ओर चलते तो ये पश्चिमकी ओर भागते

---

[1]निगार, लखनऊ, सितम्बर, १९४८, पृ० १२

थे। मि० जिन्ना ईर्ष्यालु और विरोधी कहे जा सकते हैं, परन्तु हरीफ या प्रतिद्वन्द्वी नही। प्रतिद्वन्द्विता समान योग्यतावालोमे ही होती है। दुर्योधन अर्जुनका शत्रु तो था, परन्तु प्रतिद्वन्द्वी नही। प्रतिद्वन्द्वी वह भीमका था और अर्जुनका वास्तविक प्रतिद्वन्द्वी कर्ण था। आतिश और नासिख समकालीन हुए है, इस समानताके अतिरिक्त उनमे कोई समानता न थी।

नासिख अमीर थे और लखनवी अमीर उनके साथी और सहायक थे। वे अमीराना जीवन व्यतीत करते थे। उनके जीवनमे अमीराना वजह-कतअ़ और तकल्लुफ था। वही तकल्लुफ-ओ-तसन्नोह उनकी शायरीमे घुलमिल गया है। नासिख लखनवी खारजी रंगके मुसल्लिम-उलसबूत उस्ताद हुए है, और आतिश एक ऐसे वशमे उत्पन्न हुए जो सैनिकवृत्तिको श्रेष्ठ समझता था, और जब सैनिकवृत्तिसे अवकाश ग्रहण करता तो दरवेशी अख्तयार कर लेता था। यही दोनो खान्दानी सिफात आतिशको भी विरासतमे मिली। वे सिपाहियाना बाँकपनसे रहते थे। कमरमे तलवार बाँधते थे। मुशायरोमे भी इसी सजधजसे जाते थे, और मन दरवेशका रखते थे। पचास रूपया मासिक वृत्ति नवाबके यहाँसे आती थी। १५ रु० घरखर्चको देकर बाकी सब महमाँ-नवाज़ी या गरीब-गुरबोमे खर्च कर डालते थे, और अक्सर औकात वृत्ति मिलनेसे पहले ही फकीर हो जाते थे। घर भी टूटा-फूटा-सा किरायेपर ले रखा था। वही बोरिया बिछाये बैठे रहते थे। गरीब-अमीर सब उसीपर आकर बैठते थे। न किसी नवाबकी नौकरी की न किसीकी खुशामदमे कभी एक कसीदा लिखा। न किसीके सामने दस्तेसवाल किया। अपने झोपड़ेमे बोरियेपर बैठकर फकीराना जिन्दगी व्यतीत की, और स्वभावमे जो खान्दानी सिपहगीरीकी तमकनत थी, वह तमकनत उम्रभर कायम रखी। यही तमकनत, बांकपन, सूफियानापन और सादगी उनकी शायरीमे है।

नासिख पहलवान और अमीर थे। उनकी शायरीमे भी पहलवानी

जैसे दाव-पेच और अमीरो-जैसा तकल्लुफ, बनावट और बाहरी रख-रखाव मिलता है। आतिश सिपाही और दरवेश थे। इसलिए उनकी शायरीमे भी सिपाहियाना तमकनत और दरवेशी, सादगी पाई जाती है।

नासिख और आतिश चूँकि समकालीन थे और एक दूसरेका शायराना रग बिलकुल भिन्न था, कही भी समानता नही थी, इसलिए परस्पर मत-भेद होना स्वाभाविक था। इसी मतभेद और विरोधी स्वभावके कारण कभी-कभी आपसमे नोक-झोक हो जाया करती थी। एक बार नासिख़ मुशायरेमे इतने विलम्बसे पहुँचे कि मुशायरा समाप्त हो चुका था। सभी लोग जा चुके थे। आतिश और उनके शिष्य चलनेको ही थे कि नासिखको देखकर ठहर गये और उनसे सभ्यताके नाते गज़ल पढनेका अनुरोध किया।

नासिखने अपनी गजलका मतला पढा—

> जो ख़ास है वोह शरीके गिरोहे आम नहीं।
> शुमार दानये तसबीहमें इमाम नहीं॥

मतला सुनते ही आतिशके शिष्योके दिल वेचैन हो उठे, क्योकि नासिखने इन सबपर उक्त मतलेमे चोट की है। यानी जिस तरह मालाके ऊपरके तीन दाने मालामे शुमार नही, उनसे ऊँचा दर्जा रखते है और वे मालाके साधारण मनके न कहलाकर इमाम कहलाते हैं। उसी तरह नासिख़ भी खास व्यक्तियोमे है। वे इतने आम नही कि मुशायरेमे पहलेसे आकर गिरोहमे बैठे। गज़ल पूरी होनेपर आतिशके एक शिष्यने वही तत्काल यह मतला बनाकर सुनाया—

> यह बज्म वोह है कि ताखीरका[1] मुकाम नहीं।
> हमारे गंजफेमें बाजिये गुलाम नहीं॥

---

[1]विलम्बका।

चूँकि नासिख़ ख़ुदाबख़्श ख़ेमादोजके दत्तके पुत्र थे, और ख़ुदाबख़्शके भाइयोने अदालतमे यह साबित करनेका प्रयत्न किया था कि नासिख़ दत्तक पुत्र नही, ख़ुदाबख़्शके गुलाम थे। उसी रवायतकी ओर उक्त मतलेमें इशारा किया गया है। चूँकि नासिख़का नाम इमामबख़्श था, इसलिए नासिख़के मतलेमे 'इमाम' शब्दने दुमायनीका मजा दिया था। इसी तरह 'गुलाम' शब्द डालकर उसने भी कमाल कर दिया, लेकिन शिष्य आख़िर शिष्य थे, और नासिख़ इस फनके माने हुए उस्ताद। अतः उन्होने भी तुरन्त जवाब दिया और ऐसा जवाब दिया कि जिसका कोई जवाब नही।

जो खास बन्दे हैं वोह बन्दये अवाम नहीं।
हज़ार बार जो यूसुफ़ बिके ग़ुलाम नहीं॥

यूसुफ तो पैगम्बर थे। वे मिस्रके बाजारमे गुलामोंके साथ बेचे गये और गुलामोकी तरह उन्हे ख़रीदा गया। फिर भी वे गुलाम न कहलाकर पैगम्बर ही कहलाये।

इसी तरह जब आतिशने नासिख़की गज़लोपर मुतवातिर ग़ज़ले कहनी प्रारम्भ की तो नासिख़ने कुढकर लिखा—

एक जाहिल कह रहा है मेरे दीवाँका जवाब।
बू मुसीलमने लिखा था जैसे क़ुरआँका जवाब॥

आतिशने इस मतलेका जो लाजवाब, जवाब दिया है उसकी दाद नही दी जा सकती।

क्यों न दे हर मोमिन उस मलहूदके दीवाँका जवाब।
जिसने दीवाँ अपना ठहराया है क़ुरआँका जवाब॥

नासिख़ और आतिश परस्पर शायराना चोटें तो करते थे, परन्तु इशा, मुसहफ़ीकी तरह दरबारों और बाज़ारोंमे नही लड़ते थे, वल्कि एक दूसरेकी ज़ाहिरा पोज़ीशनका ख़याल रखते थे। नासिख़ने आतिशके

विद्रोही शिष्योको न वरगलाकर समझा-बुझाकर आतिशके ही शिष्य बने रहनेकी सीख दी। और आतिशने नासिख़की मृत्युके वाद यह कहकर गज़ल ही कहना छोड दिया कि जब सुख़नफहम ही उठ गया, तव किसको सुख़न सुनाएँ। गोया—

"लज़्ज़ते इश्क़ गई ग़ैरके मर जानेसे"

इस अर्वाचीन युगमे शायरी देहली और लखनऊ स्कूलमे दाखिली और ख़ारिजी नामसे विभक्त हो जाती है। देहलीके शायरोमे इस युगमे ग़ालिव और मोमिन उर्दूके अमर शायर हुए हैं। लखनवी शायरोमे आतिश का आसन भी वहुत ऊँचा है और उनका शुमार गालिव और मोमिनके वाद बडे फ़ख़्रसे किया जाता है। लखनवी शायरोमे मर्सियागोई मे अनीसो-दवीर ऐसे सिद्धहस्त शायर हुए है कि इन सपूतोपर इनका मादरेवतन जितना भी अभिमान करे थोडा है। वकील नियाज़ फतहपुरी—"अगर लखनवी दौरे शायरी सिवाय अनीस-ओ-दवीरके किसी और शायर को न पैदा करती तो भी उसके लिए यह फ़ख़्र कम न था कि उसने ऐसी दो हस्तियाँ पेश की। गो उनका ताल्लुक भी हकीकतन देहलीसे था।"[1]

देहलीके बादशाहोमे बहादुरशाह जफर और लखनऊके नवावोंमे आसफुद्दौलासे वहतर कोई शायर नही हुआ। इस युगके देहलवी और लखनवी शायरोके सम्बन्धमे आज़ाद लिखते है—"इस दौरमे दो किस्मके बाकमाल नजर आएँगे। एक वे जिन्होने अपने वुज़ुर्गोंकी पैरवीको दीनो-आईन (धर्म वा कानून) समझा। यह उनके वागोमे फिरेगे। पुरानी शाखे, ज़र्द पत्ते काटे-छाटेगे और नये रग, नये ढगके गुलदस्ते वना-वनाकर गुलदानोसे ताक-ओ-ईवान सजायेगे। दूसरे वोह आली दिमाग जो फ़िक्रके दख़ानसे ईज़ादकी हवाएँ उडायेगे और वुर्जे आतिशवाज़ीकी तरह उससे रुतवएआली पाएँगे। इन्होने इस हवासे बड़े-बड़े काम लिये।

---

[1]इतकादियात, भा० २, पृ० १६०

मगर गज़ब यह किया कि गरदोपेश जो वुसअ़ते बेइन्तहा (चारों ओर विशाल भूमि) पड़ी थी, उसमे किसी जानिबसे नही गये। बालाखानों-मेंसे बाला-बाला उड़ गये। बाज बुलन्द परवाज ऐसे ओजपर उड़ जायेंगे, जहाँ आफताब तारा हो जायेगा, और बाज ऐसे उड़ेंगे कि उड़ ही जायेंगे। अबतक मज़मूनका फूल अपने हुस्नेखुदादादके जोबन (प्राकृतिक सौन्दर्य्य) से फ़साहतके चमनमे लहलहाता था। यह उसकी पखड़ियाँ लेंगे, और उनमें पर व क़लमसे ऐसी नक़्क़ाशी करेंगे कि बेऐनकके दिखाई न देगी। इस खयालबन्दीमे ये साहबेकमाल इस कुदरती लताफतकी भी परवा नही करेंगे, जिसे तुम हुस्ने खुदादाद समझते हो।"[1]

पहले हम लखनवी शायरोका परिचय और उनके श्रेष्ठ शेर देंगे, फिर देहलवी शायरोपर प्रकाश डाला जायगा।

२० सितम्बर १९४९

---

[1]आबेहयात, पृ० ३३९-४०

३६

अख़्तर

प्रस्तुत पुस्तकमे 'आतिश'तकका परिचय गतवर्ष २७ सितम्बर १९४९को लिखा जा चुका था और पुस्तक जुलाई ५०मे प्रेस भेज दी गई थी कि एक सप्ताह पूर्व मुझे उर्दूके प्रामाणिक आलोचक, ख्याति-प्राप्त शायर 'असर' लखनवीकी जनवरी १९५०मे प्रकाशित 'छानबीन' पुस्तक पढनेका अवसर मिला। उससे मेरी मालूमातमे एक और 'अख़्तर' शायरका इजाफा हुआ। उक्त पुस्तकसे उनका सक्षिप्त परिचय और कलाम यहाँ साभार दिया जा रहा है।

काज़ी मौलवी मुहम्मदसादिकखाँ 'अख़्तर' हुगली वगालेके काज़ी-ज़ादोमेसे थे। अपना असली वतन छोडकर १८१८ ई०मे लखनऊ गये और वहीके हो रहे। शायरीमे मिर्जा कतीलके शिष्य थे और लखनऊ राज्यमे तहसीलदारीके पदपर प्रतिष्ठित थे। नवाब गाज़ीउद्दीन हैदरने इनको मलिकउलशुअराका खिताब दिया था। चूँकि इनकी उम्रका एक बहुत बडा हिस्सा लखनऊमे व्यतीत हुआ था, इसलिए यह स्वय भी अपने-को लखनवी कहते थे और अहले लखनऊ भी इन्हे लखनवी समझकर गर्वका अनुभव करते थे।

अख़्तरने मुसहफी, इशा और जुरअतके मुशायरोकी भी धमा-चौकडी देखी और आतिश-ओ-नासिख़के भी मार्के देखे। वाजिदअली-शाहने भी इनका आदर सत्कार किया था, किन्तु किसी बातपर रुष्ट हो गये तो इन्हे लखनऊ छोडना पड़ा। १८५७के विप्लवके पश्चात् इनकी

मृत्यु हुई। 'आबेहयात'से विदित होता है कि नासिख़को शुरू-शुरूमें इन्हींसे प्रोत्साहन मिला था।[1]

दिल्ली उजड़नेके बाद लखनऊ गुलजार हुआ तो वहाँकी आबो-हवाने कुछ ऐसा रंग अख़्तियार किया कि जो वहाँ पहुँचा, उसी रंगमे सरा-बोर हो गया। यहाँतक कि मीर तक़ी 'मीर' जिनका कलाम व्यथा-पीड़ासे ओतप्रोत है और जो उर्दू-शायरीके ख़ुदाए सुख़न कहलाते है, लखनऊमे रहते-रहते वहाँके वातावरणसे प्रभावित हुए बिना न रह सके और उनकी जवानसे भी ऐसे शेर निकल गये—

मिलो इन दिनों हमसे एक रात जानी।
कहाँ हम, कहाँ तुम, कहाँ फिर जवानी॥

और इशा, जुरअत, मुसहफी देहलवी होते हुए भी लखनवी रंगमें जिस तरह गर्क हुए, उसका जिक्र ही क्या? उत्तरोत्तर शायरीका यह बदनुमा दाग बढ़ता ही गया। एक दिन वे थे कि लखनऊको देहलवी शायरीपर ईर्ष्या होती थी। अब नौबत यहाँतक पहुँची कि अहले देहली लखनवी स्कूलका अनुसरण करने लगे। यहाँतक कि देहलीके अमर शायर गालिबो मोमिनने भी शुरू-शुरूमे लखनवी स्कूलके मुसल्लिम-उलसबूत उस्ताद नासिख़ का अनुसरण करनेका प्रयत्न किया, वह तो ख़ैरियत हुई कि उन्हे सफलता नही मिली और जल्दी ही देहलवी शायरी-की तरफ रागिब हो गये। वर्ना आज उर्दू-शायरीका जो विकृत रूप होता, उसका अनुमान लगानेसे भी हृदय सिहर उठता है, और शाह नसीर-ओ-ज़ौक तो दिल्लीके नासिख कहलाते ही थे।

दिल्लीके सभी शायर दाख़िली शायरी करते थे, उनका हर एक शेर दिलसे निकलता था और लखनवी शायर सभी ख़ारजी शायरी करते

---

[1] छानबीन, पृ० १३२।

थे। उनकी शायरीमे बनावट, तकल्लुफ और अश्लीलता भरी रहती थी, यह धारणा भ्रामक है। ख़ारजी शायरीके लिए केवल अहले लखनऊ-पर बोहतान लगाना और उसका आविष्कारक नासिख़को घोषित करना उचित नही। लखनऊमे भी आतिश-जैसा गज़लगो और अनीस-ओ-दबीर-जैसे मर्सियागो हुए है। वह तो लखनऊका वातावरण ही उन दिनो ऐसा था कि, जो वहाँ पहुँचता था, वहाँकी बोली बोलने लगता था। बकौल अकबर—

मेरे सैय्यादकी तालीमकी है धूम गुलशनमें।
यहाँ जो आज फँसता है, वह कल सैयाद होता है ॥

सौदा देहलवी होते हुए भी ख़ारजी रंगके शैदा थे। इंशा, जुरअत, मुसहफी देहलवी होते हुए भी लखनवी हमाममे नगे कूद पड़े। शाह नसीर और ज़ौक दिल्लीमे रहते हुए भी लखनवी ख़ारजी रंगका कलमा पढते रहे। फिर नासिख़ गरीबका ही क्या कुसूर?

नवाबोके भोग-विलास और उनकी स्वच्छन्द कामुक क्रीड़ाओके कारण शनैः-शनैः लखनऊका वातावरण दूषित होता गया। दाख़िली रग धीरे-धीरे मिटता गया और ख़ारजी रंग उत्तरोत्तर गहरा होता गया। नासिख़से पहले ही अहले लखनऊ ख़ारजी रंगकी तरफ राग़िब हो चुके थे। उनसे पूर्व अख़्तर इसी रगमे शेर कह रहे थे, और वे मामूली शायर नही, मलिकउलशुअरा थे। इसी रंगको नासिख़ने पक्का कर दिया, और उनके युगमे हर लखनवी शायर इसी रंगमे सराबोर हो गया। यहाँतक कि इस रंगके छीटे अहले देहलीपर भी जा पड़े। नासिख़के समकालीन और लखनवी होते हुए भी आतिशने इस रंगसे अपना दामन बचाना चाहा, परन्तु बेदाग वे भी न रह सके।

नासिख़से काफी पहले अख़्तर ख़ारजी रंगमे कह रहे थे। विद्वता-का प्रदर्शन करनेके लिए क्लिष्ट, कर्ण-कटु और अव्यवहृत नये-नये शब्दोंका

प्रयोग करनेमें नासिख तो बदनाम है ही, परन्तु ये भी कुछ कम न थे। इनका कलाम भी काफ़ी दुरूह है। इनके कलाममे नित, जाए है, मियाँ, सो, प्यारे, बसे है, झमकी, मत, बुताँ, ज्यूँ, ऐसे बहुतसे शब्द मिलते है, जो नासिख-ओ-आतिशने बादमें शायरीसे ख़ारिज कर दिये थे। हम इनके सरल-से-सरल और उक्त शब्दोसे रहित अशआर देनेका प्रयत्न कर रहे हैं —

ख़ानाआबाद ! इश्कने तेरे,
आह ! किस-किसको दरबदर न किया ॥
हुए जिसकी हवामें ख़ाक, उसने—
ख़ाकपर भी कभू गुज़र न किया ॥

ग़म नहीं, हमसे अगर सारा ज़माना छूटा ।
पर ग़ज़ब है कि तेरे कूचेका आना छूटा ॥

समझके रखियो कदम बहरेइश्कमें[1] 'अख्तर' !
निहंगेग़म हैं यहाँ बेहिसाब दर तहे आब[2] ॥

जान खोई, ख़राब की दौलत ।
दिलपुरइज़्तराब की दौलत ॥
अब्रेरहमतसे रूशनास हुए ।
गिरयए बेहिसाबकी दौलत ॥
वस्लमें भी रहा सकूते वहम ।
डरके बाइस, हिजाबकी दौलत ॥

गो उठ गये तुम पाससे पर ध्यान तुम्हारा ।
जाएगा कहाँ दीदये हैराँसे निकलकर ॥
याँ तक तू ही लाई, न सता अब मुझे वहशत !
मैं और कहाँ जाऊँ बयाबाँसे निकलकर ॥

---

[1]प्रेमरूपी नदीमे;
[2]ससाररूपी समुद्रमे गमरूपी मगर-मच्छ बेहिसाब है ।

मुन्तज़िर[1] यारके बैठे हैं लिये सब सामाँ।
साक़ी-ओ-मुतरिबा[2]-ओ-साग़िर-ओ मीना दरवेश ॥

गर्चे 'अख़्तर' चुप है और ताक़त नहीं फ़रियादकी।
है वले[3] उसकी ज़बाँ आतिश फ़िशाँ[4] मानिन्दे शमअ़ ॥

सुहबते अहले हविस हुस्नको खो देती है।
गर हवासे न मिले क्यों हो परेशानिये शमअ़ ॥

कल सैर देखी मारकये हुस्नोइश्क़में।
था इस तरफ़ पतंग बिचारा उधर चिराग़ ॥
जो दिलजले हैं जानते हैं दिलजलोंकी क़द्र।
परवाने-साँ कोई नहीं जलता, मगर चिराग़ ॥

देखा न ज़िन्दगीमें तुझे हमने यार हैफ़।
हसरतभरे जहाँसे चले हम, हज़ार हैफ़ !!

यही ग़म है दिलको 'अख़्तर' कि वह माह महर परवर।
न हुआ कभी क़रारेदिल बेक़रारे आशिक़ ॥

सौ टुकड़े हो गया न सुनी हमने पर सदा।
क्योंकर न जीको भाये अदाए शकिस्तेदिल ॥

ध्यान तेरा हमें दमभर भी न भूला हरगिज़।
पर तेरी यादसे अफ़सोस फ़रामोश हैं हम ॥

दो-चार होते हैं जिस वक़्त उस निगाहसे हम।
तो जाते रहते हैं बस अपने अख़्तियारसे हम ॥

---

[1]प्रतीक्षामें, [2]गायक, [3]लेकिन;
[4]आग झाड़नेवाली, शोले भड़कानेवाली।

लोग जब सुनते हैं किस्से तेरे दीवानेके ।
क़ैस-ओ-फ़रहादके अफसाने उठा रखते हैं ॥

जान दे बैठें तो देखे न कभी आँख उठा ।
ऐसे बेदीदसे हम चश्मेवफा रखते हैं ॥

'अख़्तर' ! जहाँमें हरकोई रखता है आश्ना ।
अपना बजुज़ख़ुदा[1] कोई यार आश्ना नहीं ॥

शिद्दतेग़मसे, हुजूमेदर्दसे, अफ़सुर्दा हूँ ।
मर्गसे कह दो कि मैं जीनेसे अब आज़ुर्दा हूँ ॥

ढूँढें कहाँ कि आप ही में पाते हैं तुझे ।
नादाँ नहीं कि और कहीं जुस्तजू करें ॥

मिलना तू एक बार न मौक़ूफ़ हमसे कर ।
ता रफ़्ता-रफ़्ता हम तेरे हिजराँसे ख़ू[2] करें ॥

उश्शाक़को[3] क़ुबूल नहीं होती बन्दगी ।
जबतक वोह ख़ूनेदिलसे न अपने वज़ू करें ॥

फ़िराकेयारमें 'अख़्तर' ! सुनाऊँ हाल क्या अपना ।
न दिनभर चैन है दिलको, न शबको ख्वाब आँखोंमें ॥

ऐ जाँ ! अदमकी[4] राहमें है डर तुझे अबस[5] ।
तू साथ मेरे हो ले कि मैं राहदीदा[6] हूँ ॥

जिगर, सीनओदिल ठिकाने बहुत हैं ।
तेरे तीरके याँ निशाने बहुत हैं ॥

---

[1]ख़ुदाके अतिरिक्त; [2]अभ्यास;
[3]आशिकोंकी, [4]परलोककी;
[5]व्यर्थ; [6]मार्गसे परिचित ।

किसीने कही—तुमपै मरता है 'अख़्तर'।
कही उसने—ऐसे दिवाने बहुत हैं॥

वादे ख़िलाफ़ जिससे हुए लाख, देखना।
बैठा हूँ उसके वादेपर फिर किस यक़ींसे मैं॥

यह जो कहते हो यारो कि "यारसे मिल, उसे हाल सुना कि वोह होवे ख़िजल"[1]।
करूँ किस तरह उससे बयाँ ग़मेदिल, मुझे बज़्मतक उसकी तो बार[2] नहीं॥

इश्क़में दीदओदिल ही नहीं तनहा दुश्मन।
जो उसे प्यार करे है वोह हमारा दुश्मन॥

तू जो चाहे सो कहे ऐ बुतेबदख़ूह! मुझको।
आजतक वर्ना किसीने न कही 'तू' मुझको॥
क़त्लका ग़म नहीं, ग़म है कि कहीं इसपर भी।
बेवफ़ा समझे न वोह शोख़ जफ़ाजू[3] मुझको॥

ख़ूँसे आलूदा कहीं दामने जल्लाद न हो।
मुज़तरब इस क़दर ऐ बिस्मिले नाशाद न हो॥

आए थे जिस कामको याँ उससे ग़ाफ़िल हो गये।
ख़्वाबेग़फ़लतमें जो देखा सबको, हम भी सो गये॥

आस्ताने हक़ जब अपने वास्ते मौजूद है।
क्यों दरेनवाब ओ ख़ाँपर[4] जिबहसाई[5] कीजिये॥

गिरकर ज़मींसे फिर न उठे मिस्ले नक़्शेपा[6]।
यारब! यह किसके कुश्तयेरफ़्तार हम हुए॥

---

[1]लज्जित; [2]पहुँच; [3]अत्याचारी;
[4]अमीरों की चौखट पर; [5]नतमस्तक होना; [6]पद चिह्नकी तरह;

आती नहीं सदा भी आहेहज़ींकी अब तो।
ग़ाफ़िल ख़बर ले अपने बीमारे नातवाँकी ॥
ऐ उम्रेरफ़्ता ! अब तू आती है याद मुझको।
औक़ात तेरी मैंने क्या मुफ़्त रायगाँ की ॥

जो भूलकर भी याद न उसने किया कभी।
यादश बख़ैर शाद रहे, वोह जहाँ रहे ॥

यह दिलबरी, यह नाज़, यह अन्दाज़, यह जमाल।
इन्साँ करे अगर न तेरी चाह, क्या करे ?

क़द्र अपनी इस जहाँमें इन्साँ अगर न समझे।
इन्सान उसको हरगिज़ अहलेनज़र न समझे ॥

तू तो सरमस्तेमये नाज़ है क्या इससे तुझे ?
कोई दिलशाद रहे या कोई नाशाद रहे ॥
छानते ख़ाक रहे इश्क़में बरसों 'अख़्तर'।
उसने पूछा भी न, "किसके लिये बरबाद रहे" ॥

ख़फ़ा नामेसे होता है वोह, क़ासिद !
मेरा पैग़ाम तू कहियो ज़बानी ॥

यूँ मिला तीरके पैकाँसे तेरे दिल अपना।
मेज़बाँ[1] दौड़के जिस तरहसे महमाँसे मिले ॥

अजब ढंगकी यह तामीरी ख़राब-आबादे हस्ती है।
कि पस्ती याँ बुलन्दी है, बुलन्दी याँकी पस्ती है ॥

---

[1]महमानका स्वागत-सत्कार करनेवाला।

तरद्दुद[1] क्यों तुम्हें ऐ साकिनाने मुल्के हस्ती है।
अदमकी राह सीधी है बुलन्दी है न पस्ती है॥
जहाँके बाग़में होगी बहार अगले ज़मानेमें।
हमारे अहदमें इसपर तो वीरानी बरसती है॥
समझ हरएकको हुश्यार हम आये थे याँ 'अख़्तर'!
बचश्मेग़ौर जो देखा तो मतवालोंकी बस्ती है॥

क्या खबर सुनाता है यारके न आनेकी।
बात है यह ए क़ासिद! मेरे जीके जानेकी॥
ख़ू[2] वहाँ नहीं जाती दमबदम सतानेकी।
याँ रही नहीं ताक़त अब जफ़ा उठानेकी॥
तन जले नहीं परवा, सर कटे नहीं कुछ ग़म।
सीखे शमअ़ से कोई वजह जी खपानेकी॥

बात वोह सच है जो दुश्मनकी ज़बाँसे हो अदा।
वस्फ़े चश्मेयार पूछो नरगिसेग़म्माजसे॥

जान दी लेकिन न उसके आस्ताँसे उठ सके।
अश्क-साँ[3] जिस जा गिरे हम फिर न वाँसे उठ सके॥

क़लक है, दर्द है, क़ाहिश है, ग़म है, नातवानी है।
फ़िराक़े यार है ये या बलाये नागहानी है॥
ख़ुदा जाने अभी क्या-क्या दिखायेगा ग़मेहिजराँ।
रहे हैं अबतलक जीते यह अपनी सख्त जानी है॥
'अख्तर'को देख नज़अ़में[4] हमने तो रो दिया।
हसरतसे उसने जानिबेदर जो निगाह की॥

---

[1]सोच विचार; [2]आदत, [3]आँसूकी तरह;
[4]मृत्युकी अन्तिम अवस्थामे।

ख़ाक किस-किस न गली-कूचेकी छानी ए वाए ।
जबसे क़िस्मतने किया दूर तेरे दरसे मुझे ॥

गो शमअ़का जलना भी है सब खल्कपै रोशन ।
पर सोजे निहाँको[1] मेरे पाती नहीं वह भी ॥
एक आह जो थी बेकसयेहिज्रमें[2] हमदम[3] !
सो जोफ़से[4] अब लबतलक आती नहीं वह भी ॥

बातोंमें बना लेवे जो टूटे हुए दिलको ।
यह सहर[5] है, एजाज़[6] है या शीशागरी है ॥

जहाद[7] उसको नहीं कहते कि होवे ख़ून इन्साँका ।
करे जो क़त्ल अपने नफ़्सेकाफ़िरको,[8] वोह गाज़ी है ॥

दिलके दो टुकड़े किये मिनकारे बुलबुलकी[9] तरह ।
इश्कने बख़्शा है तब शौक़े गजलख़्वानी मुझे ॥

रंजो क़लक़ो आहो फ़ुग़ाँ गिरयाओज़ारी ।
इन सारी बलाओंका बस इक इश्क सबब है ॥

अबस[10] है जिन्दगी ऐ ख़िज़्र ! जब हमदम न हो कोई ।
हमें ऐसी हयाते जाविदानी[11] खुश नहीं आती ॥

२४ सितम्बर, १९५०

---

[1]अंतरंगकी जलन को; [2]विरहकी विवशतामे; [3]मित्र, साथी;
[4]निर्बलताके कारण; [5],[6]जादू; [7]धर्म-युद्ध;
[8]विषय-वासनाओं को; [9]बुलबुलकी चोंच की; [10]व्यर्थ;
[11]अमर जीवन ।

४०

नासिख़

शेख़ इमामबख्श 'नासिख़' फैजाबादके ख़ुदाबख्श ख़ेमादोज़के दत्तक पुत्र थे। अस्ल पिता लाहौरके रहनेवाले थे, और काबुलोकाश्मीरसे बनफ्शा और केसर लाकर फेरीमे बेचा करते थे। ख़ुदाबख्श फैज़ाबादीने इन्हे अपनी औलादकी तरह लाड़-प्यारसे रखा और अरबी-फारसी पढ़ने-लिखनेका उत्तमोत्तम प्रबन्ध किया। ख़ुदाबख्शकी मृत्युके उपरान्त उसके भाइयोंने नासिख़को धता बतानेका इरादा किया, किन्तु नासिख़ने नम्रतापूर्वक निवेदन किया कि "मुझे धन-दौलतसे कोई सरोकार नही, जिस तरह उनको बाप समझता था, आपको समझता हूँ। उनकी तरह आप भी मेरी आवश्यकताओंकी पूर्त्ति करते रहे, मुझे और कुछ नही चाहिए"; परन्तु ख़ुदाबख्शके भाई-बन्द तो इन्हें अपने रास्तेका काँटा समझते थे और सम्पूर्ण धन-दौलत हथियाना चाहते थे। अतः उन्होंने नासिख़के भोजनमे विष मिला दिया, किन्तु नासिख़को किसी तरह विषका आभास हो गया, और उन्होने दस-पाँच मित्रोके सामने कुत्तेको भोजनका अश डाला तो वह तत्काल मर गया। विषसे बचनेपर नासिख़पर इस उज्रके साथ दावा दायर कर दिया गया कि "यह ख़ुदा-बख्शका दत्तक पुत्र नही गुलाम है।" अन्तमें न्यायालयका निर्णय भी नासिख़के पक्षमे ही हुआ। तब नासिख़ने चन्द रुबाइयाँ लिखकर जो अपने मनोभाव व्यक्त किये थे, उनमेसे दो यहाँ दी जा रही है—

मशहूर है गर्चे इफ़तराये अमाम।
पर, करते नहीं ग़ौर ख़वास और अवाम॥

वारिस होना दलीले फरज़न्दी है।
मीरास न पा सका कही कोई गुलाम ॥

कहते रहे अग़्याम अदावतसे गुलाम।
मीरासेपिदर पाई मगर मैंने तमाम ॥

इस दावये बातिलसे सितमगारोंको।
हासिल यह हुआ कर गये मुझको वदनाम ॥

अवधकी राजधानी लखनऊ बनाये जानेपर नासिख़ भी फ़ैज़ाबादसे लखनऊ चले आये और वही जीवन पर्यन्त रहे। शायरीमे वे किसीके शिष्य नही थे। फर्माते हैं—"मीर तकी मरहूम (स्वर्गीय) अभी ज़िन्दा थे। मुझे जौकेसुख़नने वेअख्तयार किया। एक दिन अग़यार (शत्रुओं)-की नज़रे बचाकर कई ग़ज़ले खिदमतमे ले गया। मगर उन्होने इसलाह न दी। मै दिलशिकस्ता होकर चला आया, और कहा कि मीर साहव भी आखिर आदमी है, फरिश्ते तो नही। अपने कलामको आप ही इसलाह दूँगा। चुनाचे कुछ कहता था और कुछ छोड़ता था। चन्द रोज़के वाद फिर देखता। जो समझमे आता इसलाह करता और रख देता। कुछ अर्सेके वाद फिर फ़ुरसतमे नज़रसानी करता और वनाता। ग़रज़ मश्कका सिलसिला वरावर जारी था, लेकिन किसीको सुनाता न था। जवतक खूब इत्मीनान न हुआ मुशायरोमे गज़ल न पढी, न किसीको सुनाई। मिर्ज़ा हाजी साहवके मकानपर मुशायरे होते थे। सैयद इशा, मिर्ज़ा कतील, जुरअत, मुसहफी वगैरह सब शुअरा जमा होते थे। मै भी जाता था। सबको सुनता था, मगर वहाँ कुछ न कहता था। उन लोगोमे जो नमक-मिर्च सैयद इशा और जुरअतके कलाममे होता था, वह किसीकी जबानमे न था। गरज़ सैयद इशा और मुसहफीके मार्के भी हो चुके। 'जुरअत' और ज़हूर-अल्लाख़ाँ 'नवा'के हगामे भी तय हो गये। जव ज़माना सारे वरक

उलट चुका और मैदान साफ हो गया तो मैंने गजल पढनी शुरू की।"[1]

धीरे-धीरे मुशायरोंमें रग जमने लगा और नासिख़ अभ्यास करते-करते स्वयं एक अच्छे उस्ताद बन गये और अपने शिष्योकी कविताओंका संशोधन करने लगे। कुछ लोगोंका कहना है कि प्रारम्भमे 'मुसहफ़ी'से इसलाह लेते रहे, परन्तु किसी शेरके सशोधनपर ऐसा मनोमालिन्य बढा कि 'मुसहफी'ने इन्हे फिर अपने यहाँ नही आने दिया।

नासिख़को पहलवानीका भी अच्छा शौक था। १३०० डंड रोजाना लगाते थे। डील-डौल भी अच्छा लम्बा-चौड़ा था। चकला सीना, घुटा हुआ सिर, कहरवेका तहमद बाँधते थे। जाडोमें भी तनज़ेबका कुरता पहनते थे। कभी-कभी लखनवी छीटका दुहरा कुरता भी पहन लिया करते थे।

४-५ आदमियोकी जितनी ख़ुराक थी। दो नौकर उनके जूठे बर्तन उठा पाते थे। पाँच सेर वजने-शाहजहानीकी ख़ूराक थी। किसीके सामने भोजन न करके एकान्तमे करते थे। रग काला था। कवी हैकल जवान थे। इसलिए इनके प्रतिद्वन्द्वी इन्हे दुमकटा भैसा कहा करते थे। मौ० मुहम्मदहुसैन आजाद इनके भोजनभट्टपनेका एक वाकआ लिखते है—

"एक तहसीलदारके यहाँ नासिख़ मेहमान थे। उन्होने कई किस्मके ख़ास-ख़ास खाने इनके लिये पकवाये। इसलिये वक्ते मामूलीसे कुछ देर हो गई। नासिख़ने देखा कि हरम सराकी (जनानी) ड्योढीसे नौकर अपने-अपने खाने लेकर निकले। बुलाकर पूछा कि ये खाना किसके लिये है? अर्ज की हमारा खाना है। फर्माया इधर लाओ। उनमेसे ४-५का खाना सामने रखवा लिया। चाट-पूँछकर बासन हवाले किये।

---

[1]आबेहयात, पृ० ३४५-४६

और कहा कि हमारा खाना आयगा तो तुम खा लेना। मेजवानको खबर पहुँची। इतनेमे वोह आये, यहाँ काम खत्म हो चुका था।"[1]

नासिख़को ख़ुदाबख़्शकी दौलत मिल गई थी। वह ख़ुशहालीसे जीवन व्यतीत करनेको काफी थी। इसलिए नौकरी करनेकी आवश्यकता ही नही पडी और शायरीकी बदौलत उनकी सर्वत्र आवभगत होने लगी। राजनैतिक षडयन्त्रोसे घवड़ाकर कुछ दिनो इलाहावाद चले गये, तो राजा चन्दूलाल वजीरे आजम हैदरावादने वारह हजार रुपये भेजकर इन्हे हैदरावाद आनेका निमन्त्रण दिया; परन्तु ये वहाँ नही गये। फिर उन्होने पन्द्रह हज़ार रुपये भेजे और आनेका आग्रह करते हुए लिखा कि "मलिकउल शुअरा (राष्ट्रकवि)का खिताव दिलवा दूँगा। दरवारकी हाज़िरीकी कैद न रहेगी, मुलाकात आपकी ख़ुशीपर रहेगी", परन्तु नासिख़ हैदरावाद नही गये और वहाँसे आये हुए सत्ताईस हज़ार रुपये आवश्यकतानुसार व्यय करते रहे। इसी तरह कई नवाव, रईस, अमीर शिष्य उनकी आवश्यकताओकी पूर्ति करना अपना अहोभाग्य समझते थे। वहुत कम सफर करते थे। फ़ैज़ावादसे लखनऊ आ गये थे। यहाँसे केवल इलाहावाद, वनारस और पटना तक आये गये थे।

स्वाभिमानी इतने थे कि लखनऊके तत्कालीन नवाब गाज़ीउद्दीन हैदरने अपने वजीरसे कहलवाया कि—"अगर शेख़ नासिख़ हमारे दरवार-मे आएँ और कसीदा सुनाएँ तो हम उन्हे मलिकउलशुअरा ख़िताव दे।"

नासिख़ने सुना तो बिगड़कर वोले—"मिर्ज़ा सुलेमान शिकोह[2], वादशाह हो जाएँ तो वे ख़िताव दे। या गवरमेण्ट इगलिशया ख़िताव दे। मैं नवाबका ख़िताव लेकर क्या करूँगा ?" नवाबके कुपित हो जानेसे

---

[1]आबेहयात, पृ० ३४९

[2]मिर्ज़ा सुलेमान शिकोह, बादशाह शाहआलमके तृतीय पुत्र थे। रात-दिनके आक्रमणोसे तग आकर लखनऊमे रहने लगे थे।

नासिख़ लखनऊ छोड़कर इलाहाबाद तो चले आये, परन्तु नवाबकी ख़ुशामद नही की। नवाबकी मृत्यु उपरान्त ही लखनऊ गये। फिर भी कई बार उन्हें राज्याधिकारियोंका कोपभाजन होनेके कारण लखनऊ छोड़कर इलाहाबाद जाना-आना पड़ा। मौ० मुहम्मदहुसेन आजादने नासिख़के स्वभावके सम्बन्धमें कई घटनाओका उल्लेख किया है—

"नासिख़ ख़ुश अख़लाक थे। मगर अपने ख़यालातमे इतने महव (तल्लीन) रहते थे कि नावाकिफ शख़्स ख़ुश्क मिजाज या बद्दिमाग़ समझता था। सैयद महदीहुसेन 'फ़राग' मरहूम मियाँ बेताबके शागिर्द थे और ज़बाने रेख़्ताके कुहनासाल मश्शाक (पुराने अभ्यासी) थे। वे फ़र्माते थे कि—एक दिन मै शेख़ साहब (नासिख़) की ख़िदमतमे गया। देखा कि चौकीपर बैठे नहा रहे है। आस-पास चन्द अहबाब मूढ़ोंपर बैठे है। मै सामने जाकर खड़ा हुआ और सलाम किया। उन्होंने फ़रमाया—क्यों साहब! किस तरह तशरीफ़ लाना हुआ? मैने कहा कि एक फ़ारसीका शेर किसी उस्तादका है। उसके मायने समझमें नहीं आते। फ़र्माया—मै फ़ारसीका शायर नही। इतना कहकर वह और शख़्ससे बात करने लगे। मै अपने जानेपर बहुत पछताया और अपने तईं मलामत करता चला आया।"

२—"एक दिन कोई शख़्स मुलाकातको आये। नासिख़ उस वक़्त चन्द दोस्तोको लिये अँगनाईमे कुर्सियोपर बैठे थे। शख़्स मज़कूरके हाथमें छड़ी थी और इत्तफाकन पाँवके पास एक मिट्टीका ढेला पड़ा था। वह शग़ले बेकारीके तौरपर, जैसे कि अक्सर लोगोंकी आदत होती है, आहिस्ता-आहिस्ता छड़ीकी नोकसे ढेलेको तोड़ने लगे। शेख़ साहबने नौकरको आवाज दी। सामने हाज़िर हुआ। फर्माया कि—मियाँ एक टोकरी मिट्टीके ढेलोकी भरकर इनके सामने रख दो, दिल लगाकर शौक पूरा करे।"

३—"शाहगुलामअजीम 'अफजल' नासिख़के शागिर्द थे और अक्सर

हाज़िरे ख़िदमत होते थे। एक दिन आप तख़्तपर बैठे थे। उसपर सीतल पाटी बिछी थी। अफ़ज़ल भी उसीपर बैठ गये और उसका एक तिनका तोड़कर चुटकीसे तोडने-मरोडने लगे। शेख़ साहबने आदमीको बुलाकर कहा—भाई! वह नई झाड़ू जो तुम बाजारसे लाये हो, ज़रा ले आओ। उसने हाजिर की। ख़ुद लेकर शाहसाहबके सामने रख दी और कहा—साहबज़ादे! इससे शगल फरमाइये। फ़क़ीरका बोरिया आपके थोड़ेसे इल्तफात (कृपाओं)से बरबाद हो जायगा। फिर और सीतलपाटी इस शहरमे कहाँ ढूँढता फिरूँगा?"

४—"आगाकल्ब आबिदख़ाँ फरमाते थे कि—'एक दफे शेख़ साहबके वास्ते किसी शख़्सने दो-तीन चमचे शीशेके तुहफ़ेके तौरपर भेजे। एक अमीरज़ादेने उनमेसे एक चम्मच हाथमे लेकर उसकी तारीफ की। बातें करते हुए चम्मचको ज़मीनसे बजाते रहे। शीशेकी बिसात क्या थी? ठेस ज्यादा लगी, झटसे दो टुकड़े। शेख़ साहबने दूसरा चमचा उठाकर सामने रख दिया और कहा कि "अब इससे शगल फरमाइये।"

५—"एक रोज अपने खानयेबागके बँगलेमे बैठे थे और फ़िक्रे मज़मूनमे गर्क थे। एक शख़्स आकर बैठे। इनकी तबियत परेशान हुई। उठकर टहलने लगे कि यह उठ जाएँ। लाचार फिर आ बैठे, मगर वह (आगन्तुक) न उठे। किसी जरूरतके बहाने नासिख़ फिर गये कि यह समझ जायेगे। वे फिर भी न समझे। इन्होने चिलमसे चिनगारी उठाकर बँगलेकी टट्टीमे रख दी और आप लिखने लगे। टट्टी जलनी शुरू हुई। वह शख़्स घबराकर उठे और कहा कि शेख़ साहब! आप देखते है यह क्या हो रहा है? इन्होंने उनका हाथ पकड़ लिया कि जाते कहाँ हो? अब तो मुझे और तुम्हे जलकर राखका ढेर होना है। तुमने मेरे मजामीनको ख़ाकमे मिलाया है, मेरे दिलको जलाकर ख़ाक किया है। अब क्या तुम्हे जाने दूँगा।"

६—"इसी तरह एक शख़्सने बैठकर इन्हे तग किया। नौकरको

बुलाकर नासिख़ने सन्दूकचा मँगवाया। उसमेसे मकानके क़बाले निकालकर उसके सामने रख दिये और नौकरसे कहा—भाई मजदूरोंको बुलाओ और असबाब उठाकर ले चलो। इधर वह शख्स हैरान इनका मुँह देखे, उधर नौकर हैरान। आपने कहा—"देखते क्या हो? मकान पर तो यह कब्जा कर चुके। ऐसा न हो कि असबाब भी हाथसे जाता रहे?[1]"

नासिख़ अपने युगके और लखनवी रंगके ख्यातिप्राप्त उस्ताद थे। लोग दूर-दूरसे मुलाक़ातको आते थे, और इनके मुँहसे थोडा-बहुत कलाम भी सुनना चाहते थे, परन्तु नासिख़ अपना कलाम सहज ही नही सुनाते थे। दीवान सामने रख देते थे, और कह देते थे कि अपनी मनपसन्दके अशआ़र इसमें देख लीजिये। १०-५ बेमायनी गजले बना रखी थी। बहुत आग्रह होनेपर पहले उन्हीके शेर सुनाते थे। श्रोता सुनकर सोचमें पड़ गया तो समझते थे कि वह सुख़नफहम (कवितामर्मज्ञ) है और तव उस कविता-पारखीको अपना कलाम सुनाते थे, और यदि ऐसे निरर्थक शेर सुनकर श्रोता वाह-वाह करने लगता, झूमने लगता, तो उसे मूर्ख समझकर इसी तरहके २-४ शेर और सुना दिया करते थे। जैसे—

आदमी मख़मलमे देखे मोर्चे बादाममें।
टूटी दरियाकी कलाई ज़ुल्फ़ उलझी बाममें॥

तूने नासिख़ वोह ग़ज़ल आज लिखी है कि हुआ।
सबको मुश्किल यदेबैज़ामें सुख़नदाँ होना॥

नासिख़ सहृदय और मुन्सिफ मिज़ाज थे। एक बार सैयद मुहम्मदखाँ 'रिन्द'की अपने उस्ताद (आतिश)से अनवन हो गई। 'नासिख़' 'आतिश'के प्रतिद्वन्द्वी समझे जाते थे। अतः 'रिन्द'की अभिलाषा थी कि वह 'नासिख़'के

---

[1] आबेहयात, पृ० ३६३-६४

शिष्य बनकर 'आतिश'को नीचा दिखाएँ। कोई और होता तो चट पीठ थपक देता और—दुश्मनका दुश्मन अपना दोस्त होता है—इस कहावतके अनुसार रिन्दके पुट्ठेपर हाथ धर देता। परन्तु नासिखको रिन्दकी यह हरकत पसन्द न आई। फर्माया—"आप दस बरससे ख्वाजा (आतिश) साहबसे इसलाह लेते है। आज उनसे यह हाल है, तो कल मुझे आपसे क्या उम्मीद हो सकती है? अलावा बरआँ आप ख्वाजा साहबसे कुछ सलूक भी करते (आर्थिक सहायता देते) है। वह सिलसिला क़तअ़ (बन्द) हो जायेगा। उसका ववाल (पाप) किधर पड़ेगा?" नासिखके इस कथनका 'रिन्द'पर इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होने फिर अपने उस्ताद-को मनाकर उनकी कृपा प्राप्त करली।

इलाहाबादमे मुशायरा था। नासिख़ने अपनी गज़लका मतला पढ़ा—

दिल अब महवे तर-सा हुआ चाहता है।
यह काबा कलीसा हुआ चाहता है॥

एक लड़केने उचककर देखा तो उसकी भोली-भाली शक्ल और उसकी उत्सुकतासे प्रकट होता था कि वह भी कुछ कहना चाहता है, परन्तु सामने आते हुए शर्माता है। लोगोके उत्साह दिलानेपर उसने हिम्मत बाँधकर ग़ज़ल पढ़ी तो पहले मतलेपर ही वाह-वाहकी धूम मच गई।

दिल उस बुतपै शैदा हुआ चाहता है।
खुदा जाने अब क्या हुआ चाहता है॥

'नासिख'ने भी मुक्त कण्ठसे प्रशसा की और फ़र्माया—"भाई यह फ़ैज़ाने इलाही (ईश्वरीय अनुकम्पा) है। इसमे उस्तादीका ज़ोर नहीं चलता। तुम्हारा मतला मतलये आफताब (सूर्यकी तरह ऊँचा और चमकीला) है। मैं अपना पहला मिसरा अपनी गज़लसे निकाल डालूंगा।"

शाह नसीरके इस मतलेकी अक्सर सराहना करते थे और कहा

करते थे कि अगर 'नसीर' तख़ल्लुस न होता तो यह मतला लिखना नसीब न होता।

ख्याले ज़ुल्फ़ेदुतामें 'नसीर' पीटाकर।
गया है साँप निकल, अब लकीर पीटाकर॥

एक बार किसी रईसके यहाँ गये तो उसका हसीन लड़का सामने पलंगपर लेटा हुआ था। कुछ सोने और जागनेकी मध्यावस्थामें था कि उसकी यह अदा मनको भा गई। फर्माया—

है चश्मे नीमबाज़,[1] अजब ख्वाबे नाज़ है।

परन्तु दूसरा मिसरा मनके मुताबिक नही लगा। घर आकर इसी उधेड़बुनमे थे कि इनके शिष्य ख्वाजा 'वजीर' आ गये। उनके सबब पूछने और इनके बयान करनेपर संयोगकी बात है कि वज़ीरके मुँहसे बे-साख्ता निकल पडा—

है चश्मे नीमबाज़ अजब ख्वाबे नाज़ है।
फ़ित्ना तो सो रहा है, दरेफ़ित्ना बाज़[2] है॥

इतना चुस्त और फडकता हुआ मिसरा सुनकर नासिख़ने 'वजीर'-की अत्यन्त प्रशसा की। वे इस बातको भूल गये कि जो मिसरा मुझसे न लगा वही मेरे शिष्यने लगा दिया। भला यह अपने मनमे मुझे कितना अपूर्ण समझता होगा?

नासिख़की दैनिक चर्य्या इस प्रकार थी—

सूर्योदयसे पूर्व उठकर व्यायाम करके स्नान करते, फिर अपने मित्रों और शिष्योसे मिलते। बारह बजे भोजन करके थोड़ी देर आराम करते। तीसरे पहर फिर आये हुए मित्रो और शिष्योसे शेरो-सुख़नकी चर्चाएँ

---

[1]अधखुली आँख; [2]खुला हुआ।

गरम रहती। अपनी गज़ल पढते और शिष्योकी गजलोपर इसलाह फर्माते।

नासिख लखनऊ स्कूलके सबसे बड़े उस्ताद माने गये है। लखनवी ख़ारजी रगके यही आविष्कारक समझे गये है। तारीख़े अदबे उर्दूके विद्वान लेखकके शब्दोमे—"शेख़ नासिख़ एक मुसल्लिमउलसबूत (प्रामाणिक) उस्ताद थे, जिनको ज़बानेउर्दू-फारसीपर कुदरत हासिल थी (अधिकार प्राप्त था)। लखनऊके शायरोमे उनका बहुत बड़ा असर था। किसी मुहावरे या लफ्जकी सेहतके मुताल्लिक इनका कलाम सनदमें पेश किया जाता था। नासिख़के कलाममे यह नुक्स है कि इन्होने अलफाजकी तलाश और जुस्तजूपर ज़रूरतसे ज्यादा तवज्जह की और वदनसीबीसे कही-कही ऐसे मुगलक और अदक (क्लिष्ट, अनभ्यस्त) अलफाज फारसी-अरबी दाखिल किये जो गज़लके शायाँ (योग्य) नही है। इसी वजहसे इनका कलाम हुस्नेज़ाहिरी (बाह्य सौन्दर्य्य) से तो आरास्ता (भूषित) है, मगर दिलचस्पी और तासीरसे ख़ाली है।

"नासिखकी गजले शानदार अलफाज़ और तरह-तरहकी तशबीहात (उपमाओ)का मजमूआ होती है। मगर जज्बात (भावो) और असरात (प्रभाव)से ख़ाली है। तसन्नोह (तकल्लुफ, कृत्रिमता) इनके कलामका अस्ल जौहर है। तशबीहे अक्सर नई मगर अजीब होती है। हुस्ने ज़ाहिरी बजाय गरज़ सानवीके इनके यहाँ गरज़ असली है।[1] जिसका नतीजा यह है कि अलफाज़की मुनासबतकी बहुतायतमे शेरका मज़मून ख़त्म हो जाता है।

"नासिख़के कलाममे वही नकाइस (दोष) है जो आमतौरपर उनके

---

[1]अर्थात् कविताके अंतरगकी ओर ध्यान न देकर उसके बाहरी रूप-रगको सजानेमे ही अपने कमालकी चरमसीमा समझते थे।

ईजादकरदा तर्जमे पाये जाते हैं। यानी किसी उम्दा खयालका उनके यहाँ पता नही। उनके किसी शेरपर पढनेवालेका दिल नही फड़कता। न इसमे किसी किस्मका इनअकास और बारीकनजरी है। अशआर ठस और बेलोच होते है।"[1]

नासिख़ने उर्दू-शायरीमे निम्न परिवर्तन, परिवर्द्धन किये—

१—अभीतक उर्दूका नाम रेख़्ता प्रचलित था। नासिख़ने रेख़्ताके स्थानपर उर्दू नामका प्रसार किया। यह उर्दू नाम लखनऊमे तो चालू हो गया, परन्तु दिल्लीमें बहुत अर्सेतक पुराना नाम रेख़्ता ही प्रचलित रहा।

२—इकहरी रदीफ़ोकी गज़ले कही। जैसे—का, को, है, नही, से, ने पर, तक वगैरह।

३—क्रियाएँ—आये है, जाये है, की बजाय आता है, जाता है, प्रयोगमे लाये। आइयाँ, दिखाइयॉ, आदि क्रियाएँ तर्क कर दी।

४—अरबी-फारसी शब्दो, उपमाओ, उदाहरणों और अलकारोकी ओर विशेष ध्यान दिया।

५—हिन्दी शब्द अनावश्यक वहिष्कृत कर दिये।

६—शब्दोके शुद्ध और उचित प्रयोगके लिये कठिन नियम बनाये।

७—गजलका क्षेत्र विस्तृत किया।

८—ख़ारजी शायरीका आविष्कार किया।

नासिख़ने ५० वर्षकी आयुमे लखनऊमे समाधि पाई। उनके तीन दीवान पाये जाते हैं। इनके बहुतसे शिष्य थे, जिनमे वज़ीर, बर्क़, रश्क, वहर, मुनीर, महर, नादर, आबाद, ताहिर, काफी प्रसिद्ध हुए है।

---

[1]तारीख़े अदबे उर्दू, पृ० २६८-७१

किसकी परियाँ ? शहेजन्नात[1] को भी आठ पहर ।
है यह हसरत कि सगेकूचए जानाँ[2] होता ।।
ख़ूँ रुलाता, वहीं नासूर बनाकर गरदूँ[3] ।
ज़ख़्म भी गर मेरे तनपर कभी ख़न्दाँ[4] होता ।।
ऐ अजल[5]! एक दिन आखिर तुझे आना है, वले[6]
आज आती शबेफुरक़तमें[7] तो अहसाँ होता ।।
कौन है जो नहीं मरता है तेरे क़ामतपर[8] ।
क्यों न हर सरवेचमन[9] क़ालिबेबेजाँ[10] होता ।।
ऐ बुतो ! होती अगर मेहरोमुहब्बत तुममें ।
कोई काफ़िर भी न वल्लाह मुसलमाँ होता ।।

लाया वह साथ ग़ैरको मेरे जनाज़ेपर ।
शोला-सा एक जेबे कफ़नसे निकल गया ।।
अबकी बहारमें यह हुआ जोश ऐ जुनूँ !
सारा लहू हमारा बदनसे निकल गया ।।

वाइज़ा ! मसजिदसे अब जाते हैं मयख़ानेको हम ।
फेंककर ज़र्फ़ेवज़ू[11] लेते हैं पैमानेको हम ।।

---

[1]जन्नतके बादशाहको; [2]प्रेयसीके कूचेका कुत्ता;
[3]आसमान; [4]मुस्कराता;
[5]मृत्यु; [6]लेकिन;
[7]विरह-रात्रिमें; [8]कदपर;
[9]सरोका पेड़; [10]प्राणरहित;
[11]नमाजके लिए हाथ-मुँह धोनेवाला बर्तन ।

क्या मगस[1] बैठे भला उस शोलारूके[2] जिस्मपर ।
अपने दाग़ोंसे जला देते हैं परवानेको हम ।।
तेरे आगे कहते हैं गुल खोलकर बाज़ूएबर्ग[3] ।
"गुलशनेआलमसे[4] हैं तैयार उड़ जानेको हम" ।।
कौन करता है बुतोंके आगे सजदा ज़ाहिदा !
सरको दे-दे मारकर तोड़ेंगे बुतख़ानेको हम ।।
बाँधते हैं अपने दिलमें ज़ुल्फ़ेजानाँका ख़याल ।
इस तरह ज़ंजीर पहनाते हैं दीवानेको हम ।।
अक़्ल खो दी थी जो ऐ 'नासिख़' ! जनूनेइश्क़ने ।
आश्ना[5] समझा किये इक उम्र बेगानेको[6] हम ।।

मिल गया ख़ाकमें पिस-पिसके हसीनोंपर मैं ।
क़ब्र पर बोएँ कोई चीज़ हिना पैदा हो ।।
अश्क थम जाएँ जो फ़ुरक़तमें तो आहें निकलें ।
ख़ुश्क हो जाये जो पानी तो हवा पैदा हो ।।

जो उस परीसे शबेवस्लमें[7] रुकावट हो ।
मुझे भी एक जनाज़ा[8] हो या छपरखट हो ।।
न मेरे पाँव हों ज़ंजीरके कभी शायक़[9] ।
जो उसके काकुलेपेचाँकी[10] हाथमें लट हो ।।
मजाल क्या कि तेरे घरमें पाँव मैं रक्खूँ ।
यह आरज़ू है मेरा सर हो तेरी चौखट हो ।।

---

[1]मक्खी; [2]अग्निके समान चमकदार; [3]पत्तियाँ रूपी बाहें; [4]संसार रूपी उद्यानसे; [5]अपना मित्र; [6]ग़ैरको; [7]मिलन-रात्रिमें; [8]अर्थी; [9]अभिलाषी; [10]ज़ुल्फ़ोंकी ।

हुजूम रखते हैं जाँबाज यूँ तेरे आगे।
जुआरियोंका दिवालीपै जैसे जमघट हो॥
लिपटके यारसे सोता हूँ, माँगता हूँ दुआ।
तमाम उम्र बसर यारब! एक करवट हो॥
नसीमेआहके[1] झोंकेसे खोल दूँ दममें।
भिड़ा हुआ तिरे दरवाज़ेका अगर पट[2] हो॥
जलाओ ग़ैरोंको मुझसे जो गरमियाँ करके।
तुम्हारे कूचेमें तैयार एक मरघट हो॥
मैं जाँ-ब-लब[3] हूँ गला काटो या गलेसे लगो।
जो इसमे आपको मंजूर हो सो झटपट हो॥
करें वोह ज़िक्रे ख़ुदा ऐ सनम! भला किस वक़्त?
जिसे कि आठ पहर तेरे नामकी रट हो॥
जो दिलको देते हो 'नासिख़'! तो कुछ समझकर दो।
कहीं यह मुफ़्तमें देखो न माल तलपट हो॥

ख़ाकमें मिल जाइये ऐसा अखाड़ा चाहिये।
लड़के कुश्ती देवेहस्तीको[4] पछाड़ा चाहिये॥
और तख़्तोंकी हमारी क़ब्रमें हाजत नहीं।
ख़ानयेमहबूबका[5] कोई किवाड़ा चाहिये॥

---

[1] स्वासोंकी हवासे;
[2] किवाड़;
[3] प्राण कंठमे है;
[4] शरीररूपी असुरको;
[5] माशूकके दर्वाज़ेका।

है शबेमहताब[१] फ़ुरक़तमें[२] तक़ाज़ाएजुनूँ[३] ।
चादरेमहबूबको[४] भी आज फाड़ा चाहिये ॥
इन्तहायेलागरीसे[५] जब नज़र आया न मैं ।
हँसके वोह कहने लगे "बिस्तरको झाड़ा चाहिये" ॥
कोई सीधी बात साहबकी नज़र आती नहीं ।
आपकी पोशाकको कपड़ा भी आड़ा चाहिये ॥
आँसुओंसे हिज्रमें बरसात रखिये सालभर ।
हमको गरमी चाहिये हरगिज़ न जाड़ा चाहिये ॥
मरगया हूँ हसरते नज्जारये अबरूमें[६] मैं ।
ऐनकाबेमें[७] मेरे लाशेको गाड़ा चाहिये ॥
मुहतसिबको[८] हो गया आसेब जो तोड़ा है ख़ुम ।
जूतियोंसे मयकशो ! जिन आज झाड़ा चाहिये ॥
जल्द रंग ऐ दीदएख़ूँबाज़[९] अब तारे[१०]निगाह ।
है मुहर्रम उस परीपैकरको नाड़ा चाहिये ॥
लड़ते हैं परियोंसे कुश्ती पहलवाने इश्क़ है ।
हमको नासेह ! राजा इन्दरका अखाड़ा चाहिये ॥

—आबेहयातसे

---

[१]चाँदनी रात; [२]विरहमे,
[३]दीवानगीका तकाज़ा है;
[४]प्रेयसीकी चादर को;
[५]अतीव निर्बलताके कारण;
[६]प्रेयसीके भवोको देखनेकी अभिलाषामें ।
[७]क्योंकि काबेका महराव भी भवोकी तरह ख़मदार है ।
[८]उपदेशकको; [९]रक्तभर नेत्र;
[१०]दृष्टिरूपी तागा ।

रूएजानाँका[१] तसव्वुरमें[२] जो नज्ज़ारा हुआ ।
दिलमें था जो दाग़ेहसरत[३] अर्शका तारा[४] हुआ ॥
चश्मेबद्दूर[५]! आज क्या आते नज़र हैं गाल साफ़ ।
सब्ज़येखत[६] क्या गज़ालेचश्मका[७] चारा हुआ ॥
पीठ पीछे मेरे बद कहनेसे ज़ाहिद ! यह मिला ।
पीठपर बारेगुनहका जमअ़ पुश्तारा हुआ ॥
जब नहानेको हुआ उरियाँ[८] वोह पुतला नूरका ।
हौज़में रोशन बरंगे शमअ़ फ़व्वारा हुआ ॥
दोस्तो ! जल्दी खबर लेना कहीं 'नासिख' न हो ।
क़त्ल आज उसकी गलीमें एक बेचारा हुआ ॥

—तारीख़े अदबे उर्दूसे

सैंकड़ो आहें कि उनपर दख़्ल क्या आवाज़का ?
तीर जो आवाज़ दे हैं, नुक़्स तीरन्दाज़का ॥
मानयेसहरानवर्दी[९] पाँवकी ईज़ा[१०] नहीं ।
दिल दुखा देता है लेकिन टूट जाना ख़ारका[११] ॥

सियहबख़्तीमे[१२] कब कोई किसीका साथ देता है ।
कि तारीकीमे[१३] साया[१४] भी जुदा रहता है इन्साँसे ॥

---

[१]प्रेयसीका; [२]ध्यानमे; [३]अभिलाषाओंका दाग;
[४]आकाशका नक्षत्र; [५]ईश्वर करे, नज़र न लगे;
[६]ठोडीके बाल; [७]हिरनरूपी आँखोका चारा (भोजन);
[८]नग्न; [९]जंगलोमे भटकना रोकने वाली;
[१०]तकलीफ; [११]काँटेका;
[१२]अभाग्यरूपी अँधेरेमे; [१३]अँधेरेमे;
[१४]परछाई ।

फ़ुरक़त कुबूल रश्कके सदमे नहीं कबूल।
क्या आएँ हम ? रकीब तेरी अंजुमनमे है॥

ताब सुनन्‍नेकी नही, बहरेखुदा ख़ामोश हो।
टुकड़े होते हैं जिगर 'नासिख़' ! तेरी फ़रियादसे॥

ख़्वाब ही में नजर आता वोह शबेहिज्र कहीं।
सो मुझे हसरते दीदारने सोने न दिया॥

मैं ख़ूब समझता हूँ मगर दिलसे हूँ नाचार।
ऐ नासहो ! बे फ़ायदा समझाते हो मुझको॥

—इन्तकादियात, भा० २

हम-सा कोई गुमनाम जमानेमे न होगा।
गुम हो वह नगीं जिसपै खुदे नाम हमारा॥

इश्क़ जब कामिल हुआ, है ऐनेहुस्न[1]।
आगमें पड़ जाय जो शै, आग है॥

नहीं मुमकिन खुमेगरदूँमे[2] ठहरना मेरा।
मस्तिये इश्क़से वोह बादए सरजोश हूँ मैं॥

झुक-झुकके शीशे मिलते है, हँस-हँसके जामेमय।
यह मयकदा मुकाम नहीं है गरूरका॥

सौदाएहुस्नेग़ैर[3] कहाँ है बरंगेगुल[4]।
अपने ही हुस्नपर मैं गिरीबाँदरीदा[5] हूँ॥

हरगिज़ मुझे नजर नहीं आता वजूदेग़ैर[6]।
आलम तमाम एक बदन है मैं दीदा[7] हूँ॥

---

[1]सौन्दर्य; [2]आस्मान रूपी प्यालेमें; [3]किसी और के सौन्दर्य पर आसक्ति; [4]फूलकी तरह; [5]फटे वस्त्र; [6]किसी और का अस्तित्व; [7]आँख।

आलम है महव आइना खानेकी सैरमें।
अपने सिवा किसीके कोई रोबरू[1] नहीं॥

जोशेहुबाबे बादा[2] नहीं खुममें[3] साकिया!
सीनाएआसमॉमें[4] हैं अख्तर[5] भरे हुए॥

इश्कको किसके दिलसे लाग नहीं।
कौन-सा घर है जिसमें आग नहीं॥

आये हैं आलमेबालासे सदा--"मॉगे सो दूँ"।
इस्तहाँको भी मैं लेकिन कभी साइल[6] न हुआ॥

दम बुलबुलेअसीरका तनसे निकल गया।
झोका जहाँ नसीमका सनसे निकल गया॥

चला अदमसे मैं जबरन तो बोल उठी तकदीर।
बलामें पड़नेको कुछ अख्तियार लेता जा॥

इन्सानको इन्सानसे कीना[7] नहीं अच्छा।
जिस सीनेमें कीना हो वोह सीना नहीं अच्छा॥

'नासिख' है अब आठो पहर मश्केतसव्वुर[8] इस क़दर।
जिस सिम्त[9] करता हूँ नजर दिलदार आता है नजर॥

सरपै सोजाँ[10] दागे सौदा, पॉवमें जंजीरेअश्क[11]।
तेरी महफिलमे खड़ी है सूरते दीवाना शमअ़॥

रश्कसे नाम नही लेते कि सुन ले न कोई।
दिल ही दिलमें हम उसे याद किया करते है॥

---

[1]सामने; [2]शराबके बुलबुलोका जोश; [3]शराबके मटकेमें
[4]आसमानके पात्रमे; [5]तारे; [6]याचक;
[7]द्वेष; [8]ध्यानका अभ्यासी; [9]ओर;
[10]जलता हुआ; [11]अश्रु रूपी जंजीर।

पेश्तर नशयेईजादसे बेहोश हूँ मैं।
ख़ुमे गरदूँ भी न था जबसे कि मयनोश हूँ मैं॥

जो बेगुनाह हैं उनका भी ख़ूँ हराम नहीं।
मुक़ामे इश्क़ है, काबेका यह मुकाम नहीं॥

अपनी सूरतपर किया पैदा उसे अल्लाहने।
क्यों सजावारेपरस्तिश[1] सूरतेआदम[2] नहीं?

क्योंकर कहूँ आरफ़े ख़ुदा हूँ?
आगाह नहीं कि आप क्या हूँ॥

आईनये दिलमें है तेरा अक्स।
दिनरात मैं तुझको देखता हूँ॥

जिन्दगी जिन्दादिलीका है नाम।
मुर्दादिल ख़ाक जिया करते हैं?

दौलते दीदार जाये, पर अदब जाने न पाय।
बहरेताज़ीम[3] उठ खड़ा हूँ तुम जो आओ ख्वाबमें॥

दिल दौड़ता है कूचये दिलदारकी तरफ़।
जबसे नहीं है ताकते रफ़्तार पाँवमें॥

दिल बना आशिकीमें ख़ुदमुख़्तार।
और मजबूर कर दिया हमको॥

साकिने दिल तो हुआ, आँखोंको तरसाता है क्यों?
जिस कदर दिल साफ़ है, वैसी निगह भी पाक है॥

वही आशिक़ है जो आलमको मुरक़्क़अ[4] समझे।
हर तरफ़ पेशेनजर यारकी तसवीर रहे॥

---

[1]उपासनाके योग्य; [2]मनुष्यकी आकृति;
[3]सम्मानके लिए; [4]चित्र संग्रह।

हुए हैं और उनकी समानता करनेवाला आजतक कोई शायर नहीं हुआ, उसी प्रकार आतिश भी लखनऊके सर्वश्रेष्ठ शायर समझे जाते हैं।

आतिश साधारण स्थितिके थे। पचास रुपये मासिक बादशाहने नियत कर दिये थे। उसीमे सन्तोषपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते थे। जीवनभर न किसीसे एक पैसेकी याचना की और न किसीकी खुशामदमे कभी एक कसीदा लिखा। न किसीकी नौकरी की, न इंशा और जुरअतकी तरह अपनी आत्माको बेचा। स्वाभिमानमे कभी बाल न आने दिया। अपनी वजह-कतअ़के पूरे पाबन्द थे। टूटे-फूटे एक किरायेके मकानमे शायरोका यह बेताज बादशाह बोरिया बिछाये बैठा रहता था।

आतिशके जो अमीर शिष्य थे, वे भी आर्थिक सहायता करते रहते थे। मगर इन्होंने न तो कभी सहायताके लिए सकेत किया और न अपने गरीब शिष्योंसे इन अमीर शिष्योको कभी तरजीह दी। रईस-ग़रीब सभी उसी बोरियेपर एक साथ बैठते थे।

आतिशकी गजलका एक दीवान मिलता है, जो भाषाकी दृष्टिसे नासिखसे किसी तरह कम नही और काव्य-कला तथा भावोंकी दृष्टिसे कई गुना श्रेष्ठ और मोहक है। इनके शिष्योमे मीर दोस्तअली ख़लील, मीर वज़ीर, अलीसबा, नवाब मुहम्मदअलीखाँ, रिन्द, आगाहिज्रो शरफ़, नवाबमिर्ज़ा शौक और पं० दयाशंकर नसीम लखनऊ स्कूलके बहुत मशहूर शायर हुए हैं।

आतिशकी गज़लोमे कृत्रिमता और बनावट नही मिलती। आम, हलके, ज़लील और कमीने भाव उनके यहाँ नही है। उन्होंने व्यर्थकी उपमाओ, अलकारोसे अपने कलामको विकृत नही किया है। उनके शब्द अँगूठीमे हीरेकी तरह जड़े हुए नजर आते है। उनके कलाममे सगीत है, प्रवाह है, कला है, सरलता है, और मुहावरोका यथावश्यक

उपयोग है। आतिशने अपने हृदयगत भावोको मर्मस्पर्शी ढंगपर सरल और प्रवाही भाषामे व्यक्त किया है।

नासिख और आतिश दोनो ही इस अर्वाचीन युगमे लखनऊके अत्यन्त ख्यातिप्राप्त शायर ही नही, शायरोके मुसल्लिमउलसबूत उस्ताद हुए हैं। अपने युगमे तो इनकी तूती बोलती ही थी, वर्तमानमे भी ग़जलकी दुनियामें इनकी धाक ज्योंकी त्यो बैठी हुई है। यद्यपि वर्तमानमे नासिखके कलामकी पूछ नही है, उनका ख़ारजी रंग शायरीसे वहिष्कृत हो गया है और अब लखनवी या देहलवी शायर खारजी रगमे गजल नही कहते है, परन्तु उस अर्वाचीन युगमें उनका यह ख़ारजीरग वहुत मकबूल था। यहाँतक कि नवाब मुस्तफ़ाखाँ शेफ़्ताने अपने तजकरेमें नासिख़को आतिशपर फौकियत दी है, हालाँकि मिर्ज़ा ग़ालिब जैसे अमर शायर नासिख़से आतिशको ही श्रेष्ठ समझते थे और सचमुच आतिश भावोंकी बन्दिश, भाषाके माधुर्य्य, और विचारोकी उच्चताके कारण नासिखसे कहीं श्रेष्ठ हैं। नासिख़के यहाँ दिखावटी शानदार शब्दो, उपमाओ, अलंकारोंकी ऐसी भूलभुलैया है कि आदमीका दम घुटने लगता है। आतिश इन दोषोसे मुक्त है।

आतिशके जर्बुलमसल शेर—

आये भी लोग बैठे भी, उठ भी खड़े हुए।
मै जा ही ढूँढ़ता तेरी महफ़िलमें रह गया॥

न पूछ हाल मेरा चोबेख़ुश्के[1] सहरा हूँ।
लगाके आग मुझे कारवाँ[2] रवाना हुआ॥

मौत माँगूँ तो मिले आरज़ूए ख्वाब मुझे।
डूबने जाऊँ तो दरिया मिले पायाब[3] मुझे॥

और कोई तलब इबनाएजमानेसे[4] नहीं।
मुझपै अहसाँ जो न करते तो यह अहसाँ होता॥

ज़मीनेचमन गुल खिलाती है क्या-क्या?
बदलता है रंग आसमाँ कैसे-कैसे?

फ़सले बहार आई, पियो सूफ़ियो शराब।
बस हो चुकी नमाज़, मुसल्ला[5] उठाइये॥

खुशीसे अपनी रुसवाई गवारा हो नहीं सकती।
गरीबाँ फाड़ता है तंग जब दीवाना होता है॥

सफ़र है शर्त, मुसाफ़िरनवाज़[6] बहुतेरे।
हज़ार-हा शजरेसायादार[7] राहमें हैं॥

---

[1]जंगलकी सूखी लकड़ी; [2]काफला, यात्रीदल; [3]केवल टख़नो तक गहरा; [4]संसारके मित्रोसे; [5]वह चटाई या दरी जिसपर बैठकर नमाज़ पढ़ी जाती है; [6]यात्रीको सुविधा पहुँचानेवाले; [7]छायावाले पेड़।

बहुत शोर सुनते थे पहलूमें दिलका।
जो चीरा तो एक क़तरयेख़ूँ न निकला॥

बाग़ेजहाँको[1] याद करेंगे अदममें[2] क्या?
कुंजेक़फ़ससे[3] तंग रहे आशियाँमें[4] हम॥

इस बलाएजाँसे आतिश! देखिये क्योंकर निभे?
दिल सिवा शीशेसे नाज़ुक, दिलसे नाज़ुक ख़ूएदोस्त[5]॥

तुम फ़ातिहा भी पढ़ चुके हम दफ़्न भी हुए।
बस, खाकमें मिला चुके, चलिये सिधारिये॥

तबलो अलम ही पास है अपने न मुल्कोमाल।
हमसे ख़िलाफ़ होके करेगा ज़माना क्या?

लगे मुँह भी चिड़ाने देते-देते गालियाँ साहब।
ज़बाँ बिगड़ी तो बिगड़ी थी, खबर लीजे दहन[6] बिगड़ा॥

किसीने मोल न पूछा दिलेशिकस्ताका[7]।
कोई ख़रीदके टूटा पियाला क्या करता?

काम हिम्मतसे जवाँमर्द अगर लेता है।
साँपको मारके गंजीनयेज़र[8] लेता है॥

चाल है मुझ नातवाँकी[9], मुर्ग़े बिस्मिलकी[10] तड़प।
हर क़दमपर है यक़ीं, याँ रह गया वाँ रह गया॥

---

[1] संसाररूपी उद्यानको; [2] परलोकमें; [3] बन्दी-गृहसे
[4] घोसला, निवासस्थानमे, [5] प्रेयसीका स्वभाव;
[6] मुँह; [7] टूटे दिलका;
[8] गड़ा धन; [9] निर्बलकी;
[10] घायल पक्षीकी।

बयाँ ख़्वाबकी तरह जो हो रहा है।
यह क़िस्सा है जबका कि 'आतिश' जवाँ था ॥

इश्किया कलाम—

एक शब बुलबुले बेताबके जागे न नसीब।
पहलुए गुलमें कभी ख़ारने सोने न दिया ॥
तकियातक पहलूमें उस गुलने न रक्खा 'आतिश'!
गैरको साथ कभी यारने सोने न दिया ॥

कैसी-कैसी सूरतोंके अपने दिलमें दाग़ हैं।
इस मुरक़्क़ेमें[1] भी है क्या-क्या वरक़ तसवीरका ॥

फूँक आशियाँ हमारा ऐ बर्क़ेआतिशेगुल!
रहनेके क़ाबिल अपने यह बोस्ताँ न ठहरा ॥

बग़लमें लेके यूसुफको अकेला वाँसे मैं गुज़रा।
क़दम रखते हुए जिस रास्तेमें कारवाँ खटका ॥

रंग बदला नज़र आता है हवाका मुझको।
गुले ताज़ा कोई इस बाग़में ख़न्दाँ[2] होगा ॥

नागुफ़्तनी[3] है हालेबहारोखिज़ानेबाग़[4]।
इक ज़ख़्म है कि ख़ुश्क हुआ और नम हुआ ॥

काटकर पर मुतमईन[5] सैयाद बेपरवा न हो।
रूह बुलबुलकी इरादा रखती है परवाज़का[6] ॥

---

[1]चित्रसंग्रहमें, [2]हँसता हुआ, विकसित;
[3]न कह सकने योग्य; [4]बाग़की वसन्त और पतझडका हाल;
[5]सन्तुष्ट; [6]उड़ निकलनेका।

सोरिशेइश्क़में[1] यह दिल ही है क़ायम 'आतिश' !
पानी हो-होके बहा करता जो पत्थर होता ॥

सुबह होती नज़र आती नहीं हरगिज़ 'आतिश' !
बढ़ गई रोज़ेक़यामतसे मगर[2] आजकी रात ॥

मश्शाक़ेदर्देइश्क़[3] जिगर भी है दिल भी है ।
खाऊँ किधरकी चोट बचाऊँ किधरकी चोट ॥

वस्लमें हिज्रका धड़का-सा लगा रहता है ।
शामसे फिरती है आँखोंमे मेरी सूरतेसुबह ॥

हमसे ख़िलाफ़ नाहक सैयाद ओ बाग़बाँ है ।
नालोंसे अपने बिजली किस दिन गिरी चमनपर ?

बाग़बाँ ! कैसी बहार आई है, क्या आलम है ?
नज़र आते है चमनमें खसोख़ाशाक[4] हनूज़ ?

आइना देखनेका गुजरता नहीं खयाल ।
अपनी ख़बर नहीं उन्हे, मेरी ख़बर कहाँ !

शराबेबेख़ुदी[5] ऐसी पिला दी साग़रेगुलने ।
रहे सैयादसे मुर्गेचमन गाफ़िल गुलिस्ताँमे ॥

अल्लाहरे बेनियाज़िएमहबूब[6], आफ़रीं[7] !
दिलसे क़रीब होके कोई दूर जब रहे ॥

---

[1]प्रेमके झमेलेमें; [2]शायद;
[3]प्रेमके गम खानेका अभ्यस्त; [4]फूस और तिनके;
[5]तन्मयताकी शराब; [6]प्रेयसीकी उपेक्षा;
[7]धन्य है ।

किसीका हो रहे 'आतिश' ! किसीको कर रखे ।
दो रोजा उम्रको इन्सान रायगाँ[1] न करे ॥

तसव्वुरसे किसीके की है मैंने गुफ़्तगू बरसों ।
रही है एक तसवीरे ख़याली रूबरू[2] बरसों ॥

रहती हैं आँखें बन्द तसव्वुरमें यारके ।
तारेनिगहसे अपने बँधा है खयाले दोस्त ॥

जमालयाती शेर—

सामने आइना रखते तो ग़श आ-आ जाता ।
तुमने अन्दाज़ नही अपनी अदाका देखा ॥

चमक-चमकके निकलनेका हाल खुल जाता ।
दिखाऊँ किसको वोह रुख़ चश्मेमहरोमाह नही[3] ॥

जब देखिये कुछ और ही आलम है तुम्हारा ।
हर बार अजब रंग है, हर बार अजब रूप ॥

अजब तेरी है ऐ महबूब ! सूरत ।
नज़रसे गिर गये सब ख़ूबसूरत ॥

ग़ैरतेमहरो[4], रश्केमाह[5] हो तुम ।
ख़ूबसूरत हो, बादशाह हो तुम ॥
हुस्नमें है तुम्हारे शाने ख़ुदा ।
इश्कबाज़ोके सजदागाह[6] हो तुम ॥

---

[1]व्यर्थ; [2]सामने;
[3]सूर्य और चाँद आँख नही रखते; [4]सूरजको शर्मानेवाले;
[5]चाँदसे भी सुन्दर; [6]उपास्य स्थान ।

क़सम है तेरे सरकी ऐ रुखेयार[1]!
नहीं तेरे बराबर चाँद सूरज।

गये जिस बज़्ममें, रोशन चिरागेहुस्नसे कर दी।
बहारेताज़ा आई, तुम अगर गुलज़ारमें आये॥

करके आराइश[2] जो देखी उस सनमने अपनी शक्ल।
बन्द आँखें हो गईं, आईना हैराँ रह गया॥

चमनमें शबको जो वह शोख़ बेनक़ाब आया।
यक़ीन हो गया शबनमको आफ़ताब आया॥

चमक जानेसे उसके बन्द जो हो जाती हैं आँखें।
यह धोखा बर्क़ देती है तुम्हारे रूएखन्दाँका[3]॥

दिखाके चेहरये रोशन वोह कहते हैं सरेशाम:
"वोह आफ़ताब नहीं हूँ जिसे ज़वाल[4] हुआ"॥

पासरुसवाईका[5] दोनों जानिबोंसे शर्त है।
मैं तुम्हें, तुम मुझको समझाओ ख़ुदाके वास्ते॥

ख़्वाहाँ[6] तेरे हर रंगमें ऐ यार हमीं थे।
यूसुफ़ था अगर तू तो ख़रीदार हमीं थे॥

पयाम्बर[7] न मयस्सर हुआ तो ख़ूब हुआ।
ज़बानेग़ैरसे क्या शरहेआरज़ू[8] करते॥

---

[1]प्रेयसीके कपोल; [2]शृंगार;
[3]खिले हुए चेहरेका; [4]डूबना, पतन;
[5]बदनामीका डर; [6]अभिलाषी;
[7]सन्देश वाहक; [8]अभिलाषाकी व्याख्या।

हालेदिल होते हैं हसरतकी निगाहोंसे अयाँ[1]।
मेरी उसकी गुफ़्तगूमें अब जबाँ खामोश है॥

शर्तेवफा की किस बेवफ़ासे ?
आतिश-सा आरिफ आगाह भूला॥

बेचारा दिल किसीसे न अपना बहल सका।
क्या-क्या चमकके निकले हैं अख्तर तमाम रात॥

यह दिल लगानेमें मैंने मज़ा उठाया है।
मिला न दोस्त तो दुश्मनसे इत्तहाद[2] किया॥

फ़िराकेयारमें[3] गिरियाका ज़ब्त[4] 'आतिश' नही बहतर।
बुखारेदिल निकलने दो, बरस लेने दो बारांको[5]॥

फ़िराकेयारमें दिलपर नहीं मालूम क्या गुज़री ?
जो अश्क[6] आँखोमें आता है सो बेताबाना आता है॥

सुन तो सही जहाँमें है तेरा फ़साना क्या ?
कहती है तुझको खल्केखुदा[7] गायबाना[8] क्या ?

तलाशेयारमें क्या ढूँढ़िये किसीका साथ।
हमारा साया हमें नागवार राहमें है॥

सारी रौनक़ है यह दीवानोके दमकी 'आतिश'!
तौकोज़ंजीरसे[9] होता नहीं ज़िन्दाँ[10] आबाद॥

---

[1]प्रकट; [2]सम्बन्ध; [3]प्रेयसीके विरहमे;
[4]रोनेको रोकना; [5]बारिशको; [6]आँसू;
[7]ससारके लोग; [8]पीठ पीछे; [9]बेड़ी और गलेके बन्धनसे;
[10]कारागृह।

नीतिपूर्ण कलाम—

हिर्सोहविसको[1] सीनेमे ग़ाफ़िल जगह न दे।
मतलबको फ़ौत[2] करता है कीड़ा किताबका॥

ख़िलाफ़े वज़ह है इन्सॉके वास्ते मायूब[3]।
बदनको ज़ेब न देवे कभी क़बा[4] उलटी॥

सइयेलाहासिल[5] मदावाये[6] मरीज़े इश्क है।
थामना मुमकिन नहीं गिरती हुई दीवारका॥

आँखें नहीं है चेहरेपै तेरे फ़कीरके।
दो ठीकरे है भीकके, दीदारके[7] लिए॥

फ़िराकेयारमे[8] रहता है यूँ तसव्वुरेगोर[9]।
ख्याल जैसे मुसाफ़िरका हो सराकी तरफ़॥

सूरते शमअ़ हूँ हरचन्द फ़रोगेमहफिल[10]।
बात करने नहीं देता कि ज़बॉ कटती है॥

कुफ्रो-इस्लामकी कुछ क़ैद नहीं ऐ 'आतिश'।
शेख हो या कि बिरहमन हो, पर इन्सॉ होवे॥

हम क्या कहें किसीसे, क्या है तरीक अपना।
मज़हब नहीं है कोई मिल्लत[11] नही है कोई॥

---

[1]लालच तथा वासनाको, [2]नष्ट, [3]दोष, [4]लिवास, [5]व्यर्थ चेष्टा, [6]चिकित्सा, [7]देखनेके; [8]प्रेयसीके विरहमे, [9]कब्रका ध्यान, [10]सभाका सिगार, [11]सगठन, सम्प्रदाय।

दिलकी कुदूरतें[1] अगर इन्साँसे दूर हों।
सारे निफाक[2] गबरू[3]-मुसलमाँसे दूर हों॥

हासिल हुआ न ख़ाक भी आपसकी नज़असे[4]।
दिलसे ग़ुबारे काफ़िरो दीदार ले चले॥

तसव्वुफके रंगमें—

असीर[5] ऐ दोस्त! तेरे आशिक़ोमाशूक़ दोनों हैं।
गिरफ़्तार आहनीं[6] जंजीरका यह, वह तिलाईका[7]॥
निकल ऐ जान तनसे ताविसाले यार हासिल हो॥
चमनकी सैर है अंजाम, बुलबुलकी रिहाईका॥
विसालेयारका वादा है फ़रदायेक़यामतपर[8]।
यक़ीं मुझको नहीं है गोरतक[9] अपनी रसाईका[10]॥

हुस्नेपरी इक जलवये मस्ताना है उसका।
हुशयार वही है कि जो दीवाना है उसका॥
वह याद है उसकी कि भुला दे दो-जहाँको।
हालतको करे ग़ैर वोह याराना है उसका॥
यूसुफ़ नहीं जो हाथ लगे चन्द दिरम से।
क़ीमत जो दो आलमकी है बयाना है उसका॥
यह हाल हुआ उसके फ़क़ीरोंसे हवीदा[11]।
आलूदयेदुनिया[12] जो है बेगाना है उसका॥

---

[1]द्वेषभाव, मैल, [2]लड़ाई-झगड़े, [3]मूर्तिपूजक;
[4]वैरभावसे; [5]बन्दी, [6]लोहेकी;
[7]सोनेका, [8]प्रलयके दिनका, [9]कब्रतक;
[10]पहुँचका, [11]प्रकट, [12]ससार लिप्त।

कुछ नज़र आता नहीं उसके तसव्वुरके सिवा ।
हसरतेदीदारने[1] आँखोंको अन्धा कर दिया ॥

कुछ नज़र आया न फिर जब तू नज़र आया मुझे ।
जिस तरफ़ देखा मुकामेहू[2] नज़र आया मुझे ॥

उल्टा उधर नक़ाब तो, परदे इधर पड़े ।
आँखोंको बन्द जलवयेदीदारने[3] किया ॥

पार उतरे क्या सलामत बहरेउल्फ़तसे[4] कोई ।
सैकड़ों गरदाब[5] उसके दरमियाँ गरदिशमें है ॥
गुम्बदे गरदूँसे निकलो जिस तरह भी हो सके ।
डर है गिर पड़नेका 'आतिश' यह मकाँ गरदिशमें है ॥

याद रखनेकी जगह है यह तिलिस्मे हैरत ।
सुबहको देखते ही भूल गये शामको हम ॥

ग़जब है मंज़िलेहस्तीमें आसाइशतलब[6] होना ।
हुजूमेख़्वाबसे[7] रहरवने[8] है आखिर ख़लल पाया ॥

सिवाय नामके बाक़ी असर निशाँसे न थे ।
ज़मीसे दब गये झुकते जो आस्माँसे न थे ॥

शबको चिरागकी नहीं रहरवको[9] अहतयाज[10] ।
हर ज़र्रा आफ़ताब है तेरी सबीलका[11] ॥

---

[1]देखनेकी इच्छाने; [2]ईश्वरका वास; [3]दृश्यके प्रकाशने;
[4]प्रेम-दरियासे, [5]भँवर;
[6]भोगोपभोगका अभिलाषी; [7]सोनेके कारण;
[8]यात्रीने; [9]यात्रीको;
[10]आवश्यकता, [11]पथका ।

ज़ंजीरका वोह गुल नहीं ज़िन्दाँमें[1] ऐ जुनूँ[2]।
दीवाना क़ैदख़ानये तनसे निकल गया॥

दिखलाके जलवा आँखोंने इक शमयेनूरका।
गुल कर दिया चिराग़ हमारे शऊरका॥

नागवाराको जो करता है गवारा इन्साँ।
जहर पीकर मजये शीरोशकर[3] लेता है॥
हिज्रमें वस्लका मिलता है मजा आशिक़को।
शौक़का मर्तबा जब हदसे गुजर लेता है॥

सूरतेरेगेरवाँ[4] गरमेसफ़र हूँ रोजोशब।
कुछ नही मालूम जाता हूँ किधर, मंजिल कहाँ?
जो न ईजा[5] दे कोई ईजा नही देता उसे।
सायएदीवारको अन्देशयेआसिल[6] कहाँ॥
इश्कके सदमे उठानेको जिगर भी चाहिए।
ख़ूँ हुआ मेरी तरह 'आतिश' किसीका दिल कहाँ?

मंज़िले हस्तीमें दुश्मनको भी अपना दोस्त कर।
रात हो जाये,तो दिखलायें तुझे दुश्मन चिराग़॥
दाग़ेदिलकी रोशनी काफ़ी है 'आतिश' गोरमें।
ग़म नही इसका, न हो अपना सरे मदफन चिराग़॥

शाहराहे हस्तिये मौहूममें[7] वह चाल चल।
अपनी आँखोको बिछा दें दोस्त-दुश्मन जेरेपा[8]॥

---

[1]बन्दीगृहमे, [2]दीवानगी, [3]दूध-मिश्री; [4]उडती हुई रेतके समान, [5]कष्ट, [6]मन्त्रवादियोका भय; [7]असार जीवनचक्रमे; [8]पाँवके नीचे।

मुफ़लिसका काम याँ नहीं दौलतका खेल है।
दुनिया क़ुमारख़ाना[1] है चलती हैं जरकी चोट॥

दुश्मन भी हो तो दोस्तीसे पेश आएँ हम।
बेगानगीसे अपना नहीं आश्ना मिज़ाज॥

सर शमा-सा[2] कटाइये पर दम न मारिये।
मंजिल हजार सिम्त हो हिम्मत न हारिये॥

२७ सितम्बर १९४६

---

[1]जुआ खेलनेकी जगह, [2]दीपककी तरह।

नासिख के शिष्य—

४२

बर्क़

मिर्जा मुहम्मदरज़ा 'वर्क' काजमअलीख़ाँके पुत्र, नासिख़के शिष्य, अवधके अन्तिम नवाव वाजिदअलीशाहके कवितागुरु और मुसाहव थे। फ़तहउद्दौलावख़्शीउलमुल्ककी उपाधिसे सम्मानित थे। प्रतिष्ठित वंशमें उत्पन्न होनेके कारण और स्वय अच्छे स्वभावी तथा नवावके उस्ताद होनेकी वजहसे काफी शुहरत रखते थे। शायरीके अतिरिक्त व्यायाममें भी रुचि रखते थे। बिन्नोट और तलवारमे अच्छी महारत रखते थे। नवाब वाजिदअलीशाहके अत्यन्त विश्वासपात्र और वफादार थे। १८५७ के विप्लवके अपराधमे वाजिदअलीशाह वन्दी वनाकर कलकत्ते भेजे गये तो यह भी उस आपत्तिकालमें उनके साथ गये और वही मृत्युको प्राप्त हुए।

> बर्क़ जो कहते थे आख़िर वही कर-कर* उट्ठे।
> जान दी आपके दरवाजे पै मरकर उट्ठे॥

एक दीवान छोड़ा है। जिसमे—गजलें, रुबाइयाँ, किते और मुसद्दस वगैरह है। गजलोमे अपने उस्ताद नासिखके ख़ारजी रंगके अनुयायी थे।

---

*अव इस तरहके 'कर-कर' प्रयोग वर्जित है। अव कर-करके वजाय 'करके' प्रचलित है।

क़ैसका नाम न लो, जिस्के जुनूँ जाने दो।
देख लेना मुझे तुम मौसमे गुल आने दो॥

उठाके आइना दिखला दिया उसे मैंने।
न सूझी आरिज़ेगुलगूँकी[1] जब मिसाल मुझे॥

अज़ाँ दी काबेमें नाक़ूस[2] दैर[3]में फूँका।
कहाँ-कहाँ तेरा आशिक़ तुझे पुकार आया॥

—इन्तक़ादियात, भाग २

निकला ग़ुबार दिलसे, सफ़ाई तो हो गई।
अच्छा हुआ जो खाकमें तुमने मिला दिया॥

आता नहीं क़रार दिले बेक़रारको।
ग़ममे फँसा हूँ दामे मुहब्बतसे छूटकर॥

—तारीखे अदबे उर्दू

---

[1] फूल जैसे कपोलोकी; [2] शंख;
[3] मन्दिरमे।

४३

बहर

[जन्म १२२५ हि० स०]

शेख इमदादअली बहर अपने उस्ताद नासिखके हमनाम इमाम-बख्शके पुत्र थे। लखनऊ वतन था।

मेरा दिल किसने लिया नाम बताऊँ किसका ?
मैं हूँ या आप हैं, घरसे कोई आया न गया ॥

जालिम ! हमारी आजकी यह बात याद रख।
इतना भी दिलजलोंका सताना भला नहीं ॥

गई बरसात, गुजरा साल यह भी आहोशेवनमें[1]।
खबर हमको नहीं, बादल किधर आया किधर बरसा ॥

—इन्तखादयात, भाग २

मुद्दतसे इल्तफ़ात[2] मेरे हालपर नहीं।
कुछ तो कजी[3] है दिलमें कि सीधी नज़र नहीं ॥

अफसोस उम्र कट गई रंजोमलालमें।
देखा न ख्वाबमें भी जो कुछ था खयालमें ॥

क्या-क्या न मुझसे संगदिली दिलबरोंने की।
पत्थर पड़ें समझमें न समझा किसी तरह ॥

—तारीखे अदबे उर्दू

---

[1] रोनेधोनेमें, [2] कृपाकटाक्ष, [3] टेढ़ापन (मैल)।

४४

आबाद

मिर्ज़ा मेहदीहुसेन 'आबाद' गुलामजफ़रके बेटे थे। लखनऊके रईसोमे शुमार किये जाते थे। शेरो-सुखनका बड़ा शौक था। स्वय अपने मकानपर भी मुशायरोका आयोजन करते थे। दूसरोके यहाँ भी बड़े चावसे मुशायरोमे जाते थे। कई कृतियाँ छोड़ी है। कलाम मामूली है।

भला देखेगे क्योंकर ग़ैर उसको।
मेरी आँखोके पर्देमें निहां है॥

जब हुए बर्बाद ऐ'आबाद' तब पाया पता।
बेनिशां होकर मिला हमको निशाने कूए दोस्त॥

जहाँतक हो सका अपनी ज़ुबाँसे उससे कह गुज़रे।
जताई बात हमने दोस्तीकी अपने दुश्मनको॥

४५

वज़ीर

ख्वाजा मुहम्मद वजीर, ख्वाजा मुहम्मदफ़कीरके पुत्र और नासिखके शिष्योमे प्रसिद्ध शिष्य थे। आखिरी उम्रमे शेरो-सुखनसे अरुचि हो गई थी और एकान्त जीवन व्यतीत करते थे। स्वाभिमानका यह हाल था कि वाजिदअलीशाह नवाबने दो बार इन्हे बुलानेका प्रयत्न किया, परन्तु ये गये नही। हि० सं० १२७०मे समाधि पाई। अपने उस्ताद नासिखकी खारजी शायरीपर फिदा थे। रियायते लफ्जीकी इमारतपर इमारत खडी कर देना इनका खास शौक था।

चला है ओ दिलेराहत तलब! क्या शादमाँ होकर।
जमीने कूएजानां रंज देगी आस्मां होकर॥
० किया क़त्ल उसने ग़ैरोको मरे हम रश्कके मारे।
अजल भी दोस्तो आई नसीबे दुश्मनाँ होकर॥
० तिरछी नजरोंसे न देखो आशिक़े दिलगीरको।
कैसे तीरन्दाज हो सीधा तो कर लो तीरको॥
० है चश्मे नीमबाज़ अजब ख्वाबेनाज़ है।
फ़ित्ना तो सो रहा है दरे फ़ित्ना बाज है॥

—इन्तक़ादयात, भाग २

न कर नजर मेरे जुर्मोगुनाहे बेहदपर।
इलाही तुझको गफ़ूरुलरहीम कहते है॥
० कहें उदू न कहीं मुझको देखकर मोहताज।
यह उनके बन्दे हैं जिनको करीम कहते है॥

—तारीखे अदबे उर्दू

४६

रश्क

मीर औसतअली रश्कका असल वतन फैज़ाबाद था। परन्तु लखनऊ रहने लगे थे। इनकी शायरी साधारण है। तीन दीवान छोड़े हैं।

महफिलमें शमा, चाँद फ़लकपर, चमनमें फूल।
तसवीरे रुए अनवरे जानाँ कहाँ नहीं॥

कहाँ यह लुत्फ़ चीतेने अगर पाई कमर पतली।
तुम्हारे होंट पतले, उँगलियाँ पतली, कमर पतली॥

——इन्तकादयात, भाग २

यारको हमसे कुछ लगाव नहीं।
वोह मुहब्बत नहीं, वोह चाव नहीं॥
गंगको बहरे ग़मसे क्या निसबत?
यह वोह दरिया है जिसमें नाव नहीं॥
अबकी जाड़े हैं और नालओ आह।
इस तरहका कोई अलाव नहीं॥

इस गज़लमें इन्होंने ताव, पुलाव, दबाव, सभी काफिये इस्तेमाल किये हैं। शायद गलतीसे बिलाव काफिया रह गया था। सो वह भी किसी मसख़रेने इनके तख़ल्लुसके साथ जड़ दिया है——

दूरसे छेड़छाड़े दिखाओ नहीं।
'रश्क' बैठा है बनबिलाव नहीं॥

——तारीखे अदबे उर्दू

४७

महर

मिर्जा हातिमअलीबेग महरके पिता फैजअली अलीगढमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी तरफसे तहसीलदार थे। बचपनसे ही शेरगोईका शौक था। १८४० ई०में सरकारी इम्तहान पास करके चुनारगढ (जिला मिर्जापुर)के मुसिफ नियुक्त हुए। १८५७के विप्लवमें अंग्रेजोंको शरण देनेके उपलक्षमें खिलअत और जागीर प्राप्त करनेपर आगरेमें रहकर वकालत करने लगे थे। तत्कालीन ख्यातिप्राप्त शायर गालिब, अनीस, दबीर, गुलाम, इमामशहीद, सबा, मुनीर वगैरहसे मित्रता थी। काफी अधिक लिखते थे। ८-१० पुस्तकें इनकी लिखी मिलती हैं। १८७९में परलोक सिधारे।

शोख चश्मीसे चिकारोंको वह धमकाते हैं।
देखियो हमसे मिलाना न खबरदार आँखें॥

चश्मे मख्मूरमें साक़ीके ये कैफीयत है।
नशे मस्तोंके दुबाला हों जो हों चार आँखें॥

४८

मुनीर

सैयद इसमाइलहुसेन मुनीर शिकोहाबादके रहनेवाले थे। इनके पिता अहमदहुसेन शाद भी शायर थे। मुनीर अक्सर लखनऊ आया-जाया करते थे। एक वेश्याके वधके अभियोगमे इन्हे कालापानी हो गया था। १८८१मे रामपुरमे समाधि पाई।

घूँघटसे तेरे कानकी बाली नज़र आई।
दीवारे चमन तोड़कर पत्ता निकल आया॥

तनते हुए मुशायरेमे आओ एक दिन।
मिसरा तो तरह हो कभी कद्दे बुलन्दका॥

देखकर कुश्तोंके अम्बार लबे बाम हँसो।
सब कहें क़हक़हे दीवारका पुश्ता बाँधा॥

फ़रियादेआशिक़ाँ जकने कानमें पड़े।
बालीमे तेरे गूँज हो आवाज़े चाहकी॥

फ़िराक़े यारमें हर तरह दिन गुज़र जाता।
क़ज़ा जो रहम न खाती, तो क्या मैं मर जाता॥

कुछ जवानी है अभी कुछ है लड़कपन उनका।
दो दगाबाज़ोंके क़ब्ज़ेमें है जोबन उनका॥

जाने शीरीं हिज्रमें होंटोंतक आई फिर गई।
नापसन्दे मर्ग होकर यह मिठाई फिर गई॥

नाकये लैलाकी क्या सहराये मजनूँमें बिसात।
अजदहे वहशतके मुँहमें ऊँट जीरा हो गया॥

गादी हैं दुख्तेरज़से किसी दीपरस्तकी।
तौबाके दरपै बजता है घण्टी शिकस्तकी॥

दहक़ाने गिरियासे न गई मेरी आबरू।
क्या सूखे घाट उतरे हैं तूफ़ान आपके॥

—'आजकल' १५ सितम्बर १९४९

४६

रिन्द

सैयद मुहम्मदख़ाँ रिन्द नवाब गयासुद्दीन नीसापुरीके बेटे थे। फैजाबादके रहनेवाले थे, परन्तु लखनऊ रहने लगे थे। लखनऊ दरबार-की रंगरेलियोमे सराबोर रहते थे।

फेंक दूँ दिलको अभी चीरके पहलू अपना।
तुझपै क़ाबू नहीं, दिलपर तो है क़ाबू अपना॥

खुली है कुंजे क़फ़समे मेरी ज़बाँ सैयाद।
मै माजरायेचमन क्या करूँ बयाँ सैयाद॥
दिखाया कुंजे क़फ़स मुझको आबोदानेने।
वगर्ना दाम कहाँ, मै कहाँ, कहाँ सैयाद॥

आ अन्दलीब! मिलके करे आहोज़ारियाँ।
तू हायगुल पुकार मै चिल्लाऊँ हायदिल॥

वादेपै तुम न आये तो कुछ हम न मर गये।
कहनेको बात रह गई और दिन गुज़र गये॥

—इन्तकादयात, भाग २

दो-चार गाम याँसे है दौलतसराए दोस्त।
टूटे यह पाँव, देखो तो आकर कहाँ थके॥

—तारीखे अदबे उर्दू

५०

नसीम

[१८११-१८४३ ई०]

पं० दयाशकर 'नसीम' १८११ ई० मे लखनऊमे उत्पन्न हुए। आपके पिताका नाम पं० गगाप्रसाद कौल था। आप काश्मीरी ब्राह्मण थे, किन्तु सुना जाता है कि आप उनकी तरह शकील नही थे। ठिगनाकद, गन्दुमी रग, काली आँखे और छरेरे बदनके आदमी थे। तत्कालीन रिवाजके अनुसार उर्दू-फारसीकी शिक्षा प्राप्त की। शायरीकी ओर प्रवृत्ति हुई तो उस युगके श्रेष्ठ उस्ताद 'आतिश' के शिष्य होने का सौभाग्य प्राप्त किया। २० वर्षकी आयुमे ही शायरीका अच्छा-खासा अभ्यास कर लिया। प्रारम्भमे आपने भी गजले ही कही, किन्तु दिलके वलवले गजलमे पूरे न हो सके तो मसनवीकी[1] ओर आकर्षित हो गये।

उन दिनो मीर 'हसन' की मसनवी 'सहरुलवयान' बड़ी ख्याति पा रही थी। अत नसीमने भी 'गुलबकावली' की कहानी को नज्म करके २५ वर्षकी आयुमे समाप्त कर दिया और इस मसनवीका 'गुलजारे नसीम' नाम रखा।

"सींचा था जिसको खूने जिगरसे वोह बाग था"

'गुलजारे नसीम' प्रकाशित होते ही हाथो-हाथ बिक गई। कविता मर्मज्ञोने इसका हृदयसे स्वागत किया। अभीतक मसनवीका श्रेय केवल

---

[1] जो कथा या कहानी कवितामे लिखी जाय उसे मसनवी कहते है।

'मीर हसन' को प्राप्त था। 'गुलजारे नसीम' की बदौलत 'नसीम' भी आस्माने शायरी पर चमकने लगे, परन्तु खेद है कि क्रूरकालको उनकी यह ख्याति सहन न हुई और ३२ वर्षकी आयुमे ही उन्हे झपट्टा मारकर दबोच लिया।

नसीमने मीरहसनको मसनवीके मुकाबिलेमे मसनवी कही है, परन्तु उनका अनुसरण कही भी नही किया है। अपना मौलिक और अनोखापन हर जगह कायम रखा है। इस मसनवीकी भूमिकामे स्व० चकबस्तने लिखा है—

"अगर मीरसहन अपने रगमे फर्द है तो नसीम अपने तर्जमें यकता है। अगर कलामकी सादगी और बेतकल्लुफीका लुत्फ उठाना है तो मीरहसनकी मनसवी देखो, अगर बारीकबीनी और मायने आफरीनीका रंग पसन्द है तो गुलजारे नसीमकी सैर करो। देखो फिराके यारमे सदमा गुजरनेका मजमून एक ही है। दोनों उस्तादोकी तबियत इस मजमूनपर बराबर लड़ी है। मगर दोनोके अन्दाजे सुख़न पर ख़याल करो—

मीरहसन—

दिवानी-सी हर सिम्त फिरने लगी।
दरख़्तोंमें जा-जाके गिरने लगी॥
ठहरने लगा जानमें इज़्तराब।
लगी देखने वहशत आलूदा ख्वाब॥
ख़फ़ा जिन्दगानीसे होने लगी।
बहानेसे जा-जाके सोने लगी॥
जहाँ बैठना फिर न उठना उसे।
मुहब्बतमें दिनरात घुटना उसे।
किसीने अगर बात की, बात की।
पै दिनकी जो पूछी कही रातकी॥

कहा गर किसीने कि कुछ खाइये ॥
कहा ख़ैर बेहतर है मँगवाइये ॥

जो पानी पिलाना तो पीना उसे ।
गरज़ गैरके हाथ जीना उसे ॥

नसीम—

सुनसान वो दमबखुद थी रहती ।
कुछ कहती तो ज़ब्तसे कहती ॥

करती थी जो भूक प्यास बसमें ।
आँसू पीती थी खाके क़समें ॥

जामासे जो ज़िन्दगीके थी तंग ।
कपड़ोंके एवज़ बदलती थी रंग ॥

यकचन्द जो गुजरी बेख़ुरो ख़्वाब ।
ज़ाइल हुई उसकी ताकतोताब ॥

सूरतमें खयाल रह गई वोह ॥
हैय्यतमें मिसाल रह गई वोह ॥

आने लगे बैठे-बैठे चक्कर ।
फ़ानूसे ख़याल बन गया घर ॥

"दोनोंने अपने-अपने रगमे हक़ेसुख़नवरी अदा किया । मीरहसनके अशआरका [illegible]साख़्तापन और सादापन दिलमे अजीब कैफियत पैदा करता है । गवेहिज[illegible] बेकरारीकी तसवीर आँखोके सामने फिर जाती है । नसीमके अश[illegible]क दूसरी ही हालत पैदा करते है । अलफाज की शौकत (शब्दोकी मोहकता) बन्दिशकी चुस्ती, इस्तआरोकी नजाकत (अलंकारो-की कोमलता) तशवीहोकी पुख़्तगी (उदाहरणोकी दृढता) से मुसन्निफका

जोरे तबीयत (रचयिताकी कवित्वशक्ति) मालूम होता है। नाजुक खयाली और बुलन्द परवाजी इस आलमका इशारा करती है जहाँ पहुँचते हुए हमारे तायरे ख्याल (कल्पना पक्षी) के पर जलते हैं। गरज कि अगर सूरते हालका बयान मीरहसन पर खत्म है तो कलामका मायने खेज़ होना नसीमपर।

शहज़ादेके गायब हो जाने पर मीर हसनने पसमाँदा (घर के) लोगोकी परेशानीका हाल इस तरह नज्म किया है—

कोई देख यह हाल रोने लगी,
कोई ग़मसे जी अपना खोने लगी।

कोई बिलबिलाती-सी फिरने लगी,
कोई ज़ोफ़ खा-खाके गिरने लगी।

कोई सरपै रख हाथ दिलगीर हो,
गई बैठ मातमकी तसवीर हो।

हुआ गुम वोह यूसुफ, पड़ी फिर यह धूम,
किया खादिमाने महलने हुजूम।

कहा शहने वाँका मुझे दो पता,
अजीजो जहाँसे वोह यूसुफ़ गया।

गईं ले वोह शहको, लबेबामपर,
दिखाया कि सोता था याँ सीमबर।

जो देखी जगह वह जहाँसे गया,
कहा हाय बेटा तू याँसे गया।

मेरे नौजवाँ अब किधर जाये पीर,
नजर तूने मुझपर न की बेनजीर।

अजब बहरे ग़ममें डुबोया मुझे,
ग़रज जानसे तूने खोया मुझे।

फूलके गायब हो जाने पर बकावलीके इज्तरावकी तसवीर नसीमने अपने रंगमे यूँ खीची है——

देखा तो वह गुल हवा हुआ है,
कुछ और ही गुल खिला हुआ है।

घबराई कि हैं! किधर गया गुल,
झुंझलाई कि कौन दे गया जुल।

हैं-हैं मेरा फूल ले गया कौन,
हैं-हैं मुझे खार दे गया कौन।

हाथ उसपर अगर पड़ा नहीं है,
बू होके तो गुल उड़ा नहीं है।

नर्गिस तू दिखा किधर गया गुल,
सोसन तू बता किधर गया गुल।

सम्बुल मेरा ताज़ियाना लाना,
शमशाद इन्हें सूलीपर चढ़ाना।

थर्राईं खवासे सूरते बेद,
एक-एकसे पूछने लगी भेद।

बोली वोह बकावली कि अफसोस,
गफलतसे यह फूलपर पड़ी ओस।

आँखोंसे अज़ीज़ गुल मिरा था,
पुतली वही चश्मेहौज़ का था।

नाम उसका सबा न लेती थी मैं,
इस गुलको हवा न देती थी मैं।

गुलचींका जो हाय ! हाथ टूटा,
गुंचेके भी मुँहसे कुछ न फूटा।
ओ बादे सबा ! हवा न बतला,
खुशबू ही सुँघा पता न बतला।
बुलबुल तू चहक अगर ख़बर है,
गुल तू ही महक बता किधर है।

"मीर हसनके अशआरका असर बिजलीकी तरह दिलमे दौड़ जाता है। जो हालत वोह बयान करता है, उसकी तसवीर आँखोके सामने खींच देता है। नसीम के अशआर जबानकी पाकीज़गी और तरकीबे अल्फ़ाज़की चुस्तीके लिहाजसे तासीरका तिलस्म बने हुए है। एककी जीनत हुस्ने सूरतसे है, दूसरेकी शान लुत्फेमायनीसे कायम है। मीरहसन मुहावरे और रोजमर्राके बादशाह है, इस्तआरे तशबीह नसीमका हिस्सा है। लेकिन इतना कहना नाइन्साफी नही कि (जो सोज़ोगुदाज मीरहसनके कलाममे है, वोह नसीमके कलाममे नही है, और हकीकत ये है कि जो दर्द अमूमन शुअ़राये दिल्लीके कलाममे पाया जाता है, वोह अहले लखनऊ के कलाममे नही पाया जाता"[1])

मुहम्मद हुसेन आजाद लिखते है—"प० दयाशकर नसीमने गुलजारे नसीम लिखी और बहुत ख़ूब लिखी। इसकी आम और ख़ास सबमे शुह-रत है। इसके नुक्ते और बारीकियोंको समझे या न समझे, मगर सब लेते है और पढते है। जितनी समझमे आती है उसपर ख़ुश होते है और लोटे जाते है।....हमारे मुल्के सुख़नमे सैकडो मसनवियाँ लिखी गईं, मगर इनमे फकत दो नुस्ख़े ऐसे निकले, जिन्होने तबियतकी मुआफकतसे

---

[1]गुलजारे नसीम दीबाचा, पृ० २८—३१।

क़बूले आमकी सनद पाई। एक 'सहरुलवयान' और दूसरी 'गुलजारे नसीम"।'

(गुलज़ारे नसीमकी दिन-दूनी, रात-चौगुनी फैलती हुई सुगन्ध ईर्ष्यालुओके हृदयमे काँटेकी तरह खटकने लगी। उन्होंने विलविलाकर ऐसी वेतुकी और वेपरकी बाते कहना शुरू की कि लोग हैरतमे आगये। मगर चकवस्तने इनकी तूफानेवदतमीज़ीके वोह दन्दानशिकन जवाव दिये कि फिर ज़वान खोलनेकी हिम्मत न हुई।) पक्ष-विपक्षके उत्तर 'शेरो सुखन' से दूने साइजके ३७४ पृष्ठोमे 'गुलजारे नसीम' की द्वितीयावृत्तिके साथ प्रकाशित हो गये है, जो कि शायरी और ज़बानकी मालूमात वहम पहुँचानेके लिए वडे कामके है। नसीमकी सूझ, कवित्वशक्ति और हाज़िर जवावी कमालकी थी। यही कारण है कि (उस युगमे जव कि 'आतिश' और 'नासिख़' जैसे मुसल्लिमउल सबूत उस्ताद मौजूद हों, 'अनीस' और 'दवीर' के मर्सियोंसे छते फटी पडती हो, वज़ीर, सवा, रिन्द, ख़लील जैसे नौजवाँ शायर कयामत ढा रहे हो, तव उनके समकक्ष वज़्मे अदवमे नसीम अपना एक महत्वपूर्ण, विशिष्ट स्थान हिन्दू होते हुए भी वना सके।) इनकी कवित्व शक्ति और हाजिर जवावीके कुछ उदाहरण चकवस्तने इस तरह बयान किये है—

१—एक मुशायरेमे नसीमने मतला पढ़ा—

मिन्नत दिला किसीकी न इसला उठाइये।
मर जाइये न नाज़े मसीहा उठाइये॥

आतिश भी इस मुशायरेमे मौजूद थे। उन्होने नसीमकी वहुत तारीफ की और कहा कि मेरा यह मतला इसके आगे गर्द है—

जाँबख़्श लबके इश्क़में ईजा उठाइये।
बीमार होके नाज़ेमसीहा उठाइये॥

---

[1]आवेहयात।

२—एक मर्तबाका जिक्र है—कही मुशायरेकी सुहबत थी, यह भी वहाँ मौजूद थे। कब्ल मुशायरा शुरू होनेके शेख़ नासिख़ने इनकी तरफ मुख़ातिब होकर कहा कि—पण्डत साहब ! एक मिसरा कहा है, दूसरा मिसरा नही सूझता कि पूरा शेर हो जाय। इन्होंने जवाब दिया 'फर्माइय'। नासिख़ने मिसरा पढा—

"शेख़ने मस्जिद बना मिसमार बुतख़ाना किया"

उनके मुँहसे मिसरा निकलनेकी देर थी कि यहाँ दूसरा मिसरा तैयार था—

"तब तो इक सूरत भी थी अब साफ़ वीराना किया"

इस मिसरेका सुनना था कि हाजरीने जल्सा फड़क उठे और हर तरफसे नारा हाये तहसीन बुलन्द हुए। शेख़ नासिख़ने शायरीकी आड़ में मजहबी चोट की थी। लेकिन नसीमने ठण्डा कर दिया।

३—इसी तरह एक शख़्सने मुशायरेमे एक शेर पढा जिसका दूसरा मिसरा यह था—

"जानिबे जुल्मात हरगिज आफ़ताब आता नहीं"

पहला मिसरा कुछ मुहमल (बेमायने) सा था। नसीमके मुँहसे बेसाख़्ता निकल गया कि दूसरा मिसरा तो ख़ूब है, लेकिन पहला मिसरा ठीक नही। वे साहब भी जलेतन थे। झल्लाकर बोले कि अच्छा इससे बहतर मिसरा कह दीजिए। यहाँ तो मज़ामीन हरवक्त हाथ वान्धे सामने खड़े रहते थे। उसी वक़्त मिसरामौज़ूँ करके सुना दिया—

तीरहदिलकी बज़्ममें जामे शराब आता नहीं।
जानिबे जुल्मात हरगिज आफ़ताब आता नहीं॥

नसीमकी मुशायरेमे धाक बैठ गई वह बेचारा जलील हो गया।

४—एक रोज आतिशके यहाँ शागिर्दोंका जमघटा था। रिन्द,

सवा, खलील, वगैरह बैठे हुए थे। नसीम भी मौजूद थे। सुबहका सुहावना वक्त, बरसातका मौसम, मेह बरसता हुआ, अजीब कैफियत थी। मौसमे बहारसे कुछ तबीयतें ऐसी मस्त हुई कि शागिर्दोंने आतिशसे गज़लकी फर्माइश की। आतिशका बुढापा था लेकिन तबियतमें जवानीका ज़ोर भरा था। फिलबदी अशआर मौज़ू करने शुरू कर दिये। जिस गज़लका मतला है—

दहनपर हैं उनके गुमाँ कैसे-कैसे।
कलाम आते हैं दरमियाँ कैसे-कैसे॥

नसीमकी तबियत भी जोशे बहारसे लहराई हुई थी। उन्होंने इन अशआरकी तज़मीन[1] करनी शुरू कर दी। जितनी देरमें आतिश दूसरा शेर सोचते थे। ये उस अर्सेमें उनके पहले शेर पर तीन मिसरे लगा चुकते थे, और बाज़-बाज मिसरे तो वाक़ई इस अन्दाज़से लगाये हैं कि अगर कोई बरसो सरबगरेबाँ रहे तो इससे बहतर मिसरे नहीं लगा सकता। आतिशके दो शेरोंकी तज़मीन मिसालन लिखी जाती है—

न खूनी कफ़न है न घायल हुए हैं,
न ज़ख्मी बदन है, न बिस्मिल हुए हैं,
लहू मलके कुश्तोंमें दाख़िल हुए हैं,
"तुम्हारे शहीदोंमें शामिल हुए हैं
गुलोलालए अरग़वाँ कैसे-कैसे"

कोई जानता है, किसीको ख़बर है,
कि परदेमें कौन ऐ सनम जलवागर है,

[1] शेरके पहिले मिसरेपर तीन मिसरे लगाकर मुख़म्मस बनाना।

कहीं कुछ ख़याल और कहीं कुछ नज़र है,
"दिलोदीदए अहले आलममे घर है।
तुम्हारे लिए है मकाँ कैसे-कैसे"

इसी तरह १४–१५ शेरकी गजलपर मिसरे लगाये है। आतिशके शागिर्दोंमे 'सबा' से इनसे बहुत याराना था। इनके मरनेपर सबाने यह शेर कहा—

उठ गये है 'नसीम' जिस दिनसे।
ऐ 'सबा'! वोह हवाएबाग़ नहीं॥

५—लेकिन रिन्दसे चश्मक थी। चुनाचे एक मुशायरेमे नसीमने 'रिन्द' की एक मशहूर गजलपर ख़मसा पढ़ा। जिसका मक़्ता ये था—

वस्ल इन्साँको परीज़ादोंका हो, है दुश्वार।
फ़ायदा कुछ नहीं तुम मुफ़्तमे क्यों होते हो ख़्वार॥
कहते-कहते तो हुए तुमको 'नसीम' अब लाचार।
"इश्क़को तर्क करो या न करो, हो मुख़्तार,
नेको बद हम है तुम्हें 'रिन्द' सुझाते जाते"॥

तीसरे मिसरेका निकलना था कि रिन्दने सरेमुशायरा तलवार खीच ली और नसीमसे बरसरे पैकार होने का इरादा किया। नसीमके मिज़ाजमे भी बाँकपन था। यह उठ खड़े हुए और कहने लगे कि तलवारपर न भूलना, यहाँ थप्पड़ोसे तलवार छीन लेते है। लेकिन 'फ़लक' वग़ैरह इस मुशायरेमे मौजूद थे, उन्होने बिगड़ी हुई तबियतोको सम्भाला और भडकती हुई आग पर पानी डाला, और रिन्दसे कहा कि बन्दानवाज यह तलवारका मुकाम नही, यहाँ ज़ोरे कलमसे काम लीजिये। इस हंगामाआराईकी वजह यह थी कि रिन्द एक रंगीन मिजाज और आशिकतन आदमी थे। उस जमानेमे एक बारगाहे हुस्नके उम्मीदवार थे। लेकिन किस्मतकी नारसाई मंजिले मकसूद तक रसाई नही हुई थी। तलव्वन मिज़ाजीने

इस मायूसीकी हालतको गैजो-गज़बसे बदल दिया था। नसीमने इस ख़मसेमे दर-परदा इसी कैफियतका इशारा किया था। रिन्दके चोट खाए हुए दिलपर यह ताने ग्रामेज नसीहत गिराँ गुज़री और इस मारकेका वाइस हुई। रिन्दके इस शेर पर—

रास्ता रोकके कह लूँगा जो कहना है मुझे।
क्या मिलोगे न कभी राहमें आते-जाते॥

नसीमने एक सुहबतमे इस शेरका दूसरा मिसरा पढ़ा तो मज़ाकन 'मिलोगे' के वजाय 'मिलोगी' पढा। इस पर वडा कहकहा पड़ा और इस शेरको लोग इसी सूरतमे पढने लगे। उड़ते-उड़ते यह खवर रिन्दके कानो तक भी पहुँची। हरीफोने अस्ल वाकयेपर अपनी तरफसे और हाशिये चढ़ाये। गरज कि रिन्दके दिलमे इस वाकयेकी वजहसे भी एक काविश मौजूद थी। यह भी उनके लिए नसीमसे विगड़नेकी एक वजह हुई। एक मौकेपर रिन्दने एक शेर पढा—

क्या मिला अर्ज़े मुद्दआ करके।
बात भी खोई इल्तजा करके॥

नसीमने पहला मिसरा यो बदल कर पढ़ा—

फ़ायदा! अर्ज़े मुद्दआ करके?

और कहा—अब शेर बहतर हो गया, और लोग भी जो वैठे थे उन्होने भी नसीमकी ऐसी कही। यह अम्र भी रिन्दको नागवार गुज़रा।

६—नसीमकी जो वुकअत शुअराए लखनऊके ज़ुमरेमे थी, उसका अन्दाज़ा मुन्दर्जा ज़ैल वाकयेसे हो सकता है। एक मर्तबा देहलीसे ये तीन मिसरे इम्तहानन लखनऊ भेजे गये कि शायराने लखनऊ इन पर मिसरे लगाकर भेजे।

(१) नातवाँ हूँ कफ़न भी हो हलका।
(२) इसलिए क़ब्रमें रक्खा उन्हें ज़ंजीर समेत।
(३) मनमी रवम ब काबा ओ दिल मी रवद बदैर।

अब अहले लखनऊकी यह कोशिश हुई कि ऐसे मिसरे कहकर भेजे जाएँ कि देहली वालोंको भी यहाँ की शायरीका कायल होना पड़े। अगर मिसरे सुस्त हुए तो किरकिरी हो जायगी। गरज़ कि तीन शख्सो को जो हर तरह इस कामके लिए मौज़ू खयाल किये गये, एक-एक मिसरे पर मिसरा लगानेका काम सुपुर्द हुआ। पहला मिसरा नासिख़-को दिया गया, दूसरा आतिशको और तीसरा नसीमको। गो कि उस वक़्त और बड़े-बड़े शायर मौजूद थे मगर आतिश और नासिख़के साथ लखनऊकी आबरू कायम रखनेका शर्फ नसीम ही को हासिल हुआ। तीनों उस्तादोंने जी तोडकर मिसरे लगाये है—

डालदे साया अपने आँचलका।
नातवाँ हूँ कफ़न भी हो हलका॥

—नासिख़

हश्रमें हश्र न बरपा करें यह दीवाने।
इसलिए क़ब्रमें रक्खा उन्हें ज़ंजीर समेत॥

—आतिश

दारमज़र्दी ओ कुफ़्र बहर यक क़दम बसैर।
मनमी रवम ब काबा ओ-दिल मी रवद बदैर॥[1]

नसीम स्वतत्र और स्वच्छन्द प्रकृतिके थे। अपने स्वाभिमानमे वाल नही आने देते थे। कभी शाही दरबारमे नही गये, और न कभी शानो शौकतके लिए मन ललचाया। अनीसके इस शेरके उदाहरण बने रहे।

---

[1]गुलज़ारे नसीम दीबाचा, पृ० ४८-५२।

दरपै शाहोंके नही जाते फ़क़ीर अल्लाहके।
सर जहाँ रखते हैं सब हम वाँ कदम रखते नहीं ॥

एकबार अमजदअलीशाहके सामने नर्तकी यह गज़ल गा रही थी—

जब न जीतेजी मेरे काम आयगी।
क्या यह दुनिया आकबत बख़्शायगी ॥
जाँ निकल जायेगी तनसे ऐ 'नसीम'!
गुलको बूएगुल हवा बतलायगी ॥

तो सुख़न शनास बादशाहने पूछा—क्या यह गज़ल उसी नसीमकी है, जो 'गुलजारेनसीम' का मुसन्निफ (रचयिता) है। नर्तकीके हाँ कहनेपर बादशाहने दरबारमे बुलानेकी अभिलाषा प्रकटकी तो ईर्ष्यालुओ ने कह दिया कि 'नसीम' तो इन्तकाल फर्मा गये। कुदरतकी बात देखिये कि इधर उनकी ज़बानसे ऐसा मनहूस वाक्य निकला, उधर मृत्युकी कमानसे तीर निकलकर नसीमको लगा। मृत्युसे २–३ घण्टे पूर्व नसीमने यह शेर कहा था—

पहुँची न राहत हमसे किसीको बल्कि अज़ीयतकोश हुए।
जान पड़ी तब बारेशिकम थे, मरके वबाले दोश हुए ॥

नसीम 'आतिश' के शिष्य होते हुए भी अपनी मुश्किल पसन्दीके कारण नासिख़के रंगमें कहते थे। इनके कलाममे भी वही ख़ारजी रंगामेजी और शब्दोकी मुनासबत पाई जाती है। नसीमकी स्वाभाविक प्रवृत्ति ग़ज़लके अनुकूल नही थी। इसीलिए उन्होने बहुत शीघ्र इस क्षेत्रका परित्याग कर दिया। 'गुलजारे नसीम' के अन्तमें उनकी गज़लोंके केवल २८२ शेर मुद्रित है। उन्हीं मे से कुछ बतौर नमूना पेश किए जाते है। पहले कुछ चकबस्त द्वारा सकलित किये गये नसीमके समकालीन शायरोके साथ तुलनात्मक शेर पेश किये जाते हैं—

नसीम— सहबाकशोंकी[1] ख़ाक है हर इक मुकामपर।
साक़ी लुटा शराबको मस्तोंके नामपर॥
सबा— लाई है मुझको वहशते दिल उस मुकामपर।
हँसनेकी जा है कैसके सौदाये ख़ाम पर[2]॥
रिन्द— पड़ती है आँख जब मिरी मीना ओ जामपर।
सौ सौ दरूद[3] पढ़ता हूँ साक़ीके नामपर॥

नसीम— दिलसे हरदम हमें आवाज़ेबुका[4] आती है।
बन्द कानोंको भी गिरयाकी[5] सदा आती है॥
गुल हुआ कोई चराग़े सहरी[6] ओ बुलबुल!
हाथ मलती हुई पत्तोंसे सदा[7] आती है॥
रिन्द— तीरओतार ओ धुआँधार[8] घटा आती है।
मयकशो! फ़स्लेमये[9] होशरुबा[10] आती है॥
जानिबे ख़ानयेख़ुम्मारसे[11] क्या आती है।
लड़खड़ाती हुई जो बादेसबा आती है॥

नसीम— अब्रेरहमत[12] सुनते हैं नाम आपका।
ख़ाकसारोंपर करम फ़रमाइये॥

---

[1]शराब पीने वालोंकी;

[2]भाव यह है कि मैं उस उनमत्तावस्थाको पहुँच चुका हूँ कि मजनूँका दीवानापन हलका पड जाता है;

[3]दुआ;
[4]रोनेकी आवाज;
[5]रुदनकी धुनि;
[6]प्रातः कालीन दीपक;
[7]आवाज;
[8]अन्धेरी दे-दे करके;
[9]शराब पीनेकी ऋतु;
[10]होश खोने वाली;
[11]शराबख़ानेसे;
[12]दयाकी बारिश।

रिन्द— दिनको तो तशरीफ़ तुम लाते हो रोज़।
शबको भी इक दिन करम फ़रमाइये॥

नसीम— लाये उस बुतको इल्तजा करके।
कुफ़्र टूटा खुदा-खुदा करके॥

रिन्द— क्या मिला अर्जे मुद्दआ करके।
बात भी खोई इल्तजा करके॥

नसीम— जब हो चुकी शराब तो मैं मस्त मर गया।
शीशेके खाली होते ही पैमाना भर गया॥

सबा— वाइज़के मैं ज़रूर डरानेसे डर गया।
जामे शराब लाये भी साकी किधर गया॥

नसीम— रूहेरवाने जिस्मकी[1] हालत मैं क्या कहूँ?
झोंका हवाका था, इधर आया उधर गया॥

सबा— सिसले हुबाब[2] बहरेजहाँमें[3] न दम मिला।
इक मौज[4] था कि मैं इधर आया उधर गया॥

नसीम— गुज़रा जहाँसे मैं तो कहा हँसके यारने।
"किस्सा गया, फिसाद गया, दर्देसर गया"॥

सबा— अच्छा हुआ जो हो गये वहदतपरस्त[5] हम।
फ़ित्ना गया, फ़िसाद गया, शोरोशर गया॥

नसीम— है रंजे इश्क मेरे लिये, मैं बरायेरंज[6]।
खुद भी मिटे यकी है जो मुझको मिटाये रंज॥

---

[1]शरीर के प्राण की; [2]बुलबुला;
[3]ससार रूपी नदीमें; [4]लहर;
[5]एक ईश्वर वादी; [6]रंजके लिए।

सबा— दिल है ग़िज़ायेरंज[1], जिगर है ग़िज़ाएरंज।
पैदा किया है हमको ख़ुदाने बरायेरंज॥

नसीम— या तंगियेकिनार[2] थी या अब फ़िशारेक़ब्र[3]।
वोह इब्तदाए ऐश थी, यह इन्तहाए रंज॥

सबा— आदमसे ख़ुल्देबाग़ छुटा हमसे कूए यार।
वोह इब्तदाए रंज है यह इन्तहाए रंज॥

नसीम— हम शीशयेशकिस्तॉ[4] है तुम कैफ़ेमौजेमय[5]।
बुनियादे ऐश तुमसे है हमसे बिनाये रंज॥

सबा— ऐ सानए अजल[6] मिरी मट्टी ख़राब की।
क्या चाहिए थी ख़ानये दिलमें बिनाये रंज॥

नसीम— क्यों ख़फ़ा रश्केहूर होता है।
आदमीसे क़ुसूर होता है॥
ख़ाकसारी वोह है कि जर्रोपर॥
रोज बाराने नूर होता है॥

सबा— बन्दा अब नासबूर[7] होता है।
उफ़्[8] होवे क़ुसूर होता है॥
ऐ सबा! जब बहार आती है।
हमको सौदा जरूर होता है॥

---

[1]रंजकी ख़ुराक; [2]गोदकी तंगी;
[3]कब्रकी संकीर्णता; [4]टूटे प्याले;
[5]शराबकी लहर;
[6]मृत्यु रूपी कारीगर;
[7]असन्तुष्ट;
[8]क्षमा किये जाने पर।

अब हम उनके २८२ शेरो मे से कुछ नमूना और पेश करते है—

समझा है हक़को अपने ही जानिब हर एक शख़्स ।
यह चाँद उसके साथ चला जो जिधर गया ॥
शोरीदगीसे[1] मेरी यहाँतक वोह तंग थे ।
रूठा जो मै तो ख़ैर मनाई कि शर[2] गया ॥

बूए गुल गुंचेसे कहती है 'नसीम' ।
बात निकली मुँहसे अफसाना चला ॥

चमनसे दहरके[3] आकर मै क्या निहाल हुआ ।
बरंगे सब्ज़ये बेगाना पायमाल हुआ ॥
कहानी कहके सुलाते थे यारको सो अब ।
फ़साना उम्र हुई; ख़्वाब वोह ख़याल हुआ ॥
जूनूँकी चाकज़नीने[4] असर किया वाँ भी ।
जो ख़तमें हाल लिखा था वोह ख़तका हाल हुआ ॥

शरीके बज़्म हुए हो तो दूर कीजे हिजाब ।
जो निकले नाचने फिर क्या लिहाज़ घूँघटका ॥

वजुज़ गोरेगरीबाँ[5] नक़्शे पा[6] थे फिर नहीं आगे ।
यहींतक हर मुसाफ़िरने पता पाया है मंजिलका ॥
'नसीम' अपने ही ऐमालोंसे गर्दिश है ज़मानेकी ।
रवाँ[7] कश्तीपै आता है नज़र हर नख़्ल[8] साहिलका ॥

सदफ़-ओ-अब्रेगुहरबारको[9] देखा तो खुला ।
आलमे आबमें भी होते है प्यासे पैदा ॥

---

[1]बुरी हालतसे; [2]झगड़ा; [3]संसारके; [4]कपड़े फाड़नेने; [5]कब्रिस्तानसे आगे; [6]पद चिह्न; [7]चलता हुआ; [8]पेड़; [9]सीप ।

कूचये जानाकी मिलती थी न राह।
बन्द की आँखें तो रस्ता खुल गया॥

बुलबुलके मुँहपै उड़ने लगी हैं हवाइयाँ।
सैयादको बता कहीं-ओ-बाग़बाँ! हवा॥

बुतोंकी गली छोड़कर कौन जाये।
यहींसे है काबेको सजदा हमारा॥

कलतक जो शमए महफ़िले ऐशोनिशात थे।
जलता नहीं चराग़ भी आज उनकी गोरपर॥

कुफ़्रो ईमाँ दोनों जानिबकी सुनें।
इसलिये गोशेबशर हैं दो तरफ़॥

ऐ मुर्ग़ेदिल तू शाख़े नशेमनसे गिर पड़ा।
हैफ़ आशियाँ बुलन्द है, परवाज़ पस्त है॥
थे महवेज़ुल्फ़ दीद्येतर दिल भी आ फँसा।
मछलीको क्या ख़बर थी कि पानीमें शस्त है॥

जब न जीते जी मेरे काम आयगी।
क्या यह दुनिया आक़बत बख़्शायगी॥
जब मिले दो दिल मुख़िल फिर कौन है?
बैठ जाओ ख़ुद हया उठ जायगी॥
ख़ाकसारोंसे जो रक्खेगा गुबार।
ओ फ़लक! बदली तेरी हो जायगी॥
गर यही है इस गुलिस्ताँकी हवा।
शाख़ेगुल इक रोज़ झोंका खायगी॥

जब करेगा गर्मियाँ वोह शोलारू।
शमये महफ़िल देखकर जल जायगी॥

जाँ निकल जायेगी जब तनसे 'नसीम' ।
गुलको बूए गुल हवा बतलायगी ॥

सब्र रुख़सत हो तो जाने दीजिये ।
बेक़रारी आये तो ठहराइये ॥
दिल ही में दिखलाइये तासीरेइश्क़ ।
ठंडी साँसोंसे उन्हें गरमाइये ॥
अब्रेरहमत सुनते हैं नाम आपका ।
ख़ाकसारोंपर करम फ़रमाइये ॥
सर्द आहें भरते हैं हम जब 'नसीम' !
कहते हैं वोह ठण्डे-ठण्डे जाइये ॥

क्या-क्या हसीं चुने हुए मिट्टीमें मिल गये ।
अफ़्शाँ समझके ख़ाकसे ज़र्रा उठाइये ॥

जिस क़दर वस्लेबुताँका तुम्हें रहता है ख़्याल ।
ऐ 'नसीम' ! उतनी कभी यादेख़ुदा आती है ?

आशिक़से गर्म होके न पूछो जलनका हाल ।
अफरोख़्ता हो शमअ़ तो परवाना क्या करे ॥

कानमें सबके अपनी बात न डाल ।
आबरू मिस्ले आबे गोहर है ॥

तुम्हें रक़ीबकी ख़ातिर है लो मै जाता हूँ ।
उठाइये न हयाको, बिठाइये न मुझे ॥

जो दिनको निकलो तो ख़ुर्शीद गर्देसर घूमे ।
चलो जो शबको तो कदमोंपै माहताब गिरे ॥

अहदे पीरीमें रवाना हुए यूँ होशोहवास ।
सुबहको जैसे मुसाफ़िरसे हो मंजिल ख़ाली ॥

इश्क़के रुत्बेके आगे आस्माँ भी पस्त है।
सर झुकाया है फ़रिश्तोंने बशरके सामने ॥

बल पड़ने लगा अबरूयेख़मदारके ऊपर।
आजाये न आफ़त कहीं दो चारके ऊपर ॥

चला दुख़्तरे रिज़को लेकर जो साक़ी।
फ़रिश्ते हुए साथ घर देखनेको ॥

मुहतसिबकी आँखपर जबसे चढ़ी।
दुख़्तेरिज़ शीशेके दिलसे गिर गई ॥

आनमें फ़र्क़ न आने दीजिये।
जान अगर जाये तो जाने दीजिये ॥

आँख नर्गिससे जो उसकी लड़ गई।
सुबहदम क्या ओस गुलपर पड़ गई ॥

दुनियामें ऐशो ग़मसे हैं यकसर भरे हुए।
शीशोंके दिल हैं ख़ाली तो साग़र भरे हुए ॥

दोज़ख़ोजन्नत हैं अब मेरी नज़रके सामने।
घर रक़ीबोंने बनाया उसके घरके सामने ॥

३० नवम्बर १९५० ई०

५१

शरफ़

मीर सआदतअलीहुसेनखाँ शरफ़ उर्फ आगा हिजो नवाब वाजिद-अलीके समधी थे। वाजिदअलीशाह जब बन्दी बनाकर कलकत्ते भेजे गये, तब इन्होने उस विपत्तिमे भी उनका साथ दिया। आतिशके शिष्योमे इनका विशेष स्थान है।

ठहरा गया है लाके जो मंजिलमें इश्ककी।
क्या जाने रहनुमा था कि रहज़न था, कौन था?

निकलके जाऊँ किधर तेरी अंजुमनके सिवा।
चमनकी बू हूँ बसूँ फिर कहाँ चमनके सिवा॥

दर्दे दिल भी उन्हें सैयादने कहने न दिया।
रह गये मुर्ग़ेक़फस खोलके मिनकारोंको॥

—इन्तकादयात, भाग २

जहाँमें हुस्न परस्तोंकी जान लेनेको।
निखर-निखरके निकलते हैं खूबरू क्या-क्या॥
टपक-टपकके कही गुल बना कही लाला।
चमनमें रंग न लाया मेरा लहू क्या-क्या॥
ज़बाँ जो उनकी 'शरफ' नशेमें बहकती है।
मजे-मजेकी वोह करते हैं गुफ्तगू क्या-क्या॥

फड़कके जान न देता तो और क्या करता।
क़फससे और निकलनेकी राह क्या करता?

शाख़ेगुल झूमके गुलज़ारमें सीधी जो हुई। ०
फिर गया आँखमें नक़्शा तेरी अँगड़ाईका ॥

रमाके धूनी जो बैठा हूँ माँगपर उसकी। ०
इसी लकीरका मुझको फ़क़ीर होना था ॥

—तारीखे अदबे उर्दू

५२

ख़लील

मीर दोस्तअली ख़लील सैयद जमालअलीके पुत्र और बड़ौलीके रहनेवाले थे। मामूली शायरी करते थे।

बज़्मसे यारने यह कहके निकाला हमको।
उठिये घर जाइये, दम ले चुके, सुस्ताए बहुत॥

मुसाफ़िरे रहे ना आश्नाए[1] मंज़िल हैं।
मिसाले रेगेरवाँ जाएँगे कहाँ देखें॥

जुनूँमें भी यही धुन है कोई उधर ले जाये।
जिधर वोह दुश्मने होशोहवास रहता है॥

—इन्तख़ाबदयात, भाग २

[1] निर्दिष्ट स्थानसे अनभिज्ञ।

५३

सबा

मीर वज़ीरअली सबा लखनऊके रहनेवाले और बुन्देअलीके पुत्र थे।

दिलमें इक दर्द उठा आँखोंमें आँसू भर आये।
बैठे-बैठे हमें क्या जानिये क्या याद आया॥

कूचये इश्ककी राहें कोई हमसे पूछे।
ख़िज्र क्या जानें ग़रीब अगले ज़मानेवाले॥

—इन्तख़ादयात, भाग २

५४

नवाब आसफ़ुद्दौला 'आसफ़'

[शासन काल ई० स० १७७२-१७९७]

लखनऊके नवाव मुगल सल्तनतकी ओरसे अवधप्रान्तके शासक (गवर्नर, सूबेदार) थे और मुगल वादशाहोके नायव कहलाते थे। अवधकी राजधानी फैजावाद थी और अवधके तत्कालीन शासक नवाव शुजाउद्दौलाके नवाव आसफुद्दौला पुत्र थे। इन्होने २७ वर्षकी आयुमें शासनकी वागडोर सम्भाली और फैजावादसे वदलकर लखनऊको अवधकी राजधानी वनाया। ये वड़े गुणज्ञ, कलापारखी और दानी थे। इनकी दानवीरताकी चारो ओर ख्याति फैल गई थी—

जिसे न दे मौला, उसे भी दे आसफ़ुद्दौला।

इनकी गुणज्ञता, कलाप्रियता और सहृदयताकी गन्ध फैली तो देशके कोने-कोनेसे गुणी एकत्र होने लगे। गुलशनेहिन्दके लेखकका कथन है कि इनके शासनकालमे "एक-एक कमालका हज़ारहा आदमी मौजूद था।" इमारतका शौक ऐसा था कि हर रोज एक नई इमारतकी वुनियाद रखी जाती थी। इनके शासनकालमे संगीतकी इतनी उन्नति हुई कि लखनऊ सगीत-विशेपज्ञोका रंगस्थल वन गया था। आसफुद्दौला स्वयं शायर थे और शायरोका आदर-सत्कार, भरण-पोषण मुक्त हृदयसे करते थे। अतएव सौदा, मीर, सोज़ जैसे ख्यातिप्राप्त शायर भी खिच आये। नवावका उपनाम आसफ था और सोज़से अपनी कविता संशोधित कराते

थे। इनका एक उर्दू दीवान ५७० पृष्ठका मिलता है। जिसमें मसनवी ग़ज़ल हिजो तज़्मीन और गजलें हैं। हिजोमें करबला भाण्डका खाका ऐसे अश्लील शब्दोंमें उड़ाया गया है कि उन्हें कोई संजीदा शख़्स पढ नहीं सकता। गज़लोंके चन्द शेर दर्ज किये जाते हैं। अपने वंशमें सबसे प्रथम इन्हीको शायरीका शौक़ लगा। बादमे इनके उत्तराधिकारियोंने भी इसे क़ायम रक्खा।

जहाँ तेग़ उसकी अलम देखते हैं।
वहाँ अपना सर हम कलम देखते हैं॥
जो जलवा सनम तुझमे हम देखते हैं।
ख़ुदाकी ख़ुदाईमे कम देखते हैं॥
गुज़रते हैं सौ-सौ ख़याल अपने दिलमें।
किसीका जो नक़्शेक़दम देखते हैं॥
बुतोंकी गलीमे शबोरोज़ आसफ़।
तमाशा ख़ुदाईका हम देखते हैं॥

—तारीख़े अदबे उर्दू

यह न आनेके बहाने हैं सभी वरना मियाँ!
इतना तो घरसे मेरे कुछ नहीं घर दूर तेरा॥

क़िस्सये फ़रहादोमजनूँ रातदिन पढ़ते थे हम।
सो तो वह माज़ी[1] पड़ा, अब अपना अफसाना हुआ॥
रातदिन यह सोच रहता है मेरे दिलके तईं।
ऐ ख़ुदा! याँसे वह जाकर किसका हमख़ाना[2] हुआ?

क़ासिद! तू लिये जाता है पैग़ाम हमारा।
पर, डरते हुए लीजियो वां नाम हमारा॥

---

[1]पुरानी बात हुई; [2]मेहमान।

कूचेसे अपने तूने मुझको अबस[1] उठाया।
सब तो चले गये थे इक मैं ही रह गया था॥

इस अदासे मुझे सलाम किया।
एक ही आनमें गुलाम किया॥

दर्दे दिल है तो यारके बाइस।
ग़म है तो इस निगारके[2] बाइस॥

कोई बात तो हमारी भी मान अब खुदासे डर।
कबतक दिया करेगा हमें तू जवाब तलख़॥
फिरता हूँ कोहोदश्तमें[3] रोता मैं ज़ार-ज़ार।
तुझ बिन हुआ है घर मुझे खाना ख़राब तलख़॥

बड़ा चरचा बढ़ेगा इसका 'आसफ़'।
हरइक बेदर्दको तू मत सुना दर्द॥

कल तलक होती थी कुछ नब्ज़में गरमी महसूस।
आज तो नब्ज़ ही होती नहीं अपनी महसूस॥
चश्मे आशिक़में यारो ख्वाब कहाँ?
दिले आशिकमें सब्रोताब कहाँ?

यह सारी शोखियाँ हैं, सुनलो यारो सामने होकर।
करे गर बात कोई इस सितमगरसे तो हम जानें॥

फ़रहाद था या मजनूँ फिर अच्छा जमाना था।
अब लुत्फ़ नहीं 'आसफ़' कुछ उलफ़तेख़ूबाँमें॥

---

[1]व्यर्थ; [2]सुन्दरीके;
[3]पर्वतों, वनोंमें।

जाँ निकल जायगा ज़ालिम ! मिरा, अब जानेसे ।
याँ न आना ही भला था तेरा इस आनेसे ॥

मिलनेको तुझसे दिल तो मेरा बेक़रार है ।
तू आके मिल न मिल, यह तेरा अख़्तयार है ॥

सभूसे बोलता है, पर मुझीसे—
नहीं कुछ बोलता, क्या जाने क्या है ?

——इन्तकादयात, भाग १

२५ फ़रवरी १६५०

५५

नवाब वज़ीरअलीख़ाँ 'वज़ीर'

[शासन काल १७६७ ई०]

वजीरअलीखाँ नवाब आसफुद्दौलाके पुत्र थे। उनके वाद सन् १७९७मे अवधके राज्यासनपर अभिषिक्त हुए, किन्तु अत्यन्त उग्र-स्वभावी और अग्रेज-विरोधी होनेके कारण चार मासमे ही राज्यच्युत करके बनारस भेज दिये गये। वहाँ इन्होने रेज़ीडेण्टको मार डाला और विद्रोह प्रारम्भ कर दिया। अन्तमे जयपुरमे पकड लिये गये और कलकत्ते-के फोर्ट विलयममे वन्दी बनाकर रखे गये।

ज्यूँ सब्ज़ा रुँदे उगते ही पैरोंके तले हम।
इस गर्दिशे अफलाकसे फूले न फले हम॥

अरमान वहुत रखते थे हम दिलके चमनमें।
बैठे न ख़ुशीसे कभी सायेके तले हम॥

हम वोह न क़लम थे किसी मालीके लगाये।
नरगिसके निहालोंमें थे आसफ़के पले हम॥

जिन्दाने मुसीवतमें भला किसको बुलाएँ।
रहते हैं वज़ीरी ही से दिन-रात मिले हम॥

—तारीख़े अदबे उर्दू

२५ फरवरी १९५०

५६

नवाब सग्रादतग्रलीख़ाँ

[शासन काल सन् १७९७-१८१४ ई०]

सग्रादतग्रली नवाब ग्रासफुद्दौलाके सौतेले भाई थे। नवाब वज़ीर-ग्रलीके राज्यच्युत किये जानेपर ग्रग्रेजोकी कृपासे ये सिहासनारूढ हुए। इन्हे ग्रंग्रेजोकी यह कृपादृष्टि ग्रत्यन्त मँहगी पडी। ग्रवध प्रान्तका दो-तिहाई भाग ग्रग्रेजोके कब्जेमे चला गया। यूँ तो समस्त देशपर ग्रग्रेजोकी ईस्ट इण्डिया कम्पनीका ग्रधिकार था ग्रौर वही शासनकार्य चलाती थी। भारतके बादशाह, नवाब, राजे तो उनकी शतरजके मुहरे थे। उनके संकेतपर लड़ते ग्रौर चलते थे। घरेलू कलह ग्रौर षडयन्त्रोके कारण बन्दरबाँटकी न्यायतुलाके समक्ष सभी नतमस्तक थे। कुछ सन्तानहीन राज्योको ईस्ट इण्डिया कम्पनीने कृपापूर्वक ग्रपने उदरगह्वरमे शरण दे दी थी। जो बचे थे वे भाई-भाईकी क्रोधाग्निमे भस्मीभूत हो रहे थे। उसी ग्रग्निको बुझानेमे पारितोषिक स्वरूप या जले हुए घरको ग्रनधिकारी भाईको सौप देनेकी महान नैतिकताके उपहारस्वरूप राज्यका बहु भाग ग्रपने ग्रधिकारमे कर लेना ईस्ट इण्डिया कम्पनीका महान कर्तव्य हो जाता था ग्रौर इसी विध्वस राज्यको प्राप्त करनेकी खुशीमे ये ग्रधिकारहीन लँगड़े राजा-नवाब जवाहरात लुटाते थे। प्रजा ऐसे शुभ ग्रवसरोपर घीके दिये जलानेको मजबूर थी।

यह बचा-खुचा राज्य भी धन-वैभवकी दृष्टिसे कुछ कम न था। नवाब सग्रादतग्रलीख़ाँ भी बड़े गुणज्ञ थे। इन्होने भी ग्रपने भाई ग्रास-फ़ुद्दौलाकी भाति कलाकारोका ग्रादर-सत्कार किया। मुसहफ़ी ग्रौर इंशाकी नोक-झोक इन्हीके शासनकालमे हुई थी।

५७

नवाब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर

[शासन काल ई० १८१४-१८२७]

गाज़ीउद्दीन हैदर अपने पिता सआदतअलीके बाद सन् १८१४में राज्यासीन हुए। अभीतक लखनऊके नवाव मुगल बादशाहोके नायब कहलाते थे, परन्तु इन्होने सन् १८१९में नाममात्रके मुगल बादशाहकी आधीनताको उतार फेका और नवाबवजीरके बजाय बादशाह कहलाने लगे। इस स्वतन्त्रताके उपलक्षमे जवाहरात लुटाये गये और अहलेलखनऊ जो अभीतक देहलीकी वजअ-कतअ तहज़ीबोतमद्दुन, लिबास और ज़बानकी तकलीद (अनुकरण) करना फख्र समझते थे, धीरे-धीरे जुदागाना नीति वरतने लगे। यह अलगाव यहाँतक बढ़ा कि शायरी भी इससे अछूती न रह सकी और वह भी देहलवी और लखनवी दो हिस्सोमे तकसीम हो गई। दिल्लीके सैकडो मुहावरे अहले लखनऊने तर्क कर दिये। यहाँतक कि बहुतसे ऐसे शब्द जो शब्द दिल्लीमे पुल्लिग बोले जाते थे, वे लखनऊमे स्त्रीलिंग और जो स्त्रीलिंग बोले जाते थे, वे लखनऊमे पुल्लिग बोले जाने लगे।

गाज़ीउद्दीन हैदर भी शायरी करते थे, परन्तु बडी नीरस और फुसफुसी। बकौल डाक्टर स्पिरिंग—"इनके अशआर इस दर्जा खराब है कि वाकई बादशाहका कलाम मालूम होते है।"

डाक्टर स्पिरिंग साहबने बात वाकई बड़े पतेकी कह दी है। सचमुच जितने बादशाह-नवाब शायर हुए है, उनमे एकका भी ऐसा कलाम नही,

जिसे उच्चकोटिका कहा जा सके। हालाँकि इन सबको नामवर मुसल्लिम उलसबूत उस्तादोंसे सीखनेका अवसर प्राप्त हुआ। प्रायः अपने समयके सभी ख्यातिप्राप्त शायर बादशाहोके दरबारोमें रहे। उनकी कविता संशोधित की, अपनी तरफसे लिखकर भी दी, फिर भी मैदानेशायरीमें एक भी सुर्ख़रू नजर नहीं आता।

२७ फ़रवरी १६५० ई०

५८

नवाब नसीरुद्दीन हैदर

[शासनकाल सन् १८२७–१८३७ ई०]

नसीरुद्दीन अपने पिता नवाब ग़ाज़ीउद्दीन हैदरके बाद सन् १८२७में राज्यारूढ़ हुए। यह भी मामूली शायर थे।

यह किस मस्तके आनेकी आरज़ू है?
कि साक़ी लिये साग़िरे मुश्कबू[1] है॥

समाया है जबसे तू नज़रोंमें मेरी।
जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है॥

जिताऊँ मैं क्या अपना हाले परीशाँ।
अयाँ[2] ज़ुल्फे दिलदारसे मू-ब-मू[3] है॥

चलो क़ब्रे फरहादपर फातहाको।
मगर आबेशीरीसे लाज़िम वज़ू है॥

शफ़क़[4] बनके होता है गरदूँपै ज़ाहिर।
यह किस कुश्तये बेगुनहका लहू है?

गुलिस्ताँमें जाकर हर इक गुलको देखा।
न तेरी-सी रंगत न तेरी-सी बू है॥

---

[1]सुगन्धित मद्यपात्र, [2]प्रकट,
[3]प्रत्येक बालसे, [4]सन्ध्याकालीन लालिमा।

५६

नवाब मुहम्मदअली शाह

[शासनकाल १८३७-१८४२ ई०]

नवाब नसीरुद्दीनके बाद उनके सगे चाचा मुहम्मदअली शाह सन् १८३७में गद्दीपर बैठे। इनका कोई कलाम दस्तयाब नही है।

६०

अमजदअली शाह

[शासनकाल सन् १८४२–१८४७ ई०]

अमजदअली अपने पिता नवाब मुहम्मदअलीशाहके बाद सन् १८४२से १८४७ तक शासक रहे। ये पिता-पुत्र भी अपने पूर्वजोके समान कलाकारोंका भरण-पोषण करते रहे।

६१

नवाब वाजिदअली शाह 'अख़्तर'

[शासनकाल सन् १८४७–१८५६ई०]

वाजिदअलीशाह अपने पिता नवाब अमजदअलीशाहके बाद सन् १८४७मे बीस वर्षकी अवस्थामे लखनऊके राज्यसिहासनपर अभिषिक्त हुए। इनके अभिषिक्त होते ही दर्बारमे नर्तकियो और कोकिलकंठियोंके परेके परे एकत्र होने लगे और शराबकी नहरे बह निकली। यूँ तो इस वंशमें सभी नवाब एक-से-एक बढकर रँगीले हुए, परन्तु इन्होने सबपर फौक़ियत हासिल कर ली। स्वर्गके राजा इन्दरके अखाड़ेकी रंगीन कहानियाँ मान्द पड़ गई। मालूम होता है अवध सल्तनतका संगेबुनियाद ही शराबमे भिगोकर किसी परी पैकरसे रखवाया गया था। मुगल बादशाहोमे जिस प्रकार मुहम्मदशाह रंगीले रंगीन मिजाजीमे अपना सानी नहीं रखते, उसी तरह लखनवी नवाबोमें वाजिदअलीशाहका भी ज़वाब नही है। इनके चापलूस मुसाहब इन्हे किस प्रकार मूर्ख बनाते थे ? ये कितने नाज़ुक मिज़ाज और ऐय्याश थे, रुपयेको किस बेदर्दीसे लुटाते थे ? इनके हरममें कितनी बेगमात और रखैल थी ? ये जीनेपर चढते हुए रेलिंगकी बजाय सुन्दरी स्त्रियोके क्या पकडकर चढते थे ? यह सब इतिहासके पृष्ठ चीख़-चीख़कर सुना रहे है।

नवाब वाजिदअलीको शायरी और सगीतका तो शौक था ही परन्तु नाचनेमे भी कमाल हासिल था। कत्थक नृत्यमे वे बड़ी महारत रखते थे। उनके दरबारमे शायरो-गवैयोका तो बोलबाला था ही, नचैयो, भाण्डो, मसखरो और लतीफे कहनेवालोकी भी एक बहुत बडी जमाअत थी।

तीतर लडानेवालो, बटेर मुठियानेवालो, कबूतर उडानेवालोको भी बाक़ायदा तनख़्वाहे मिलती थी। भडुवे-मीरासी 'मीर साहब' कहलाये जाते थे। जब शासक रात-दिन रंग-रलियोमे गर्क थे, तब अहले लखनऊका क्या हाल था? यह अल्लामा नियाज फतहपुरीकी ज़बानेमुबारिकसे सुनिये—"घर-घर मजालिसे लुत्फोनिशातका कयाम, गोशे-गोशेमे रिन्दाने बादाकोशका अज़दहाम, हर-हर बामसे हुस्ने दिलनवाजकी जलवा फरोशी और हर-हर गलीमें इश्ककी तपिशअन्दोजी, हर शामको शबेऐशके असबाबकी फराहमीमे वोह इफरात, गोया सुबहतक जिन्दा रहना नही और हर सुबुह आइन्दा शामके लिए वोह अहतमाम कि शायद कभी मरना नही। गदासे लेकर शाहतककी आँखमे सरसो फूली हुई थी और जिधर देखिये काकुमोसंजामके परदोकी ओटमे ईरानी कालीनोपर हरीरी चादरोके अन्दर हुस्नोशबाब इस तरह मदहोश पडे थे, जैसे इस रातकी कभी सुबह होना ही नही है। जाहिर है कि जब सारा शहर इस रंगमें रचा हो तो खुद जानेआलम (नवाब) वाजिदअलीशाहने हुस्नोशबाबसे इन्तकाम लेनेके लिए क्या कुछ न किया होगा"।[1]

नवाब **वाजिदअली** स्वभावत. नाजुक मिजाज, ऐय्याश और आराम तलब थे ही, कुछ चापलूसो और चाटुकारोने हवाके घोडेपर चढ़ाया, और अगर कोई कसर रह गई थी तो वह गौर-महाप्रभुओने पूरी कर दी। शासनसत्ता अपने हाथमे लेकर नवाबोको आलसी और अकर्मण्य तो पहले ही कर दिया था, परन्तु जिस कुत्तेको मारना हो उसे पहले पागल प्रसिद्ध करो और फिर गोली मारो अपनी इसी कायमाब नीतिके अनुसार वाजिदअलीको ज्यादा-से-ज्यादा बदनाम किया गया और अनुकूल अवसर मिलते ही ३१ जनवरी १८५६को गिरफ्तार करके कलकत्ते भेज दिया गया; और बची-खुची २ करोड वार्षिक आयकी अवध सल्तनतको ईस्ट इण्डिया

---

[1]इन्तकादियात, भाग १, पृ० ६६-६७

कम्पनी चट कर गई।

वाजिदअली 'अख़्तर' तख़ल्लुस रखते थे। बन्दी वेषमें जब कलकत्तेको प्रस्थान किया तो मनकी व्यथा इन शब्दोमे प्रस्फुटित हुई—

दरो दीवार पै हसरतसे नज़र करते हैं।
रुख़सत, ऐ अहले वतन! हम तो सफ़र करते हैं॥

इनके ४०के करीब दीवान मौजूद हैं। असीर और बर्क़से शायरीमें इस्लाह लेते थे।

इस इश्क़ने रुसवा किया, मैं क्या बताऊँ क्या किया?
आहे दिल नाशादने और आस्माँ पैदा किया॥

कमर धोका, दहन उक़दा, ग़ज़ा आँखें, परी चेहरा।
शिकम हीरा, बदन ख़ुशबू, जबीं दरिया, ज़बाँ ईसा॥
बरायेसैर सुभ-सा रिन्द मयख़ानेमें गर आये।
गिरे साग़र, लुंढे शीशा, हँसे साक़ी, बहे दरिया॥

यहीं तशवीश शबोरोज़ है बंगालेमें।
लखनऊ फिर भी दिखायेगा मुक़द्दर मेरा॥

२७ फ़रवरी १९५० ई०

लखनऊकी बेगमात—

नवाबोके दरबारोंमे ही शायरो और गवैयोंका जमघट नही रहता था, उनके महलोमे भी बहुत-सी बेगमात शायरी करती थी। कितनी ही गान-विद्यामे निपुण थी और कितनी ही नृत्यकलामें पारंगत थीं। नवाबोंकी चहेती बेगम बननेकी लालसामे बेगमात इन हुनरोको बड़े चावसे सीखती थी। अकेले नवाब वाजिदअलीशाहकी ७० बेगमात शायरी करती थी। बेगमातकी शायरी भी बहुत घटिया स्तरकी है। प्रसंगवश उनमेसे १३ बेगमातके एक-एक, दो-दो नमूने पेशेनज़र है।

६२

उमराव महल

अत्यन्त रूपवती, सिकन्दर बेगमकी उपाधिसे विभूषित थी। और तीन हजार रुपये मासिक खर्चको मिलते थे।

नहीं आता है अब क़रार मुझे।
तेरे खतका है इन्तज़ार मुझे॥
दिनको रहता है इज़्तराब मुझे।
शबको आता नहीं है ख्वाब मुझे॥

६३

बद्रश्रालम बेगम

ये वाजिदअलीशाहके साथ उनकी बन्दी अवस्थामे बेपर्दगीके भयसे कलकत्ते नही गई थी। इनकी जुदाईकी चिट्ठियाँ, औरतके फर्ज, आदि मज़मून पुस्तक रूपमे प्रकाशित हो चुके है।

तुम्हारे ख़तको जब देखा तनेमुर्दामें जान आई।
हुआ साबित कि है तहरीरमें इजाज़ मसीहाई॥

बलाये हिज्रमे जबसे फँसी हूँ।
मै अंगारोंके ऊपर लोटती हूँ॥

६४

रश्कमहल बेगम

ये वाजिदअलीके बन्दी जीवनमे उनके साथ बराबर रही, इनसे शाहजादा मिर्जा अमानजाह उत्पन्न हुए। उसे भी छोड़कर ये नवाबके साथ रही।

हुआ बाल बाँका जो मिर्जा हमारा।
तो फिर सग है और शाना तुम्हारा॥

६५

हूर बेगम

ये डोमिनीकी लड़की थी। गाना भी जानती थी।

लो आओ एक दम मेरे पहलूमें सो रहो।
गर अपना जानते हो तुम अब जान, और क्या ?
लाखों हसीं हैं सूरतेजानाँके शेफ़्ता।
हम किस कतारमें हैं, हमारा शुमार क्या ?

६६

शैदा बेगम

इनसे दो शहजादियाँ उत्पन्न हुईं।

क्यों हमसे छिपाते हो तुम राजकी बातें।
हम तुमसे किसी बातका पर्दा नहीं करते॥

६७

सदरमहल बेगम

आपने बादशाहनामा और गुलदस्ता नामक दो दीवान लिखे हैं।

मैंने बलाएँ लेनेको हाथ बढ़ाये जब उधर।
मुँहको फिराके यारने मुझसे कहा 'अलग-अलग'॥

६८

महलआलम बेगम

इनसे वाजिदअलीकी बचपनमे ही शादी हो गई थी। यह ख़ास मलका थी। नवाब ख़ास महलकी उपाधि और पंचहजारी मंसब था। आपके वतनसे चार शाहजादे हुए थे। एक मसनवी और एक दीवान लिखा है।

पिला तू बज्ममें वह जामे खुशगवार मुझे।
कि ता-ब-हश्र[1] न हो साक़िया! ख़ुमार मुझे॥

है शबेवस्ल मगर दिलमें है धड़का आलम।
बोल उठे न कहीं मुर्गेसहर आजकी रात॥

---

[1]कयामतके दिनतक।

६९

इशरतमहल बेगम

शोलये इश्क़ ! लगा आग न दिलमें मेरे ।
यह तो अल्लाहका घर है, किसी दुश्मनका नहीं ॥

७०

फ़ातिमा बेगम

फिर वह चर्चे हों फिर वही बातें । ०
दिन हों इशरतके, ऐशकी रातें ॥

७१

हैदरी बेगम

शाहज़ादा मिर्ज़ा हुमायूँकी लड़की और मिर्ज़ा महबूबअली क़ौसकी बहन थी ।

न पूछ ए हमनशीं हमसे शबे फ़ुर्क़तकी बेताबी ।
अलम है, दर्दे हसरत है, फ़ना है, आहोज़ारी है ॥

७२

महबूबमहल बेगम

उठा सकी न मुसीबत फ़िराके यारमें रूह।
निकल गई तने लागिरसे इन्तजारमें रूह ॥

७३

दीहम बेगम

क्या कहूँ कुछ कहा नहीं जाता।
हाय चुप भी रहा नही जाता ॥

७४

हिजाब बेगम

बेगम हिजाब किसकी मलका थी, यह तो ठीक नही कहा जा सकता, परन्तु उनका जन्म सन् १८४४मे हुआ और दीवान १८७५मे मुद्रित हुआ था। कुछ लोग इन्हे नवाब वाजिदअलीशाहकी मलका लिखते है, परन्तु अल्लामा नियाज फ़तहपुरी इसको सही नही मानते।

नमूना कलाम—

ख़फ़ा अभीसे न हो, मुद्दआ सुनो तो सही।
कुबूल करना न करना, भला सुनो तो सही॥
रकीबोंकी तो शबोरोज़ सुनते हो बातें।
हमारी भी तो कभी महलका! सुनो तो सही॥
नहीं यह खूब कि सुनते नहीं किसीकी तुम।
यह देखो तो कि मै कहता हूँ क्या, सुनो तो सही॥
खता मेरी तो बताओ कि रूठे जाते हो।
बिगड़ते किसलिए हो, क्या हुआ सुनो तो सही॥
जवाब दो कि न दो ऐ बुतो! नहीं परवा।
कहूँ जो कुछ वोह बराये खुदा सुनो तो सही॥
न रहम आये जो तुमको तो मेरी किस्मत है।
तुम अपने दिलसे मेरी इल्तजा सुनो तो सही॥
मुआफ़ करनेको कहता नहीं मै साहबसे।
यह चाहता हूँ कि उज़्रे खता सुनो तो सही॥

'हिजाब'को तो ज़मानेमें जानते सब हैं।
मगर जो कहते हैं तुमको, ज़रा सुनो तो सही॥

आगसे भी है जियादा बेकरारी इन दिनों।
शक्ल पहचानी नहीं जाती हमारी इन दिनों॥

जो उसने कहा गो वही करते गये हम तो।
इसपर भी निगाहोंसे उतरते गये हम तो॥

वह ख़ुलूससे पेश आये यह थी उनकी इनायत।
गरदनको झुकाये हुए, डरते गये, हम तो॥

खुद कभी पूछें वोह अहवाल यह आदत ही नहीं।
हम जो कुछ आपसे कहते हैं गिला होता है॥

रहे बुतख़ानेमें बरसों न काबेमें ज़रा ठहरे।
गरज़ थी दिलके बहलानेसे, जिस जा दिल लगा, ठहरे॥

कहेंगे उसको न अच्छा बुरा 'हिजाब' कभी।
बयाँ करेंगे किसीसे न अपने यारका हाल॥

मैंने तो कोई बात नहीं ऐसी कही थी।
ग़ैरोंसे भरा था कि जो वोह बन्देपै बरसा॥

तुमसे बतलाऊँ क्या कि फ़ुरक़तमें।
सदमे दिलपर गुज़रते हैं क्या-क्या?
बुतको ख़ौफ़ेख़ुदा 'हिजाब' नहीं।
हम सनमसे भी डरते हैं क्या-क्या?

ऐ हिजाब! आज तो सोता है यह ग़ाफ़िल कैसा?
वक़्त जागे है, ज़रा यारको देखा होता॥

दामने महबूब तक पहुँचा न जब दस्ते जुनूँ।
बढ़ गया नाचार अपने ही गिरेबाँकी तरफ़॥

महीनों हो गये साहब ! कहाँतक आजमाओगे ।
गले लग जाओ, क्या हररोजके झगड़े निकाले हैं ॥

कुछ खौफ़ेखुदा कीजिये इस तरह न चलिये ।
सौ बार तो इस चालपै तलवार चली है ॥

बनके तसवीर 'हिजाब' उसका सरापा देखो ।
मुँहसे बोलो न कुछ, आँखोंसे तमाशा देखो ॥

बेगम हिजाबका कलाम भी तत्कालीन लखनवी रंगमें सराबोर है । वही बाजारू इश्क, वही रकीबोसे परेशानी, वही बुतोकी बेवफाई । रकाबतकी बात तो समझमे आती है, क्योकि सैकडो सौत होती थी, उनके घात-प्रतिघात तो सचमुच असह्य होते होगे, परन्तु समस्त भाव पुरुषोचित गजलमें समोने और वह भी एक सम्भ्रान्त महिला द्वारा शोभनीय नही । बेगमातका कलामके पहले परिचय न दिया जाय, तो वह किसी पुरुष या वेश्याका लिखा हुआ भी समझा जा सकता है । सम्भ्रान्त महिलाओके उद्गार तो स्त्रियोचित शुद्ध प्रेमके द्योतक होने चाहिएँ । मातृ जातिके उच्छ्वासमे जब वासनाकी गन्ध आने लगी, तब उसकी सन्तानकी क्या शोचनीय स्थिति हुई, कि नसीसे छिपी बातही है । कलाममे क्रिया भी पुल्लिग इस्तेमाल की गई है । उर्दू-शायरीमे आशिक पुरुष होता है, इसी नियमके अनुसार स्त्रियोको भी मजबूरन सभी भाव पुरुषोचित लाने पडते थे, जो अत्यन्त अस्वाभाविक और अरुचिकर प्रतीत होते हैं ।

ता० २७ फ़रवरी १९५०

शाह नसीर

शाह नसीरुद्दीन 'नसीर' दिल्लीके रहनेवाले थे। ये सौदा और दर्दकी शिष्य परम्परामें हुए है। क्योकि इनके कविता-गुरु शाह मुहम्मदी 'माइल'के उस्ताद कयामुद्दीन 'कायम' सौदा और दर्द दोनोके शिष्य रह चुके थे।

शाह नसीर शाहआलम बादशाहके काव्य-गुरु थे। अत. इनकी दरबारी आवभगत खूब होती थी। इनका कलाम साधारण है। ये नवीन-नवीन उदाहरण, अलंकार और उपमाएँ अपने कलाममे ठूँसनेका बलात् प्रयत्न करते थे। सगलाख़ (दुरुह-कठिन) काफिये-रदीफोंमे गजल कहना कमाले-शायरी समझते थे। बगलकी मक्खी, फलकपै बिजली, ज़मीपै बाराँ, सरपर तुर्रा हार गलेमें, सावन-भादो, जैसी अजीबो-गरीब काफिया रदीफोमे इन्होने कई-कई गज़ले कही है।

एक-एक मिसरेतरहपर ७-८ गज़ले लिखते थे। मीरो-दर्दकी देहलीमे शायरीका धरातल इतना गिर गया था कि नसीर जैसे घटियल शायर भी शायरेआज़म समझे जाने लगे थे और शाहआलम बादशाहके उस्ताद होनेका गौरव हासिल कर सकते थे। मौलाना मुहम्मदहुसेन आज़ाद फख्रिया लिखते है—

"जो वे (शाह नसीर) कहते थे, उसे आलिम (विद्वान) कान लगा-कर सुनते थे। जो लिखते थे, उसपर फाज़िल सर धुनते थे। इनकी

तबियत शेरसे इस कदर मुनासिब वाकअ हुई थी कि बड़े-बडे जी उस्ताद और मश्शाक़ शायर मुशायरोमें मुँह देखते रह जाते थे।"[1]

इनकी शाह आलमके दरबारमे तूती बोलती थी। परन्तु देहली उजड़नेपर ये भी दूसरोकी देखा-देखी लखनऊ पहुँचे। वहाँ **मुसहफ़ी, इंशा** और **जुरअत** जैसे अखाडियोके आगे इनका रग नही जम सका, और दिल्ली वापिस चले आये। दुबारा लखनऊ गये तो वहाँ बिसात ही दूसरी बिछ चुकी थी। पुरानी शायरी निस्तेज हो गई थी। **नासिख़** और **आतिश** जैसे शायरोंका दबदबा और बोलबाला था। हर गली-कूचेमे नासिख़ो-आतिशका लोग कलमा पढते थे। शाह् नसीरकी पुरानी बोसीदा शायरीकी तरफ किसीने नजर उठाकर भी नही देखा। लाचार ये लखनऊसे फिर वापिस चले आये। इनके भाग्यसे हैदराबाद (दक्खिन)-मे महाराजा चन्दूलाल वजीरे आज़म थे। वे बड़े गुणज्ञ और सुख़नफ़हम थे। उन्हे कलाकारो—विशेषकर शायरोंको अपने यहाँ एकत्र करनेका बड़ा चाव था। उन्होने शाह् नसीरके पास सात हजार रुपये भेजकर हैदराबाद बुला लिया और ७५० रु० मासिक वेतन नियत कर दिया। वहाँ इनका ख़ूब आदर-सत्कार हुआ और इनके कितने ही शिष्य बन गये।

इन्होने मध्यवर्ती युगके शायर—**मुसहफ़ी, इंशा, जुरअत** और अर्वाचीन युगके शायर—**नासिख़, आतिश, ज़ौक, ग़ालिब** और **मोमिन**के ज़माने देखे थे। अत. इनकी मध्यवर्ती युगकी प्रारम्भिक गजलोमे टुक, आइयाँ, भारियाँ जैसे मतरूक (त्याज्य) शब्द भी मिलते है।

उदाहरणार्थ—

कभी न उस रुख़ेरोशनपै झाइयाँ देखीं।
घटाएँ चाँदपै सौ बार आइँयाँ देखीं॥

---

[1]आबेहयात, पृ० ४०३

अहदे तिफ़्ली मे भी था, मै बस कि सौदाई मिज़ाज ।
बेड़ियाँ मिन्नतकी भी पहनी तो मैने भारियाँ ॥

शाह नसीर अपने हृदयगत भावोंको व्यक्त करनेके लिए शेर नही कहते थे, अपितु दुरुह और विचित्र-विचित्र काफिये रदीफोको बाँधनेके लिए शेरसे रस्सीका काम लेते थे । इनके ज़मानेमे मुशायरोंमे ख़ूब रस्सा-कशी होती थी । दुनियाभरके शायरोको ललकारकर मुशायरे करते थे । सालभरके लिए एक मिसरा दे देते थे । हर मुशायरेमे उसी मिसरे-पर तवअआजमाई होती थी । कल्पना, विचार, भाव इन मुशायरोमे फटक भी नही पाते थे । सगलाख जमीनोंमें उलटा-सीधा जो सबसे अधिक लिखता, वही दाद पाता था । मुशायरोमे शायर गज़ले क्या पढते थे, वटेरे लडाते थे ।[1] इनकी गजलोपर लोग फब्तियाँ कसनेसे भी नही चूकते थे । परन्तु ये भी बरमहल ऐसा जवाब देते थे कि नहलेपर दहला जडते थे । 'वगलकी मक्खी' मिसरा-तरहपर गजल पढ रहे थे कि एक साहबने चुटकी ली—"सुभान अल्लाह ! क्या ख़ूब मक्खी बैठी है?" दूसरे साहबने जरा और शह दी—"किबला ! ग़ज़ल तो ख़ूब है, मगर मक्खीसे जी मिचलाने लगा ।" शाह नसीरने फौरन तुरप मारी—"जिन्हे चाशिनये सुख़न (कवितारूपी चाश्नी)का मजाक है, वे तो लुत्फ़ ही उठाते है । हाँ, जिन्हे सफरायेहसद (ईर्ष्या)का जोर है, उनका भी मिचलायेगा ।"

---

[1] इस तरहके मार्के जब शाह नसीरके साथ लखनऊमे हुए, तब वहाँके साहवेकमालोने गजल कहनेको मुश्किलसे मुश्किल मिसरे भिजवाये । मगर वे स्वय न आकर हर मुशायरेमे अपने शागिर्दोंको भेजते रहे । तब नसीरसे न रहा गया । उन्होने कहा—अपने उस्तादोसे कहना कि चक्कसपर गुलदम लडानेकी सही नही है । पालीमे आइये कि देखने-वालोको भी मजा आये । (आवेहयात, पृ० ४०५)

ख़यालेज़ुल्फ़ेबुताँमे[1] 'नसीर' पीटाकर।
गया है साँप, निकल अब लकीर पीटाकर॥

देख लेती जो उठाकर तो तेरे टूटते हाथ।
लैंली! इतना तो न था पर्दये महमिल भारी॥

बुर्क़ेको उठा मुँहसे जो करता है तू बातें।
अब मैं हमातनगोश[2] बनूँ या हमातनचश्म[3]?

वजह मालूम तो हो चीं-ब-जबीं[4] होनेकी।
सच कहो जीमें है क्या, किससे लड़ा चाहते हो?

—इन्तक़ादियात, भाग २

शीशये बादयेगुलरंग पटक दे साक़ी!
जामये सब्ज़मे देखे जो तने सुर्ख तेरा॥

हो गया है यह तेरी चश्मका बीमार नहीफ़[5]।
न उड़ा सकता है मुँहकी न बग़लकी मक्खी॥
रीश परवानये जाँसोजकी करती तो है, पर।
निगहे शमअ़में हो जायगी हल्की मक्खी॥
दिलरुबा क़हरेफ़सूँसाज़[6] है बंगालेके।
आदमीको वोह बनाते है अमलकी मक्खी॥

---

[1]प्रेयसीके केशोके ध्यानमे,
[2]सुननेमे तन्मय,
[3]देखनेमे लीन,
[4]भृकुटी चढाये हुए;
[5]निर्बल,
[6]गजबका जादू-टोना करनेवाले।

सदा है इस आहोचश्मेतरसे[1] फ़लकपै बिजली ज़मींपै बाराँ[2]।
निकलके देखो टुक अपने घरसे फ़लकपै बिजली ज़मींपै बाराँ ॥
हँसे है कोठेपै यूसुफ़ अपना, मैं ज़ेरे दीवार रो रहा हूँ।
अज़ीज़ ! देखो मेरी नज़रसे फ़लकपै बिजली ज़मींपै बाराँ ॥
पतग क्योंकर न होवे हैराँ कि शमा सबको दिखा रही है।
बचश्मेगिरियाँ[3] व ताजे ज़रसे फ़लकपै बिजली ज़मींपै बाराँ ॥
नहाके अफ़शाँ[4] चुनो जबींपर निचोड़ ज़ुल्फ़ोंको बाद उसके।
दिखाओ आशिक़को इस हुनरसे फ़लकपै बिजली ज़मींपै बाराँ ॥
वोह तेग खींचे हुए है सरपर मैं सर झुकाये हूँ अश्करेज़ाँ[5]।
दिखाऊँ ऐ दिल ! तुझे किधरसे फ़लकपै बिजली ज़मींपै बाराँ ॥
'नसीर' लिक्खी है क्या गजल यह कि दिल तड़पता है सुनके जिसको।
बँधे है यूँ कब किसी बशरसे फ़लकपै बिजली ज़मींपै बाराँ ॥

तू अपनी पगड़ीपै रखके तुर्रा जो खेले पिचकारियोंसे होली।
अयाँ[6] हो नैरंगियेदिगरसे[7] फलकपै बिजली ज़मींपै बाराँ ॥
वोह शोख झरनेकी सैर करके फिसलने पत्थरपै जाके बैठा।
पुकारी खलकत[8] इधर-उधरसे फ़लकपै बिजली ज़मींपै बाराँ ॥
'नसीर' सद आफरी[9] है तुझको कि अहले मानी पुकारते हैं।
अजब है मज़मून ताजा तेरे फलकपै बिजली ज़मींपै बाराँ ॥

दन्दाँ[10] दिखाके मत हँस ऐ बख़्यएगरीबाँ[11]।
चाके जिगरका[12] हमको तौरेरफ़ू[13] न आया ॥

---

[1]ठण्डी साँस और रोती आँखोसे, [2]बारिश; [3]रोती आँखोसे; [4]बिन्दी; [5]आँसू बहाता हुआ, [6]प्रकट, [7]नये ढंगसे; [8]जनता; [9]धन्य; [10]दाँत; [11]कुर्तेके गलेकी सीवन, [12]फटे जिगरका, [13]सीनेका ढंग।

बरगश्ताबख़्त[1] हम वोह इस दौरमें हैं साक़ी !
लबतक कभू हमारे जामोसबू न आया ॥
क्योंकर यह हाथ अपना पहुँचेगा ता गरीबाँ ?
दस्तेख़याल जिसके दामनको छू न आया ॥

है जुम्बिशेमिज़गाँका[2] किसीको जो तसव्वुर[3] ।
दिलसे ख़लिशे ख़ारेअलम[4] उठ नहीं सकता ॥

बाल परेशाँ हैं काकुलके पेच गलेमें हैं पगड़ीके ।
यूँ रखता है वह मतवाला सरपर तुर्रा हार गलेमें ॥
है यह तमन्ना मेरे जीमें यूँ तुझे देखूँ बादाकशीमें ।
हाथमें साग़र, बरमें मीना, सरपर तुर्रा, हार गलेमें ॥

बादाकशीके सिखलाते हैं क्या ही क़रीने सावन-भादों ।
कैफ़ियतके हमने जो देखे, दो हैं महीने सावन-भादों ॥
छूटते हैं फ़व्वारये मिज़गाँ रोज़ोशब उनकी आँखोंसे ।
यूँ न बरसते देखे होंगे मिलके किसीने सावन-भादों ॥
अब्रेसियहमें देखी थी बगुलोंकी कतार इस शक्लसे हमने ।
याद दिलाये फिरके तिरे दन्दानेमिसीने[5] सावन-भादों ॥

किता—

यह मजनूं है, नहीं आहू[6] है, लैला ! पहनकर पोस्तीं[7] निकला है घरसे ।
जिसे तू सींग समझे है ये हैं ख़ार, लगे हैं पाँवमें, निकले हैं सरसे ॥

३ फ़रवरी १९५०

---

[1]अभागे; [2]पलकोके कम्पनका; [3]ध्यान,
[4]कष्ट रूपी काँटोंका भार; [5]मिस्सी लगे हुए दाँतोंने;
[6]हिरन; [7]खाल ।

७६

ज़ौक़

अबसे सौ वर्ष पूर्व 'जौक' आस्मानेशायरीपर सितारेकी तरह नही, चाँदकी तरह चमके। उनकी यह चमक उनके समकालीन शायरोके लिये ईर्ष्या-योग्य थी। दिल्लीसे हैदराबादतक इनकी शायरीकी धूम मची हुई थी। इनकी अनुपस्थितिसे मुशायरोंका रंग फीका हो जाता था। इनकी स्वीकृति मिलनेपर ही लोग मुशायरोका आयोजन करते थे। जिस मुशायरेमे ये न हो, वह मुशायरा बिन दूल्हाकी बारात मालूम होता था। जिस बज्मेअदबमे ये न जाएँ वह बज्मेअदब सफे मातम मालूम होती थी। शेरोसुखनके शौकीन, बडे-से-बड़े रईस इनके परिचयमे आना काबिलेफख्र समझते थे। देहलीकी टकसाली जबान और मुहावरोके ये बादशाह थे। इनके मुँहसे कलाम निकलते-निकलते हवामे तैरकर गली-कूचोमे पहुँच जाता था। शौकीन लोगोको इनका कलाम विरदेज़बान (कठस्थ) होता था। बड़े-बड़े अखाडिये शायर पहलवानोको ये चारो-शाने चित कर चुके थे। फिलबदी गजल कहते थे। मिसरा देते ही गिरह लगाते थे। कसीदे लिखनेमे अपना हरीफ (प्रतिद्वन्द्वी) नही रखते थे।

मामूली सिपाहीके लडके होते हुए भी शायरीकी बदौलत बादशाहके उस्ताद और नवाबो-रईसो, ज़ीशऊरोके नूरेनजर थे। शाही दरबारमे इनकी प्रतिष्ठा और सर्वत्र इनका आदर-सत्कार काबिलेरश्क था। मल्किुश्शुअरा, 'खाकानियेहिन्द'—जैसी सर्वोच्च पदवीसे विभूषित थे। अपने जीवनमे जो इन्हे शुहरत मिली, वह बिरलोंको ही नसीब होती है।

मगर अफसोस ! यही शुहरत इनके लिये राहु बन गई, और इसी शुहरतने इनकी कमालेशायरीपर तारीकी डाल दी। बकौल हफ़ीज़——

मेरे डूब जानेका बाइस तो पूछो।
किनारेसे टकरा गया था सफ़ीना ॥

अगर 'जौक' इस शुहरतसे बचे होते या यूँ कहिये कि आत्मविज्ञापनका उन्होने तनिक लोभ सवरण किया होता तो आज भी जौकका लोग उसी शौकसे चर्चा करते, जैसी कि गालिबोमोमिनकी करते है। हालाँकि जब दिल्लीके ये अमर शायर **गालिब-ओ-मोमिन** जीवित थे, तब इनसे पहले लोग ज़ौकका नाम लेते थे। गालिबका कलाम अक्सर बेमायनी समझा जाता था और ज़ौकके आमफहम कलामके सामने गालिब और मोमिनकी वोह कद्रोमंज़िलत नही थी जो आज है। जौककी इस आमफ़हमीसे रश्क खाकर ख़ुद गालिबके मुँहसे निकल गया था——

"न सही गर मेरे अशआरमें मायनी न सही"

और जौककी इसी मकबूलियतसे प्रभावित होकर गालिबको भी आख़िरमे अपना तर्जेकलाम बदलना पडा। फारसीयतकी जगह ज्यादेसे ज्यादा उर्दूका प्रयोग किया, और सच पूछो तो यही उर्दूकलाम आज गालिबको अमरत्व प्रदान करनेमे कामयाब हुआ है। इतनी ख्याति पानेपर भी जौकका यश-चन्द्र आज क्यो निस्तेज है और गालिब-ओ-मोमिन जो उनके जीवनमे मान्द थे, आज क्यो उनसे बढकर चमक रहे है ? और क्यो इनके समक्ष जौककी ज्योति आभाहीन है। यह एक प्रश्न है, जिसका समाधान पाये बिना हम आगे वढ़नेमे मजबूर है।

१. अधिकाश मनुष्य योग्य होते हुए भी न जीते जी मशहूर होते है, न मरनेके बाद।
२. कुछ लोग अपनी जिन्दगीमे तो प्रसिद्ध नही होते; यूँ ही गुमनाम मर जाते है, परन्तु मरनेके बाद उनकी कीर्ति फैलती है।

३. कुछ लोग अपनी जिन्दगीमे भी नाम पाते है और मरनेके बाद भी याद रहते हैं।
४. कुछ मनुष्य जबतक जीवित रहते है, खूब चमकते है, मरनेपर धीरे-धीरे माँद पडते जाते हैं।
५. कुछ मनुष्य जीवित होते हुए तो ख्याति पाते ही हैं; परन्तु मरनेके बाद तो अमरत्व प्राप्त कर लेते हैं।

'ज़ौक' चतुर्थ श्रेणीके और 'गालिब' पंचम श्रेणीके ख्यातिप्राप्त शायर है। इस प्रकारकी ख्यातिके भी कई कारण होते है।

युगके अनुसार लोगोकी रुचि बदलती रहती है, और उसी रुचिके अनुसार ख्याति मिलती और मिटती है। जब कांग्रेस आन्दोलन उग्र रूप धारण करते थे, तब अदना खद्दरपोश भी जनताकी दृष्टिमे महात्मा हो उठता था और जब हिन्दू-मुस्लिम फिसाद होते थे, तब शहरके छटे हुए शोहदे और गुण्डे भी रक्षक, और तपे हुए काँग्रेसी नेता भी भक्षक समझ लिये जाते थे। जब शहरमे 'ओलम्पिक' टीमके खेल होते है, तो लोग अन्तर्राष्ट्रीय खिलाडी होनेका स्वप्न देखते है और सिनेमाओकी बाढसे लालायित युवक, पृथ्वीराज-सहगल और युवतियाँ, सुरैया-रेहाना बननेका शौक रखती हैं।

कभी तोता-मैनाके किस्से मक़बूल आम थे; कभी ऐयारी, कभी जासूसी, कभी इश्किया उपन्यासोकी रेल-पेल रही। इन उपन्यासोके आगे न रवि बाबू और न शरत बाबूके उपन्यास खातिरमे लाये गये और न राधेश्यामकी रामायण पढनेवालोके सामने वाल्मीकि और तुलसी-रामायणपर प्रवचन करनेवालोको किसीने पूछा। जब आर्यसमाजी शास्त्रार्थोकी बाढ आई तो महामहोपाध्याय, विद्यासागर, व्याख्यान-वाचस्पति, न्यायदिवाकर सभी व्यर्थसे दिखाई देते थे। ज़बानदराज़ ही शास्त्रार्थकेसरी कहलाते और आदर पाते थे।

देश, काल और जनताकी रुचिके अनुसार अनेक परिवर्तन होते रहते

है। कभी धर्म मनुष्यका चरम लक्ष्य समझा जाता है, कभी वह अफीमकी तरह मादक समझा जाता है। देशोन्नतिमे देशभक्ति मनुष्यका प्रधान कर्तव्य और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति सम्मेलनमे सबसे प्रथम यही देशभक्ति त्याज्य समझी जाती है। कभी साम्प्रदायिकता आवश्यक, कभी अनावश्यक; कभी कन्याअपहरण शौर्य्य, कभी लाछन। पुण्य-पापकी परिभाषाएँ, सामाजिक रीति-रिवाज, मानवोचित आदर्श, साहित्यिक दृष्टिकोण, आदि, सभी कुछ परिवर्तनशील ससारमे परिवर्तित होते रहते है।

हाँ, तो हमे यह देखना है कि ज़ौक किस वातावरणमे उत्पन्न हुए? किन कारणोसे उनकी शायरीको उरूज हासिल हुआ और अब उनकी शायरीका बाजार मन्दा क्यों है?

यदि जौक—१. शाह नसीरके शिष्य, २ बादशाह ज़फरके उस्ताद; ३ गालिबके समकालीन न हुए होते और ४. उनके सम्बन्धमे मौ० मुहम्मदहुसैन आजादने अतिशयोक्तिपूर्ण उल्लेख न किया होता तो उनके कलामको तरक़्क़ी-ओ-तनज्जुलीके दिन देखने न बदे होते।

१. शाह नसीर बोसीदा ख़यालोके पुराने ढर्रेके शायर थे। मुश्किलसे मुश्किल ज़मीनोमे ग़जल लिखना, एक-एक रदीफमे ७-८ गजले कहना, एक ही मिसरा सालभर तकके मुशायरोके लिए नियत कर देना, उनकी ख़सलत थी। बार-बार उन्ही दकियानूसी ख़यालोका बाँधना, जिस हौज़ पर न जाने कितने वज़ू कर गये, उसी हौजमे डुबकियाँ लगाते रहना उनका शेवा था।[1]

जवानीकी चौखटपर पाँव रखते-रखते जौक, शाह नसीरके शिष्य हो गये, और बदकिस्मतीसे उन्हे भी उसी हौज़मे गोता मारना

---

[1]शाह नसीरकी शायरी और उनका परिचय पीछे दे चुके है।

पड़ा। वे जल्दीसे उभरे भी मगर वेसूद; इतनी देरमे उनका रोम-रोम नसीरी-रंगमे सरावोर हो चुका था।[1]

शाह नसीरकी शिष्यतासे निजात पालेनेके वाद जौकको उभरनेका एक नादिर मौका हाथ लगा। मगर हाय रे दुर्भाग्य! कूएँसे निकलते ही खाईमे गिर पडे।

२. उस्तादको सलाम कर आनेके वाद जौक अपनी गजलोंको वडी सावधानीसे वनाने लगे। और एक बुजुर्ग सुखन-फहम (कवितामर्मज्ञ)के प्रोत्साहन दिलानेपर मुशायरोमे उस्तादको वगैर दिखाये ही गजलें पढने लगे। आवश्यकतासे अधिक दाद मिली तो दिल शेर हो गया। धीरे-धीरे मुशायरोमे रग जमने लगा। महत्वाकाक्षाने एड मारी तो एक हितैषीकी वदौलत किलेमे भी पहुँच हो गई। एक गरीव सिपाही-पुत्रका शायरोमे शुमार होना और किलेमे रसाई होना वहुत वड़ी वात थी।

---

[1]उदीयमान जौककी प्रतिभाको देखकर उस्ताद नसीरको गर्वके वजाय ईर्ष्या होने लगी और वे जौकके साथ उपेक्षाका वर्ताव करने लगे। उनके कलामको इसलाह देनेमे तरह देने लगे, और अपने पुत्र 'मुनीर' की गजलें परिश्रमसे वनाने लगे। मुनीरको भी उस्तादका पुत्र होनेका घमड था। वह हर वक्त इनसे चश्मक रखने लगा। और करोंफरसे कहता—"जिस गज़लपर हम कलम उठाएँ, उस जमीनमें कौन क़दम रख सकता है?" मुश्किल-मुश्किल काफियोमे लिखता और कहता—"कौन पहलवान है जो इस नालको उठा सके?" गरज़ यह कि ज़ौक और मुनीरकी गज़लो द्वारा चोटे होने लगी। शाह नसीर अपने लड़केका ही पक्ष समर्थन करते और जौकको इस्लाह न देते। यहाँतक कि वाज़ दफा गजल फाड़कर फेक देते थे। उस्तादके इसी व्यवहारसे रुष्ट होकर ज़ौकने शाह नसीरके यहाँ आना-जाना छोड़ दिया था और ऐसे उस्तादको घर वैठे सलाम कर लिया था।

शाह अकबर बादशाह (द्वितीय)का युग था। उसे तो शायरीसे रग़बत न थी। मगर युवराज बहादुरशाहको शायरीका बेहद शौक था। उनके पास तत्कालीन ख्यातिप्राप्त शायरोका जमघटा रहता था। वे 'ज़फ़र' तख़ल्लुस (उपनाम) रखते थे। पहले शाह नसीरसे कविता-सशोधन कराया करते थे। उनके हैदराबाद चले जानेपर काज़िमअलीसे इसलाह लेते थे। उनके भी काबुलकी तरफ चले जानेपर सयोगकी बात कि जौक सामने आ गये। जफरने इन्हे अपनी गजल बनानेको दी और मनके अनुकूल बनानेपर फिर यही गज़ल बनाते रहे, और बहादुर-शाहके बादशाह हो जानेपर भी जीवनभर उस्तादे शहशाहकी ज़रींन मसनदपर रौनक अफ़रोज रहे।

जौककी इस प्रतिष्ठाको लोगोने क्या, स्वय ज़ौकने महान सन्मान और सौभाग्य समझा। परन्तु यह सौभाग्य नही, जौकका दुर्भाग्य था।

नालयेपुरदर्द छेड़ा हमने इस अन्दाजसे।
ख़ुदबख़ुद पड़ने लगी हमपर नज़र सैय्यादकी॥

——असगर

और नज़र भी सैयादकी कैसी पडी? न पेटकी भूख मिटी और न गुलअफशानियाँ करनेकी आज़ादी। 'न ख़ुदा ही मिला न विसालेसनम' यह उक्ति ज़ौकपर सोलहोआने चरितार्थ होती है। शाही ख़ान्दान घरेलू झगड़ोमे व्यस्त रहता था। अकबर बादशाह युवराज बहादुरशाह-को अपना पुत्र ही तस्लीम नही करता था, और बाप-बेटोमे मुकदमा चल रहा था। पाँच हजारके बजाय युवराजको ५०० रु० ख़र्चको मिलते थे। क्या नगी नहाय और क्या निचोड़े? जौकको सिर्फ चार रुपये मासिक दिये जाते थे। जब युवराज बादशाह हुए तो यह वेतन ४से ५ और ५से ६ और एक मुद्दतके बाद ३० रु०पर समाप्त हो गया था। यूँ मलिकउश्शुअरा और ख़ाकानिये-हिन्द जैसी सर्वोच्च पदवीसे विभूषित

थे। उम्रभर पापड़[1] बेलनेके बाद एक गाँव जागीरमें मिला था।

उस्तादे शहंशाह होनेपर भी ज़ौककी आर्थिक स्थिति तो इस प्रकार डाँवाडोल रही। अब उनके कमालेशायरीकी क्या मिट्टी खराब हुई, यह उन्हीके शिष्य मौलाना मुहम्मदहुसैन आजादकी जबानसे सुनिये—"नौजवान वलीअहद तबियतके बादशाह थे। इधर यह भी जवान और इनकी तबियत भी जवान थी। वह (वलीअहद) 'जुरअत'के अन्दाज़को पसन्द करते थे, और जुरअत, इशा-ओ-मुसहफीके मतले और अशआर भी लखनऊसे अक्सर आते रहते थे। वलीअहदकी गज़लें इन्ही लोगोके अन्दाज़में बनाते थे"।[2]

लाल क़िलेमें कोई भी छोटा-बड़ा जशन हो, उन सबपर ज़ौकको कसीदे लिखने पडते थे। सात बार और आठ त्योहारके अनुसार जशन मनानेके मौके तलाश किये जाते थे और इन सब ज़रूरी और ग़ैरजरूरी मौकोपर ज़ौकको जिगरसोजी करनी पड़ती थी। बादशाहके महलोंमें कोई ख़ुशी हो और उनके उस्ताद मुबारिकबादी न दे यह कैसे हो सकता

---

[1]बादशाहके उस्ताद थे, दीवाने आम-ओ-ख़ासमें गजलें पढ़ते थे। मगर वे लिखी कहाँ जाती थी? यह उनके शिष्यसे सुनिये—"एक तंगो-तारीक मकान था, जिसकी अँगनाई इस कदर थी कि एक छोटी-सी चार-पाई एक तरफ बिछती थी, दो तरफ इतना रास्ता रहता था कि एक आदमी चल सके। जौक खर्रेरी चारपाईपर बैठे रहते थे। लिखे जाते थे [illegible] किताब देखे जाते थे। गर्मी, जाड़ा, बरसात तीनों मौसि[illegible] बहारें वही बैठे गुज़र जाती थी। कोई मेला, कोई ईद और कोई मौसम बल्कि दुनियाके शादी-ओ-गमसे इन्हे कोई सरोकार न था। जहाँ अव्वल रोज़ बैठे, वहीं बैठते और जभी उठे कि दुनियासे उठे।" (आबेहयात, पृ० ४६६)

[2]आबेहयात, पृ० ४७०।

था ? गोया बादशाहके उस्ताद न थे, दरबारी नक़ीब थे। क़सीदे लिखने और बादशाहकी गजल बनानेके अलावा जौक अपनी रुचिके अनुसार कुछ लिख ही नही पाते थे।

इस मजबूरीका सबब बताते हुए मौलाना आजाद लिखते हैं—"बादशाहकी फ़रमाइश दम लेनेकी मुहलत न देती थी। और तमाशा यह कि बादशाह भी ईजादका बादशाह था। बातमे बात निकालता था। मगर उसे समेट न सकता था। उसका कहा हुआ सब इन्हे सँभालना पडता था। वोह अपनी गजल बादशाहको सुनाते न थे। अगर किसी तरह उसतक पहुँच जाती तो वह उसी गजलपर खुद गजल कहता था। अब अगर नई गजल कहकर दे और वोह अपनी गजलसे पस्त हो तो बादशाह भी बच्चा न था। ७० वर्षका सुखनफहम था। अगर उससे चुस्त कहे तो अपने कहेको खुद मिटाना भी आसान काम नही। नाचार अपनी ग़जलमे उनका तख़ल्लुस डालकर दे देते थे। बादशाहको बडा ख़याल रहता था कि वोह अपनी किसी चीजपर तबअ खर्च न करे। जब उनके शौके-तबअको किसी तरफ मुतवज्जह देखता तो बराबर गजलोका तार बाँध देता कि जो कुछ जोशेतबअ हो इधर ही आ जाये।"[1]

कसीदे कहने और गजले बनानेकी ही डयूटी हुई होती, तो भी गनीमत थी। इसके अलावा भी सैकडो फर्माइशे बादशाहकी रहती थी। कभी फकीरकी सदापर रीझ गये, कभी फल बेचनेवालेके बोल मनको भा गये, कभी बिसाती, कभी मनिहारीकी आवाजपर लहालोट हो गये। कभी चूरनवाले, कभी चनाजोर गरमवाले नमकपाशी कर गये। इन सबकी सदाओपर भी फिलबदी (तुरन्त) गजले लिखनी पडती थी। दरबारी गवैयोके लिए भी ध्रुपद, भैरवी, ठुमरी, दादरा आदि रागोको लिखना पड़ता था।

---

[1]आबेहयात, पृ० ४७३।

इन सब ख़ुराफातोसे घबराकर 'जौक'के मुँहसे निकल पडता है—

'ज़ौक' मुरत्तिब क्योंकि हो दीवाँ शिकवये फुर्सत किससे करें ?
बाँधे गलेमें हमने अपने आप जफ़रके झगड़े हैं ॥

अगर जौक चाहते तो अपने गलेमे बँधे हुए इन झगड़ोको आसानीसे तोडकर फेक सकते थे, परन्तु वे जीवनभर इन झगडोको गलेमे बाँधे फिरे। भरण-पोषणके लिए बादशाहकी ओरसे कोई ऐसा प्रवन्ध नहीं था, जिसकी वजहसे यह तौक गलेमे डाले रहना लाजिमी था। फिर भी जौक तेलीके वैलकी तरह बादशाहकी तिक-तिकपर घूमते रहे। इसका कारण है प्रतिष्ठा और वाह-वाहीका लोभ, जिसे ज़ौक किसी भी कीमतपर त्यागनेको तैयार नही हो सकते थे।

जौककी शायरीको लोग उसकी योग्यताके वलसे न आँककर दरबारी-प्रतिष्ठाके गजसे नापते थे और ज़ौक इस नापमे वालभर भी कम नही होना चाहते थे। उनमे इतना साहस नही था कि वे केवल अपने कमालेशायरीके वलपर जनतामे प्रतिष्ठा पाएँ। क्योकि वे जानते थे कि अधिकाश लोगोकी दृष्टि मन्द होती है और वह चश्मेके सहारे देखते है।

देहलीमे एक बार विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अपने अभिनन्दन समारोहके अवसरपर कुछ इस तरहके भाव व्यक्त किये थे—"मेरे देशभाई मेरा इसलिए आदर नही करते कि मै सचमुच कवि हूँ। वे तो केवल मुझे इसलिए कवि समझते है कि मुझे कवितापर नोविल पुरस्कार मिल चुका है और विदेशोमे मेरा आदर-सत्कार होता है।"

सचमुच अधिकाश जनता व्यक्तिके वास्तविक गुणोका नही, उसकी वाह्य प्रतिप्ठा, आत्म-विज्ञापनको आदर देती है। एक बार अकवर इलाहावादी अपने पुत्रके यहाँ गये, जो किसी जिलेमे डिप्टी कलेक्टर थे। डिप्टी साहवके मित्रवर्ग वैठे हुए गप-शप करते जाते थे और कभी-कभी इनका

भी मजहका-सा उड़ाते जाते थे। अकबर चुपचाप बैठे रहे। किसी तरह जब मित्रोको मालूम हुआ कि ये डिप्टी साहबके वालिद हैं तो गुफ्तगू-का ढग ही बदल गया और मित्र लोग बाअदब गुफ्तगू करने लगे। अकवर इस एकाकी शिष्टाचारका मतलब भाँप गये। अव उनसे न रहा गया, चट एक फब्ती कस दी। फर्माया—"एक बार लण्डनके किसी होटलमे अल्लाह मियाँ तशरीफ ले आये, मगर किसीने उनकी तरफ तवज्जह नही दी। जब उन्हे मालूम हुआ कि वे ईसाके बाप हैं तो लोग उनका अहतराम करने लगे।"

कहते है ईश्वर दीन दुखियोमे छिपा रहता है। परन्तु कितने उसको देख पाते हैं। अधिकाश लोग तो ईश्वरके नामपर ढिडोरा पीटकर प्रसिद्ध किये हुए पत्थरको ही पूजते हैं।

बादशाह जब जौककी गजलपर सर धुने तो मुसाहव, दरवारी और ख़ुशामदी अपना सर पीटनेसे कैसे रह जाएँ ? जौक शायरेआजम हैं, इसीसे तो बादशाहने उन्हे अपना गुरु बनाया। यही धारणा उनको सर्वश्रेष्ठ शायर समझ लेनेके लिए काफी थी। गालिब-ओ-मोमिनको वोह इज्जत-ओ-अहतराम नसीब नही हुआ, जिसके वे हकदार थे। क्योकि वे बादशाहके उस्ताद न थे। जनताका विश्वास था कि जौक इनसे बदर-जहा बहतर हैं, तभी तो बादशाह-जैसे सुख़नफहम (कवितामर्मज्ञ)ने उन्हे अपना उस्ताद बनाया है।

वर्तमानमे भी इस वाह्य प्रतिष्ठा और कर्रोफरकी पूछ है। आज भी डाक्टरेटकी डिगरीके लिए विद्वान होना आवश्यक नही, नेता होना काफी है। हमारे देशमे वर्तमान मत्रिमण्डलोमे कितने ही ऐसे हे कि लोग उन्हे जानते भी नही थे। अब वही नाख़ुदा बन गये तो जनता उन्हे सर्व-गुणसम्पन्न समझती है।

गरज़ जौक इस प्रतिष्ठाका मोह नही त्याग सके और इसे अक्षुण्ण

बनाये रखनेके लिए उन्हे वह सब करना पड़ा, जिससे उनकी शायरीका बाजार आज मन्दा पड गया है।

बादशाहको लखनवी—जुरअत-ओ-इशाका अन्दाज पसन्द था। उसी अन्दाजमे गजल बनानेके लिए जौकको इस तरहका अभ्यास लाजिमी हो गया। इसके अतिरिक्त घटिया, हल्की और निम्नकोटिकी फ़र्माइशे पूरी करनेकी आदत डालनी भी जरूरी थी। एक तरफ तो यह वातावरण था, दूसरी तरफ वे पहले ही शाह नसीरके दकियानूसी रगमे रँगे जा चुके थे। शाह नसीरसे जौकका बिगाड शायराना मतभेदके कारण नही, उनके ईर्ष्यालु और पक्षपाती स्वभावके कारण हुआ था। बिगाड होनेके बाद भी जौक शाह नसीरके रगमे लिखते रहे। शायद यह रग वे छोड़ भी देते, मगर उर्दू-शायरीकी बदकिस्मती कि ऐसा न हो सका।

उस्तादसे बिगाड़ होनेपर जौक स्वय उस्ताद बन गये, और किलेके चमकीले जालमें फँसकर बादशाह-पसन्द बोल बोलने लगे। और बादशाहो-नवाबोकी पसन्देशायरीका मियार कैसा होता है, यह इसीसे जाना जा सकता है कि आजतक एक भी बादशाह-नवाब काबिलेजिक्र शायर नही हुआ। हालाँकि इनको बडे-से-बडे शायरकी सुहबत नसीब हुई।

बिगाड होनेके बाद शाह नसीर हैदराबाद चले गये थे, परन्तु ३ वर्ष बाद फिर लौट आये और फिर अपने यहाँ मुशायरे मुनअकिद कराने लगे। इन मुशायरोमे लोहा लेनेके लिए जौकको भी नसीरके ही रगमें लिखना पड़ा। गोया कीचड भरा पाँव कीचडसे ही धोया।[1]

---

[1]शाह नसीरने हैदराबादमें किसीकी फरमाइशपर ९ शेरकी एक गज़ल लिखी थी। जिसकी रदीफ थी—'आतिश-ओ-आब-ओ-ख़ाकोबाद' यह गजल उन्होने मुशायरेमे सुनाई और कहा कि "इस तरहमे जो गजल कहे, उसे मै उस्ताद मानता हूँ।" यह चोट जौकपर की गई थी क्योकि वे बादशाहके उस्ताद मशहूर थे। दूसरे मुशायरेमे जौकने इस रदीफमे गज़ल पढी,

ज़ौकका ऐसे हगामी मुशायरोमे लँगोट बाँधकर उतरना लाजिमी था। इतने बड़े उस्ताद होकर किनाराकशी कर गये, यह वोह सुननेकी सामर्थ्य नही रखते थे। उन्हे तो अपनी शुहरतको बरकरार रखना था। गधा लात मारे तो ये भी उसको लात मारना जरूरी समझते थे।[1]

शाह नसीरकी शागिर्दी और बादशाहकी उस्तादी दोनों पाटोके बीचमे पडकर जौककी जो गत बनी, वह काबिले रहम है।

चलती चक्की देखकर दिये कबीरा रोय।
दो पाटनके बीचमे बाक़ी बचा न कोय।।

जौककी शायरीके सम्बन्धमे उन्हीके श्रद्धालु शिष्य मौलाना आजाद-की राय यह है—"उस्तादकी गजलोके दीवानको देखकर मालूम होता है कि आम जौहर उनके कलामका—ताज़गीयेमजमून, सफाइयेकलाम, चुस्तीयेतरकीब, ख़ूबीऐमुहावरा और आमफहमी है। मगर हकीकतमें रंग मुख़्तलिफ वक्तोमे मुख़्तलिफ़ रहा। इब्तदामे मिर्जा रफी (सौदा)का अन्दाज था। शाह नसीरसे इन दिनो मार्के हो रहे थे, उनका ढग वही था। इसलिए इन्होने भी वही अख्तियार किया। इसके अलावा मिर्जा की तर्जको जलसेके गरमानेमे और लोगोके लबोदहनसे वाह-वाहके निकाल

फिर इसीपर तीन कसीदे भी लिखे। शाह नसीरने एक विद्यार्थीसे कई एतराज़ उठवाये और खुद भी बीच-बीचमे उसका पक्ष मजबूत करनेको हाशियाराई करते गये। मगर जौकने फिर भी बाजी जीती।

[1]मौलवी अमीमुद्दीनने मिर्जा गालिबके खिलाफ एक पुस्तक लिखी। मगर उन्होंने उसका कोई जवाब नही दिया। किसीने कहा—हजरत! आपने उसका कोई जवाब नही लिखा। गालिबने फर्माया—अगर कोई गधा तुम्हें लात मारे तो क्या तुम भी उसके लात मारोगे (शेरो-शायरी, पृ० २१२)

लेनेमे एक अजीब जादूका असर है। चुनाचे वही मुश्किल तरहे, चुस्त बन्दिशे, बरजिस्ता तरकीबे, मआनीकी बुलन्दी, इनके यहाँ भी पाई जाती है। चन्द रोजके बाद नवाब इलाहीबख्शखाँ 'मारूफ'की ख़िदमतमे और वलीअहदके दरबारमे पहुँचे। 'मारूफ' एक देरीना साल मश्शाक और फकीर मिजाज शख्स थे। उनकी पसन्देतबअके बमूजिब इन्हे भी तसव्वुफ़ (सूफीवाद), इरफान (आध्यात्मिक, ईश्वरीय), और दर्देदिलीकी तरफ खयालातको माइल करना पडा। वलीअहद जुरअत-ओ-इशाका अन्दाजपसन्द करते थे। उनकी गजले उसी रगमे बनानी पडती थी। नतीजा इसका यह हुआ कि उनकी (जौककी) गजल आखिरको एक गुलदस्तए गुलहाए रगारग होती थी[1]। दो-तीन शेर बुलन्दख़यालीके, एक-दो तसव्वुफके, दो-तीन मुआमलेके[2], और पेच इसमे यह होता था कि हर काफिया भी एक खास अन्दाजके साथ खसूसियत रखता है। इसीमे बँधे तो लुत्फ दे, नही तो फीका रहे। बस वोह मश्शाकेबाकमाल इस बातको पूरा-पूरा समझा हुआ था, और जिस काफियेको जिस पहलूके मुनासिब देखता था, उसीमे बाँध देता था, और इस तरह बाँधता था कि और पहलू नजर न आता था। साथ इसके सफाई और मुहावरेको हाथसे नही जाने देता था, और इन्ही उसूलके लिहाजसे—मीर, सौदा, दर्द, मुसहफी, इशा, जुरअत, बल्कि तमाम शुअरायेमुतकद्दमीन (पुराने शायरो)को इस अदबसे याद करते थे, गोया उन्हीके शागिर्द है।

---

[1]आजाद जैसा श्रद्धालु और विनयी शिष्य अपने उस्तादकी शायरीको चोचोका मुरब्बा या खिचडी कैसे लिख सकता था? मगर आशय उसका गुलदस्तेसे भी वही है। यानी एक रग नही, सब तरहका रंग उनकी शायरीमे पाया जाता है।

[2]मुआमलेबन्दीकी शायरीका उल्लेख मध्यवर्ती युगमे जुरअतके परिचयमे हो चुका है।

और फिलहकीकत सबके अन्दाजको अपने-अपने मौकेपर पूरा-पूरा काममे लाते थे। फिर भी जाननेवाले जानते है कि उनका असली मीलान सौदाके अन्दाजपर ज्यादा था।"[1]

आजाद साहबके वक्तव्यका सार यह हुआ कि ज़ौक अपने उस्ताद शाह नसीर और शागिर्द बहादुरशाहकी बदौलत कहीके न रहे। वे खारिजी रंगसे मिलती-जुलती सौदाकी शायरीके पैरो थे, लखनऊकी बदनाम मुआमलेबन्दीको भी कनखियोसे घूर लेते थे। मुशायरोमे लोहा लेनेकी गरज़से और मिली हुई ख्यातिको बनाये रखनेकी तमन्नामे ज़ौक आम दिलचस्पीके बहावमे हाथ-पाँव मारते थे, परन्तु बाहर न निकल सकते थे।

३. शाहनसीरकी शागिर्दी और बादशाहकी उस्तादीसे जौकका जो हश्र हुआ, वह हम देख चुके। गालिबकी समकालीनताने क्या सितमज़रीफी की, लगे हाथ यह भी परख ले।

गालिबका समकालीन होनेके कारण ज़ौककी ख्यातिको बड़ी ठेस पहुँची। वास्तवमें गालिब और ज़ौक एक दूसरेके प्रतिद्वन्द्वी नही थे। दोनोका रंग जुदागाना था। शैली भिन्न थी, विचारधारामे महान अन्तर था। अतएव इन दोनोकी तुलनात्मक विवेचना करना उचित नही। दोनो समकालीन थे और दोनो ही उर्दूके कवि थे। इससे अधिक समानता इन दोनोमे न थी। जिस प्रकार राजनीति-निपुण प० जवाहरलाल नेहरूकी दर्शनशास्त्राचार्य्य डाक्टर राधाकृष्णनसे तुलना करना उपयुक्त नही। अथवा शृंगाररसके ख्यातिप्राप्त कवि बिहारीका, भक्तिरसके सर्वप्रिय कवि सूरदाससे मुकाबिला नही किया जा सकता। उसी प्रकार 'ज़ौक' और 'गालिब'की तुलना भी भ्रमात्मक है। दोनोका क्षेत्र पृथक-पृथक था। फिर भी समकालीन होनेके कारण आलोचक और पाठक

---

[1]आबेहयात, पृ० ४६९-७१।

दोनो ही इनकी तुलना करनेसे वाज नही आते। गालिवकी तारीफ़ करते समय जौकको घटिया करके दिखाना अपना कर्तव्य समझते हैं। यह जौकका वडा दुर्भाग्य है। गालिवकी महानतामे किसीको सन्देह नही हो सकता। उनका अनूठा शब्दोंका चुनाव, मानवजीवनकी व्याख्या और कल्पनाकी उड़ान अद्वितीय है, और यह कैसे हो सकता है कि सब शायरोंमे यह विशेषण समान मात्रामे पाये जाएँ, परन्तु इसका यह अर्थ नही कि शायरीमे उनका अपना नियत स्थान नही है। जौकका गालिवसे मुकाविला न किया जाय तो ज़वानकी सफाई, मुहावरोका उपयोग, मधुर और ललित शैली और जीवनके तथ्योको सीधी-सादी भाषामे प्रभावक रूपसे कह डालनेकी शक्तिके कारण वोह अपने युगके सर्वश्रेष्ठ शायरके पदपर आसीन होनेके अधिकारी थे, परन्तु गालिवकी ज्वलन्त आभाके समीप उनकी प्रतिभा फीकी पड जाती है। काश वे गालिवसे ५० वर्ष पहले या पीछे हुए होते।

जव मनुष्यकी पहुँचसे दूर होते हुए भी लोग प्रेयसीकी तुलनामे चन्द्रपर छींटे उड़ानेसे वाज नही आते। तव एक ही समय और एक ही शहरमे उत्पन्न हुए जौकपर लोग दोपारोपण किये बिना कैसे चूक सकते हैं? हालाँकि जौक और गालिबको एक दूसरेसे सरोकार नही। दोनोमे छः और तीनका अन्तर है। वास्तवमे गालिवकी तुलना 'मीर'से और जौककी तुलना 'सौदा' और 'नासिख़'से होनी चाहिए। यदि रवीन्द्रनाथकी स्टालिनसे, वर्नार्डशाकी चर्चिलसे और महात्मा गांधीकी गोलवेलकरसे तुलना की जाय तो इस रुचिको क्या कहा जायगा?

४ मौलाना मुहम्मदहुसैन आजादकी साहित्यिक सेवाएँ उर्दू-संसार कभी भुला नही सकता। उन्होने नज्मका आन्दोलन इस सफलतासे चलाया कि आज हज़ारों शायर नज्म लिख रहे हैं, जिससे उर्दू-शायरीका कायाकल्प ही हो गया है। और उर्दू-गद्यको जिस खूबीसे सँवारा और उसमे जो गुलकारियाँ की हैं, उनकी छटा देखते ही वनती है। जिस

चीजका बयान करते है, हूबहू तसवीर खीचकर रख देते है। ये जौकके अत्यन्त श्रद्धालु और विनयी शिष्य थे। उस्तादके लिये जानतक क़ुर्बान कर देना मामूली बात समझते थे। ऐसे शिष्य बिरले ही भाग्यवानोको नसीब होते है। ग़दरमे भरा हुआ घर छोडकर केवल उस्तादका बेतरतीब कलाम[1] लेकर घरसे निकल पडे और उसमे अपनी जादूभरी लेखनीसे चार चॉद लगा दिये। जौकके कलामके सम्बन्धमे आजाद लिखते है—

"जब वोह साहबेकमाल आलमेअरवाहसे किश्वरे अजसामकी तरफ चला तो फ़साहतके फरिश्तोने बागेकुदसके फूलोका ताज सजाया। जिनकी खुशबू शुहरते आम बनकर जहॉमे फैली और रगने वकाएदवामसे ऑखोको तरावत बख्शी। वही ताज सरपर रखा गया तो आबेहयात

---

[1]स्वय आजाद फर्माते है—

"मुतफर्रिक गजलोके बस्ते, बड़ी-बडी पोटे थी। बहुत-सी थैलियॉ और मटके थे। उस्ताद जो कुछ कहते थे, बड़ी अहतयातसे इनमे भरते जाते थे। उनकी गजलो और कसीदोका इन्तखाब कई महीनेमे खत्म हुआ कि दफअतन १८५७का गदर हो गया। सिपाही घरमे घुस आये और बन्दूके दिखाकर जल्दीसे निकलनेको कहा। दुनिया ऑखोंमे अन्धेरी थी, भरा हुआ घर सामने था, और मै हैरान खडा था कि क्या-क्या कुछ उठाकर ले चलूँ? उनके (उस्ताद जौकके) गजलोके जुगपर नजर पडी। यही ख्याल आया कि मुहम्मदहुसैन! अगर खुदाने करम किया और जिन्दगी बाकी है तो सब कुछ हो जायगा। मगर उस्ताद कहॉसे पैदा होंगे, जो ये गजले फिर आकर कहेगे। अब उनके नामकी जिन्दगी है, और है तो इनपर मुनहसिर है। ये है तो वे मरकर जिन्दा है। यह गई तो नाम भी न रहेगा। वही जुग उठा बगलमे मारा और सजे-सजाये घरको छोड़कर २२ नीमजानोके साथ घरसे बल्कि शहरसे निकला।" (आबेहयात, पृ० ४६८)

इसपर शबनम होकर बरसा कि शादाबीको कुम्हलाहटका असर न पहुँचे। मलिकउश्शुअराईका सिक्का उनके नामसे मौजूँ हुआ, और उसके तजगाए शाहीमे यह नक्श हुआ कि 'इसपर नज्मे उर्दूका खात्मा किया गया।"[1] चुनाचे अब हर्गिज उम्मीद नही कि ऐसा कादरउलकलाम फिर हिन्दोस्तानमे पैदा हो।[2] . . .इसमे किसीको कलाम नही कि उन्होने फिक्रेसुखन और कसरते मश्कमे फनानीउश्शुअरा (अमर कवि)का मर्तबा हासिल किया और इशापरदाजिये हिन्दकी रूह को (भारतीय लेखनकला)को शगुफ्ता . . किया।[3] सौदाके बाद जौकके सिवा किसीने इस (कसीदे) पर कलम नही उठाया, और उन्होने मुर.कअको ऐसी ऊँची महराबपर सजाया कि जहाँ किसीका हाथ नही पहुँचा। अनवरी, ज़हीर, जहूरी, नजीरी, उरफी, फारसीके आसमानपर बिजली होकर चमकते है। लेकिन उनके (ज़ौकके) कसीदोने अपनी कडक-दमकसे हिन्दकी ज़मीनको आसमान कर दिखाया।[4] . . .कलामको देखकर मालूम होता है कि मज़ामीनके सितारे उतारे है मगर अपने लफ्जोकी तरकीबसे उन्हे ऐसी शानोशिकोह-

---

[1]तात्पर्य्य यह है कि—"जब उस्ताद ज़ौकने संसारमे अवतीर्ण होनेके लिए प्रस्थान किया तो लालित्य और सौष्ठवरूपी साहित्यिक देवताओने जन्नतके उद्यानसे फूल चुनकर ताज बनाया, जिसकी सुगन्ध उस्ताद जौककी ख्याति बनकर सर्वत्र फैली और उसके रगने अमरत्व रूपी तरावट दी, और वोह ताज जब उस्तादके सरपर रखा गया तो अमृतकी बारिश हुई ताकि ताज कुम्हला न जाय। राष्ट्रकविके नामसे प्रसिद्ध हुए, और उनके लिए बादशाही प्रमाणपत्रमे यह अकित कर दिया गया कि अब जौकसे श्रेष्ठ कोई कवि नही होगा।

[2]आबेहयात, पृ० ४३५-३६

[3]आबेहयात, पृ० ४६७

[4]आबेहयात, पृ० ४७१

की कुर्सीपर बिठाया है कि पहलेसे भी ऊँचे नज़र आते हैं। उन्हे कादरउलकलामीके दरबारसे मुल्के सुख़नपर हुकूमत मिल गई हैं कि हर किस्मके ख़यालको जिस रंगमे चाहते है कह जाते है। कभी तश-बीह (उपमा)के रंगमें सजाकर इस्तग्रारा (उदाहरण)की बूसे बसाते है। कभी बिल्कुल सादे लिबासमे जलवा दिखाते हैं। मगर ऐसा कुछ कह जाते है कि दिलमे नश्तर-सा खटक जाता है, और मुँहसे कभी वाह और कभी आह निकलती है। मालूम होता है उनके होटोमे शुस्ता और बरजस्ता (ललित और भावोके अनुरूप) अल्फाजके ख़जाने भरे है और तरकीबे अल्फाजके हजारो रंग हैं। मगर जिसे जहाँ सजता देखते है, वह गोया वहीके लिए होता है। . . .उन्हे इस बातका कमाल था कि बारीकसे बारीक मतलब और पेचीदासे पेचीदा मजमूनको इस सफाईसे अदा कर जाते थे कि गोया एक शरबतका घूँट था कि कानोके रास्ते पिला दिया। . . .ख़ुदाने अजब तासीर दी थी कि जो लफ्ज उनसे तरतीब पाकर निकलते है, खुदबखुद जबानोपर ढलकते आते है, जैसे रेशमपर मोती। ख़ुदा जाने जबानने किसी आईनेकी सफाई उडाई है या उन्होने अल्फाजके नगीनोपर क्योकर जिला की है जिससे कलाममे यह बात पैदा हो गई है। हकीकतमे इसका सबब ये है कि कुदरतेकलाम उनके हर एक नाजुक और बारीक ख़यालको मुहावरो और जर्बउलमसल (कहावतो)मे इस तरह तरकीब देती है, जैसे आईनागर शीशेको कलईसे तरकीब देकर आईना बनाता है। इसी वास्ते साफ हरएक शख्सकी समझमे आता है और दिलपर असर करता है। उनके कलाममे यह भी ख़सूसियत हैं कि शेरका कोई लफ्ज भूल जाये तो जबतक वही लफ्ज उस जगह न रखा जाय, शेर मजा नही देता।"[1]

मौलाना आजादने अपने गुरूका जिस श्रद्धा-भक्तिसे परिचय दिया

---

[1]आबेहयात, पृ० ४७३-७४।

है, उसका क्या कहना ? उनकी जादूभरी लेखनीने जौकके कलामको चार चाँद लगा दिये है। मगर यही रंगीन इबारत जौकके लिये मुजिर साबित हुई। आजादकी इसी कसौटीपर आलोचक जौकके कलामको परखते है, और जब वह उस कसौटीपर खरा नही उतरता तब जौककी वही दयनीय स्थिति हो जाती है, जो तनिक-सा भी खोट निकलनेपर जौहरीकी दृष्टिमे सौटंचका बताये जानेवाले सोनेकी होती है, और तब खरे-खोटे-को अलग-अलग करनेकी परेशानीको मद्देनज़र रखकर वाजिबी कीमतसे भी कम कीमत आँकी जाती है।

आज़ादके उक्त कथनको लोग पक्षपात और अतिशयोक्तिपूर्ण तथा भ्रम उत्पन्न करनेवाला समझते है, और जौकपर निम्न बुहतान लगाते है—

१—जौक जी-हुज़ूर शायर था।

२—जौक दकियानूसी ख़याल रखता था।

३—जौककी शायरीमे जलील, हकीर, आम विचार पाये जाते है।

४—जौककी शायरी निम्न श्रेणीकी है।

५—जौकका अपना रग कुछ नही, दूसरोका अन्ध अनुकरण है।

साहित्यपर शायरकी निजी प्रकृतिके अतिरिक्त तत्कालीन वातावरणका भी प्रभाव पड़ता है। शायर जिस माहोलमे उठता-बैठता और साँस लेता है, उसका असर भी लेता है। जौक जिस स्थितिमे रहे, उसको देखते हुए आश्चर्य होता है कि वे क्योकर अपना निजी कलाम इतना लिख सके और कैसे वे अनमोल मोती चुन सके। दोष तलाश करनेवाले तो हर एकमे दोष खोजते है। मीर, गालिब और मोमिन भी गलतियोसे अछूते नही रह सके।

अगर चाहो निकालो ऐब तुम अच्छेसे अच्छेमें।
जो ढूँढ़ोगे तो अकबरमें भी पाओगे हुनर कोई॥

१—जौकको जी-हुज़ूर शायर इसीलिए कहा जाता है कि वह दरबारी

शायर थे, और उन्होंने क़सीदे लिखनेमे अभूतपूर्व कौशलका परिचय दिया है। क़सीदे लिखनेका उन दिनो आम रिवाज था और अच्छे-से-अच्छा शायर कसीदे लिखनेका प्रयास करता था। दरबारी शायर न होते हुए भी मीर-ओ-गालिबने क़सीदे लिखे। यह जुदा बात है कि वे इस फ़नमे गजलकी तरह कमाल हासिल न कर सके। और सौदा तो कसीदोंके लिए मशहूर है ही। उन दिनो कसीदोमे महारत हासिल न करना शायरीमे एक नुक़्स समझा जाता था। अगर क़सीदे लिखनेकी वजहसे जौकपर जी-हुजूरीका बहुतान लगाया जाता है तो मोमिन जैसे एक-दोको छोडकर यह सभीपर आयद होता है। गालिब भी बादशाहके उस्ताद होना चाहते थे, परन्तु जौक़के जीते जी कामयाब न हो सके, और अपनी इस ख़लिशको निरन्तर दबाये रखनेके प्रयत्नमे भी उनके मुँहसे निकल पडा—

उस्तादेशहसे हो मुझे परखाशका ख़याल।
यह ताब, यह मजाल, यह ताक़त नहीं मुझे॥

२—जौक चूँकि शाह नसीरके शिष्य थे, इसलिए उनके यहाँ पुरानी शायरीके अन्सर जरूर पाये जाते हैं। लेकिन प्राचीनतासे लगाव होना और पुरानी परम्पराका यथोचित निर्वाह करना दोष नही सद्गुण है। हाँ, लकीरके फकीर, रूढ़ीवादी होना गुनाह है। प्राचीन साहित्यिक रीति-रिवाजो और कायदे-कानूनोका ठीक-ठीक पालन करना, उनमे यथोचित आवश्यकतानुसार सुधार और परिवर्तन करना लाजिमी है। और जौकने इस कर्तव्यका ठीक-ठीक पालन किया है। वे शायरीके नियम-उपनियम सभीका अक्षरश पालन भी करते थे, और उसमे नवीनता लानेका प्रयत्न भी करते थे। उर्दू-शायरीमे माशूक हरजाई और बाजारी तस्लीम किया गया है। जौक उसी बदनाम और बेवफा माशूकमे सती-साध्वी प्रेयसीकी कैसी स्वाभाविक और गर्हित भावना भरते है—

हम ऐसे साहिबे अस्मत परीपैकरपै आशिक है।
नम।जे पढ़ती है हूरे हमेशा जिसके दामनपर॥

उस बुतपै गर ख़ुदा भी हो आशिक़ तो आये रश्क।
हर चन्द जानता हूँ कि वह पाकबाज़ है॥

ऐसे पवित्र माशूककी कल्पना जौकसे पहले कहाँ मिलती है ? और भी अनेक नये और अछूते भाव जौकने अपनी शायरीमे समोये हैं, जो कि उनके कलाममे यत्र-तत्र देखनेको मिलेगे।

३, ४ नम्बरके बहुतान प्राय. एक ही कोटिके है। ये सब बाते उन दिनो आम थी, और अच्छे-से-अच्छे शायरके कलाममे पाई जाती है। किसीके यहाँ कम और किसीके यहाँ ज्यादा। मीर और सौदाके युगका वर्णन करता हुआ विद्वान लेखक लिखता है—"इस अहदके शायरोकी एक खसूसियत ये है कि उनके कलाममे पस्तखयालातके साथ-साथ बुलन्द खयाल और सखीफ (बेहूदे, छिछोरे, तग) अल्फाजके साथ शानदार और फसीह (ललित, सुरुचिपूर्ण) अल्फाज मिले-जुले है। गज़लोंमे शुतुरगुबंगी-ओ-नाहमवारी (शुतुर्मुर्गकी एक टाँग नीची एक ऊँची के समान, ऊबड़-खाबड) पाई जाती है। मीर तकी मीरकी निस्बत एक कदीम तजकरेनवीसका कौल है कि उनके मामूली अशआर निहायत मामूली और आला अशआर निहायत आला होते है। नवाब मुस्तफाख़ाँ शेफ्ता अपने तजकरेमे यही ऐतराज मिर्जा सौदापर भी वारिद करते है।"[1]

जब नाखुदाएसुख़न मीरके यहाँ भी ये अयूब पाए जाते है, तब ज़ौकपर ही यह बहुतान लगाने व्यर्थ है। मीर भी ऐसे जलील और हकीर शेर लिखनेसे बाज नही आये—

जब कुछ अपने कने रखते थे, तब भी ख़र्च था लडकोंका।
अब जो फ़क़ीर हुए फिरते है 'मीर' उन्हीकी बदौलत है॥

× × ×

---

[1]तारीखे अदबे उर्दू, पृ० ११६

'मीर' क्या सादा हैं बीमार हुए जिसके सबब ।
उसी अत्तारके लौंडेसे दवा लेते हैं ॥

यह तो खुदाएमुख़न मीर साहबके कलामका नमूना है । अब जौकके समकालीन गालिबकी रुचिकी भी बानगी देखये––

हमसे खुल जाओ बवक़्ते मयपरस्ती एक दिन ।
वर्ना हम छेड़ेंगे रखकर उज्रेमस्ती एक दिन ॥

ले तो लूँ सोतेमे उसके पाँवका बोसा, मगर––
ऐसी बातोंसे वह काफिर बदगुमाँ हो जायगा ॥

क्या ख़ूब तुमने ग़ैरको बोसा नहीं दिया ।
बस चुप रहो हमारे भी मुँहमें जबान है[1] ॥

पीनसमें गुजरते है जो कूचेसे वोह मेरे ।
कन्धा भी कहारोंको बदलने नहीं देते ॥

सुहबतमें ग़ैरकी न पड़ी हो कहीं ये ख़ू ।
देने लगा है बोसा बग़ैर इल्तजा किये ॥

बोसा नहीं न दीजिये दुश्नाम ही सही ।
आख़िर जबाँ तो रखते हो तुम गर दहाँ नहीं ॥

दरपै पड़नेको कहा और कहके कैसा फिर गया ।
जितने अर्सेमे मेरा लिपटा हुआ बिस्तर खुला ॥

---

[1]मौलाना हालीने इस शेरकी व्याख्यामे लिखा है––'मुँहमे जवान है'का एक मतलब तो यह है कि हम भी ताकतेगुफ्तार रखते है और जवाब दे सकते है । दूसरा मतलब यह भी है कि हम चखकर बता सकते है कि आया बोसा दिया है या नहीं ।

ग़ैरको यारब ! वे क्योंकर मनअ़ गुस्ताख़ी करें।
गर हया भी उसको आती है तो शरमा जाये है ॥

धौलधप्पा उस सरापा नाजका शेवा नहीं।
हम ही कर बैठे थे 'ग़ालिब' पेशदस्ती एक दिन ॥

इस तरहके अनेक शेर जौकके पूर्ववर्ती और समकालीन शायरोंके उद्धृत किये जा सकते है। जव सर्वसाधारणकी रुचि ही इस ढंगकी थी तब कोई करे भी क्या ? युगके अनुसार साहित्यक आदर्शका स्तर ऊँचा-नीचा होता रहता है। दूर क्यो देखा जाय ? इस सभ्यता और प्रगतिके युगमे भी भारतीय फिल्म क्षेत्रकी कुरुचि किसीसे पोशीदा नही। निरन्तर आग उगलनेवाले 'जोश' जैसे शायरे इन्कलावसे भी फ़िल्मव्यवसाइयोने—'हमको नज़र लग जायगी, भोली दुल्हन शर्माएगी' तथा 'गोरी मेरे जुवनाका देखो उभार'—जैसे कामुक गीत लिखवा ही लिये। फिर उस युगकी तो बात ही निराली थी।

५—यह वहुतान भी व्यर्थ-सा है। हर शायर अपने पूर्ववर्ती और समकालीन शायरोसे कुछ न कुछ अक्स लेता है और उसे पचाकर अपनी प्रतिभा और वुद्धिवलसे अलौकिक रूप देता है। जौकने भी यही किया है। हाँ, यह ठीक है कि उनका अपना ख़ास रग कोई न था। वे कई शायरोके रगमे लिखते नजर आते हे। परन्तु इसे नकल या अन्ध-अनुकरण कहना ठीक नही।

जौककी ख़ूबियाँ—

फिराक गोरखपुरीके शब्दोमे—"ज़ौकके कलामका ज्यादा हिस्सा ख्वारजी एवं मसनूई किस्मकी शायरीका नमूना है। लेकिन इस रगको भी ज़ौकने अपनी मश्शाकी, कादरकलामी और उस्तादाना अन्दाजसे मजा दिया है वयानमे एक पुख़्तगी, एक शुस्तगी और उस्तादाना शान मिलती है। गालिव और मोमिनके कलामकी-सी मानवीयत (गम्भीर

अर्थ) और दाखलीयत (Inwardness) न सही। लेकिन नासिखके कलामकी तरह जौकके अशआर रेगेरवाँ (उडती हुई रेत) भी नही है।"[1]

····हमारी शायरीकी जबानके लिये वोह कुछ कर गया जो सबसे नही हो सकता था। जोश मलीहाबादी आजाद असारीके बारेमे लिखते है—'आपके कलामकी सबसे बडी खूबी यह है कि अलफाजकी तरतीब और नशिस्त ऐसी होती है कि अक्सर-ओ-बेश्तर उसकी नसर (गद्य) नही की जा सकती। कहने और सुननेमें तो यह बात शायद ज्यादा मुश्किल मालूम न हो, मगर इसके बरतनेमे जो हफ्तख्वाँ (अत्यन्त कठिन मार्ग) तय करना होते है उनका अन्दाजा करना भी दुश्वार है।' लेकिन इस बेलको पहले-पहल जौक ही ने परवान चढाया था। इस कामको पहले जौक़ ही ने सँवारा था। जौक ही की बदौलत उनके जमानेमे और बादमे बहुतसे कहनेवालोने अल्फ़ाजकी तरतीब और नशिस्त यूँ रखना सीखा कि मिसरेकी नसर न हो सके और गजलमे नसरेमौजूका (पद्यमे गद्यका) लुत्फ पैदा हो जाए। जैसा कुछ जौकने कहा है वोह बेऐब है, मुकम्मिल है, उस्तादाना है, कई अदबी ख़ूबियोका हामिल है। लेकिन शायरीमे खासकर गजलकी शायरीमे हम कुछ और चीजे भी पानेकी उम्मीद रखते है, और वही चीजे हम जौककी गजलमे बहुत कम पाते है। लेकिन फ़नके लिहाजसे जौकका कारनामा भुलाया जा ही नही सकता। इस कारनामेकी खुद अपनी एक हैसियत है और उसकी तारीखी अहमीयत (ऐतिहासिक महत्व) भी गैरमामूली (असाधारण) है।"[2]

---

[1]अन्दाजे, पृ० १००

[2]अन्दाजे, पृ० १०५-७

उसे हमने बहुत ढूँडा, न पाया।
अगर पाया तो खोज अपना न पाया॥
जिस इन्साँको सगेदुनिया[1] न पाया।
फ़रिश्ता उसका हमपाया[2] न पाया॥
मुकद्दरस ही से गर सूदोजियाँ[3] है।
तो हमने याँ न कुछ खोया न पाया॥
अहातेसे फ़लकके हम तो कबके।
निकल जाते, मगर रस्ता न पाया॥
जहाँ देखा किसीके साथ देखा।
कही हमने तुझे तनहा न पाया॥
किया हमने सलाम ऐ इश्क़! तुझको।
कि अपना हौसला इतना न पाया॥
न मारा तूने पूरा हाथ क़ातिल!
सितममें भी तुझे पूरा न पाया॥
लहदमें[4] भी तेरे मुज़तरने[5] आराम।
ख़ुदा जाने कि पाया या न पाया॥
कहे क्या हाय, ज़ख्मे दिल हमारा।
ज़हनपाया लबेगोया[6] न पाया॥

उसने जब माल बहुत रद्दोबदलमें मारा।
हमने दिल अपना उठा, अपनी बगलमें मारा॥

---

[1]सासारिक कुत्ता अर्थात् व्यसन-लिप्त, [2]बराबर;
[3]लाभ-हानि, [4]कब्रमें;
[5]प्रेमरोगीने, [6]वाक्यशक्ति।

आप आइनयेहस्तीमें[1] है तू अपना हरीफ़[2]।
वर्ना यॉ कौन था, जो तेरे मुक़ाबिल होता ॥

मैं हिज्रमें मरनेके क़रीं[3] हो ही चुका था।
तुम वक़्तपर आ पहुँचे, नहीं हो ही चुका था ॥

यह हयाते चन्दरोजा[4] जो न सद्देराह[5] होती।
तो फिर एक अर्सागाहेअदमोवजूद[6] होता ॥

उसे ऐय्यार पाया यार समझे 'जौक' हम जिसको।
जिसे यॉ दोस्त अपना हमने जाना वोह 'उदू' निकला ॥

नाला इस शोरसे क्यों मेरा दुहाई देता।
ऐ फ़लक ! गर तुझे ऊँचा न सुनाई देता ॥

झूठ ही जानो कलाम उस रहज़ने ईमानका।
पहनकर जामा भी वोह आये अगर क़ुरआनका ॥

मैं वोह शहीद हूँ लबेख़न्दानेयारका[7]।
हँसता रहे चिराग़ भी मेरे मज़ारका ॥
ऐ जौक़ ! होश गर है तो दुनियासे दूर भाग।
इस मयकदेमें काम नहीं होशयारका ॥

इस तरफ़को देखता भी है तो शरमाया हुआ।
वस्लकी शबका समाँ आँखोमे है छाया हुआ ॥

---

[1]संसार रूपी दर्पणमे, [2]प्रतिद्वन्द्वी, [3]निकट
[4]चार दिनकी जिन्दगी, [5]मार्गकी बाधक,
[6]अर्थात् अस्तित्व तथा अस्तित्वहीन दशामे कोई अन्तर न रहता
[7]प्रेयसीके मुस्कराते ओठोंका।

कहते थे आफतावेक़यामत जिसे सो वोह ।
निकला चिरागे दागे दिल अपना बुझा हुआ ।।
हम आप जलबुझे मगर इस दिलकी आगको ।
सीनेमे हमने 'जौक' न पाया बुझा हुआ ।।

जुदा हो यारसे हम और न हों रकीब जुदा ।
है अपना-अपना मुकद्दर जुदा, नसीब जुदा ।।

शुक्र ! परदे हीमे उस बुतको हयाने रक्खा ।
वर्ना ईमान गया ही था, ख़ुदाने रक्खा ।।

इश्क़के ढबपै न कोई बजुजइन्सान[1] चढ़ा ।
इसके काबूपै चढ़ा तो यही नादान चढ़ा ।।

बरंगेगुंचा[2] ख़ूनी दिल हँसे क्या इस गुलिस्ताँमें ।
भर आया मुँहमे खूँ गर इक तबस्सुम[3] ज़ेरे लब आया ।।

वोह सुबहको आयें तो करूं बातोंमें दोपहर ।
और चाहूँ कि दिन थोड़ा-सा ढल जाय तो अच्छा ।।
ढल जाये जो दिन भी, तो करूँ उसी तरह शाम ।
और फिर कहूँ गर आजसे कल जाए तो अच्छा ।।
अलकिस्सा नहीं चाहता वोह जाये यहाँसे ।
दिल मेरी ही बातोंमें बहल जाये तो अच्छा ।।

कहे है खंजरे कातिलसे यह गलू मेरा ।
कमी जो मुझसे करे तो पिये लहू मेरा ।।
मुझे वह परदानशी सामने कब आने दे ।
जो जिक्र आने न दे अपने रूबरू मेरा ।।

---

[1]मनुष्यके अतिरिक्त, [2]कलीकी तरह; [3]मुस्कान ।

वोह कौन है जो मुझपै तास्सुफ[1] नहीं करता।
पर मेरा जिगर देख, कि मै उफ़ नहीं करता॥

चाहे आलममें फ़रोग़[2] अपना, तो हो घरसे जुदा।
देख चमके है शरर पत्थरसे होते ही जुदा॥

कोहके चश्मोंसे अश्कोंको निकलते देखा।
ऐ सनम! पर तेरा पत्थर न पिघलते देखा॥
था मै इस बाग़में नख़्लेगुलेआतिशबाजी[3]।
फूलते देखा मगर आह न फलते देखा॥

वोह दौलत कर तलब जिससे कि दिल हो जाय मुस्तगनी[4]।
अगर हाथ आयेगा गंजीनयेक़ारूँ[5] न ठहरेगा॥

आदम दुबारा सूयेबहिश्तेबरीं[6] गया।
देखो, जहाँ ख़राब हुआ फिर वहीं गया॥

क्या-क्या मजा न तेरे सितमका उठा लिया।
हमने भी लुत्फ़े जिन्दगी अच्छा उठा लिया॥

आख़िर गिल[7] अपनी ख़ाकेदरेमयकदा[8] हुई।
पहुँची वहीं यह खाक जहाँका खमीर था॥

---

[1]अफसोस, [2]उन्नति,
[3]अर्थात् आतिशबाजी, फुलझडी;
[4]निस्पृह,
[5]कारूँका ख़जाना अर्थात् कुबेर-धन,
[6]स्वर्गकी ओर;
[7]मिट्टी;
[8]मधुशालाके द्वारकी रज।

दिल इबादतसे चुराना और जन्नतकी तलब ।
कामचोर! इस कामपर किस मुँहसे उजरतकी तलब ॥

दिलको रफ़ीक़[1] इश्क़में अपना समझ न 'ज़ौक़' ।
टल जायगा यह अपनी बला तुझपै टालके ॥

मुझमें क्या बाक़ी है जो देखे है तू आनके पास ।
बदगुमाँ वहमकी दारू नहीं लुक़मानके पास ॥

फिरतो आये ख़ैरसे हम जाके उस मग़रूरतक ।
पर उछलता ही रहा अपना कलेजा दूरतक ॥

बे यार रोज़ेईद शबेग़मसे कम नहीं ।
जामेशराब दीदयेपुरनमसे[2] कम नहीं ॥
उस हूरवशका[3] घर मुझे जन्नतसे है सिवा[4] ।
लेकिन रक़ीब हो तो जहन्नुमसे कम नहीं ।

हमारे हाथसे ऐ 'ज़ौक़' वक़्ते मयनोशी ।
हज़ार नाज़से वोह एक जाम लेते हैं ॥

बर्क़े ख़िरमनसोज़[5] है आलममें नाफ़हमी[6] तेरी ।
वर्ना क्या-क्या लहलहाते खेत हैं हर दानेमें ॥

इल्म जिसका इश्क़ और जिसका अमल वहशत नहीं ।
वोह फलातू है तो अपने क़ाबिले सुहबत नहीं ॥

वक़्ते पीरी शबाबकी बातें ।
ऐसी हैं जैसे ख़्वाबकी बातें ॥

---

[1]मित्र, [2]अश्रुपूर्ण नेत्र; [3]दिव्यरूपाका, [4]अधिक,
[5]खेतको जलानेवाली बिजली, [6]अनभिज्ञता ।

महजबीं ! याद है कि भूल गये ?
वोह शबे माहताबकी बातें ॥
सुनते हैं उसको छेड़-छेड़के हम !
किस मजेसे अताबकी[1] बातें ॥

वे सीधे घरको सिधारे और उनकी खोजमें हम।
फिरे भटकते हुए कूए बदगुमानीमें ॥

गुहरको जौहरी सर्राफ़ जरको देखते हैं।
बशरके देखनेवाले बशरको देखते हैं ॥
बनाके आइना है देखते जो आइनागर।
हुनरवर अपने भी ऐबोहुनरको देखते हैं ॥

फिरता है सैले हवादससे[2] कोई मर्दोंका मुँह !
शेर सीधा तैरता है वक़्तेरफ़्तन[3] आबमें ॥

वह दिन है कौन-सा कि सितमपर सितम नहीं !
गर ये सितम हैं रोज तो इक रोज हम नहीं ॥
मुश्किल है मेरे अहदे मुहब्बतका टूटना।
ऐ बेवफ़ा ! यह तेरी 'खुदाकी क़सम' नहीं ॥
हाथ आये किस तरहसे दिले गुमशुदाका खोज।
है चोर वह कि जिसपै किसीका भरम नहीं ॥

हज़रते दिलका देखना आलम, हाथ उठाये दुनियासे।
पाँव पसारे बैठे हैं और सरपै सफ़रके झगड़े हैं ॥

आज उनसे मुद्दई कुछ मुद्दआ कहनेको है।
पर नहीं मालूम क्या कहवेंगे, क्या कहनेको है ॥

---

[1]क्रोधकी, [2]दुर्घटना रूपी बाढ़से; [3]तैरते हुए।

खानकहमें भी वही है जो खराबातमें है।
फर्क पर यह है, यहाँ मुँहपै है वाँ दिलमें है॥

तेरे आफ़तजदा जिन दश्तोंमें अड़ जाते हैं।
सख्तोताकतके वहाँ पाँव उखड़ जाते हैं॥

मेरे नालोंसे चुप है मुर्गेखुशइलहाँ[1] जमानेमें।
सदा तूतीकी सुनता कौन है नक्क़ारखानेमें॥

मर गये पर भी तग़ाफ़ुल[2] ही रहा आनेमें।
बेवफ़ा पूछे है, क्या देर है ले जानेमें?

जिस जगह बैठे हैं बादीदयेनम[3] उट्ठे हैं।
आज किस शख्सका मुँह देखके हम उट्ठे हैं॥

रुख़सत जो हमसे होके जाते वोह अपने घर हैं।
घबराके पहुँचते वाँ हम उनसे पेश्तर हैं॥

दिलमें थे क़तरये ख़ूँ चन्द सो मानिन्दे अनार।
न रहे वोह भी जब उलफ़तने निचोड़ा हमको॥

आस्माँ और वोह इन्सान बनाता हमको?
ख़ाकमें था मगर इस ढबसे मिलाना हमको॥
देखा आखिर न कि फोड़ेकी तरह फूट बहे।
हम भरे बैठे थे क्यो आपने छेड़ा हमको॥
हम मुब्बर्रक[4] है बस अब करल्ले जियारत मजनूँ।
सरपै फिरता है लिये आबलयेपा[5] हमको॥

---

[1]मधुर बोलनेवाले पक्षी; [2]उपेक्षा, [3]रोते हुए;
[4]पवित्र; [5]पाँवका छाला।

उम्रे रवाँका तौसनेचालाक[1] इसलिए।
तुझको दिया कि जल्द करे याँसे एड़ तू॥

मौत ही से कुछ इलाजे दर्दे फ़ुरकत हो तो हो।
ग़ुस्लेमैय्यत[2] ही हमारा गुस्लेसेहत[3] हो, तो, हो॥

समझ है और तुम्हारी कहूँ मैं तुमसे क्या?
तुम अपने दिलसे ख़ुदा जाने सुनके क्या समझो?

हाथ सीनेपै मेरे रखके किधर देखते हो।
इक नजर दिलसे इधर देखलो गर देखते हो॥

अबस[4] तुम अपनी रुकावटसे मुँह बनाते हो।
वोह आई लबपै हँसी, देखो, मुसकराते हो॥

जियादा होता है पीरीमें फ़रबा[5] नफ्सेअम्मारह[6]।
यह बालोकी सुफेदी शीर[7] है इस मारे रहजनको[8]॥

वोह दिलको चुराकर लगे जो आँख चुराने।
यारोंका गया उनपै भरम और जियादा॥

रुक्का है चोरीका और भेजा है अनजानके हाथ।
या इलाही कहीं पड़जाय न दरबानके हाथ॥

तेरे कूचेको वोह बीमारेगम दारुश्शफ़ा[9] समझे।
अजलको[10] जो तबीब[11] और मर्गको[12] अपनी दवा समझे॥

---

[1]तेज घोडा, [2]मृत्युस्नान, [3]आरोग्यस्नान, [4]व्यर्थ;
[5]प्रचण्ड, [6]विषयवासना, [7]दूध, [8]मूज़ी साँपको;
[9]आरोग्य मन्दिर, [10]यमराजको, [11]चिकित्सक;
[12]मृत्युको।

सितमको हम करम समझे जफ़ाको हम वफ़ा समझे ।
और इसपर भी न समझे वोह, तो उस बुतसे ख़ुदा समझे ।।
समझ ही में नही आती है कोई बात 'ज़ौक़' उसकी ।
कोई जाने तो क्या जाने, कोई समझे तो क्या समझे ?

लेते ही दिल जो आशिके दिलसोजका[1] चले ।
तुम आग लेने आये थे, क्या आये ! क्या चले ।।

ऐ 'ज़ौक़' ! किसी हमदमे देरीनाका[2] मिलना ।
बहतर है मुलाक़ाते मसीहा-ओ-ख़िज़रसे ।।

समझे है बाजन्नुलरियायत[3] दोस्त ।
दुश्मनोकी रियायतोंसे[4] मुझे ।।

ऐ 'ज़ौक़' ! इतना दुख़्तरेरज़को[5] न मुँह लगा ।
छुटती नहीं है मुँहसे ये काफ़िर लगी हुई ।।

क्या गरज़ लाख ख़ुदाईमें हो दौलतवाले ।
उनका बन्दा हूँ, जो बन्दे है मुहब्बतवाले ।।
गये जन्नतमें अगर सोजे मुहब्बतवाले ।
तो यह जानो रहे दोज़ख़ ही में जन्नतवाले ।।
न सितमका कभी शिकवा न करमकी ख़्वाहिश ।
देख तो, हम भी है क्या सब्रोकनाअ़तवाले ?
नाज़ है गुलको नज़ाकतपै चमनमें ऐ ज़ौक़ ।
इसने देखे ही नही नाज़ोनज़ाकतवाले ।।

---

[1] दग्धहृदय प्रेमीका, [2] बिछड़े साथीका; [3] कृपापात्र; [4] सिफारिशोसे; [5] शराबको ।

मज़े जो मौतके आशिक बयाँ कभू करते।
मसीहो खिज्र भी मरनेकी आरज़ू करते॥
अगर ये जानते चुन-चुनके हमको तोड़ेंगे।
तो गुल कभी न तमन्नाये रंगो बू करते॥

उस संगेआस्ताँपै[1] जबीनेनियाज़[2] है।
वोह अपनी जा-नमाज़[3] है और यह नमाज़[4] है॥
नासाज़[5] हमसे जो है उसीसे यह साज़[6] है।
क्या खूब दिल है वाह, हमें जिसपै नाज़ है॥

गुंचे[7] तिरी गुंचादहनीको[8] नहीं पाते।
हँसते तो है पर तेरी हँसीको नहीं पाते॥

बाद रंजिशके गले मिलते हुए रुकता है दिल।
अब मुनासिब है यही कुछ मैं बढ़ूँ कुछ तू बढ़े॥

दुकाने हुस्नमें रखते नहीं मताएवफ़ा।
वगर्ना लेते हम इक अपने महर्बांके लिए॥

याद आया याँके आनेका वादा भी खूब उन्हें।
जब रातको वह पाँवमें महदी लगा चुके॥
तुम भूलकर भी याद नहीं करते हो कभी।
हम तो तुम्हारी यादमें सब कुछ भुला चुके॥
मस्जिदमें बैठे क्या हो ? चलो, मयकदेको 'जौक' !
उट्ठो कहीं, वज़ीफा[9] बहुत बड़-बड़ा चुके॥

---

[1]प्रेयसीकी चौखटपर, [2]नतमस्तक, [3]उपासना स्थल;
[4]उपासना; [5]क्षुब्ध, [6]मिला हुआ;
[7]कलियाँ [8]मुस्कराहटको; [9]ईश्वरस्तुति।

चुपके-चुपके गमका खाना कोई हमसे सीख जाय।
जी ही जीमें तिलमिलाना कोई हमसे सीख जाय॥
जब कहा मरता हूँ वोह बोले मेरा सर काटकर।
"झूठको सचकर दिखाना कोई हमसे सीख जाय"॥

दिल जले शरुअ़के परवाना नही जल सकता।
क्या करे इश्क अगर हुस्न ही सबक़त[1] न करे॥

मरजे इश्क जिसे हो उसे क्या याद रहे।
न दवा याद रहे और न दुआ याद रहे॥
तुम जिसे याद करो फिर उसे क्या याद रहे।
न खुदाईकी हो परवाह, न खुदा याद रहे॥

पिला मय आश्कारा[2] हमको किसकी साक़िया! चोरी।
खुदाकी जब नही चोरी तो फिर बन्देकी क्या चोरी॥

बेकरारी थी सब उम्मीदे मुलाकातके साथ।
अब वोह अगली-सी दराजी[3] शबेहिज्राँमें[4] नहीं॥

कितने मुफलिस हो गये कितने तवंगर हो गये?
ख़ाकमें जब मिल गये दोनों बराबर हो गये॥

रात जूँ शमअ़ कटी हमको जो रोते-रोते।
बह गये अश्कोंमें हम सुबहके होते-होते॥

जिस तरह माह सारे सितारोंमें एक है।
यूँ मेरा महजबी भी हजारोंमें एक है॥

---

[1]पहल; [2]प्रकट रूपसे;
[3]लम्बाई, [4]विरहरात्रिमे।

जिबह करनेको मेरे पूछते क्या हो तदबीर।
तुम छुरी फेर भी दो, नाम खुदाका लेकर ॥

मौत उसको याद करती है खुदा जाने कि गोर।
यूँ तेरा बीमारेगम जो हिचकियाँ लेने लगा ॥
मुझको हर शब हिज्रकी होने लगी जूँ रोजेहश्र।
मुझसे यह किस दिनके बदले आस्माँ लेने लगा ॥

उतारा तूने तो सर तनसे इस शामतके मारेका।
अरे अहसान मानूँ सरसे मैं तिनका उतारेका ॥
न पकड़े दामनेइलयास[1] गरदाबेबलामें[2] हम।
कि बदतर डूबकर मरनेसे है जीना सहारे का ॥

तासीरेमुहब्बत अजब इक हुबका[3] अमल है।
लेकिन यह अमल यारपै चल जाय तो अच्छा ॥
जो चश्म कि बेनम हो वोह हो कोर[4] तो बहतर।
जो दिल कि हो बेदाग वह जल जाय तो अच्छा ॥
फ़ुरकतसे तेरी तारेनफ़स[5] सीनेमें मेरे।
काँटा-सा खटकता है निकल जाय तो अच्छा ॥

बयाने दर्दे मुहब्बत जो हो तो क्योंकर हो ?
जबान दिलके लिये है न दिल 'ज़बाँ'के लिये ॥

२० मार्च १९५०

---

[1]अर्थात् किसीका सहारा; [2]सकटके भँवरमे;
[3]प्यार, चाहका; [4]अन्धी,
[5]साँस।

७७

मोमिन

हकीम मुहम्मद मोमिन खाँ 'मोमिन'के पिता हकीम 'गुलामनबीखाँ' दिल्लीके सम्भ्रान्त व्यक्तियोमेसे थे। मोमिनका जन्म दिल्लीके कूचये-चेलानमे ई० स० १८०० (हि० स० १२१५) में हुआ। अरबी-फारसी-की उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके अतिरिक्त हिकमत, नजूम और रमल (ज्योतिष)मे भी पूर्ण योग्यता प्राप्त की थी। सगीतमे वोह नाम पैदा किया कि इनकी मृत्युके पश्चात् तत्कालीन वीणा-विशेषज्ञ नजीरने यह कहकर बीन उठाकर रख दी कि "अब दिल्लीमे इसका कोई क़द्रदाँ नही रहा।" शतरजके नामी खिलाड़ियोमे थे।

तबियत रंगीन और स्वभाव आशिकाना था। शायरीके लिए भी दिल मचलने लगा। शाह 'नसीर' जो उन दिनो देहलवी शायरोमे 'नासिख़' समझे जाते थे—उन्हे चन्द रोज़ 'मोमिन'ने अपना कलाम दिखाया, परन्तु 'नसीर' और 'मोमिन'की तबियते जुदागाना थी। इसीलिए बहुत जल्द इसलाह लेना छोड़ दिया, और स्वयं ही अपनी ग़ज़ले बनाने लगे।

जब 'नासिख़'का दीवान छपकर दिल्ली आया तो 'गालिब' और 'मोमिन'ने भी उनके ख़ारजीरंगमें लिखनेका प्रयत्न किया। क्योंकि नासिख़का यह ख़ारजीरंग उन दिनों मकबूले आम था। उर्दू-शायरीका यह सौभाग्य ही समझना चाहिए कि उसके यह दोनों अमर कलाकार नासिख़के रंगमें सफलता प्राप्त न कर सके और बहुत शीघ्र इस तर्ज़को तिलाजलि देकर अपना मखसूस रग अख्तियार कर लिया। काश!

ये दोनो उसी रगमे सराबोर हो गये होते तो आज ये आबदार मोती देखने कैसे नसीब होते और फिर उर्दू-शायरी 'मीर'के अलावा और किसपर नाज करती ? चन्द शेर नासिखके रंगमे 'नसीर', 'मोमिन', और 'गालिब'-के दिये जाते है :—

नासिख --

मुँहको दामनसे छुपाकर जो वह रक्सॉ[1] होता।
शोलये हुस्न[2] चरागेतहेदामॉ[3] होता ॥

निकहते काकुले पेचाँसे[4] जो देते तशबीह[5] ॥
इतरेमजमूअएका[6] हर जुज़ू[7] परीशॉ होता ॥

खूँ रुलाता वहीं नासूर बनाकर गरदूँ[8] ।
ज़ख़्म भी गर मेरे तनपर कभी खन्दॉ[9] होता ॥

कौन है जो नहीं मरता है तेरे क़ामत[10] पर ?
क्यों न हर सर बे चमन क़ालिबे बेजॉ[11] होता ॥

नसीर——

लौ लग रही है जिससे वह शमअ़रू न आया ।
बल बे तेरी शरारत यॉ तक कभू न आया ॥

हो इस दहनसे[12] रूकश[13] सैलेसबाकी[14] खाई[15] ।
गुंचेके आह मुँहसे किस दिन लहू न आया ॥

---

[1]नाचता, [2]सौन्दर्य्य-ज्वाला; [3]घूँघटके अन्दर दीपक ।
[4]ज़ुल्फोंकी सुगन्धसे, [5]उपमा, [6]इत्रोका,
[7]प्रत्येक अणु; [8]आकाश, [9]मुस्कराता,
[10]कद, [11]निर्जीव शरीर, [12]प्रेयसीके मुखसे;
[13]मुकाला करके; [14]हवाके थपेड़ेकी, [15]मुँहकी खाई, हारना पड़ा ।

दन्दाँ दिखाके मत हँस ऐ बख्यये गरीबाँ !
चाके जिगरका हमको तौरे रफ़ू न आया ॥

अपनी भी बादेमजनूं यारो हवा बँधी है ।
ले गर्दोबाद खेमा कब कूबकू न आया ॥

ग़ालिब---

न लेवे गर खसे जौहर तरावत सब्जये खतसे ।
लगादे खानये आईनामें रूए निगार 'आतिश' ॥

फ़रोगे हुस्नसे होती है हल मुश्किले आशिक ।
न निकले शमअ़के पा से निकाले गर न खार आतिश ॥

सताइश गर है जाहिद इस कदर जिस बागे रिज़वाँका ।
वोह इक गुलदस्ता है हम वे खुदोंके ताके निसयाँ का ॥

बयाँ क्या कीजिये बेदादे काविश हाय मिज़गाँका ।
कि हर एक क़तरये खूँ दाना है तसबीहे मरजाँका ॥

मोमिन---

ले उड़ी लाशा हवा लागिर ज़बस तन हो गया ।
ज़र्रहे रीगे बयाबाँ अपना मदफ़न हो गया ॥

दिन तेरे ऐ शोलारू ! आतिशक़दा तन हो गया ।
शमअ़ क़दपर मेरे परवाना बिरहमन हो गया ॥

याद आया सूये दुश्मन उसका जाना गर्म-गर्म ।
पानी-पानी हो गया मैं मौजे दरिया देखकर ॥

इस प्रकारकी खारजी शायरीके सम्बन्धमें इसी अध्यायके प्रारम्भमें काफी लिखा जा चुका है । यहाँ इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि भावोंके लिए नहीं, अपितु शब्दोंकी मुनासबतके लिए शेर मौजूं किये गये हैं ।

हाँ, तो इस तरहकी अस्वाभाविक और बनावटी शायरीके जालसे बहुत शीघ्र 'गालिब' और 'मोमिन' बाहर निकल आये। 'मोमिन' गज़लके बहुत बड़े उस्ताद हुए हैं। इनके शिष्योमें—नवाब शेफ़्ता, नवाब अकबर, नवाब नसीम, मीर तसकीन, आही, आशुपता, सालिक, शहज़ादा कैसर अहगत, फ़ातमा बेगम साहबा, और यासने काफी ख्याति प्राप्त की।

मोमिन जिस जिगरसोजीसे गजल बनाते थे, उसे पढ़ते भी वैसे ही दर्दीले स्वरोमें थे कि कलेजा मुँहको आने लगता था। फ़ारसीके गद्य पद्यपर भी उर्दूकी तरह ही कुदरत रखते थे।

मोमिनकी वेश-भूषाका क़लमी चित्र मिर्जा फरहतअल्ला बेग इस प्रकार खीचते हैं—"हकीम आगाजानके छत्तेके सामने 'मोमिन'का बडा मकान है। अन्दर बहुत वसीअ़ सहन और उसके चारो तरफ इमारत है। दालानोंमे चॉदनीका फ़र्श है-। अन्दरके दालानमे बीचों-बीच कालीन बिछा हुआ है, उसपर गाव तकियेसे लगे हकीम (मोमिन) साहब बैठे है, सामने हकीम सुखानन्द 'रकम', मिर्जा रहीमुद्दीन 'हया' बाअदब दुजानू बैठे हुए है। मालूम होता है कोई दरबार हो रहा है। किसीको आँख उठाकर देखने और बिला जरूरत बोलनेका यारा नही। हकीम साहबकी उम्र तकरीबन चालीस सालकी है। कशीदा कामत, सुर्ख़ी सफेद रग था, जिसमें सब्जी झलकती थी। बड़ी-बड़ी रोशन आँखें, लम्बी-लम्बी पलके, खिची हुई भवे, लम्बी सुतवॉ नाक, पतले-पतले होट, उनपर पानका लाखा जमा हुआ, मिस्सी आलूदा दाँत, हलकी-हलकी मूँछें, खशखशी दाढी, भरे-भरे डण्ड, पतली कमर, चौड़ा सीना, लम्बी उँगलियाँ, सरपर घुँघराले लम्बे-लम्बे वाल काकुलोंकी शक्लमे कुछ तो पुश्तपर और कुछ कन्धोपर पड़े हुए। कानके करीब थोडेसे बालोंको मोड़कर जुल्फे बना लिया था। बदनपर शरवती रगका नीची चोलीका अँगरखा, लेकिन उसके नीचे कुरता न था और जिस्मका कुछ हिस्सा अँगरखेके पर्देसे दिखाई देता था। गलेमे स्याह रगका फीता, उसमे छोटा-सा सुनहरी तावीज,

काकरेजी दुपट्टेको वल देकर कमरमे लपेट लिया था, और उसके दोनो कोने सामने पड़े हुए थे। हाथमे पतला-सा ख़ारपश्त, पॉवमे सुर्ख़ गुलबदनका पायजामा, मुहरियोपर तग ऊपर जाकर किसी क़दर ढीला। कभी-कभी एक वरका पायजामा भी पहनते थे। पायजामा हमेशा रेशमी और कीमती होता था। चौड़ा सुर्ख़ नेफा, अँगरखेकी आस्तीन आगेसे कटी हुई, कभी लटकती रहती थी कभी पलटकर चढा लेते थे। सरपर गुलशनकी दो पलडी टोपी उसके किनारेपर बारीक लैस, टोपी इतनी वडी थी कि सरपर अच्छी तरह मढकर आ गई थी। अन्दरसे मॉग, माथेका कुछ हिस्सा और बाल साफ झलकते थे। गरज कि निहायत खुश पोशाक और जामाज़ेब आदमी थे।"[१]

मोमिन दरबारी शायर न थे ख़ालिस कलाकार थे। स्वतत्र स्वभाव और स्वाभिमान इनके विशेष गुण थे। किसी रईसकी प्रशसामे कसीदे वगैरह लिखना तो दरकिनार वे किसीको हिजोके उपयुक्त भी नही समझते थे। किसीसे सहायता लेना या याचना करना ख़िलाफेशान समझते थे। स्वय कहते हैं —

> **इन्साफके ख्वाहाँ हैं, नहीं तालिबे ज़र हम।**
> **तहसीने सुख़न फ़हम है 'मोमिन' सिला अपना॥**

यही वजह थी कि रामपुर, टौंक, भोपाल, जहॉगीराबाद, कपूरथला, आदि रियासतोके निमत्रण उन्होने स्वीकृत नही किये, और नौकरीके फन्देसे हमेशा मुक्त रहे। मुगलिया सल्तनतकी तरफसे इनके ख़ानदानको एक हजार रुपया पेन्शन मिलती थी, यह भी उसमेसे कुछ हिस्सा पाते थे। आर्थिक परिस्थिति सन्तोपजनक थी। अतएव 'मीर'की तरह इनके स्वाभिमान और आत्मसम्मानको निर्धनताकी कसौटीपर परखे जानेका

---

[१]दीवाने मोमिन, पृ० २८-२९

कभी अवसर न आया। जिस युगमे 'मोमिन' पैदा हुए, उस युगमें शायर खुशामद और भांडपनेसे किनाराकशी कर ही नही सकता था। चाहे वह घरमे कितना ही सम्पन्न क्यो न हो। इसलिए 'मोमिन'का इस कलंकसे बेदाग निकल जाना सराहनीय ही है। फिर भी भूखे पेट और फटे हाल रहकर जो 'मीर'की तरह अपनी गर्दनको सीधी रख सके उस स्वाभिमानकी कुछ बात ही और है। भाग्यसे मोमिनको इस दुष्कर परीक्षामे-से गुजरना न पडा। यह वह फिसलती जमीन थी कि 'गालिब' जैसे सिद्धहस्त और आनके पक्के शायर भी अपने कदम जमाकर न रख सके। जौककी तो खैर बात छोड़ो, वह तो दासताकी बेडीमे जकडे हुए होनेके कारण और स्वभावसे भी चापलूस और खुशामदी थे, परन्तु 'गालिब' जिनकी स्वाभिमानताके अनेक किस्से मशहूर है, और जो कहते थे—

बन्दगी में भी वह आजाद[1]-ओ-खुदबी[2] है कि हम।
उल्टे फिर आये दरे काबा[3] अगर वा[4] न हुआ॥

किन्तु उनकी फिजूलखर्ची, मयनोशी और मुफलिसी उनके स्वाभिमान और आनको स्थिर नही रहने देती थी। उन्होने हरचन्द अपनी इस निर्बलताको छुपाकर जाहिरामे गयूर और खुद्दार बननेकी कोशिश की, मगर उनकी यह कमजोरियाँ कही न कहीसे अपनी झलक दिखाती ही रही। वकौल अल्लामा नियाज फतहपुरी—"जौक तो मुफलिसो बेदस्तोपा बादशाहको लूटना चाहता था, गालिब यही हसरत अपने साथ ले गये कि वह क्यो न जौककी जगह हुए, और हरचन्द उन्होने अपनी खलिश छुपानेकी बहुत कोशिश की, लेकिन वे इसमे कामयाब न हो सके। गालिबका यह कहना :—

---

[1]स्वतत्र; [2]स्वाभिमानी,
[3]काबेका द्वार, [4]खुला हुआ।

उस्तादे शहसे हो मुझे परखाशका खयाल ।
यह ताब, यह मजाल, यह ताकत नहीं मुझे ॥

यह ऐसी तारीज (एतराज, छेड) अपने अन्दर पिन्हाँ (छुपाये) रखता है कि इससे ज्यादा इजहारे रश्क (ईर्ष्या-मनोभाव) की गदीद मिसाल शायद ही कोई और मिल सके।"[1] गालिबको जब तनख्वाह मिलनेमे देर हुई तो अपने फाकोतकका जिक्र करनेमे सकोच नही हुआ। बकौल किसीके—"गालिब उम्रभर न सिर्फ उमराये इसलाम बल्कि अगरेज हुक्कामकी चापलूसीको तुर्रये इम्तयाज (सन्मानकी कलगी) समझते रहे।"[2]

मोमिन न किसीके दरबारमे जाते थे, न किसीकी खुशामद या प्रशसामे कुछ लिखते थे। चापलूसी, खुशामद और भिक्षुक मनोवृत्तिको पाप[3] समझते थे। वे जन्मत स्वाभिमानी, स्वतत्र और स्वच्छन्द प्रकृति के मनुष्य थे। अत. न उन्होने दरबारी प्रतिष्ठाको कभी आदर दिया और न शायरीमे किसीका अनुकरण करना उचित समझा।[4] स्वय उन्होने अपना जुदागाना रग अख्तियार किया।

मोमिनके दीवानमे २१९ गजले है। गजल ही उनकी शायरीकी विशेषता है। ये न तसव्वुफको जगह देते है, न फलसफेके फेरमे पडते है। अपितु जो गजलका असली मौजू (वास्तविक ध्येय या अर्थ) इन्सानी

---

[1]इन्तकादियात, भाग १, पृ० २४।
[2]दीवाने मोमिन, भूमिका, पृ० ३४।

[3]तुलसी कर पै कर करो, कर-तर कर न करो।
जा दिन कर-तर कर करो, ता दिन मरन करो॥

[4]लीक-लीक गाड़ी चले, लीकहि चले कपूत।
लीक छोड़ तीनो चलें—शायर, सिंह, सपूत॥

मुहब्बत है, उसीमे तबा आजमाई करते हे। उनके कलाममे न तो हकीकी-इश्क' (ईश्वरीयप्रेम) हिलोरे मारता है और न नासहाना वाज़ (पण्डिताऊ उपदेश) सुनाई पड़ता है। उन्होने सिर्फ इन्सानी जज्बयेइश्कके हर पहलूको इस खूबीसे नज्म किया है कि जिसकी मिसाल नही। उन्होने सिर्फ़ इश्किया शायरीको अपना मौजू बनाया, इससे उनकी शायरीका क्षेत्र काफी सीमित हो गया है। फिर भी उनकी कलाकी चरमसीमा यही है कि जिस सीमित क्षेत्रमे गालिब जैसोका दम घुटता[2] था, उसी सॅकरी गलीमे मोमिनने तबियतकी बे-ब्बे जौलानियाँ दिखाई और कल्पनाकी ऐसी कुलाचे भरी है कि उनका समकालीन कोई भी शायर हमसरी न कर सका।

"मोमिनने इसी दुनियाका इश्क कहा, और इसमें जितने तजरुबाते तल्खोशीरी (कड़वे-मीठे) हो सकते है, वे सब उन्होने हासिल किये। वही हिजरोविसालकी मादी कैफ़ियात, वही शिकवे-शिकायत, वही रकीबका खटका, वही इल्तजाएँ, वही तदबीरे। अलगरज वे तमाम जज्बात जो अनासरे मुहब्बत (प्रेमतत्वो)से ताल्लुक रखते है, सब मोमिनके यहाँ पाये जाते है। यहाँतक कि हम मोमिनके माशूकका कैरेक्टर (चारित्र) उनके कलामसे मुतईन करे तो कह सकते है कि बाजारी जिन्स (वैश्या, छिनाल)से ज्यादा हैसियत नही रखता। लेकिन मोमिनका कमाले

---

[1]"मोमिन'! बहिश्तो इश्के हकीकी तुम्हे नसीब।
हमको तो रंज हो, जो गमे जाविदाँ न हो॥

[2]बकदरे शौक नहीं ज़र्फे तंगनाए गजल।
कुछ और चाहिए वुसअत मेरे बयाँके लिये॥

यानी जिन भावोको मै लाना चाहता हूँ, वे इस संकुचित क्षेत्रमे नहीं आ पाते। उसके लिए विशाल क्षेत्रकी आवश्यकता है।

शायरी देखिये कि अगर एक तरफ पस्तीसे इस कदर करीब है कि अदना-सी लगजिश भी उसे बाजारी शुअराकी सफमे मिला सकती है तो दूसरी तरफ बुलन्दीका यह आलम है कि गालिबकी इन्तहाई परवाज भी उसकी फिजातक नही पहुँचती। लेकिन यह सब उसी हद्दके अन्दर जिनको हद्देतगज्जुल कहा जाता है।"[1]

सदाचार और कला एक नही है। दोनो भिन्न-भिन्न अस्तित्व रखते है। सुघड़ चित्रकारका बनाया हुआ किसी युवतीका नग्न चित्र भी कलापूर्ण होता है, और फूहड़ चित्रकार राम-सीताका चित्र भी बिगाड देता है। कलापारखीके लिए न नग्न चित्र फेंक देने योग्य है, न राम-सीताका भौंडा चित्र, सदाचरणका प्रतीक होनेके कारण संग्रहणीय। उसे तो दोनो चित्रोको कलाकी कसौटीपर परखना है। सद् या असद् आचरणके झमेलेको नैतिक शास्त्रके पण्डित जाने। यही बात शेरकी है। आलोचकका काम केवल यह देखना है कि जो भाव शेरमे व्यक्त किया गया है, वह कलापूर्ण तरीकेसे और सलीकेसे मौजूँ हुआ है कि नहीं। जनतापर उस शेरका क्या प्रभाव पडता है, इससे आलोचकको कोई प्रयोजन नही। यदि शेरमे कला है और चमत्कार है तो वह प्रशसनीय है। 'मोमिन'की शायरीका मूल्य इसी दृष्टिकोणसे आँकना चाहिए। कला-कलाके लिए है। यह उनकी शायरीका लक्ष्य था। उन्होने अपने हृदयगत भावोको बेमलाल और बेहिचक कहा है। तसव्वुफ या फलसफेकी आड नही ली। सौन्दर्य और प्रेमका नग्न चित्र खीचा है। परन्तु इस चातुर्यके साथ कि न कही कलापर आँच आई न कही ओछी और कमीनी हरकते ही पैदा हुई। जहाँतक कलाका सम्बन्ध है, "मोमिन असलूबेअदा और कुदरतेबयानका बादशाह है। वह मामूलीसे मामूली बातका इज़हार करता है, तो भी इस लुत्फके साथ कि उसमे ज़िद्दत (नवीनता) पैदा हो जाती है। और

[1] इन्तकादयात, भाग १, पृ० २७

जब अनहोनीको होनी और होनीको अनहोनी साबित कर जाता है तो अजीब समा पैदा हो जाता है।"

'मोमिन' फार्सी तरकीबें इस्तेमाल करनेमें निपुण थे, और एक तरहसे 'गालिब'से भी बढ-चढ़कर थे। उन्होंने फ़ार्सी शब्दोका अपने शेरोमें इस कुशलतासे संमिश्रण किया है कि फारसीकी मिठास तो पैदा हो ही गई है; साथ ही कलाम भी क्लिष्ट नही होने पाया है।

अन्तमे नियाज फतहपुरीके शब्दोमे—"मोमिनने अपनी सारी रचनाओमे सिवाय हिकायते हुस्नोइश्कके और किसी चीजसे सरोकार नही रखा; और इस सिलसिलेमे जितने पहलू गुफ्तगूके निकल सकते है, या जिस कदर तल्खोशीरी तजरबात हासिल हो सकते है वह सबके सब किसी न किसी सूरतमे इनके कलाममे पाये जाते है।"[1] इनका प्रेम-पात्र भी जुरअत-ओ-इशाके माशूककी तरह बाज़ारी है। लेकिन इनका प्रेम बहुत बुलन्द है, और उसी ऊँचाईतक माशूकको भी ले जाना चाहते है। इनकी मोहब्बत अगर जरा बलन्द और हो जाती तो फिर आज यह जुस्तजू न होती कि उर्दू-शायरीमे दूसरा 'मीर' कौन हो सकता है।

मोमिनके कलामको समझने और उसका उचित मूल्य आँकनेके लिए पाठकोके लिए यह आवश्यक है कि वह तगज्जुल और मामलाबन्दीका अन्तर अच्छी तरह ध्यानमे रखे। मामलाबन्दीकी परिभाषा है—आशिक और माशूकके प्रेम-व्यवहारका कवितामे नग्न, किन्तु अश्लीलताके दोषसे मुक्त दिग्दर्शन। इसका प्रारंभ फारसी शायरोसे हुआ। भारतमें इसका श्रीगणेश उर्फी और नजीरीने किया। जहाँगीरका रगीन शासनकाल था, तबियते आशिकाना थी, देशमे चैनकी बंसी बजती थी। इसलिए यह रग क्यों न कुबूल होता। यूँ भी मामलाबन्दीकी बाते सर्वप्रिय होती है। जैसे आजकल फिल्मी गीतोके आगे कलापूर्ण गानोंका कोई स्थान

---

[1]इन्तकादियात, भाग १, पृ० ३२

नही। मामलाबन्दीके शायर जब जल्द ख्याति प्राप्त करने लगे, तो औरों-को भी इस तरफ अग्रसर होनेका प्रोत्साहन मिला। शाही दरबारके वातावरणसे इस प्रकारकी शायरीने और जोर पकड़ा। अवधमें शाही-रगरलियाँ बेहद बढी-चढी थी। इसलिए वहाँकी शायरीमे यह रंग और भी गहरा था। वहाँ मुसहफी जैसे शायरोकी कदर न थी। वहाँ हर चीज़ हँसती और थिरकती दरकार थी। रोने-बिसूरनेवालोका काम न था। वहाँ 'जुरअत' जैसे मामलाबन्द शायरोकी तूती बोलती थी।

'मोमिन' रिन्द और आशिक मिजाज थे, फिर भी उनका वातावरण मामलाबन्दीका न था। 'मीर' और 'दर्द'की कवितामे दिल्लीवाले रँगे हुए थे। इल्म और तसव्वुफका चर्चा रहता था। इसलिए पढ़े-लिखे हल्कोमे ख़ालिस मामलाबन्दीके लिए विशेष आदर न था। मामलाबन्द शायर दुशालेमे लपेटकर चोट कर सकता था। ताकि अपनी जबानका रग और मनोभाव भी व्यक्त हो जाय और वातावरणकी गम्भीरता और परिपाटी भी बनी रहे। यही सावधानी कविताको मामलाबन्दीसे उठा-कर तगज्जुल बना देती है। या यूँ कहिये कि अश्लीलता और तगज्जुलकी सीमापर मामलाबन्द शायर अपनी कलाबाजियाँ दिखाता है। मोमिन भी सीमापर खड़े हैं, परन्तु उनकी रचनाओका झुकाव अश्लीलताकी ओर नही है, तगज्जुलकी ओर है। इसलिए वह आलोचकोके दोषारोपणसे बच गये है। सीमासे थोडा इधर रहते तो वह 'मीर'से टक्कर लेते। और तनिक आगे बढ जाते तो जुरअतके रंगमे डूब जाते।

आग अश्के गरमको लगे जी क्या ही जल गया ।
आंसू जो उसने पूँछे शब और हाथ जल गया ॥

मेरी प्रेयसीके हाथ इतने कोमल है कि उसने रातको मेरे गरम आँसू पूँछे तो उसके हाथमे छाले पड गये । इस घटनासे मेरा हृदय दग्ध हो गया है। काश उसके हाथमे छाले पडनेकी अपेक्षा मेरे आँसुओंको ही आग लग जाती ।

फोड़ा था दिल न था, यह मुए पर खलल गया ।
जब ठेस साँसकी लगी, दम ही निकल गया ॥

जिसे हम जीवनभर दिल समझते रहे, मरनेपर मालूम हुआ कि वह दिल नही, फोडा था । दिल होता तो बडी-से-बड़ी आपत्तिमे भी स्थिर और दृढ रहता । यह तो सचमुच फोडा था जो साँसकी एक ठेस भी बर्दाश्त न कर सका । उसकी एक चोटमे ही दम निकल गया ।

क्या रोऊँ ? ख़ैरा चश्मिये बख़्ते सियाहको ।
वाँ शग़्ले सुरमा है अभी, याँ नील ढल गया ॥

अब प्रेयसीके चचल नेत्रोके कारण मै अपने काले दिनों (दुर्दिनो)का रोना क्या रोऊँ ? मेरी आँखे निस्तेज हो चली है, मृत्युके समीप पहुँच रहा हूँ और वह अभी आँखोमे सुर्मा लगा रही है । किसीकी आँखे बन्द हो रही है और किसीकी आँखोपर सान चढाई जा रही है ।

उस कूचेकी हवा थी कि मेरी ही आह थी ।
कोई तो दिलकी आग पै पंखा-सा झल गया ॥

न जाऊँगा कभी जन्नतको मै न जाऊँगा ।
अगर न होवेगा नक़्शा तुम्हारे घरका-सा ॥

करे न खाना खराबी तिरी नदामते जौर।
कि आबेशर्ममें है जोश चश्मेतर का-सा॥

अत्याचारोके प्रायश्चितस्वरूप प्रेयसीको रोता देखकर मोमिन भयभीत हो उठते है कि उसके आँसुओमे कही मेरा घर ही नष्ट न हो जाय। क्योकि प्रेयसीके शर्मीले आँसुओमे वही शक्ति है जो आशिक़के व्यथापीड़ित आँसुओमे होती है।

यह जोशेयास तो देखो कि अपने क़त्लके वक़्त।
दुआए वस्ल न की, वक़्त था असर का-सा॥

नियम है कि जब मनुष्य बध किया जाता है या फाँसीपर लटकाया जाता है, तब जीवनके अतिरिक्त उसे अभिलषित वस्तु माँगनेको कहा जाता है, और सम्भवत. उसकी अभिलाषा पूरी भी की जाती है। अतः मोमिन चाहते तो कत्लके वक्त विसालकी दुआ करते, और जो साध कभी पूरी न हुई, वह मरते-मरते पूरी कर लेते, परन्तु उनपर तो जोशेयास (निराशाओका प्रभाव) इतना अधिक था कि कुछ भी मॉगना उचित नही समझा।

यह नातवॉं हूँ कि हूँ और नज़र नहीं आता।
मेरा भी हाल हुआ, तेरी ही कमरका-सा॥

अल्लाहोअकबर! नातवानी (निर्बलता) इतनी बढ गई है कि मै भी प्रेयसीकी कमरकी तरह नजर नही आता।

खबर नहीं कि उसे क्या हुआ? पर इस दरपर—
निशानेपा नज़र आता है नामाबरका-सा॥

मेरे पत्र-वाहकका क्या हुआ, यह तो मालूम नही, परन्तु उसके पॉवके-से निशान प्रेयसीके दरपर अकित है। अतः वह वहॉतक गया तो जरूर, मगर लौटने दिया या मार डाला, यह नही कहा जा सकता।

मोमिन नामावरके कत्लका इलजाम भी माशूकपर थोपना चाहते हैं, परन्तु किस ख़ूबीसे !

महव मुझ-सा दमेनज्जारए जानाँ होगा।
आयना, आयना देखेगा तो हैराँ होगा ॥

जिस प्रकार मै उसके रूपको देखकर सुध-बुध भूल वैठा हूँ, महव हो गया हूँ, उसी प्रकार यदि आयना (दर्पण) भी उस प्रेयसीके प्रतिबिम्व (आयने)को देखेगा तो हैरान हो जायगा।

ख्वाहिशेमर्ग हो, इतना न सताना वर्ना,
दिलमें फिर तेरे सिवा और भी अरमाँ होगा ॥

मोमिन प्रेयसीसे कहते है कि हमें इतना अधिक न सता कि हम जीनेसे मरना अच्छा समझे। अभी तो हम केवल तुझीको चाहते है, फिर मृत्युको भी चाहने लगेगे, और तेरे सिवा हम किसी औरको चाहे, यह तेरे लिए उपयुक्त नही।

दीदयेमुन्तज़िर ! आता नहीं शायद तुझतक।
कि मेरे ख्वाबका भी कोई निगहबाँ होगा ॥

प्रतीक्षित नेत्रो ! तुम्हारे पास जो स्वप्न नही आता है, शायद इसका कारण ये है कि प्रेयसीके समान उसके स्वप्न भी दरबानकी चौकसीमे है।

क्योंकि उम्मीदे वफ़ासे हो तसल्ली दिलको।
फ़िक्र है यह कि वह वादेसे पशेमाँ होगा ॥

प्रेयसीकी स्वीकृतिसे तसल्ली होनेके बजाय मेरी परेशानियाँ और भी वढ गई है, क्योकि मै जानता हूँ कि इस स्वीकृतिसे उसे पछतावा होगा। अतः मैं नही चाहता कि मेरे कारण उसे किसी प्रकारकी चिन्ता या आकुलता हो।

दर्द है जॉके एवज हर रगोपैमें सारी।
चारागर! हम नही होनेके जो दरमॉ होगा ॥

चारागर (इलाज करनेवाले), तेरे इलाजमे दर्द तो जाता रहेगा, मगर हम नही रहेगे (यानी मर जाएँगे)। क्योकि यह दर्द तो जानकी एवजीमे हर रग व रेशेमे सारी (मौजूद) है। जान तो पहले ही निकल चुकी है। उसके एवज़ जो रहा-सहा दर्द बाकी है, तैने उसे भी मिटानेका उपाय किया तो हम भी मिट जाएँगे। न मर्ज रहेगा न मरीज़।

शूमिये बख़्त तो है चैन ले ऐ वहशतेदिल!
देख जिन्दॉ ही कोई दिनमें बयाबॉ होगा ॥

दिलकी वहशत (हृदय-उन्माद) जिन्दाँ (कारावास)से घबराकर बयाबानोमे चलनेको उभारती है। मोमिन उसे उतावली करनेसे रोकते हुए कहते है "अगर मेरी सब्जकदमी सलामत है तो यह कारावास ही उजडकर बयाबान हो जायगा।" बेशक, जहॉ-जहाँ पाँव पडे सन्तोके तहाँ-तहाँ चौड चपट हो जाय।

निसबते ऐशसे हूँ नजअ़में गिरयॉ, यानी—
है यह रोना कि दहन गोरका ख़न्दाँ होगा ॥

मोमिन कष्टोके इतने आदी हो गये है कि उन्हे तनिक भी खुशी पसन्द नही। मरनेके बाद जो गोर (समाधि) बनेगी, उसका प्रारम्भमें मुँह चौड़ा होगा। मोमिन उस खुले मुँहको हँसनेसे उपमा देते है और कहते है कि मै नज़अ़मे (मृत्युके वक्त) इसलिए गिरयॉ (रोता) हूँ कि मै नही चाहता कि मेरी गोर भी हँसे। जब जीवन रोते-बिलखते गुजरा तो मरनेपर मेरी कब्र भी क्यो हँसे?

बात करनेमें रक़ीबोंसे अभी टूट गया।
दिल भी शायद उसी बद अहदका पैमॉ होगा ॥

माशूकने अहद (वायदा) किया था कि वह रकीबोसे बात नहीं

करेगा, मगर उसने बाते की। इधर उसका अहद टूटा, उधर हमारा दिल भी टूट गया ! मालूम होता है हमारा दिल भी माशूकके अहदकी तरह बोदा और कमजोर था।

आँख न लगनेसे सब अहबाबने।
आँखके लग जानेका चर्चा किया ॥

मर गये उसके लबेजाँ बख्शपर।
हमने इलाज आप ही अपना किया ॥

बुझ गई इक आहमें शमयेहयात।
मुझको दमेसर्दने ठण्डा किया ॥

उन-से परीवशको न देखे कोई ?
मुझको मिरी शर्मने रुसवा किया ॥

आशिकने शर्मकी वजहसे माशूककी ओर नजर नही की। मगर इसी शर्मने सब भेद खोल दिया। लोग समझ गये कि कुछ न कुछ बात ज़रूर है। वर्ना ऐसा कौन है जो ऐसे परीवश (अप्सरा)को न देखे।

जौरका शिकवा न करूँ ज़ुल्म है।
राज मेरा सब्रने अफ़शाँ किया ॥

मैंने माशूकके जौरों (अत्याचारो)को इसलिए चुपचाप सहन कर लिया कि किसीको इस चाहतका पता न लगे। परन्तु उल्टा और भेद खुल गया, और लोग कहने लगे कि ताज्जुब है कि यह इतने जुल्मोसितमपर उफ भी नही करता, कुछ जरूर दालमे काला है।

रहमेफ़लक और मेरे हालपर ?
तूने करम ऐ सितमआरा ! किया ॥

मेरी दयनीय स्थितिपर अब फलक (आसमान) जैसे बेरहमको भी रहम आता है। अगर तैंने मेरी यह स्थिति न की होती तो आकाशकी

सहृदयता मुझे प्राप्त न होती। इसलिए ऐ सितमआरा (अत्याचारी माशूक) तेरा यह सितम भी तेरी महर्बानी ही है।

दावये तकलीफ़से जल्लादने।
रोजे जजा कत्ल फिर अपना किया॥

आशिकने कयामतमे माशूकपर दावा किया कि इसने हमको कत्ल करके तकलीफ पहुँचाई। यह दावा सुनते ही माशूकने फिर उसे कत्ल कर दिया ताकि उसे पिछले कष्टोंका अहसास (संज्ञा) न रहे।

मुए न इश्क़में जबतक वोह महर्वां न हुआ।
बलाएजाँ है वोह दिल जो वलाएजाँ न हुआ॥

इश्कमे जबतक हम न मरे, दोस्त महर्वान नही हुआ। वह दिल बलाएजान (जानके लिये मुसीबत) है जो वलाएजान (वलि-न्योछावर) नही होता। यानी वह जीवन किस कामका जो किसीपर निछावर नही होता! ऐसे जीवनको ढोते फिरना बला है।

दियतमें रोजे जज़ा ले रहेंगे कातिलको।
हमारा जानके जानेमें भी ज़ियाँ न हुआ॥

हमे माशूकने कत्ल कर दिया, इससे हमे कुछ नुकसान (ज़ियाँ) नही हुआ! रोज़ेजजा (कयामतके दिन) दियत (खूँबहा) में हम माशूकको ही माँग लेगे। यानी जो जीतेजी अपना न हुआ, उसे मरनेके बाद प्राप्त कर लेगे। मुसलमानी मुल्कोमे पहले यह रिवाज था कि कत्ल किये गये इन्सानके वारिसोको कातिलसे धन-सम्पत्ति आदि उनकी इच्छानुसार दिलवा दी जाती थी। क्योंकि कातिलको प्राणदण्ड देनेसे मकतूल (मारा गया प्राणी) तो जीवित हो नही सकता, न उसके वारिसोको ही कुछ लाभ पहुँचता है, और कातिलकी जान और जाती है। इसीलिए न्यायाधीश कातिलसे अधिक-से-अधिक क्षतिकी पूर्तिस्वरूप दिलवाते थे। इसी

प्रथाको दियत या ख़ूँबहा कहते हैं। मोमिन अपने क़ातिलको ही ख़ूँबहामें माँगकर अपना बना लेना चाहते हैं। काश अत्याचारियोंको अपना बनानेकी लालसा सबकी जागृत हो उठे।

दमेहिसाब रहा रोजेहश्र यह ही जिक्र।
हमारे इश्कका चर्चा कहाँ-कहाँ न हुआ॥
उमीदे वादए दीदारे हश्रपर 'मोमिन'।
तू बेमजा था कि हसरतकशे बुताँ न हुआ॥

मोमिन इस कदर बद मजाक था कि उम्मीदे वादये दीदारे हश्र (हश्रमें सूरत दिखानेके वायदेके भरोसे) पर सब्र किये बैठा रहा और सासारिक प्रेयसीकी अभिलाषा न की। नकदको छोडकर उधारकी ओर ताकता रहा।

कुछ अपने ही नसीबकी ख़ूबी थी, बादेमर्ग
हंगामये मुहब्बतेअग़ियार कम हुआ॥

मेरे जीवनमे माशूक अग़ियार (प्रतिद्वन्द्वी) को बहुत चाहता था। मैंने ईर्ष्यावश जान दे दी तो अब हंगामयेमुहब्बते अग़ियार (प्रतिद्वन्द्वीके प्रति प्रेमका अत्याधिक आवेग) कम हो गया है। यह अपना ही नसीब खोटा था। यदि जीतेजी यह प्रेम कम हुआ होता तो मै क्यो व्यर्थ जान देता।

माशूकसे भी हमने निभाई बराबरी।
वाँ लुत्फ़ कम हुआ तो यहाँ प्यार कम हुआ॥

यह बराबरका दावा मोमिनका अछूता ख़याल है। वर्ना उर्दू शायरीमे मोमिनके समयतक आशिककी क्या मजाल थी कि माशूकके साथ बराबरी करे। वर्तमान युगमे जिगरने इस मजमूनको कई तरहसे बान्धा है। हफ़ीजने बिल्कुल टक्करका शेर लिख दिया है, और जोश तथा इकबालने तो माशूक क्या ख़ुदासे भी बराबरीकी टक्कर ली है।

आये ग़ज़ालचश्म सदा मेरे दाममें।
सैयाद ही रहा मै, गिरफ़्तार कम हुआ॥

मोमिनका माशूक ही सिर्फ़ हरजाई न था, वरन् वे ख़ुद भी हरजाई थे। वे भौंरोकी तरह लोलुप थे। किसी एकके हो जाना उनके स्वभावमें न था। फ़र्माते है—मेरे दाम (जाल) मे सदा गजाले चश्म (मृगनयनी) फँसे। मैं स्वय सैयाद रहा, यानी हसीनोको फाँसता रहा, स्वयं गिरफ़्तार बहुत कम हुआ। मोमिनका माशूक भी बाजारी है और उनका इश्क भी बाज़ारी! गोया कि जैसी गन्दी देवी वैसे ऊत पुजारी

नाकामियोंकी काहिशे बेहदका क्या इलाज।
बोसा दिया तो ज़ौके लबेयार कम हुआ॥

जिनका रोना-झीकना स्वभाव है, उनकी कितनी ही अभिलाषाएँ पूरी हो जाएँ; सदैव रोते-बिसूरते रहेगे। मोमिन भी अपनी हदसे ज़्यादा नाकामयावियोकी वजहसे नीरस हो गये है। उन्हे अब किसी बातमें लुत्फ नही आता। यहाँ तक कि जिन्दगीभरकी साध पूरी करनेको माशूकने बोसा भी दिया तो भी उन्हे कुछ आनन्द न हुआ! उल्टा उनका ज़ौके लबेयार (माशूकके चुम्बनका चाव) कम हो गया। इस दुर्भाग्यका क्या इलाज ?

सब ताबः फ़ित्ना चौंक पड़े तेरे अहदमें।
इक मेरा बख़्त था कि वोह बेदार कम हुआ॥

मैं वहमसे मरता हूँ, वहाँ रौबसे उसके
क़ासिदकी जबाँसे नहीं पैग़ाम निकलता॥

कासिद माशूकके रौबसे मेरा सन्देश कहनेमे असमर्थ है, और मैं अपने वहमी स्वभावकी वजहसे शंकित हूँ कि कही वह स्वयं तो आशिक नही हो गया है। वर्ना दमबख़ुद खड़े रहनेकी वजह और क्या हो सकती

है ? किसीने ठीक ही कहा है वहमकी दवा लुकमानके पास भी नही ।

जब जानते तासीर कि दुश्मन भी वहाँसे ।
अपनी तरह ऐ गर्दिशे ऐय्याम ! निकलता ।।

हरएकसे उस बज्ममें शब पूछते थे नाम ।
था लुत्फ़ जो कोई मिरा हमनाम निकलता ।।

थी नौहाज़नी दिलके जनाजेपै जरूरी ।
शायद कि वोह घबराके सरेबाम निकलता ।।
काँटा-सा खटकता है कलेजेमें गमेहिज्र ।
यह खार नही दिलसे गुलअन्दाम ! निकलता ।।
हूरें नहीं मोमिनके नसीबोंमें, जो होतीं ।
बुतखाने ही से क्यों यह बदनाम निकलता ।।

वस्लकी शब शामसे मै सो गया ।
जागना हिजरॉका बला हो गया ।।
आइना जल्दीसे पटक दो कहीं ।
दिल ही नहीं, हाथसे देखो गया ।।
साथ न चलनेका बहाना तो देख ।
आके मिरी नाशपै वोह रो गया ।।

नासह ! यह गिला क्या है कि मै कुछ नहीं कहता ।
तू कब मेरी सुनता है ? कि मै कुछ नहीं कहता ।।
ऐ चारागरो क़ाबिले दरमाँ नहीं यह दर्द !
वरना मुझे सौदा है ? कि मै कुछ नहीं कहता ।।

रात किस-किस तरह कहा, न रहा ।
न रहा, पर वोह महलका न रहा ।।

गैर आकर क़रीबे ख़ाना रहा।
शौक अब तेरे आनेका न रहा॥

गैर (प्रतिद्वन्द्वी) मेरे मकानके नजदीक मकान लेकर रहने लगा है। अब तेरे आनेका चाव मुझे नही है क्योंकि मेरे यहाँ आयगा तो उसके यहाँ जानेका भी तुझे वहाना या अवसर मिल जायगा।

तेरे परदेने की यह परदादरी।
तेरे छुपते ही कुछ छुपा न रहा॥

तूने मुझसे परदा किया तो लोग ताड गये कि कुछ न कुछ वात ज़रूर है। वरना इससे इस क़दर हिजाव क्यो ?

मुद्दआ गैरसे कहा तो वोह।
समझे अब कुछ भी मुद्दआ न रहा॥

आदमीको जब ख़याल होता है कि अव अभिलाषा पूरी न होगी, तव वह मनकी वात दुश्मनसे भी कह देता है। आशिकने मकरसे दिलका मुद्दआ रकीबसे कह दिया, ताकि वह या माशूक यह समझ ले कि अब इसका कोई स्वार्थ या मतलब नही है और फरेवमे आजाये।

जज्बये दिलको न छातीसे लगाऊँ क्योंकर।
आप वोह मेरे गले दौड़के इकबार लगा॥

इसी जज्वये दिलकी बदौलत माशूक मेरे गले लगा था, अतः मै इसे सीनेसे लगाये हुए हूँ।

तू किसीका भी ख़रीदार नहीं, पर ज़ालिम !
सरफ़रोशोंका तेरे कूचेमें बाज़ार लगा॥

शबेगम फ़ुरकत हमें क्या-क्या मज़े दिखलाय था।
दम रुके था सीनेमें कम्बख़्त जी घबराय था॥

या तो दम देता था वोह या नामाबर बहकाय था।
थे ग़लत पैग़ाम सारे कौन यॉतक आय था॥
सुनके मेरी मर्ग बोले "मर गया अच्छा हुआ।
क्या बुरा लगता था जिस दम सामने आजाय था"॥

न कॉटोंपर कोई यूँ लोटे जूँ मै बिस्तरे गुलपर।
तेरे बिन करवटें शब ऐ सनमअन्दाम! लेता था॥
मै उसकी बज्मेमयमे जहर पी क्योंकर न मर जाता।
कि मेरे सामने उस लबके बोसे जाम लेता था॥
उस लबेनाजुकको बर्गेगुलसे देते है मिसाल।
होंट बर्गेलाल थे और नील दाग़े लाला था॥

अपने लबेनाजुक (कोमल ओठ) की मिसाल लालाफूलसे देते सुनकर इस कदर माशूकको बुरा मालूम हुआ कि मारे गुस्सेके उसके ओठ लाला फूलकी तरह लाल हो गये और, गुस्सेमें ओठ चबानेसे दागेलालाकी तरह नील पड़ गया। इस प्रकार उक्त उपमा सही चरितार्थ हो गई। माशू-क़का सौन्दर्य्य क्रोधमे बिगड़ता नही, और बढ़ता है।

मैंने तुमको दिल दिया, तुमने मुझे रुसवा किया।
मैंने तुमसे क्या किया और तुमने मुझसे क्या किया॥
सरसे शोले उठते है आँखोंसे दरिया जारी है।
शमअ़से यह किसने जिक्र उस महफ़िलआराका किया॥
रोइये क्या बख़्तेख़ुफ़्ताको कि आधीरातसे।
मै यहाँ रोया किया और वह वहाँ सोया किया॥
आँख आशिक़की कोई फिरती है ऐ वादाख़िलाफ़!
देखले मै मरते-मरते सूएदर देखा किया॥
चारागर काबेमें, उसके आस्ताँसे ले गये।
एक भी मेरी न मानी लाख सर पटका किया॥

नाकामियोमें तुमने जो तशबीह मुझसे दी।
शीरींको दर्देतलखिये फरहाद आगया ।।
हम चारागरको यूँही पिन्हाएँगे बेड़ियाँ।
क़ाबूमें अपने गर वोह परीजाद आ गया ।।

हम चारागरको इसलिए बेड़ियाँ पहनाएँगे कि वह ख़ुद दीवाना है, वरना वह हम आशिकोका इलाज क्यो करता ? दूसरा मतलब यह है कि जो चारागर हमे दीवाना समझता है, हम उसे अपने परीज़ाद माशूक़ (अप्सरा सी प्रेयसी) को दिखा देगे तो वह ख़ुद-ब-ख़ुद दीवाना हो जायगा।

जब हो चुका यक़ीं कि नही ताक़ते विसाल।
दममें हमारे वह सितमईजाद आ गया ।।
ज़िक्रे शराबोहूर कलामेख़ुदामें देख।
मोमिन मै क्या कहूँ, मुझे क्या याद आ गया ।।

वादये वसलतसे हो दिल शाद क्या ?
तुमसे दुश्मनकी मुबारिकबाद क्या ?
मै असीर उसका जो है अपना असीर।
हम न समझे सैद क्या सैयाद क्या ?

जो मेरी मुहब्बतमे कैद है मै उसी कैदीका कैदी हूँ। इसके अतिरिक्त मै कुछ नही जानता कि कौन सैयाद है और कौन सैद !

नशये उल्फ़तमें भूले यारको।
सच है, ऐसी बेख़ुदीमें याद क्या ।।
जब मुझे रंजेदिलेआज़ारी न हो।
बेवफ़ा ! फिर हासिले बेदाद क्या ?

यह उज़्रे इम्तहाने जज़्बे दिल कैसा निकल आया ?
मैं इलज़ाम उसको देता था क़ुसूर अपना निकल आया ।।
किया ज़ंजीर मुझको चारागरने किन दिनोंमें जब ।
उदूकी क़ैदसे वोह शोख़े बेपरवा निकल आया ।।
हमारे ख़ूँबहाका ग़ैरसे दावा है क़ातिलको ।
यह बादे इनफ़साल अब और ही झगड़ा निकल आया ।।

माशूकने आशिकको कत्ल किया, यहाँ तक तो उचित था किन्तु उसका ग़ैरसे यह कहना कि तेरे उभारनेसे ही इसका कत्ल किया गया, इसलिए इसका ख़ूँबहा (मृत्युदण्डके एवजमे मनमाँगी वस्तु) दे, ठीक नहीं; क्योकि आशिक नही चाहता कि माशूक गैरसे किसी तरहका भी व्यवहार रखे ।

आशिक़ हुए है आप कहीं, गो उसीपै हों ।
शब हालेग़ैर मुझसे ज़्यादा ख़राब था ।।
बेपरदा ग़ैरसे न हुआ होगा शब, कि सुबह
आँखोंमे शर्म थी न नजरमें हिजाब था ।।
क्या जी लगा है तज़करए यारमें, अबस
नासेहसे मुझको आजतलक इज्तनाब था ।।

किसपै मरते हो ? आप पूछते है ।
मुझे फ़िक्रे जवाबने मारा ।।
यूँ कभी नौजवाँ न मरता मैं ।
तेरे अहदे शबाबने मारा ।।

देखलो शौक़े नातमाम मिरा ।
ग़ैर ले जाय है पयाम मिरा ।।

तूने रुसवा किया मुझे, अबतक
कोई भी जानता था नाम मिरा ?

जवाबे ख़ूने नाहक़ मेरा ऐसा क्या दिया तूने।
कि ज़ालिम! रह गये मुँह लेके सब अहबाब अपना-सा ॥

बेख़ुद थे, ग़श थे, महव थे, दुनियाका ग़म न था।
जीना विसालमें भी तो मरनेसे कम न था ॥

दरबाँको आने देनेपै मेरे, न कीजे क़त्ल।
वरना कहेंगे सब कि यह कूचा हरम न था ॥

माशूकके कूचेको हरम (कावे) की उपमा दी है, और कावेमें हर कोई जा सकता है, और वहाँ किसीको कत्ल नही किया जा सकता।

सुबहसे तारीफ है सन्नोसक्रूने गैरकी।
किसने शव मुझको तड़पते पेशेदर दिखला दिया ?
० मौतके सदके कि वोह बेपरदा आये लाशपर।
जो न देखा था तमाशा उम्रभर, दिखला दिया ॥
गो हसदसे हो पर अब भी है वही नासेहकी बात।
नाहक उस जानेजहाँ को इक नजर दिखला दिया ॥

मोमिनने नासेहको कायल करनेकी गरजसे अपने माशूककी सूरत दिखा दी। मगर यह गजब हुआ कि वह उसको दिल दे बैठा, और मोमिन-को तर्केइश्ककी नसीहत करने लगा। पहले हमदर्दीकी नीयत से नसीहत करता था, अब स्वार्थ और ईर्ष्यावश नसीहत करता है।

० नामउल्फ़तका न लूँगा जबतलक है दममें दम।
तूने चाहतका मजा ऐ फ़ित्नागर! दिखला दिया ॥

सख़्त कम्बख़्ती हुई यह भी नसीबोंका लिखा।
ग़ैरको ख़त नामाबरने बेख़बर दिखला दिया॥

दुश्नामेयार तबए हज़ींपर गिराँ नहीं।
ऐ हमनफ़स ! नज़ाकते आवाज़ देखना॥

माशूककी गालियाँ (दुश्मनामेयार) हमारे दिल (तबएहज़ी) पर कुछ भी असर नही करती। हम तो उसकी आवाजकी नजाकनको देख रहे है। पारखी अवगुणोमे भी गुण परख लेते है।

जूँ निकहतेगुल जुम्बिश है जीका निकल जाना।
ऐ बादेसबा मेरी करवट तो बदल जाना॥

निर्बलता इतनी बढ़ गई है कि तनिक भी हिलने (जुम्बिश) से प्राण निकलने जैसा कष्ट होता है। जैसे हवाकी हरकतसे बूएगुल (निकहते गुल) निकल जाती है, उसी तरह आशिकके प्राण निकल जाते है। इसलिए मुझमे तो करवट बदलनेका साहस नही, ऐ बादेसवा ! (प्रात. कालीन पवन) तूही मेरी करवट बदलनेका प्रयत्न कर।

किस दिन थी उसके दिलमे मुहब्बत जो अब नहीं।
सच है कि तू उदूसे खफा बेसबब हुआ॥

आशिकने माशूकसे कहा कि तुम बेसबब उदूपर ख़फा हुए। तुम इस वजहसे खफा हुए कि उसके दिलमे तुम्हारे लिए मुहब्बत नही है, यह तो कोई नई बात नही। मुहब्बत तो उसे कभी थी ही नही, फिर आज ऐसी नई बात क्या हुई ?

सीनेपै हाथ धरते ही कुछ दम पै बन गई।
लो जानका अज़ाब हुआ दिलको थामना॥

ले उड़ी लाशा हवा लागिर ज़बस तन हो गया।
ज़र्रए रेगेबयाबाँ अपना मदफ़न हो गया॥

हम इतने निर्बल हो गये कि हवाके झोकेसे उड़ गये। हमारे शरीरका अणु-अणु वयावानमे विखर गया। जिसे रेगे वयावान (चमकती रेत) समझा जाता है, वे सब हमारी कब्रे है क्योकि वे हमारे ही अणु है।

बिन तेरे ऐ शोलारू! आतिशकदा तन हो गया।
शमअ़कदपर मेरे परवाना बिरहमन हो गया॥

तेरे वियोगमे मेरा बदन आतिश कदा (आगकी भट्टी) हो गया। उसको जलता देख विरहमन भी परवानेकी तरह मेरे प्रज्वलित शरीर (शमअ़कद) पर न्यौछावर हो गया। मोमिनका खयाल था कि ब्राह्मण अग्निकी पूजा करते है। इसी भावको वान्धनेके लिये यह सब बखेड़ा किया गया! यह गजल लखनवी रगमे है जो मोमिनने शुरू-शुरूमे अख़्तियार किया था।

औरकी चाहतका तूने जब किया मुझपर ख़याल।
तब मुझे भी तुझसे वहमे रश्ते दुश्मन हो गया॥

राजेनिहाँ जबाने अग़यार तक न पहुँचा।
क्या एक भी हमारा खत यारतक न पहुँचा॥

आशिकका पत्र अगर माशूकके पास पहुँचता तो वह ज़रूर प्रतिद्वन्द्वी (अगियार) से ज़िक्र करता। मेरा प्रेम (राजेनिहां) उसपर प्रकट नही है, इसीसे मालूम होता है कि मेरे पत्र माशूक तक न पहुँचकर कही बीचमे ही रह गये।

जज़्बेदिल उसे खींचके लाये तो कहाँ लाये?
जो ग़ैरका घर है वही मसकन है हमारा॥

रो दिया जो उसने मेरी लागरीको देखकर।
क़तरयेअश्केनदामत मुझको दरिया हो गया॥

मैं तो दीवाना था, उसकी अक़्लको क्या हो गया ?
क़ैस कहता है मुझे, नासेहको सौदा हो गया ॥

होता है आहे सुबहसे दाग़ और शोलाज़न ।
कैसा चराग़ था यह कभी गुल न हो सका ॥

मय न उतरी गलेसे जो उस बिन ।
मुझको यारोंने पारसा जाना ॥
शिकवा करता है बेनियाज़ीका
तूने 'मोमिन' बुतोंको क्या जाना ॥

इस वुसअ़ते कलामसे जी तंग आ गया ।
नासेह ! तू मेरी जान न ले, दिल गया, गया ॥

कुछ आँख बन्द होते ही आँखें-सी खुल गईं ।
जी इक बलाएजान था, अच्छा हुआ गया ॥
आहेसहर हमारी फ़लकसे फिरी न हो ।
कैसी हवा चली यह कि जी सनसना गया ॥
आती नहीं बलाए शबेग़म निगाहमें ।
किस महरवशका जलवा नज़रमें समा गया ॥
मुझ खानमाँ ख़राबका लिक्खा कि जानकर ।
वोह नामा ग़ैरका मेरे घरमें गिरा गया ॥

वोह हँसे सुनके नाला बुलबुलका ।
मुझे रोना है ख़न्दये गुलका ॥

माशूक इस कदर बेदर्द है कि नालये बुलबुल सुनकर भी हँसता है । किसीको रोते देखकर भी मुस्कराता है, और मैं इस कदर सहृदय हूँ कि फूलोके मुसकरानेपर भी रो उठता हूँ, क्योकि मैं उनके मुस्करानेका परिणाम जानता हूँ कि वे किसी बेरहम हाथोसे तोड़ लिये जाएँगे, या मुर्झा-

कर गिर पडेगे। दूसरा भाव यह भी है कि वोह (फूल) बुलबुलका नाला सुनकर हँसे तो मुझे उनकी इस ढीट हँसीपर रोना आ गया।

लाश किसकी है, यह उदूसे न पूछ।
मैं हूँ कुश्ता[1] तेरे तजाहुल[2] का॥

चिलमनके बदले मुझको ज़मींपर गिरा दिया।
उस शोख़ बेहिजाबने परदा उठा दिया॥

उस शोखने परदा क्या उठाया, मुझे बेहोश कर दिया! चिलमन गिरानेके बदले मुझे गिरा दिया।

फ़र्माते हैं "विसाल है अंजामकारे इश्क"।
क्या नासहे शफ़ीकने मुजदा सुना दिया॥

नासेहके कथनका तो तात्पर्य यह था कि इश्कका अंजाम विसालेकजा (मृत्यु-आलिंगन) है, परन्तु कज़ा कहाँ नही है, विसालमे ही उसका भाव निहित है। मोमिन उसके विसाल शब्दको यारका विसाल समझ कर खुश होते है, और कहते है—नासेह जैसे मनहूसने आज यह कैसा हर्ष समाचार (मुजदा) सुनाया। उससे तो ऐसी खुशखबरीकी कभी आशा न थी।

मिट्टी न दी मज़ारतलक आके उसपै भी।
कहते है लोग खाकमें उसने मिला दिया॥
हमदम दिखा अब उसको किसी ढब कि रहम आये।
नासेहको मेरे हालेज़बूँने रुला दिया॥
वेसैरे दश्तोबादया लगने लगा है जी।
और उस ख़राब घरमें कि वीराँ नहीं रहा॥

---

[1]मिटा हुआ, [2]अनजाने अत्याचारोका।

असर उसको ज़रा नहीं होता।
रंज राहत फ़िज़ा नहीं होता॥

यदि माशूक आशिकके रंजसे प्रभावित होकर उसपर कृपा करने लगे तो उसके सारे रंजोगम राहत (सुख-चैन) मे बदल जाएँ, परन्तु ऐसे भाग्य कहाँ ?

तुम हमारे किसी तरह न हुए।
वर्ना दुनियामें क्या नहीं होता॥
हालेदिल यारको लिखूँ क्योंकर ?
हाथ दिलसे जुदा नहीं होता॥

इस हुस्नपै खिलवतमें जो हाल किया कम था।
क्या जानिये क्या करता गर तू मेरी जा होता॥
एक-एक अदा सौ-सौ देती है जवाब उसके।
क्योंकर लबे क़ासिदसे पैग़ाम अदा होता॥

पड़ा ही मरना बस अब तो हमको जो उसने खत पढ़के नामाबरसे—
कहा कि "गर सच यह हाल होता तो दफ़्तर इतना रकम न होता" ॥

जो आप दरसे उठा न देते कहीं न करता मैं जिबहसाई।
अगर्चे यह सरनविश्तमें था, तुम्हारे सरकी क़सम न होता॥
विसालको हम तरस रहे थे, जो अब हुआ तो मज़ा न पाया।
उदूके मरनेकी जब खुशी थी, कि उसको रंजोअलम न होता॥

ग़ैर निकला तेरे घरसे गई इस वहममें जान।
गुल हुए चोरके उस कूचेमें गर आख़िरे शब॥
दी तसल्ली भी तो ऐसी कि तसल्ली न हुई।
ख़्वाबमें तो मेरे आये वोह मगर आख़िरे शब॥

वहशतसे मेरी सारे अहब्बा[1] चले गये।
आना है गर तो आओ कि खाली मकाँ है अब॥
कह दी रकीबने तेरी बेइल्तफ़ातियाँ।
नासेह हमारे हालपै कुछ महर्बां है अब॥

तारे आँखें झपक रहे थे।
था बामपै कौन जलवागर रात॥

किस वास्ते ऐ शमा! ज़बाँ काटते है लोग।
क्या तूने भी की थी शबेहिजराँकी शिकायत॥

रोया करेंगे आप भी पहरो इसी तरह।
अटका कहीं जो आपका दिल भी मिरी तरह॥
ना ताब हिज्रमें है न आराम वस्लमे।
कम्बख्त दिलको चैन नहीं है किसी तरह॥
लगती है गालियाँ भी तेरे मुँहसे क्या भली।
क़ुरबान तेरे, फिर मुझे कहले इसी तरह॥

ऐ सोजिशेसीना मुझे वह सीना दिखा दे।
खोले तेरी गरमीसे वोह घबराके मगर बन्द॥

उसके कूचेसे चला आये है उड़ता कागज़।
फाड़कर फैंक दिया क्या मेरे ख़तका काग़ज॥

न क्योंकर बस मुआ जाऊँ कि याद आता है रह-रहकर।
वोह तेरा मुसकराना कुछ मुझे होंटोमे कह-कहकर॥

---

[1] अहबाब, मित्र।

दुश्मनी देखो कि ताउलफ़त न आजाये कहीं ।
लेलिया मुँहपर दुपट्टा हाल मेरा देखकर ॥

मोमिन ! खुदाके वास्ते ऐसा मकाँ न छोड़ ।
दोज़ख़में डाल खुल्दको, ऐसा मकाँ न छोड़ ॥

याँ अपना उनकी चाहमें मरना यकीं हुआ ।
वाँ और ही के चाहनेका है गुमाँ हनूज़ ॥

ऐ जज्बेदिल वोह शोख़ सितमगर तो इक तरफ़ ।
पैग़ाम लेके भी कोई आया नहीं हनूज ॥

नासेह रकीबसे है बदआमोजतर कहीं ।
पर मैंने तेरा हाल सुनाया नहीं हनूज़ ॥

नासेह कही ज्यादा रकीबसे बदआमोज (बुरी सलाह देनेवाला) है । ख़ैर गुज़री कि मैंने उसको तेरा हाल नही सुनाया, वर्ना शायद वह भी तुझे चाहने लगता । नासेहको यारका हाल सुनानेकी वजह यह हो सकती थी कि वोह मेरी आसक्तिका कारण समझकर नसीहत करनेसे बाज आये । मगर भूखी कुतियाको जलेबियोकी पहरेदार बनाना उचित नही समझा ।

डूबा जो कोई आह, किनारेपै आ गया ।
तुग़याने बहरे इश्क़ है साहिलके आस-पास ॥

जो दरियाए इश्कको तैरकर किनारे पै आगया, समझ लो कि वही डूब गया । यानी इस दरियामे किनारेपर आना ही मृत्यु है । इसलिए कि और दरियाओके बरखिलाफ यहाँ तूफानका तमाम जोर किनारे (साहिल) के आस-पास रहता है ।

ऐ कैस ! तेरे नालेकी ग़ैरतको क्या हुआ ?
लैलीने जंग बाँधे है महमिलके आस-पास ।।

कैस (मजनूँ) के नालोमे शक्ति होती तो लैलीको जंग (घंटियाँ) वान्धनेकी क्यों आवश्यकता पड़ती ?

खा गया जी, ग़मेनिहाँ अफ़सोस ।
घुल गई ग़मके मारे जाँ अफ़सोस ।।
गुलेदागेजुनूं खिले भी न थे ।
आ गई बाग़में ख़िज़ाँ अफ़सोस ।।

० मुझसे मिल, वर्ना रक़ीबोसे मै सब कह दूँगा ।
दुश्मनी अबकी तेरी और वह पहला इख़लास ।।

मोमिनने भी क्या कमीना धमकी दी है ! तौबा !!

इफ़लास[1]से खाया किये ग़म सब्ज़ख़तोंका[2] ।
अफसोस कहीं जहर भी हमको न मिला क़र्ज़ ।।

मोमिनके यहां बाजारू औरतो और छोकरो दोनोंका इश्क पाया जाता है । जो उन दिनो एक रिवाज था ।

करते हो मुझसे राज़की बातें तुम इस तरह ।
गोया कि क़ौले महरमें[3] इसरार है ग़लत ।।

हाँ तू क्योंकर न करे तर्के बुताँ ऐ वाइज़ !
ऐसी हूरें तेरी किस्मतमें कहाँ ऐ वाइज़ !

---

[1]निर्धनतासे;
[2]कमसिन छोकरो का;
[3]भेदियेकी बात ।

आता है बेकसों पै तो जल्लादको भी रहम।
रोती है शमअ़ आप सरे कुश्तगाने शमअ़[1]॥

वोह सोख़्ता जिगर हूँ कि पैमानओ सबू।
बनते नहीं है ख़ाकसे मेरी, मगर चिराग़॥
उस महरवशके जलवेके क़ुर्बान क्यों न हूँ।
परवानेको भी रात न आया नज़र चिराग़॥

क्या दुख न देखे इश्क़मे क्या-क्या न पाये दाग़।
ज़ख़्मों पै ज़ख्म झेले हैं दाग़ों पै खाये दाग॥

मजलिसमे ता न देख सकूं यारकी तरफ़।
देखे है मुझको देखके अग़यारकी तरफ़॥

नहीं चाह मेरी अगर उसे, नहीं राह दिलमें तो किस लिए
मुझे रोते देख वोह रो दिया, मेरा हाल सुनके हुआ क़लक़॥

कहर है, मौत है, क़ज़ा है, इश्क़।
सच तो यह है, बुरी बला है इश्क़॥
आफ़ते जाँ है कोई परदा नशीं।
कि मेरे दिलमें आ छुपा है इश्क़॥
बुलहवस[2] और लाफ़ेजाँ बाजी[3]।
खेल कैसा समझ लिया है इश्क़॥
वस्लमें अहतमालेशादीये मर्ग
चारागर! दर्दे बे दवा है इश्क़॥

विरहके कष्ट सहते-सहते भी जान चली जाती है और विसाल

---

[1]शमापर न्योछावर होनेवाले परवानोपर;
[2]विषयासक्त; [3]प्राण देनेकी शेख़ी।

हुआ तो खुशीके मारे प्राण निकल जाते है। अत. यह इश्कका वोह रोग है जिसकी कोई दवा नही।

निचोड़ेगे हम अपना दामनेतर।
जहन्नुममें है ऐ वाइज़ अगर आग॥
जले क्या-क्या शजर तुरबत पै मेरी।
दबी थी लाशके बदले मगर आग॥

सोज़िशे परवाना दिखलाते हो क्या, मै क्या करूँ?
देख जलते शमए़महफिलको जला जाता है दिल।

तुम मुझे परवानेका जलना दिखाकर यह जताते हो कि आशिक यूँ जला करते है। मगर मेरा दिल शमअ़को देखकर खुद-ब-खुद जल रहा है कि इसको अपने आशिकोसे किस कदर दिलसोज़ी है कि उनके गममे खुद भी जल रही है, और तुम हो कि हम मिट रहे है, मगर तुम्हारी बलासे।

८या इलाही! मुझको किस परदानशींका ग़म लगा।
सीनेमें अन्दर ही अन्दर कुछ घुला जाता है दिल॥
हैरतेदीदार बस आईना रखदे हाथसे।
अपनी हालत देखकर ज़ालिम कटा जाता है दिल॥

०शामसे तासुबह मुज़तर सुबहसे ताशाम हम।
एक आलममें है क्यों ए गर्दिशे ऐय्याम हम॥
तू खबर ला क्या कहा? क़ासिदसे छुपते फिरते है।
हमदम उस परदानशींको भेजकर पैग़ाम हम॥
इस सियहबख्ती में रक्खें तुझसे उम्मीदे वफ़ा।
ऐसे सोदाई नहीं ऐ शोख़ लैला फ़ाम हम॥

नातवाँ थे पर न छोड़ा मिसले ख़ार।
खुद उलझकर रह गये दामनमें हम॥

जोशे वहशतने उठाया लाशको ।
अपने पाओंसे गये मदफ़नको हम ॥

साहबने इस गुलामको आज़ाद कर दिया ।
लो बन्दगी कि छूट गये बन्दगीसे हम ॥
इन नातवानियों पै भी थे खारे राहे गैर ।
क्योंकर निकाले जाते न उसकी गलीसे हम ।
है छेड़ इख्तलात भी गैरोंके सामने ।
हँसनेके बदले रोएँ न क्यों गुदगुदीसे हम ॥

जो पहले दिन ही से दिलका कहा न करते हम ।
तो अब यह लोगोंकी बातें सुना न करते हम ॥
अगर न आँख तगाफ़ुल शुआरसे लगती ।
तो बैठे-बैठे यह यूँ चौक उठा न करते हम ॥
अगर न हँसना हँसाना किसीका भा जाता ।
तो बात-बातपै यूँ रो दिया न करते हम ॥

अब औरसे लौ लगायेंगे हम ।
जूँ शमअ तुझे जलाएँगे हम ॥

बसकि परदानशीपै मरते है ।
मौतसे आये है हिजाब हमे ॥

दावये हुस्ने जहाँसोज इस कदर ?
फिर कहोगे तुम मै हरजाई नहीं ॥

माशूकने दावा किया है कि मेरे हुस्नने एक जहानमे आग लगा दी है । आशिक जवाब देता है कि इससे तुम्हारा हरजाई होना साबित होता है; क्योकि हरजाई न होते तो हर जगह आग लगी हुई न होती ।

गर नहीं मिलते, मिलूँगा औरसे।
क्यों? मुझे क्या पासे रुसवाई नहीं?

देखते ही गुल, नज़रमें तेरा हँसना फिर गया।
आतिशेगुलने लगाई आग ऐ गुलरू! हमें॥
क्या असर था अश्के दुश्मनमें जो कूएयारसे।
मारे ग़ैरतके बहाकर ले चले आँसू हमें॥

हो गई घरसें ख़बर, है मनअ़ वाँ जाना हमें।
वोह भी रुसवा हो ख़ुदा, जिसने किया रुसवा हमें॥
हर सितम सैयादका क्या इल्तफ़ात आमेज़ था।
बन्द करनेको क़फ़समें दामसे छोड़ा हमें॥

मुझपै बादे इम्तहाँ भी जौर कम क्योंकर करें?
वोह सताएँ ग़ैरको ऐसा सितम क्योंकर करें?

क्या रहम खाके ग़ैरने दी थी दुआएवस्ल।
ज़ालिम! कहाँ वगर्ना असर मेरी आहमें॥
जाने दे चारागर! शबेहिजरॉमें मत बुला।
वोह क्यों शरीक हो मेरे हालेतबाहमें॥
है दोस्ती तो जानिबेदुश्मन न देखना।
जादू भरा हुआ है तुम्हारी निगाहमें॥
मोमिनको सच है दौलते दुनिया ओ दी नसीब।
शब बुतकदेमें गुज़रे है दिन खानक़ाहमें॥

ता न पड़े ख़लल कहीं आपके ख्वाबेनाज़में।
हम नहीं चाहते कमी अपनी शबेदराज़में॥

सूरत दिखाइये जो कभी जाके ख्वाबमें।
बेदीद आँख खोल दे झुँझलाके ख्वाबमें॥

शब वोह जो सो रहे मेरे पास आके ख़्वाबमें ।
जागे थे बख़्तेख़ुफ़्ता तमन्नाके ख़्वाबमें ॥

क्या कीजिये कि ताक़ते नज़्ज़ारा ही नहीं ।
जितने वे बेहिजाब हैं हम शर्मसार हैं ॥

मैं अपनी चश्मेशौक़को इलज़ाम ख़ाक दूँ ।
तेरी निगाहेशर्मसे क्या कुछ अयाँ नहीं ॥
लगजाये शायद आँख कोई दम शबेफ़िराक ।
नासेह ही को ले आओ, गर अफ़साना ख़्वाँ नहीं ॥

कहते हैं तुमको होश नहीं इज़्तराबमें ।
सारे गिले तमाम हुए इक जवाबमें ॥
हम कुछ तो बद थे जब न किया यारने पसन्द ।
ऐ हसरत ! इस क़दर ग़लती इन्तख़्वाबमें ॥

ख़ार बिस्तरपै शबेहिज्र बिछाऊँ क्योंकर ।
दिलमें तो है वह गुलअन्दाम अगर बरमें नहीं ॥

कौन-से सोख़्ता अख़्तरका ख़याल आता है ।
सुरमा जब देते हो तुम अश्क बहाते क्यों हो ?
जिनसे मंज़ूरेवफ़ा है हो जफ़ा भी उनपर ।
मुझसे कुछ काम नहीं है तो सताते क्यों हो ॥
दम क़दमसे है लगा, जान निकल जायेगी ।
देखो सीनेसे मेरे पाँव उठाते क्यों हो ?
किसीके अबरूयेख़ुशख़मका कुश्ता हूँ ताज्जुब क्या ।
जो मेरी ख़ाकसे तामीरे महराबे इबादत हो ॥

कूदकर घरमें तो पहुँचा मैं तेरे, पर क्या करूँ ?
दम निकल जाता था, खटकेसे बराबर रातको ॥

याद दिलवाई तपिशने तेरी शोख़ी वस्लकी।
मर गये हम देखकर चीं हाये बिस्तर रातको॥

वोह जो हममे तुममें करार था, तुम्हें याद हो कि न याद हो।
वही वादा यानी निबाहका, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
वोह जो लुत्फ़ मुझपै थे पेश्तर वोह करम कि था मेरे हालपर।
मुझे सब है याद ज़रा-ज़रा, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
वोह नये गिले, वोह शिकायतें, वोह मज़े-मज़ेकी हिकायतें।
वोह हरेक बातपै रूठना, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
कभी बैठे सबमें जो रूबरू तो इशारतों ही से गुफ़्तगू।
वोह बयान शौक़का बरमला, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
कोई बात ऐसी अगर हुई कि तुम्हारे जीको बुरी लगी।
तो बयाँसे पहले ही भूलना, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
कभी हममें तुममें भी चाह थी, कभी हमसे तुमसे भी राह थी।
कभी हम भी तुम भी थे आश्ना, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
सुनो ज़िक्र है कई साल का कि किया एक आपने वादा था।
सो निबाहनेका तो ज़िक्र क्या, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥
वोह बिगड़ना वस्लकी रातका वोह न मानना किसी बातका।
वोह नहीं-नहीं की हर आँ अदा, तुम्हें याद हो कि न याद हो॥

है कुछ तो बात 'मोमिन' जो छा गई ख़मोशी।
किस बुतको दे दिया दिल क्यो बुत-से बन गये हो?

ऐ नासहो! आ ही गया, वोह फ़ित्नयेऐय्याम लो।
हमको तो कहते थे भला, अब तुम तो दिलको थाम लो॥

गो आपने जवाब बुरा ही दिया, वले —
मुझसे बयाँ न कीजे उदूके पयामको॥

हम समझते हैं आज़मानेको ।
उज़्र कुछ चाहिए सतानेको ॥
संगेदरसे तेरे निकाली आग ।
हमने दुश्मनका घर जलानेको ॥
रोज़े महशर भी होश गर आया,
जाएँगे हम शराबख़ानेको ॥

एजाज़से ज़्यादा है सहर उनके नाज़का ।
आँखें वोह कह रही हैं जो लबसे अयाँ न हो ॥

फिर गई आँख मिस्ले किब्लानुमा ।
जिस तरफ़ उस सनमने फेरा मुँह ॥

समझ तो 'मोमिन' अगर नारवा है ख़ुद बीनी ।
तो देखे काहेको परहेज़गार आईना ॥

दस्तेजुनूँने मेरा गिरेबाँ समझ लिया ।
उलझा है उन-से शोख़के बन्देक़बाके साथ ॥
कूचेसे अपने ग़ैरका मुँह है ? मिटा सके,
आशिक़का सर लगा है तेरे नक़्शेपाके साथ ॥
अल्लाहरी गुमरही बुतोबुतख़ाना छोड़कर ।
'मोमिन' चला है काबेको एक पारसाके साथ ॥

तौबा गुनाहे इश्क़से फ़रमाये है वाइज़ ।
यह भी कहीं दिल देके गुनहगार हुआ है ॥

मैं अगर आपसे जाऊँ[1] तो क़रार आ जाये ।
पर यह डरता हूँ कि ऐसा न हो यार आ जाये ॥

---

[1]मर जाऊँ ।

बाँधो अब चारागरो ! चिल्ले कि वह भी शायद ।
वस्ले दुश्मनके लिए सूए मज़ार आ जाये ॥
नाम बदबख़्तिये उश्शाक़ ख़िज़ाँ है बुलबुल !
तू अगर निकले चमनसे तो बहार आ जाये ॥

देते हो तसकीं मेरे आज़ारसे ।
दोस्ती तुमको नहीं अग़ियारसे ?
जाबजा नहरें है जारी, मैंने अश्क—
पूँछे होंगे दामने कोहसारसे ॥
इश्कमें नासेह भी है क्या मुद्दई ।
जुर्म साबित हो गया इंकारसे ॥
ज़िक्रे अश्क़े ग़ैरमें रंगीनियाँ ।
बूएख़ूँ आई तेरी गुफ़्तारसे ॥

तू ग़ैरके प्रेम-अश्रुओंका वर्णन ऐसी रंगीन भाषामें कर रहा है कि मेरा हृदय ईर्ष्यासे ख़ून हुआ जा रहा है। मुझे तेरी बातोंमें ख़ूनकी गन्ध आती है।

है निगाहेलुत्फ़ दुश्मनपर तो बन्दा जाय है ।
यह सितम ऐ बेमुरव्वत ! किससे देखा जाय है ॥
हुस्नेरोज़ अफ़ज़ूँपै ग़ुर्रा किसलिए ऐ माहरू !
यूँ ही घटता जायगा जितना कि बढ़ता जाय है ॥
अब तो मर जाना भी मुश्किल है तेरे बीमारको ।
ज़ोफ़के बाइस कहाँ दुनियासे उट्ठा जाय है ॥
ग़ैरके हमराह वोह आता है मैं हैरान हूँ ।
किसके इस्तक़बालको जी मेरा तनसे जाय है ॥

क़त्ले दुश्मनका है इरादा उसे ।
यह सज़ा ? अपनी जाँनिसारीकी ॥

यानी ख़जर आजमाईके मुस्तहक तो हम जाँनिसार थे न कि दुश्मन।

ताबेनज्ज़ारा नहीं आयना क्या देखने दूँ।
और बन जाएँगे तसवीर जो हैराँ होंगे॥

जों ही मानिन्द निशाने कफ़ेपा बैठ गया।
पाँव क्या कूचेसे उस होशरुबाके उट्ठे॥

यह कौन कहे उससे की तर्केवफ़ा मैंने।
कर तू ही जरा नासेह पैगाम्बरी इतनी॥
सजदा न कहीं करना 'मोमिन' क़दमे बुतपर।
काबे ही मे होती है बेहूदासरी इतनी॥

मुन्तज़िर किसके यह रहते है कि हम हर शबको।
ता-सहर शामसे उठ-उठके है घरमें फिरते॥
सुर्भगीं चश्मकी गर्दिश जो न भा जाती तो।
ख़ाक यों काहेको हम डालते सरमें फिरते॥

मुए है हसरतेदीदारमे ख़ूँ रोते-रोते हम।
अजब क्या है जो निकले सुर्ख़ नरगिस अपनी तुरबतकी॥

पाँव तुरबतपै मेरी देख, सम्भलकर रखना।
चूर है शीशयेदिल संगे सितमसे पिसकर॥

ऐशमें भी तो न जागे कभी तुम क्या जानो?
कि शबेग़म कोई क़िस तौर बसर करता है?
जिक्र कर बैठे बुराई ही से शायद मेरा।
अब वोह अगियारकी सुहबतसे हजर करता है॥
क्या रुलाती है मुझे फ़िक्रे ख़याले दुश्मन।
वस्लमे जब वोह इधर हँसके नजर करता है॥

यानी कही प्रतिद्वन्द्वीके तसव्वुरमे न हँस रहा हो, यही खटका ग्राशिकको लगा हुआ है।

सब्रेवहशत असर न हो जाये।
कही सहरा भी घर न हो जाये॥

जगलमे रहते-रहते कही उसे भी मैं घर समझ बैठा, तो मजबूरन मुझे कही और जाना होगा।

रश्के पैग़ाम है अनाकशे दिल।
नामाबर राहबर न हो जाये॥

मैंने नामाबरको दोस्तके पास भेज तो दिया है, मगर यह रश्क कि 'वह माशूकको देखेगा, बात करेगा' मुझे मजबूर कर रहा है कि मैं भी स्वय वहाँ जाऊँ, परन्तु परेशानी यह है कि मैं अब उसके पीछे जाता हूँ तो वह मेरा राहबर (मार्ग प्रदर्शक) हो जायगा।

कसरतेसजदासे वोह नक़्शेकदम।
कहीं पामाले सर न हो जाये॥

॰ गलीमें उसकी न फिर आते हम तो क्या करते ?
तबीयत अपनी न जन्नतके दरमियान लगी॥

जीना उम्मीदे वस्लपै हिजरॉमें सहल था।
मरता हूँ जिन्दगानिये दुश्वारके लिए॥

दरबदर नासियह फ़रसाईसे क्या होता है।
वही होता है जो किस्मतमें लिखा होता है॥

मेरा ख़ून क्या बारे गरदन हुआ ?
कि बेताब वोह दर्दे गरदनसे है॥

नई कुछ नहीं अपनी जाँबाज़ियाँ ।
यहीं खेल हमको लड़कपनसे है ॥

थी बदगुमानी अब उन्हें क्या इश्क़े हूरकी ।
जो आके मरतेदम मुझे सूरत दिखा गये ॥

खुदरफ़्तगीमें चैन वोह पाया कि क्या कहूँ ।
गुरबत जो मुझसे पूछो तो बहतर वतनसे है ॥

जाँ गई पर न गई जौरकशी ।
बादे मुरदन भी दबाते हैं मुझे ॥
अब यह सूरत है कि ऐ परदानशीं !
तुझ से अहबाब छुपाते हैं मुझे ॥

मुझे चुप लगी मुद्दआ कहते-कहते ।
रुके हैं वोह क्या जानें क्या कहते-कहते ॥

हम हाल कहे जाएँगे सुनिये कि न सुनिये ।
इतना ही तो याँ सुहबते नासेहका असर है ॥
अब भी नहीं जाती तेरे आजानेकी उम्मीद ।
गो फिर गई आँखें, पै निगह जानिबे दर है ॥

है ऐतमाद मेरे बख़्तेखुफ़्तापर क्या-क्या ?
वगर्ना ख्वाब कहाँ चश्मे पासबाँके लिए ॥

यह हालत है तो क्या हासिल बयाँसे ।
कहूँ कुछ और कुछ निकले ज़बाँसे ॥
मेरे घर आप यूँ जाते थे किस दिन ।
उठाना मुद्दआ है आस्ताँसे ॥

वोह आये हैं पशेमाँ लाशपर अब।
तुझे ऐ ज़िन्दगी लाऊँ कहाँसे ॥
जहाँसे तंगतर जन्नत न हो जाय।
बहुत हसरत भरा जाता हूँ याँसे ॥

१८ अप्रेल १९५०

७८

ग़ालिब

[ई० स० १७९७ से १८६९ ई० तक]

मिर्जा असदुल्लाखॉ 'गालिब' उर्दूके अमर शायर हुए है। यूँ तो मीर तकी 'मीर'को उर्दूशायरीमे सर्वोच्च आसन प्राप्त है, वे 'ख़ुदाएसुख़न' जैसे महान सम्बोधन द्वारा स्मरण किये जाते है। उन जैसी ज़बान और सोजोगुदाज आजतक किसीको मयस्सर न हुआ। बड़े-से-बड़े शायरकी प्रशसामे इतना कह देना कि "तुम्हारे कलाममे मीर-जैसा रग झलकता है" बहुत वडा प्रमाणपत्र हैं। अर्वाचीन युगके श्रेष्ठ शायरो—नासिख़, आतिश, गालिब, जौक आदिने भी मीरको सर्वश्रेष्ठ शायर तस्लीम किया है, परन्तु वर्तमान युगमे जो ख्याति गालिबको मिलती जा रही है, वह मीरको भी नसीब नही है। कुछ आलोचक और सुख़नफहम वर्तमानमें भी गालिबपर मीर और मोमिनको तरजीह देते है और अपने कथनकी पुष्टिमे तुलनात्मक शेर पेश करते है, परन्तु ईमानकी बात यही है कि 'गालिब'के प्रशसकोकी सख्या बहुत अधिक है और उत्तरोत्तर तेजीसे बढती जा रही है। आस्मानेशायरीपै गालिब ही गालिब चमक रहे है और मीर, दर्द, आतिश और मोमिन भी उनके समक्ष मान्द दिखाई देते है।

यूँ तो गालिब अपने जीवनकालमे ही यथेष्ठ ख्याति प्राप्त कर चुके थे, परन्तु जो *ख्याति-प्रतिष्ठा उन्हे वर्तमानयुगमे मिलती जा रही है,* वोह उन्हे अपने जीवनमे प्राप्त न हो सकी। इसके मुख्य कारण दो थे—

(१) वह सामन्तवादी युग था। बादशाहो-नवाबो द्वारा जो प्रशसित होता था, वही जनताकी दृष्टिमे बडा आदमी समझा जाता था, और

यह सन्मान जौकको प्राप्त था। क्योकि वे बादशाहके उस्ताद थे और बादशाहने उनको उस्ताद इसलिए चुना कि उसकी तबियतका रुझान जौक जैसा था। उस सामन्तयुगकी बात जाने दीजिये, वर्तमानमे भी जिसको पत्रों और नेताओ द्वारा पब्लिसिटी मिलती है, वही बडा आदमी समझा जाता है और उस पब्लिसिटी पाये हुए बडे आदमीके समक्ष 'वास्तवमें बडे आदमी' गुमनाम पडे रहते है।

(२) गालिब फारसीके उच्चकोटिके शायर थे और उर्दूमे शेर कहना अपने गौरवके अनुकूल नही समझते थे। मुँहका जायका बदलनेको कभी-कभी कहते भी थे तो वे इतने क्लिष्ट और फारसीमय होते थे कि आम जनता तो दरकिनार अच्छे-अच्छे सुखनफहम भी बगले झॉकने लगते थे। उनकी इस फारसियत और चक्करदार शायरीसे तग आकर लोग मजहका तक उडाने लगे थे। एक बार मौ० कादिरअली रामपुरीने इस मनगढन्त शेरका आशय समझानेके लिए मिर्जासे कहा—

पहले तो रोगनेगुल भैसके अण्डेसे निकाल।
फिर दवा जितनी है कुल भैसके अण्डेसे निकाल॥

मिर्जा समझ गये कि मेरे कलामका मजाक उडाया गया है। बाज़ शायर तो मुशायरोमे भी चोट करनेसे बाज नही आते थे, और मिसरातरहपर गजल पढते हुए एक-दो शेर मिर्जाकी मुश्किल पसन्दीपर भी कह दिया करते थे—

कलामे मीर समझे और जबाने मीरज़ा समझे।
मगर इनका कहा यह आप समझें या ख़ुदा समझे[1]॥

---

[1]यानी हम 'मीर' और मिर्जा 'सौदा'का तो कलाम समझ लेते है लेकिन मिर्जा गालिबका कलाम नही समझ पाते। उनका कलाम किसीकी समझमे नही आ सकता। उसे वह खुद समझे या खुदा शायद समझे तो समझे।

परन्तु मिर्जापर इन बौछारोका कोई असर न होता था। वे हँसकर टाल दिया करते थे, अथवा जवाबमे वे भी फर्मा दिया करते थे—

गर खामुशीसे फ़ायदा अख़फाए हाल है।
खुश हूँ कि मेरी बात समझनी मुहाल है॥

न सताइशकी तमन्ना न सिलेकी परवा।
न सही गर मेरे अशआरमें मानी न सही॥

आसान कहनेकी करते हैं फ़र्माइश।
गोयम मुश्किल व गर नगोयम मुश्किल॥

गालिबकी प्रारम्भिक क्लिष्ट और चक्करदार शायरीको देखकर ख़ुदाए सुख़न मीरने भविष्यवाणी की थी—"अगर इस लड़केको कोई कामिल उस्ताद मिल गया और उसने इसे सीधे रास्तेपर डाल दिया तो लाजवाब शायर बन जायगा; वर्ना मोहमिल (व्यर्थ, निरर्थक) बकने लगेगा।" मिर्ज़ाको उनके हितैषी मित्रोने काफी समझाया, परन्तु वे न माने और फारसीमय क्लिष्ट कलाम लिखते ही रहे। आख़िर उनको समझ आई और उन्होने आसान शेर कहनेका भी प्रयत्न किया। अपने दीवानको मुद्रण योग्य बनाते समय, दो तिहाई क्लिष्ट और गूढ शेर निकाल दिये। फिर भी उनके दीवानका एक तिहाई हिस्सा अब भी ऐसा है, जिसे उर्दू नही कहा जा सकता और उसका भाष्य भी खीचतानकर ही किया जाता है। मिर्जाने बहुत कम अशआर उर्दूमे कहे और जो कहे उसमेसे भी दो तिहाई शेर निकाल दिये। इसलिए उनका उर्दू कलाम बहुत सक्षिप्त है। लेकिन बुलन्द अशआरकी सख्या अन्य उस्तादोसे कम नही, चाहे उनके दीवानोकी सख्या कितनी ही क्यो न हो।

वह युग दरअस्ल मिर्जाकी शायरीके अनुकूल न था। उस युगमे लखनऊ नासिख़के ख़ारिजी रगमे सराबोर था। दिल्लीमे शाह नसीरका दम गनीमत समझा जाता था। यूँ सुख़नफहमोकी कमी न थी। देहली,

लखनऊ, रामपुर, हैदराबाद आदि सभी स्थानोंमे मिर्जाके कद्रदाँ थे और उनका अत्यन्त आदर-सत्कार होता था। सुखनशनास उनके कलामकी मुक्त हृदयसे दाद देते थे, परन्तु मिर्जाको जो ख्याति आज प्राप्त है, वोह उनको जीवनकालमे मयस्सर नही हुई। बीसवी सदीके प्रारम्भसे अंग्रेजी शिक्षाका जैसे-जैसे प्रचार बढता गया, वैसे-वैसे कलामेगालिबकी ओर भी आकर्षण बढ़ता गया, क्योकि कलामेगालिबमे जो दार्शनिकता और सूक्तियोकी पुट मिलती है, वह उर्दूके अन्य शायरोमे बहुत कम पाई जाती है।

उन्होने हुस्नोइश्कके परदेमे जीवनके अनेक पहलुओपर प्रकाश डाला है, इसीसे उनके कलामका उत्तरोत्तर पठन-पाठन बढता जा रहा है। यह रुचि यहाँतक बढ़ी है कि—

१. उनके कलामपर रगीन चित्र बनाये गये है।
२. उनके दीवान सुन्दर-से-सुन्दर छापनेकी होड़ लगी हुई है। सौ रुपये तकके मूल्यका दीवान प्रकाशित हो चुका है। जर्मनीसे भी उनके दीवानका सस्करण प्रकाशित हुआ है।
३. कितने ही साहित्यकोने उनके दीवानके भाष्य किये है और ऐसी-ऐसी कल्पनाएँ प्रसूत की है, जो शायद उनके मस्तिष्कमे भी शेर कहते समय न आई होगी।
४ उनके कलामपर कितनी ही तज़मीने[1] लिखी जा चुकी है।
५ उनके व्यक्तित्व और शायरीपर हजारों लेख छप चुके है और प्रयत्न चालू है।

---

[1]शेरके पहले मिसरेके हमवजन तीन और मिसरे कहकर, और उनको शेरम जोड़कर जो ख़मसा बनता है, उसे तजमीन कहते हैं। यहाँ ग़ालिबके एक शेरपर 'सबा' अकबराबादीकी तज़मीन दी जाती है —

६. उनपर न जाने कितनी नज्मे और वार्ताएँ लिखी जा चुकी हैं।

७. उनकी स्मृतिमें साहित्यक संस्थाएँ, पुस्तकालय, प्रकाशनगृह स्थापित हुए हैं।

८. भारतके रेडियो स्टेशनोसे उनकी गजले दैनिक प्रसारित की गईं और आगे भी होती रहेगी। भारतविभाजनके बाद यहाँ उतना नही, किन्तु पाकिस्तानमे वही सिलसिला चालू है।

९ 'गालिब-दिवस' प्रतिवर्ष बडी धूमधामसे मनाया जाता है'।

बज्मे खवास बन्द है, बज्मे अवाम बन्द है?
किसके सलाम बन्द है, किसके पयाम बन्द है?
मैकदे बन्द है न कुछ सागिरो जाम बन्द है।
ग़ालिबे खस्ताके बगैर कौनसे काम बन्द है?
रोइये जार-जार क्या, कीजिए हाय-हाय क्यों?

इसमे अन्तिम दो मिसरे गालिबके है और पहले तीन सबाके। अच्छी तजमीन वडा मुश्किल फ़न है। इसमे असली शेर और लगाए हुए मिसरे एक जान हो जाते है, जोड़ कही मालूम नही होता।

सबाका जिक्र करते समय उन अनेक मुसलमान साहित्यिक मित्रोकी स्मृति मनमे हलचल मचा देती है, जिन्हें भारत-विभाजनने अपना निवास-स्थान छोड़कर पाकिस्तान जानेपर विवश किया। सबा आगरेके ख्याति-प्राप्त शायर थे और अब कराची चले गये है। बहुत अच्छे शेर कहते है। गालिबका तकरीबन सारा दीवान तजमीन किया हुआ है। अच्छे शायर तो है ही, जराफत और दोस्तदारीमे भी अपना सानी नही रखते। आधी-आधी रात बीतेतक उनके मुँहसे उनका कलाम सुना है। अब उन महफिलो-को आँखे तरस गई है।

'गालिब-दिवसकी देखादेख अब——चकबस्त, हाली, इकबाल, बर्क आदिके भी दिवस मनाये जाने लगे हैं।

१० उनके चित्रको लोग कमरेमे टाँगते है।

११. उनके जीवन, रहन-सहन, स्वभाव, गुण-दोष, घरेलू जिन्दगी आदिपर नित नये लेख प्रकाशित हो रहे है।

१२. उनके लिखे हुए व्यक्तिगत पत्र भी प्रकाशित हो चुके है।

१३. उनके दीवानसे कितने ही अपने भाग्यका फल देखते है।

१४. गालिवपरस्ती वाज लोगोमे यहाँतक वढ गई है कि वे उन्हे सर्वश्रेष्ठ शायर सिद्ध करनेके प्रयत्नमे अन्य शायरोपर छीटाकशी करनेसे भी नही चूकते।

गालिवके पिता मिर्जा अब्दुल्लावेग प्रारम्भमे अवधके नवाव आसफुद्दौलाके यहाँ मुलाजिम रहे, फिर निजाम हैदरावादके यहाँ मुलाज़मत की और अन्तमे अलवर नरेश वख्तावरसिहके यहाँ फौजमे भर्ती हुए और युद्धमे मारे गये। गालिवके सगे चचा मरहठोकी तरफसे आगरेके सूवेदार थे। उन्हीने मिर्जाका लालन-पालन किया। १८०६ ई०मे जनरल लेककी अमलदारी हुई तो आगरा सूबेके वजाय कमिश्नरी वना दिया गया। अग्रेज़ोने भी एक हजार रुपये मासिक वेतन, चारसौ सवार, और लाख रुपयेकी जागीर दी। लेकिन मिर्जाके चचाके मर जानेसे वेतन वन्द हो गया और जागीर वापिस ले ली गई। मिर्जाकी केवल पेन्शन नियत कर दी गई। मिर्जाके चचा जब मरे, इनकी उम्र आठ वर्षकी थी। यह पेन्शन भी १८५७के विप्लवके वाद विद्रोही होनेकी आशकामे वन्द कर दी गई थी, किन्तु तीन वर्ष वाद आशका दूर होनेपर पुन. वह पेन्शन जारी कर दी गई थी।

मिर्ज़ा गालिबका वचपन आगरेमे व्यतीत हुआ। युवा होनेपर दिल्ली आकर वस गये थे और यहीकी खाकमे आखिरकार मिल गये। मिर्ज़ा वडे खुशरू और खुशपोश थे। सुर्खोसफेद रँग, सरवेकद, सीना-कुशादा, चेहरा तुर्काना, बुलन्द पेशानी, चमकीली और मखमूर आँखे,

मुतवाँ नाक, भरे हुए सुर्ख रुखसार, और दाँत मोतियो जैसे, सरपर लम्बे बाल और दाढी मुँडी हुई—यह गालिबकी कलमी तसवीर है। बुढापेमे बाल मुँडवा दिये थे और दाढी रख ली थी।

मिर्जाकी शायराना अजमत उनके जीवनकालमे वर्तमान जितनी तो नही, फिर भी अच्छी खासी थी। उनका व्यक्तित्व आकर्षक और प्रतिष्ठित था। हर वर्गके सम्भ्रान्त व्यक्ति, रईस, साहित्यक, शायर, मिर्जासे मुलाकात करनेमे गर्व अनुभव करते थे। मिर्जाकी शायरी क्या है, यह तो अगले पृष्ठोसे विदित होगा, किन्तु उनको शेर कहनेका अभ्यास कैसा था और वे किसी भी विषयपर अधिकारपूर्वक कितने कलापूर्ण ढगसे शेर कह सकते थे, यह निम्न घटनासे मालूम होगा।

कलकत्तेकी एक मजलिसमे जहाँ मिर्जा भी मौजूद थे, शुअरा-का जिक्र हो रहा था। दौरानेगुफ्तगूमे एक साहब ने फैज़ीकी बहुत तारीफ की। मिर्जाने कहा—"फैजीको जैसा लोग समझते है, वैसा नही है।" इसपर बात बढी। उस शख्सने कहा—"फैजी जब पहली बार अकबरके रोबरू गया था, उसने ढाईसौ शेरका क़सीदा उसी वक्त बनाकर कहा।" मिर्जा बोले—"अब भी अल्लाहके बन्दे ऐसे मौजूद है कि दो-चार सौ नही तो दो-चार शेर हर मौके-पर फिलबदी (तत्काल) कह सकते है।" मुखातिबने जेबमेसे एक चिकनी डली (सुपारी) निकालकर हथेलीपर रखी और मिर्जासे उसपर शेर कहने-को कहा। मिर्जाने १३ शेरका किता उसी वक्त मौजू करके पढ दिया—

है जो साहबकी कफेदस्तपै[1] यह चिकनी डली।
ज़ेब[2] देता है इसे जिसकदर अच्छा कहिये॥

---

[1]हथेलीपर, [2]शोभा।

ख़ामा[1] अंगुश्तबदन्दां[2] कि इसे क्या लिखिये।
नातका[3] सर-ब-गरेबाँ[4] कि इसे क्या कहिये॥

मुहरे मकतूबे अज़ीज़ाने गिरामी[5] लिखिये।
हिर्ज़े बाज़ूए शिगरफ़ाने खुदआरा[6] कहिये॥

मिस्सीआलूदा[7] सरअंगुश्ते हसीनाँ[8] लिखिये।
दागेतर्फ़ जिगरे आशिके शैदा[9] कहिये॥

ख़ातमेदस्तेसुलेमाँके[10] मुशाबा[11] लिखिये।
सरेपिस्ताने परीजादसे[12] माना[13] कहिये॥

अख़्तरे सोख़्तए कैससे[14] निसबत दीजे।
खाले मुश्कीने रुख़े दिलकश लैला[15] कहिये॥

हजरुल असवदे दीवारेहरम[16] कीजिये फ़र्ज़।
नाफाआहूए[17] बयाबानेखतनका[18] कहिये॥

---

[1]कलम; [2]दाँतोमे उँगली दबाए, हैरान;
[3]ज़बान, [4]मुँह लटकाये, चिन्तामे,
[5]प्रियजनोके पत्रपर लगी हुई मोहर,
[6]शृंगारमयी सुन्दरियोके बाजूपर बँधा हुआ तावीज,
[7]मिस्सी लगी हुई; [8]सुन्दरियोकी उँगली;
[9]आशिकके दिलका दाग; [10]सुलेमान बादशाहके हाथकी अँगूठीके;
[11]सदृश्य; [12]अप्सराके कुचका अग्रभाग;
[13]मानिन्द, [14]मजनूँका जला हुआ नसीबा,
[15]लैलाके आकर्षक चेहरेका सुगधित तिल;
[16]काबेकी दीवारका पवित्र काला पत्थर,
[17]हिरनके पेटसे निकलनेवाली मुश्क,
[18]खतनके जगलका हिरन।

वजअ़मे[१] इसको अगर समझिये क़ाफ़ेतिरयाक़[२] ।
रंगमे सब्जये नौखेजे मसीहा[३] कहिये ।।

सोमयेमे[४] उसे ठहराइये गर महरेनमाज़[५] ।
मयकदेमे उसे खिश्तेखुमेसुहबा[६] कहिये ।।

क्यो उसे कुफ्लेदरेगंजे मुहब्बत[७] लिखिये ।
क्यों उसे नुक्तये परकारे तमन्ना[८] कहिये ।।

क्यों उसे गोहरेनायाब[९] तसव्वुर कीजे ।
क्यों उसे मरदमके दीदयेउनका[१०] कहिये ।।

क्यों उसे तुकमये पैराहनेलैला[११] लिखिये ।
क्यों उसे नक़्शेपये नाकयेसलमा[१२] कहिये ।।

बन्दापरवरके कफ़ेदस्तको दिल कीजिये फ़र्ज ।
और इस चिकनी सुपारीको सवेदा[१३] कहिये ।।[१४]

---

[१]शकल, बनावटमे, [२]तिरयाक शब्दमे जैसे उर्दूमे काफ लिखा जाता है,
[३]मसीहाकी भीगी मसोका रग, [४]मस्जिदमे,
[५]उपासना स्थान, [६]शराबके घडेकी ईंट,
[७]प्यारके खजानेका ताला, [८]अभिलाषाका केन्द्र,
[९]अमूल्य मोती,

[१०]उनका नामक परिन्देकी आँखकी पुतली । यह परिन्दा किसीने नही देखा, इसलिए चिकनी डलीके अप्राप्य और बहु-मूल्य होनेकी ओर संकेत है ।

[११]लैलाकी कमीजकी घुण्डी, [१२]सलमाकी साँडनीका पदचिह्न,

[१३]दिलके केन्द्रमे रहनेवाला काला विन्दु,

[१४]अन्तमे पिछली सब उपमाओको रद करके सवेदाकी उपमाको सर्वश्रेष्ठ मानते है ।

ज़ौक बादशाहके उस्ताद थे और बादशाह तत्कालीन शायरोमे ज़ौक-को तरजीह देते थे। लेकिन उनकी चहेती बेगम जीनतमहल गालिबकी तरफदार थी। उन्होने अपने पुत्र युवराज जवाँबख्तके विवाहपर विशेष आग्रह करके मिर्ज़ा गालिबसे सेहरा लिखाया। उस सेहरेके १२ अशआर-मेसे ५ यहाँ दिये जाते है—

ख़ुश हो ए बख़्त[1] कि है आज तेरे सर सेहरा।
बाँध शहज़ादे जवाँबख़्तके सरपर सेहरा॥

क्या ही इस चाँदसे मुखड़ेपै भला लगता है।
है तेरे हुस्नेदिलअफरोज़का[2] जेवर सेहरा॥

सात दरियाके फ़राहम[3] किये होंगे मोती।
तब बना होगा इस अन्दाज़का गज़भर सेहरा॥

जीमें इतरायें न मोती कि हमी है इक चीज़।
चाहिए फूलोंका भी एक मुकर्रर[4] सेहरा॥

हम सुख़नफ़हम[5] है 'ग़ालिब' के तरफ़दार नहीं।
देखें इस सेहरेसे कहदे कोई बहतर सेहरा॥

मिर्ज़ाने सेहरा तो नायाब लिखा, मगर मक्तेमे बादशाह और उनके उस्ताद ज़ौकपर चोट कर दी। जब यह सेहरा बादशाहके हुज़ूर पेश हुआ तो मक्तेको देखकर उन्हे मलाल हुआ, क्योकि मक़्तेमे 'हम सुखन-फहम है गालिबके तरफदार नही' मिसरा कहकर यह सकेत किया गया है कि बादशाह सुखनफहम (कवितामर्मज्ञ) होता तो जौकको सन्मान

---

[1]भाग्यको सम्बोधित किया है। आशय यह है कि शहजादेके सेहरा बँधनेसे भाग्यका भी भाग्य चमक उठा है।

[2]हृदयग्राही सुन्दरताका, [3]जमा, [4]दूसरा, [5]विज्ञ कवि।

न देता। अत. वादशाहने जौकसेभी एक सेहरा लिखनेको कहा। जौकने उसी ज़मीनमे १४ शेर्का सेहरा तत्काल लिखा जो दरहकीकत गालिबके सेहरेका जवाव है—

ऐ जवाँवख्त ! मुबारिक तुझे सरपर सेहरा।
आज है यमनोसआदतका[1] तेरे सर सेहरा॥

इक गुहर[2] भी नहीं सदकानेगुहरमे[3] छोडा।
तेरा वनवाया है ले-ले के जो गोहर सेहरा॥

फिरती खुशबूसे है इतराती हुई बादेबहार[4]।
अल्लाह अल्लाहरे फूलोंका मुअत्तर[5] सेहरा॥

दुरे खुश आबेमजामींसे[6] बनाकर लाया।
वास्ते तेरे तेरा जौक सनागर[7] सेहरा॥

जिनको दावा हो सुख़नका यह सुना दो उनको।
देखो इस तरहसे कहते है सुखनवर सेहरा॥

जीनतमहलको जब यह मालूम हुआ कि जौकने भी मिर्जाके जवाबमे सेहरा लिखा है तो उन्होने दरवारियोको वुलाकर सख्त ताकीद कर दी कि जौकके सेहरा पढनेपर कोई दाद न दे। मगर यह कैसे मुमकिन हो सकता था। एक तो अच्छा कलाम सुननेपर दोस्त-दुश्मनके मुँहसे बेअख्तियाराना दाद निकल पडती है और फिर कसदन किसी तरह दिलपर जब्र भी किया जाय तो वादशाहके स्वय दाद देनेपर दरबारियोमे चुप रहनेका साहस कैसे होता ? अत जौकके सेहरेपर खूब दाद मिली। इस सेहरेके लिखे जानेसे मिर्जाको वहुत निराशा और व्यथा हुई। पारितोषक मिलनेकी तो बात ही जाती रही, वादशाहके कोपभाजन वन जानेकी बला बैठे-बिठाये गले

---

[1]विजयका; [2]मोती, [3]मोतीकी कानोमे, [4]समीर,
[5]सुवासित, [6]कल्पनाके सुन्दर मोतियोसे, [7]प्रशसक, दर्बारी।

मँढ गई। इसलिए उन्होने एक किता क्षमायाचना करते हुए लिखा, जिसके चन्द शेर ये है—

मंज़ूर है गुज़ारिशे अहवाले वाकई।
अपना बयानेहुस्ने तबीयत नहीं मुझे॥
सौ पुश्तसे है पेशयेआबा सिपहगरी।
कुछ शायरी ज़रियए इज्ज़त नहीं मुझे॥
आज़ादरौ हूँ और मेरा मसलक है सुलहकुल।
हरगिज़ कभी किसीसे अदावत नहीं मुझे॥
उस्तादेशहसे हो मुझे पुरख़ाशका ख़याल।
यह ताब, यह मजाल, यह ताकत नहीं मुझे॥
मक़्तेमे आ पड़ी है सुख़नगुस्तराना बात।
मकसूद इससे क़तए मुहब्बत नहीं मुझे॥
रूए सुखन किसीकी तरफ़ हो तो रूस्याह।
सौदा नहीं, जुनूँ नहीं, वहशत नहीं मुझे॥
किस्मत बुरी सही पै तबियत नहीं बुरी।
है शुक्रकी जगह कि शिकायत नही मुझे॥
सादिक हूँ अपने कौलमे 'गालिब' खुदा गवाह।
कहता हूँ सच कि झूठकी आदत नहीं मुझे॥

[इस समय वास्तविक स्थिति (गुज़ारिशे अहवाले वाकई)को बताना मेरा उद्देश है, अपना कलाकौशल (बयाने हुस्ने तबियत) दर्शाना ध्येय नही है। सौ पुश्तोसे मेरे बाप-दादोका पेशा (पेशए आबा) सैनिकका रहा है, शायरी मेरे लिए कुछ सम्मानका साधन (जरियएइज्जत) नही है। (इस शेरमे ज़ौकपर चोट की है, कि वह कविताके कारण बादशाहका उस्ताद बना बैठा है, और उसके पास प्रतिष्ठाका इसके अलावा और कोई सर्टीफिकेट नही है) मै स्वतंत्र और उदार प्रकृतिका आदमी (आजाद-

रौ) हूँ और मेरा सिद्धान्त (मसलक) है कि सबके साथ शान्तिसे (सुलह कुल) रहूँ, इस लिए मै तो किसीसे दुशमनी (अदावत) रख ही नही सकता। (आशय यह है कि सेहरेका मकता मैने दुश्मनीके कारण लिखा है या जौक पर चोट की है, यह भ्रम मात्र है) मेरी यह ताव कहाँ कि बादशाहके उस्तादसे मै मुकावला करूँ। (इस शेरमें फिर चोट है। आशय यह है कि जौकसे व्यक्तिगत रूपसे तो मै मुकावला कर सकता हूँ, लेकिन बादशाहके उस्तादसे कौन मुठभेड करे ?) मेरे मकतेमे इत्तफ़ाक-से आत्मश्लाघाके शब्द लिखे गये है जो कवि प्राय. लिख दिया करते हैं, इन शब्दोंके प्रयोगसे किसीसे लड़ाई (कतए मोहब्बत) करना अभीष्ट नही था। अगर किसीकी तरफ इशारा करके (रूए सुखन) मकता लिखा हो तो मै गुनहगार (रूसियाह)। मै कोई पागल था जो ऐसी बात करता। (जौक़ काले रग के (रूसियाह) थे, इस तरह इस शेर मे भी चोट की है) मेरी किसमत वुरी सही, पर तबियत अच्छी है, और अपनी वदकिस्मतीकी किसीसे शिकायत भी नही करता हूँ। भगवान् साक्षी है, मै हमेशा सच्ची बात कहता हूँ, कभी झूठ नही बोलता। ऊपर लिखी बातोमेसे कोई भी झूठ नही है।]

इस एक ही वाक़येसे गालिब की तत्कालीन स्थितिका आभास मिल जाता है। मिर्जा उच्चकोटिके शायर थे, किन्तु निर्धनताके अभिशाप-से बुरी तरह ग्रसित थे। जो पेंशन पाते थे, वह उनके लिए यथेष्ट न थी। इसलिए शाही कृपाके भी अभिलाषी बने रहते थे, ताकि कुछ आर्थिक सबध बना रहे। लेकिन बादशाही कोषमे रहा ही क्या था, जो गालिबकी अभिलाषाऐ पूर्ण होती। इसी तगदस्तीकी वजहसे गालिब जैसा खुद्दार और शायरे आजम इस तरहकी क्षमा याचना करने पर मजबूर होता था। कसीदे भी लिखता था और जो थोडा बहुत सीगा बन्धा हुआ था, वह भी वक्तपर न मिलता था तो अपनी हालतेजार भी बादशाहके गोश गुज़ार करनी पड़ती थी—

क्यों न दरकार हो मुझे पोशिश
जिस्म रखता हूँ, है अगरचे नज़ार ॥
कुछ ख़रीदा नही है अबके साल।
कुछ बनाया नहीं है अबकी बार ॥
रातको आग और दिनको धूप।
भाड़में जाएँ ऐसे लैलोनिहार ॥
आग तापे कहाँ तलक इन्सान।
धूप खाये कहाँ तलक जाँदार ॥

आपका बन्दा और फिरूँ नंगा।
आपका नौकर और खाऊँ उधार ॥

तुम सलामत रहो हज़ार बरस।
हर बरसके हों दिन पचास हज़ार ॥

मिर्ज़ाके यूँ तो वहुत-से शिष्य थे, किन्तु उन मे ख़ास-ख़ास ये थे—मौलाना अल्ताफ हुसैन हाली, मुशी हरगोपाल तुफ़्ता, मीर महदीहसन मजरूह, मीर कुर्बानअली सालिक, मिर्ज़ा हातिमअली महर, मिर्ज़ा जियाउद्दीन खा अहमद, नैयर, नवाव अलाउद्दीन खा अलाई, नवाव शेफ्ता, मयकश, जौहर, उमरावसिह बेसब्र।

मिर्ज़ाका विस्तृत परिचय और उनके ७० के लगभग शेर 'शेरोशायरी' मे दिये जा चुके है। अत यहाँ उनका विशेष परिचय देनेकी अपेक्षा उनके उत्तमोत्तम शेर देनेका प्रयत्न किया गया है। जो अशआर 'शेरो-शायरी' मे आ चुके है, उन्हे यहाँ यथा सम्भव दोहराया नही गया है। विज्ञ पाठक इस सकलनमे किसी गजलका कोई अच्छा शेर मौजूद न पाएँ तो हमारी नजरे इन्तख़ावको इलजाम देनेसे पहले 'शेरोशायरी' मे उद्धृत शेर देख ले।

ढाँपा कफ़नने दागे अयूबे बरहनगी।
मै वर्ना हर लिबासमें नंगे वजूद था॥

इस्लामधर्मके कथानकके अनुसार जब खुदाने मनुष्य बनाया तो उसे इतना गौरव प्रदान किया कि फरिश्तो (देवताओ) से उसे सजदा (साष्टाग प्रणाम्) कराया, और जिस एक फरिश्तेने सजदा करनेसे इनकार किया, उसे जन्नतसे निकाल दिया। स्वर्गके देवता मनुष्यकी उपासना करे, इससे अधिक उसका सम्मान क्या हो सकता है। उससे आशा थी कि वह अपने गौरवके अनुकूल मनष्यताके कार्य करेगा और अपने इस सन्मानको अक्षुण्ण वनाये रखेगा, किन्तु मनुष्य ससारमे आकर मनुष्य न रहा। उसने ऐसे-ऐसे कार्य्य किये कि उसे स्वय शर्म आने लगी। वह पृथ्वीके लिए भार हो उठा[१]। इसी तथ्यको गालिब स्वयपर घटाते हुए फर्माते हैं—मेरे अवगुणोकी नग्नता (दागे अयूबे बिरहनगी) मृत्युने ढक ली, वर्ना मै तो हर प्रकारसे नग (बदनाम) हो चुका था।

इश्कसे तबियतने जीस्तका मजा पाया।
दर्दकी दवा पाई, दर्द बेदवा पाया॥

प्रेमरहित जीवन निरर्थक है[२]। प्रेम ही मनुष्यमे जीवन डालता है। गालिब फर्माते हैं—इश्ककी वजहसे ही हमको जीस्त (जिन्दगी) का मजा आया। बगैर इश्क तो यह जिन्दगी, दर्द (दूभर) थी। इश्क इस

---

[१] इसी मजमूनका यह शेर 'मानूस' सहसरामीका क्या खूब है—

वोह जिन्दगी कि जिसपै फरिश्तोंको नाज था।
आलूदये गुनाह किये जा रहा हूँ मै॥

[२] **जा घट प्रेम न सचरे सो घट जान मसान।**
जैसे खाल लुहारकी, साँस लेत बिन प्रान॥

—कबीर

दर्द की दवा बन गया। लेकिन मलाल इतना ही है कि इश्ककी कोई दवा नही। यह खुद एक असाध्य रोग है।

सादगी ओ पुरकारी बेख़ुदी ओ हुशयारी।
हुस्नको तग़ाफ़ुलमें जुरअत आज़मा पाया

हुस्न (सौन्दर्य्य) अपनी बेरुखी और तगाफुल (बेपरवाही, उपेक्षा) से हमारे हौसले और जुरअत (धैर्य और साहस) की आज़माइश कर रहा है। वह जाहिरामे सादा और भोला दिखाई देता है। मगर उसकी यही सादगी हमारे लिए पुरकारी (ऐयारी) और बेखुदी (भोलापन) हुश्यारी है। यानी उसकी इस सादगी और भोलेपनने ही तो हमारा सर्वस्व छीन लिया है।

दिल मेरा सोज़ेनिहाँसे बेमुहाबा[1] जल गया।
आतिशे ख़ामोशकी मानिन्द गोया जल गया॥

सोज़े निहाँ (मुहब्बतकी छुपी हुई आग) से मेरा दिल जलकर खाक हो गया। यह आग अन्दर ही अन्दर ऐसी सुलगती रही कि आतिशे ख़ामोश (ऊपलेकी आग) की तरह उसने सब कुछ जला दिया।

मै हूँ और अफ़सुर्दगीकी आरज़ू 'ग़ालिब' कि दिल।
देखकर तर्जेतपाके अहले दुनिया जल गया॥

...दुनियाकी बेवफाई और वर्तावसे मै इतना तग आ गया हूँ कि अब अपने दिलको अफसुर्दा (बुझा हुआ, कुम्हलाया हुआ) ही रखना चाहता हूँ।

अहबाब चारासाज़ीए वहशत न कर सके।
जिन्दाँमें भी ख़याल बयाबाँ नवर्द था॥

---

[1]बेरहमीसे

प्रेम-रोगका इलाज किसीसे न हुआ है न होगा। इष्ट मित्रो (अहबाब) ने प्रेमोन्मादका इलाज करने (चारासाजीए वहशत) के लिए मुझे कैद (जिन्दाँ) मे डाल दिया, मगर वहाँ भी मुझे जंगलोकी खाक छाननेका खयाल बना रहा। पैरोंमें बेड़ी रही, लेकिन खयाल पहलेकी तरह आवारा (वयाबाँ नवर्द) ही रहा।

यह लाशे बेकफ़न 'असदे' ख़स्ताजाँकी है।
हक़ मग़फ़रत करे अजब आजाद मर्द था॥*

दीन-हीन फटेहाल (ख़स्ताजा) असद (कवि के 'गालिब' और 'असद' दो उपनाम थे) को ख़ुदा बख़्शे। बड़ा निर्भीक (आजाद) आदमी था। यह वेकफन लाश उसीकी मालूम होती है। जीवनमें संचय करना उसे न आया। यहाँ तक कि कफ़नतकको घरमे कुछ न निकला।

दहरमें नक़्शेवफ़ा वजहे तसल्ली न हुआ।
है यह वोह लफ़्ज कि शर्मिन्दये मानी न हुआ॥

ससार (दहर) मे कोई वफादार नही। वफ़ा सिर्फ़ शब्दकोषमे लिखा हुआ है। यह ऐसा बेशर्म शब्द है कि यह कभी सार्थक होकर न दिया। निरर्थक ही रहा।

हूँ तेरे वादा न करने मे भी राज़ी कि कभी।
गोश[1] मिन्नत कशे गुलबांगे तसल्ली[2] न हुआ॥

तूने वादा न किया, इससे भी मुझे खुशी है। मेरे कानोको कमसे कम

---

*मृत्युसे चन्द मिनिट पहले जौकने यह कहा था—

कहते हैं आज 'जौक़' जहाँसे गुज़र गया।
हक़ मग़फ़रत करे अजब आजाद मर्द था॥

[1]कान, [2]सन्तोष जनक शब्दोका अनुगृहीत।

सन्तोषजनक शब्दो का अनुगृहीत तो न होना पडा, और इस एहसान-के बोझसे तो बच गये।

किससे महरूमिएक़िस्मतकी[1] शिकायत कीजे।
हमने चाहा था कि मर जाएँ सो वह भी न हुआ ॥

मैंने चाहा था कि अन्दोहेवफासे[2] छूटूँ।
वोह सितमगर मेरे मरनेपै भी राजी न हुआ ॥

× × ×

सताइश गर है जाहिद ! इस कदर जिस बाग़ेरिज़वाँका।
वोह इकगुलदस्ता है हम बेखुदोंके ताके निसयाँका ॥

ऐ जाहिद ! जिस बागेरिजवाँ (स्वर्गउद्यान) की तू इतनी सताइश (प्रशसा) करता है, वह तो हम बेखुदो (भुलक्कडो) के ताकेनिसियाँ (वोह आला जिसमे कोई चीज रखकर भूल जाएँ) का एक गुलदस्ता है। इससे अधिक कुछ नही। यानी हमे तो वह कभी याद भी नही आता।

मेरी तामीरमे मुजमिर है इक सूरत ख़राबीकी।
हयूला बर्के खिरमनका है ख़ूनेगर्म दहकाँका ॥

मेरे निर्माण (तामीर) मे ही मेरे विनाशके तत्व निहित (ख़राबी की सूरत मुजमिर) है। किसान (दहकाँ) के घोर परिश्रम (ख़ूने गर्म) मे ही विजलीके वे तत्व (हयूला) समाये हुए है जो उसके अनाजके ढेर (खिरमन) को जला देते है। तात्पर्य्य यह है कि हमारी समृद्धि और सुखके सामानोंमे ही हमारे विनाशके तत्व छिपे हुए है।*

---

[1]भाग्यहीनताकी, [2]वफा निभानेके सकटसे,

*असगर गोण्डवीने इसी मज़मून को इस प्रकार अदा किया है—

नग़मये पुरदर्द छेड़ा मैंने इस अन्दाज़से।
खुद-ब-खुद पड़ने लगी मुझपर नज़र सैयादकी ॥

मुहब्बत थी चमनसे लेकिन अब ये बेदिमाग़ी है ।
कि मौजेबूएगुलसे[१] नाकमें आता है दम मेरा ।।

× × ×

सरापा रहने इश्क़ो ना गुजीरे उल्फ़ते हस्ती ।
इबादत बर्क़की करता हूँ और अफसोस हासिलका ।।

मैं भी कैसा विचित्र हूँ । एक तरफ तो इश्कको अपना सर्वस्व दिया हुआ (सरापा रहने इश्के) है, जिसके कारण मर जाना अवश्यम्भावी है, दूसरी तरफ जीवनका मोह भी मुझसे नही छूटता है (ना गुजीरे उल्फ़ते हस्ती) । भला बताओ, यह दोनो बाते कैसे निभेगी । यह तो वैसा ही है, जैसे एक तरफ बिजली (बर्क़)को पूजूँ और जब बिजली खेत (हासिल) को जला दे तो उस हानि पर अफसोस करूँ ।

आज क्यों परवा नहीं अपने असीरोंकी[२] तुझे ।
कल तलक तेरा ही दिल महरोवफ़ाका बाब था ।।

प्रेम-बन्दियो की अब तुझे परवाह क्यो नही है । पहले तो तेरा दिल कृपा और स्नेहमे परिपूर्ण था ।

बस कि दुश्वार है हर कामका आसाँ होना ।
आदमीको भी मयस्सर नहीं इन्साँ होना ।।

दुनियामे आसान-से-आसान काम भी दुश्वार है । यूँ तो हर आदमी इन्सान है । मगर जब तक वह इन्सानी फराइज (मनुष्य कर्तव्य) अदा नही करता, उसे इन्सानियत मयस्सर नही हो सकती ।†

---

[१]फूलो की सुगन्ध से, [२]कैदियो की, प्रेम-पाश मे बँधे हुओ की ।

† हालीने इसी भाव को यूँ व्यक्त किया है—

फरिश्तेसे बहतर है इनसान बनना ।
मगर इसमें पड़ती है महनत जियादा ।।

वह यथार्थ मे इसान नही कहला सकता, और यह कितनी मुश्किल बात है। यथार्थवादमे यह शेर गालिबके श्रेष्ठतम शेरोमे से है।

वाये दीवानगियेशौक़[1] कि हरदम मुझको।
आप जाना उधर[2] और आप ही परेशाँ होना ॥*

हैफ़[3] उस चार गिरह कपड़ेकी क़िस्मत 'ग़ालिब'!
जिसकी किस्मतमें हो आशिकका गिरेबाँ होना ॥

× × ×

दोस्त ग़मख़्वारीमें मेरी सई फ़रमाएँगे क्या ?
ज़ख्मके भरने तलक नाख़ुन न बढ़ जाएँगे क्या ॥

मित्र मेरा क्या दु ख बँटा सकते हैं। वह चाहे जितना इलाज कर ले, और मेरे जख्मो पर मरहम पट्टी कर ले, पर जब तक ज़ख्म भरेंगे, मेरे नाख़ून भी फिर से बढ जाएँगे, और मै नाख़ूनोसे जख्मोको फिर नोच लूँगा।

बेनियाज़ी हदसे गुज़री, बन्दापरवर! कबतलक
हम कहेंगे हालेदिल, और आप फ़रमाएँगे "क्या"? ॥

---

[1]प्रेम का पागलपन, [2]अर्थात् प्रेयसीकी गलीमे; [3]अफ़सोस।

*इसी आशयका एक और शेर है:—

रोज़ कहता हूँ न जाऊँगा कभी घर उनके।
रोज़ उस कूचेमें एक काम निकल आता है ॥

जिगरने प्रेमरोगीकी इस अवस्था को अपने ढंग से व्यक्त किया है—

कूए जानाँकी हवा तकसे भी थर्राता हूँ मै।
क्या करूँ, बेअख़्तियाराना चला जाता हूँ मै ॥

निज़ाम रामपुरी इसी बेबसी को यूँ जाहिर करते है—

अहद किया था अभी कैसा 'निज़ाम'!
फिर वहीं जानेका इरादा किया !!

वन्दापरवर ! आपकी बेनियाजी (बेपरवाही) हदसे गुजर चुकी है। हम अपना बार-बार हाल बयान करते हैं और आप अनसुनी करते हुए यही फ़र्माते हैं कि "क्या कहा, क्या कहा ?" यूँ कबतक हालेदिल बयान किया जा सकेगा ?

हज़रतेनासेह गर आएँ दीदओ दिल फ़र्शेराह।
कोई मुझको यह तो समझा दो कि समझाएँगे क्या ।।

हमारे प्रेमोन्मादका समाचार सुनकर उपदेशक महाराज (नासेह) आना चाहते हैं। आएँ और बडी प्रसन्नतासे हमारे सर आँखों पर (दीद ओ दिल फ़र्शे राह) आएँ, परन्तु कोई मुझे यह तो बताये कि वे मुझे क्या समझाएँगे। इस रोगका रोगी किसीके समझाएसे अच्छा हुआ है क्या ?

गर किया नासेहने हमको क़ैद, अच्छा यूँ सही।
यह जुनूनेइश्क़के[1] अन्दाज़[2] छुट जाएँगे क्या ?

यह न थी हमारी किस्मत जो विसालेयार होता।
अगर और जीते रहते, यही इन्तजार होता ।।

तेरे वादेपै जिए हम तो यह जान झूट, जानाँ।
कि खुशीसे मर न जाते अगर एतबार होता ।।

यह कहाँकी दोस्ती है कि बने हैं दोस्त नासेह।
कोई चारासाज़ होता, कोई ग़मगुसार होता ।।

उपदेश देनेवाले तो संसारमे सभी होते है। मित्रोसे मनुष्य सहानुभूतिकी आशा रखता है। मित्र भी उपदेशक बन जाएँ तो काहेके मित्र हुए ? मित्रको तो चाहिए कि दुखका इलाज करनेवाला (चारा साज) हो, गमको दूर (गमगुसार) करे।

---

[1]प्रेमोन्माद के; [2]ढंग।

ग़म अगर्चे जाँ गुसल हैं, पै कहाँ बचें कि दिल है।
गमेइश्क गर न होता गमेरोजगार होता ॥

यह दिल तो गम उठानेके लिए ही बना है। यह माना कि गमे इश्क जान लेनेवाला (जागुसल) है। परन्तु गमेइश्क न होता तो सान्सारिक झगडोका गम होता। यह शेर गालिबके नश्तरो में से है।

हविसको है निशातेकार क्या-क्या ?
न हो मरना तो जीनेका मजा क्या ॥

ससार मे तृष्णाओ (हविस)को काम करनेकी उमग (निशातेकार) कितनी ज्यादा है, और यह इसलिए है कि जल्दी ही मर जाना है, जो तृष्णा पूरी हो सके कर लो। मरने का भय न होता तो मनुष्य सचेष्ट न होता और जीवनका आनन्द ही जाता रहता।

निगाहे बेमुहाबा चाहता हूँ।
तग़ाफ़ुल हाय तमकीं आज़मा क्या ?

मै आपकी बेतकल्लुफ और मुहब्बत भरी निगाह (निगाहे बेमुहाबा) चाहता हूँ। आपने मेरे सब्र और इस्तकलाल आजमाने (तमकी आजमा) के लिए यह बेरुखी (तगाफुल) क्यो अख़्तयार की हुई है ?

फरोगे शोलये ख़स यक नफ़स है।
हविसको पासे नामूसे वफ़ा क्या ॥

हविसकार (कामुक) को मुहब्बतकी इज्जतका पास नही हो सकता। फरोगे शोलये ख़स (घास की आगका भडकाव) यक नफस (एक पल) के लिए होता है। इसी तरह कामुकका प्रेम टिकाऊ नही होता।

दिले हर कतरा है साजे अनल बहर[1]।
हम उसके है, हमारा पूछना क्या ॥

---

[1] "मै समन्दर हूँ" की धुन।

हर कतरा अपने आपको समन्दरका अग समझता है और "मै समन्दर हूँ" इस बात की रट लगाता है, फिर हमारी महत्ताका तो क्या कहना, हम तो ईश्वरके ख़ासुलखास हुए। तसव्वुफका शेर है।

सीनेका दाग है, वोह नाला कि लबतक न गया।
खाकका रिज्क है वोह कतरा कि दरिया न हुआ॥

जो नाला दिल ही मे घुटकर रह गया, उसका अजाम यह हुआ कि वह सीनेका दाग वन गया। जो कतरा दरियामे आकर नही मिला, वह मिट्टी मे मिलकर मिट गया। अर्थात् जो प्रयत्न पूरा न हो, वह बिल्कुल ही व्यर्थ है।

कतरेमे दजला[1] दिखाई न दे और जुजमें[2] कुल।
खेल बच्चोंका हुआ, दीदएबीना[3] न हुआ॥

अभिप्राय यह है कि प्रत्येक अगमे ईश्वरका रूप दिखाई न दे तो यह आँखका कुसूर है।

थी ख़बर गर्म कि ग़ालिबके उड़ेंगे पुर्ज़े।
देखने हम भी गये थे, पै तमाशा न हुआ॥

× × ×

दिलको हम सर्फेवफा समझे थे, क्या मालूम था?
यानी यह पहले ही नज़रेइम्तहाँ हो जायगा॥

हम तो समझते थे कि दिल हमेशा हमारा साथ देगा। वफा निभाने-मे हमारे काम आयेगा। यह मालूम न था कि इम्तहानके मौके पर उसका पहले ही खात्मा हो जायगा।

बाग़में मुझको न ले जा वर्ना मेरे हालपर।
हर गुलेतर एक चश्मेख़ूँफ़िशाँ[4] हो जायगा॥

---

[1]एक बडे दरिया का नाम, [2]भागमे, अशमे, [3]देखनेवाली आँख, [4]खून बरसानेवाली आँख।

मेरी हालत इतनी दर्दीली और खस्ता है कि मुझे देखकर फूल भी ख़ून के आँसू रोते है। इसलिए मुझे बाग मे ले जानेकी जिद न करो।

वाये[1] गर तेरा-मेरा इन्साफ़ महशरमें न हो।
अबतलक तो यह तवक़्क़ोह[2] थी कि वाँ हो जायगा॥

फ़ायदा क्या? सोच आखिर, तू भी है दाना[3] 'असद'!
दोस्ती नादाँकी है, जीका ज़ियाँ[4] हो जायगा॥

× × ×

दर्द मिन्नतकशेदवा[5] न हुआ।
मैं न अच्छा हुआ, बुरा न हुआ॥

किसीका अहसान सर पर लादना बहुत तकलीफदेह होता है। मेरा दर्द ला इलाज था। दवाने असर न किया तो इससे यह फ़ायदा हुआ कि रोग दवाके अहसान उठानेसे बच गया। मैं अच्छा (तन्दुरुस्त) न हुआ तो न सही, मगर अहसानके बोझसे बच गया यही क्या कम है।*

जमा करते हो क्यों रक़ीबोंको।
इक तमाशा हुआ, गिला न हुआ॥

मैं जब अपना दुखड़ा रोता हूँ तो रकीबोको क्यों बुलाते हो कि आओ तुम भी सुन लो। यानी मैं गिला (शिकायत) कर रहा हूँ और आपने इसे मनोरजन समझ लिया है।

---

[1]अफसोस, [2]आशा, [3]बुद्धिमान, [4]नुकसान; [5]दवाका आभारी,

*जिसने कुछ अहसाँ किया इक बोझ सरपर रख दिया।
सरसे तिनका क्या उतारा सरपै छप्पर रख दिया॥

—अज्ञात

हम कहाँ क़िस्मत आज़माने[1] जाएँ।
तू ही जब खंजरआज़मा[2] न हुआ॥

तेरे ही हाथो हमारी मुक्ति नही हो सकती तो फिर और कहाँ हो सकती है।

है खबर गर्म उनके आनेकी।
आज ही घरमें बोरिया न हुआ॥

किसी सम्भ्रान्त अतिथिके आनेका समाचार पाकर एक स्वाभिमानी दरिद्रकी कैसी दयनीय मनोदशा होती है, यही भाव इस शेरमे दर्शाया है।

जान दी, दी हुई उसीकी थी।
हक़ तो यह है कि हक़ अदा न हुआ॥

हमने संसारमे आकर ईश्वरके प्रति अपना कर्त्तव्य कहाँ निभाया ? ईश्वर के नाम पर मर जानेमे भी तो वह कर्त्तब्य पूरा नही हो सकता। क्योकि जान तो हमे ईश्वरने प्रदान की थी, मर कर उसे ही वापिस सौप दी, इस मे अपनी तरफ से क्या किया। सच्ची (हक) बात तो यह है कि हम कर्तव्य (हक) पूरा न कर सके।

एतबारे इश्क़की ख़ानाखराबी[3] देखना।
ग़ैरने की आह, लेकिन वोह ख़फ़ा मुझपर हुआ॥

मेरे इश्कका उसे इस कदर यकीन और एतबार है कि गैर भी आहो फरियाद करे तो वह मुझी पर खफा होता है।

न था कुछ तो ख़ुदा था, कुछ न होता तो ख़ुदा होता।
डुबोया मुझको होनेने, न होता मैं तो क्या होता॥

---

[1]भाग्य परखनें; [2]खजर चलानेको उद्यत, [3]अर्थात् मुसीबत।

ससारमे आनेसे पहले मैं ईश्वरका अग था। ससारमे न आता, तो ईश्वरका अग ही बना रहता। मनुष्य बननेसे मेरी मिट्टी खराब हुई। मनुष्य न बना होता तो क्या से क्या, अर्थात् साक्षात् ईश्वर होता। इस शेरमे वेदान्तका सारा फलसफा समाया हुआ है।

हुई मुद्दत कि 'ग़ालिब' मर गया पर याद आता है।
वह हर इक बातपर कहना कि 'यूँ होता तो क्या होता' ॥

× × ×

जिन्दगी यूँ भी गुजर ही जाती।
क्यों तेरा राहगुजर याद आया ॥*

---

* इक राहे मुस्तक़ीम पै थी गामजन हयात।
मुड़ने लगे तो उनसे मुलाक़ात हो गई ॥

यह शेर खुर्शीद फरीदाबादीका है जो हमारे अनन्य-मित्रो मे से थे। अफसोस कि वह भी देश विभाजनकी आहुति पर बलिदान हो गये और रावलपिडी चले गये। यहाँ उनकी एक गजल देनेके लोभको हम सवरण नही कर पा रहे है और इस तरह हम उन सुखद दिनोकी याद ताजा कर रहे है, जब सुमत साहबकी कोठी पर उनके अशआर झूम-झूमके सुना करते थे।

इस कदर मायूस फितरत हो गई तेरे बग़ैर।
रंजसे वदली हुई है हर ख़ुशी तेरे बग़ैर ॥

बादयेरंगींकी लज्जत जहर थी तेरे बग़ैर।
तेरी आँखोकी कसम हमने न पी तेरे बग़ैर ॥

सुबहेगुलशन है शबेअफसुर्दगी तेरे बग़ैर।
लौट जाती है बहार आई हुई तेरे बग़ैर ॥

प्रेम की कठिनाइयो से घबराकर कहते ह कि क्यो हमे प्रेम रोग लगा । न तेरा (राहगुजर) रास्ता याद आता, न इस प्रेममे फँसते, न यह मुसीबते सर पर आती और जीवन किसी न किसी तरह व्यतीत हो ही जाता ।

अब मेरी महरूमियोंपर फ़स्लेगुल है तानाजन ।
मुसकराकर छेड़ती है हर कली तेरे बग़ैर ॥

कायनाते हुस्नपर तारीकियाँ छाने लगीं ।
हो रहा है गुलचिराग़े आशिकी तेरे बग़ैर ॥

तुझसे छुटकर कितना फीका पड़ गया है रंगेगुल ।
हो गई बेलेकी कलियाँ साँवली तेरे बग़ैर ॥

कल जहाँका जर्रा-जर्रा तूर दर आग़ोश था ।
आज इस घरमें नहीं है रोशनी तेरे बग़ैर ॥

दिल नहीं झुकता है पहलेकी तरह सजदोंके साथ ।
नामुकम्मिल है मजाकेबन्दगी तेरे बग़ैर ॥

आफ़ताबे रोजेमहशर बन गया फ़ुरक़तमें चाँद ।
हो गई नारेजहन्नुम चाँदनी तेरे बगैर ॥

हर उजालेपै अँधेरेका गुमाँ होने लगा ।
शामेग़म है मेरी सुबहेजिन्दगी तेरे बग़ैर ॥

हो गया तारी ख़यालोंपर जहन्नुम होशका ।
छिन गई है मुझसे ख़ुल्दे बेख़ुदी तेरे बग़ैर ॥

ऐ मेरी उम्मीदके चाँद इतना बतला दे मुझे ।
मेरे घरमें क्यों न निकली चाँदनी तेरे बगैर ॥

हर तमन्नाको शबेफ़ुरकत कुचलकर रख दिया ।
हमको अपने दिलसे जिद-सी हो गई तेरे बगैर ॥

कोई वीरानी-सी वीरानी है।
दश्तको देखके घर याद आया ॥

जगल (दश्त) भी हमारे घरकी वीरानीके सामने कुछ नही।

हुई ताख़ीर तो कुछ बाइसे ताखीर भी था।
आप आते थे मगर कोई अनाँगीर भी था ॥

महबूब मुलाकातको तो आया मगर देर करके आया। इस देरीकी वजह कुछ न कुछ ज़रूर है। यह माना कि आप सीधे मेरी तरफ ही चले आ रहे थे, मगर रास्तेमे किसीने आपको रोका ज़रूर होगा। वर्ना इतनी देर क्यो होती ? सदेह प्रकट किया है कि अवश्य आपको प्रतिद्वन्द्वीने देर करा दी है।

तुझसे बेजा है मुझे अपनी तबाहीका गिला।
इसमें कुछ शाइबए ख़ूबिये तकदीर भी था ॥

आशिक जानता है कि उसकी बरबादी माशूक ही के हाथो हुई है, लेकिन फिर भी इतना कठोर हृदय नही हो सकता कि माशूकको दोषी ठहराए। कहता है कि तुझसे अपनी बरबादीकी शिकायत (गिला) करना अनुचित है। मै तो इसका कारण (शाइबए ख़ूबिए तकदीर) भाग्यचक्र-का प्रकोप समझता हूँ। मेरी तकदीरही मे यह बरबादी लिखी हुई थी।*

नजअके आलममें गुजरा है मेरा दौरेफ़िराक।
मौतके दामनमें खेली जिन्दगी तेरे बग़ैर ॥

जाहिरा दुनिया जिसे महसूस कर सकती नहीं।
हो गई है मुझमें इक ऐसी कमी तेरे बग़ैर ॥

ख़ूनेदिल टपका किया 'ख़ुर्शीद'के हर लफ़्ज़से।
हो गया रंगीं मजाक़े शायरी तेरे बग़ैर ॥

*गालिब ही का एक और शेर है:—

दरियाए मुआसी[१] तुनक आबीसे[२] हुआ खुश्क।
मेरा सरे दामन भी अभी तर न हुआ था॥

गुनाह करनेमे मेरी हिम्मत और हौसलेको देखो कि गुनाहोका दरिया अपने थोड़ेसे जखीरेकी वजहसे खुश्क भी हो गया और मेरे दामनका एक कोना भी नही भीग पाया।

क़ासिदको अपने हाथसे गरदन न मारिये।
उसकी ख़ता नहीं है यह मेरा क़ुसूर था॥

जब माशूक कासिदसे नाराज हो गया और उसकी जान लेने पर उतारू हो गया तो इन्हे ईर्ष्या हुई कि कासिद तो हमसे भी बढ गया। माशूकके हाथोसे मरनेका सौभाग्य प्राप्त करनेके लिए झट बोल उठे कि क़ुसूर मेरा था, इसलिए दण्ड मुझे मिलना चाहिए। "अपने हाथसे" का टुकडा रश्कके पहलूको उजागर करता है।

आईना देख अपना-सा मुँह लेके रह गये।
साहबको दिल न देनेपै कितना ग़रूर था॥

प्रेयसीको इस बातपर अभिमान था कि उसने किसीको भी अपना हृदय नही दिया है, लेकिन आइना देखा तो सब गर्व नष्ट हो गया। अपनी छविको आयनेमे देखकर उस पर इतनी मुग्ध हुई कि बर्बस हृदय न्यौछावर हो गया। भाव यह है कि प्रेयसीका सौन्दर्य्य इतना

नजर लगे न कहीं उसके दस्तोबाज़ूको।
यह लोग क्यों मेरे जख़्मेजिगरको देखते हैं॥

दाग कहते है :—

अजलको दोष दें, तक़दीरको रोएँ, मुझे कोसें,
मेरे क़ातिलका चर्चा क्यों है मेरे सोगवारोंमें॥

[१]गुनाहोका दरिया; [२]थोडा पानी होनेकी वजहसे।

मोहक है कि वह प्रेमीको ही नही, उसे स्वयं भी न्यौछावर होनेको मजबूर करता है।

गो मै रहा रहीनेसितमहाय रोजगार।
लेकिन तेरे ख़यालसे गाफिल नहीं रहा॥

मै जमाने भरके सितम उठाता रहा, लेकिन उस हालतमे भी तेरी यादको नही भूला।*

बेदादे इश्क़से नहीं डरता मगर 'असद'!
जिस दिलपै नाज़ था मुझे वह दिल नहीं रहा॥

इश्क़ की मुसीबतो से तो नही घबराता लेकिन अब पहले जैसी सहन-शक्ति दिल मे नही रही।

रश्क कहता है कि उसका ग़ैरसे इख़लास, हैफ़!
अक़्ल कहती है कि वोह बेमहर किसका आश्ना॥

अपने मन को समझाते है। गैरसे माशूकका (इख़लास) मेल-जोल देखकर रश्कके कारण अफसोस होता है। मगर फिर मनको तसल्ली दते है कि वह तो प्रकृतिसे ही बेवफा है, वह किसीका मित्र नही हो सकता।

ज़िक्र उस परीवशका, और फिर बयाँ अपना।
बन गया रकीब आख़िर, था जो राज़दाँ अपना॥

---

*सवा अकबराबादीका ज़िक्र हम आरम्भमे कर चुके है। इसी मज़मूनका उनका शेर है, और पाठक इसे मित्रके प्रति पक्षपात न समझे तो हम यह कहनेकी धृष्टता करते हैं कि सवाका शेर गालिबके शेरसे भी ऊँचा है:—

यह हमीं है कि तेरा दर्द छुपाकर दिलमें।
काम दुनियाके बदस्तूर किये जाते है॥

एक तो वह परी सूरत (परीवश) माशूक सौन्दर्य्यताकी खान, दूसरे अपने प्रेमके कारण हम उसका वर्णन और भी बढा चढा कर करते है। इसका परिणाम यह हुआ कि हमारा परम मित्र (राजदाँ) हमारा हाल सुनते-सुनते इतना प्रभावित हुआ कि स्वयम् उस पर मोहित हो गया और हमारा प्रतिद्वन्द्वी बन गया।

घिसते-घिसते मिट जाता आपने अबस[1]बदला।
नंगेसिजदासे[2] मेरे संगे आस्ताँ अपना[3]॥

महबूबने मुझे इतना हकीर समझा कि उसके दर्वाजे पर जो मैंने सजदे किये थे, उन सिजदोके चिह्न भी रहने देना मुनासिब न समझ कर उसने दर्वाजेका पत्थर बदलवा दिया। मगर यह फिजूल ही उसने जहमत उठाई। मेरे लगातार सिजदा करते रहनेसे उसके दर्वाजेका पत्थर खुद ही किसी रोज मिट जाता। तब न सिजदेके दाग बाकी रहते, न पत्थर बदलवानेकी आवश्यकता रहती।

ता करे न ग़म्माज़ी कर लिया है दुश्मनको।
दोस्तकी शिकायतमें हमने हमज़बाँ अपना॥

हमने दुश्मन (प्रतिद्वन्द्वी) को भी माशूककी शिकायत करना सिखा दिया है। इससे हमारा मकसद यह है कि वह हमारा हम-जबान और हम-खयाल बन कर हमारी चुगली न खायेगा और जब उससे बातचीतका अवसर मिलेगा तो हमारी तरह उसकी शिकायत ही करेगा। चुगलखोरी-से वह हमे हानि न पहुँचा सकेगा।

दे वह जिस क़दर जिल्लत हम हँसीमें टालेंगे।
बारे आश्ना निकला, उनका पासबाँ अपना॥

माशूकका दरबान जो बेइज्जती करता है, उसकी शर्म मिटानेकी

---

[1]व्यर्थ; [2]सिजदेके कलकसे; [3]दर्वाजेका पत्थर।

क्या खूब तरकीब निकाली है। कहते हैं कि वह दरवान तो हमारा पुराना दोस्त निकल आया। इसलिए उसकी गाली-गलौज तो हम हँसी-मजाक समझते हैं।

हम कहाँके दाना थे, किस हुनरमें यकता थे।
बेवजह हुआ 'ग़ालिब' दुश्मन आसमाँ अपना ॥

प्राय. यह विश्वास है कि बुद्धिमानो और कलाकारो पर भाग्यका प्रकोप रहता है। कहते है कि हम न तो बुद्धिमान है, न किसी कलामे कुशल, फिर न जाने हमसे भाग्य विमुख क्यों है। किस ढंगसे अपना कला-चातुर्य प्रकट कर गये है।

गिरनी थी हमपै, बर्क़े तजल्ली, न तूरपर।
देते हैं बादा जरफेक़दहख़्वार[1] देखकर ॥

यह क्या हुआ कि तजल्ली तूर पर गिर पड़ी, जिससे तूरका पहाड जल कर भस्म हो गया। तूरमे सहन शक्ति कहाँ थी। वह सहन-शक्ति तो हम मे है। पात्रको देख कर दान दिया जाता है। तूर पर तजल्ली-का प्रकाशमान होना कुपात्र को दान देना था।

रहमत[2] अगर क़ुबूल करे, क्या बईद[3] है।
शरमिन्दगीसे उज्र न करना गुनाहका ॥

ईश्वरीय न्यायालयमे यदि मैं लज्जाके कारण अपने अपराधोकी सफाई न दे सकूँ, तो सम्भव है इसी लज्जाको पापोंका प्रायश्चित समझ-कर मुझे और दण्ड न दिया जाय।

जौरसे[4] बाज आये, पर बाज आएँ क्या ?
कहते हैं हम तुझको मुँह दिखलायें क्या ॥

---

[1]शराब पीनेवालेका बर्तन; [2]ईश्वरीय कृपा;
[3]मुश्किल; [4]सितमसे, अत्याचारसे।

जाहिरा तो जुल्मोसितम करनेसे माशूकने गुरेज किया। मगर कहता है कि अब तक जो जौरो जफा किये, उसकी वजहसे मुझे मुँह दिखानेकी हिम्मत नहीं होती ! यह मुँह न दिखाना तो सब जुल्मोसे बढकर सितम है। इसलिए क्या खाक जुल्मोसे गुरेज किया है !

हो लिये क्यों नामाबरके साथ-साथ।
या रब, अपने ख़तको हम ले जाएँ क्या ॥

रातदिन गर्दिशमें हैं सात आसमाँ।
हो रहेगा कुछ न कुछ, घबराएँ क्या ॥

× × ×

लाग हो तो हम उसे समझें लगाव।
जब न हो कुछ भी तो धोखा खाएँ क्या ॥

वह हमसे नाराज हों तो भी हम अपने मनको यह कहकर बहला लें कि वास्तवमे तो वह प्रसन्न हैं, उनकी नाराजगीकी बाते असलमे प्यार की है। पर वह तो हमसे बात ही नही करते, फिर किस तरह मनको झूठी-सच्ची तसल्ली दे।

पूछते हैं वोह कि ग़ालिब कौन है ?
कोई बतला दो कि हम बतलाएँ क्या ॥

× × ×

इशरतेकतरा है दरियामें फ़ना हो जाना।
दर्दका हदसे गुजरना है दवा हो जाना ॥

बून्द (कतरे) की सफलता इसीमें है कि वह दरियामे मिल कर दरिया वन जाये। इसी तरह दर्देइश्ककी दवा यही है कि वह हदसे गुजर जाय। यानी सीमित क्षेत्रको लाँघकर वह विश्वव्यापी हो जाय।

अब जफ़ासे भी हैं महरूम, हम अल्लाह ! अल्लाह !!
इस क़दर दुश्मने अरबाबे वफ़ा हो जाना !!!

हाय रे भाग्य ! उपेक्षाकी भी हद हो गई। वे हम पर कभी कृपा करेंगे, इसकी तो आशा ही नही थी। जो वे जुल्मोसितम करते थे, उन्हीको हम अपने लिए रियायते ख़ास समझते थे। अब वे हम पर जफा करना भी अपनी हतक समझते हैं† ।

एक जगह और कहते है—

वा हसरता कि यारने खींचा सितमसे हाथ।
हमको हरीसे लज्ज़ते आज़ार देखकर ।।

अर्थात् हमे अत्याचारमे आनन्द प्राप्त करते देखकर यारने हम पर अत्याचार करना भी छोड़ दिया।

मुँद गईं खोलते ही खोलते आँखें 'ग़ालिब'!
यार लाये मेरी बालींपै[1] उसे, पर किस वक़्त ?*

× × ×

ऐ दिले ना आक़बतअन्देश[2] ! जब्तेशौक़ कर।
कौन ला सकता है ताबेजलवये दीदारे दोस्त ।।

---

†तेरी सर्दमेहरी से अल्लाह तौबा।
सितम फिर सितम है, यह आफ़त नहीं है ।।
नवाब अच्छन मियाँ—'अश्क' रामपुरी

मेहरबानीको मोहब्बत नही कहते ऐ दोस्त !
आह अब मुझसे तुझे रंजिशे बेजा भी नहीं ।।
——फ़िराक

[1]मेरे सिरहाने;

*आख़िरी शब दीदके क़ाबिल थी बिस्मिलकी तड़प।
सुबहदम कोई अगर बालाए बाम आया तो क्या ?
——इक़बाल

[2]अदूरदर्शी।

जल्वये दीदारसे मूसा भी बेहोश हो गये थे, तूर भी जलकर सुर्मा हो गया था। ऐ अंजाम न सोचनेवाले दिल! उसे देखनेके शौकको मनमे ही दबा कर रख। दोस्तका जलवा देख सके इतनी ताब तुझमे कहाँ है?

ग़ैर यूँ करता है मेरी पुरसिश[1] उसके हिज्रमें।
बेतकल्लुफ़ दोस्त हो जैसे कोई ग़मख़्वारे दोस्त॥

उसके हिज्रमे ग़ैर (प्रतिद्वन्द्वी) हमारा हाल इस तरह पूछता है—जैसे कोई वोह हमारा बेतकल्लुफ और गमख्वार दोस्त हो। मगर हम उसके दिलकी बात अच्छी तरह समझते हैं।

ताकि मैं जानूँ कि है उसकी रसाई वाँ तलक।
मुझको देता हैं पयामे वादयेदीदारे दोस्त॥

चुपके-चुपके मुझको रोते देख पाता है अगर।
हँसके करता है बयाने शोख़िये गुफ़्तारे दोस्त॥

मेहरबानी हाय दुश्मनकी शिकायत कीजिये।
या बयाँ कीजे सपासे लज़्ज़ते आज़ारे दोस्त॥

यह तीनों शेर कितआ बन्द है। दुश्मन मुझे माशूकके दर्शन होनेके वायदेका समाचार (पयामे वादए दीदारे दोस्त) देता है। मेरे प्रेमातुर मनको शान्ति देना उसका उद्देश्य नही है, अभीष्ट यह है कि इस समाचार देनेसे मै यह जानूँ कि उसकी माशूक तक (रसाई) पहुँच है, और इससे मुझे ईर्ष्या और दुख हो। और इसी अभिप्रायसे, जब मुझे रोते देखता है तो माशूककी चचल वार्तालाप (शोखिए गुफतार) का ज़िक्र करने लगता है। ताकि मेरा दिल और जले। समझ मे नही आता कि हम इस दुश्मनकी जाहिरा मेहरबानीका रोना रोएँ या माशूकके सितम करनेसे जो हमे आनन्द प्राप्त होता है, उसका वर्णन करे।

---

[1]पूछ ताछ।

७ ग़मसे मरता हूँ कि इतना नहीं दुनियामें कोई ।
कि करे ताज़ियते मेहरोवफ़ा मेरे बाद ॥

मरनेसे पहले इस गममे मरा जाता हूँ कि मेरे बाद दुनियामे कोई ऐसा नजर नही आता जो मुहब्बत और वफाका मातम (ताज़ियत) करे। मतलब यह कि मेहरोवफा भी मेरे साथ ही मर जाएँगी ।

आये है बेकसियेइश्क़पै रोना 'ग़ालिब' !
किसके घर जायेगा सैलाबेबला मेरे बाद ॥

मेरे मरनेके बाद यह मुसीबतोका तूफ़ान, जिसे इश्क कहते है, कहाँ जायगा ? अर्थात् कोई इसे निभा न सकेगा, अत इश्ककी इस दयनीय अवस्थापर मुझे रोना आता है । अपनी चिन्ता नहीं है, जिस मुसीबतको गलेका हार बनाया हुआ है, उसीका सोच करके घुल रहे है।

जीमें ही कुछ नहीं है हमारे वगर्ना हम ।
सर जाय या रहे, न रहें, पर कहे बग़ैर ॥

× × ×

मक़सद[1] है नाज़ोग़मज़ा वले[2] गुफ़्तगूमें काम ।
चलता नहीं है दश्नओख़ंजर[3] कहे बग़ैर ॥

हरचन्द हो मुशाहदए हक़की गुफ़्तगू ।
बनती नहीं है बादओसाग़र कहे बगैर ॥

भाषामें उपमाओसे काम लेना ही पड़ता है । कभी माशूककी अदा और नखरे (नाज़ो गमज़ा) का दिग्दर्शन कराना हो तो उनकी उपमा छुरी और तलवारसे देनी पड़ती है । और ईश्वरीय चर्चा (मुशाहदए हक) भी हो तब भी उपमाके लिए शराव और सुराही (वादओ सागिर) जैसे शब्दो का प्रयोग अनिवार्य है ।

---

[1]अभिप्राय, [2]परन्तु; [3]छुरी और तलवार ।

न लड़ नासहसे 'ग़ालिब' ! क्या हुआ गर उसने शिद्दत[1] की ।
हमारा भी तो आख़िर जोर चलता है गिरेबाँपर ।।

उपदेशकको ज्यादती करनेसे नही रोक सकते तो कमसे कम अपने कपड़े तो फाड़ सकते है । इसीसे हमारे दिलकी भड़ास निकल जायगी ।

फ़लकसे हमको एशेरफ़ताका[2] क्या-क्या तक़ाज़ा है । ०
मताएबुर्दा[3]को समझे हुए हैं क़र्ज़ रहज़न[4]पर ।।

हमारी सादगी भी कमाल की है । आसमान जिसने हमारे सुख चैनको लूटा है, उसीसे हम यह आशा कर रहे है कि वह फिर हमे सुख चैनके दिन दिखाएगा । जैसे कोई डाकूसे यह उम्मीद करे कि वह चोरी किए हुए मालको कर्जकी तरह लौटा देगा । कितनी निर्मूल आशा है ।

है बस कि हरइक उनके इशारेमे निशाँ और ।
करते है मुहब्बत तो गुजरता है गुमाँ और ।।

चूँकि उनके हर नाजमे जिद्दत होती है और हर इशारेमे नया मतलब होता है । इसलिए वे हमसे मुहब्बत भी करते है तो कुछ और ही ख़याल गुज़रता है और बदगुमानी-सी पैदा हो जाती है । अन्तरगमे यह सकेत भी है कि अपना ऐसा भाग्य कहाँ कि वह हमसे प्रेम करे ।

यारब ! वोह न समझे है न समझेंगे मेरी बात ।
दे और दिल उनको, जो न दे मुझको जबाँ और ।।

हे ईश्वर, देखती आँखो तो उन पर मेरी बातका कुछ प्रभाव नही हो रहा है । अब यही उपाय हो सकता है कि या तो हमे भी इस ढगसे कहना सिखा दे कि उनका दिल पसीजे, या उनका ही दिल बदल दे कि वह मेरी बात सुन और समझ सके ।

---

[1]ज्यादती, [2]सुखके बीते हुए दिनोका; [3]चोरी किया हुआ माल; [4]डाकूपर ।

० जाते हुए कहते हो "क़यामतको मिलेंगे"।
क्या ख़ूब, क़यामतका है गोया कोई दिन और ॥

तुम जो जा रहे हो तो मेरे लिए तो अभी कयामत आ गई। इस लिए कयामतके दिन जो मिलना है, तो अभी मिल लो, और न जाओ। माशूकको ठहरानेके लिए क्या तर्क निकाला है।

० न गुलेनग़मा[1] हूँ न परदयेसाज़[2]।
मैं हूँ अपनी शकिस्तकी[3] आवाज़ ॥

न मेरा अस्तित्व गीत सदृश्य है, न ही मेरे अन्दर कोई राग छुपा हुआ है, मैं तो एक टूटा हुआ दिल लिये बैठा हूँ। तार टूटनेकी आवाज़ तो है, पर गीत न मेरे अन्दर है न बाहर।

हूँ गिरफ़्तारे उलफ़ते सैयाद !
वर्ना बाक़ी है ताक़ते परवाज़§ ॥

कैद करने वालेसे इतना प्यार है कि कैदसे आज़ाद नही होना चाहते; यह बात नही है कि हममे उड कर भाग जानेकी शक्ति (ताकते परवाज) नही है।

मुझको पूछा तो कुछ ग़ज़ब न हुआ।
मैं ग़रीब और तू ग़रीबनवाज़ ॥

मर गया फोड़के सर 'ग़ालिब' वहशी है-है[4]।
बैठना उसका वोह आकर तेरी दीवारके पास ॥

---

[1]गीतोका फूल; [2]वाद्यका परदा (जिसमे वाद्य निहित होता है), [3]टूटे हुए दिलकी, [4]हाय, हाय;

§ पास था नाकामिए सय्यादका ऐ हम सफ़ीर !
वरना मैं, और उड़के जाऊँ एक दानेके लिए ?
—इकबाल

गर तुझको है यक़ीने अजाबत[1] दुआ न माँग ।
यानी बग़ैर यकदिले बेमुद्दआ न माँग ।।

अगर तुझको दुआके कुबूल होनेका यकीन है तो ऐसा दिल माग, जिसमे कोई ख्वाहिश न हो। बेमुद्दआ दिल है तो फिर किसीसे दुआ माँगने-की ज़रूरत नही । ऐसा दिल पा लेना ही गोया सब कुछ मिल जाना है ।

जोफ़से है, नै क़नाअ़तसे यह तर्केजुस्तजू ।
है वबाले तकियागाहे हिम्मते मर्दाना हम ।।

लोग हिम्मते मर्दानाको जिन्दगीका सहारा (तकिया) समझते है । मगर अब हमसे यह भी तग आ गई है । इसी हिम्मतेमर्दानाके सहारे हम अपने दोस्तकी तलाशमे इतने घूमे-फिरे कि मारे कमजोरी (जोफ) के अब हिला नही जाता । हम अपने दोस्तकी तलाश जोफकी वजहसे नही कर सकते । इससे कोई यह न समझे कि हमने निराश हो कर सन्तोष (कनाअत) कर लिया है । नही, खोज करनेकी उमग ज्योकी त्यो बनी हुई है, वही लालसा और चाहत है, परन्तु निर्बलता एक पग नही सरकने देती ।

मुझको दयारेग़ैरमें मारा वतनसे दूर ।
रखली मेरे ख़ुदाने मेरी बेकसीकी शर्म ।।

परदेशमे मरना हर आदमीको नागवार गुज़रता है । मगर मरने-वाला ख़ुदाका शुक्र इसलिए कर रहा है कि परदेशमे बेकफन और बे कब्र पड़े रहे तो भी कुछ बुरा नही मालूम दिया, क्योकि उसके व्यक्तित्वसे कोई परिचित न था । परतु देशमे जहाँ परिचित तो अनेक, पर हितैषी एक भी नही; वहाँ इस तरह मरना बहुत लज्जाजनक होता । यूँ तो जीवन-मे न जाने कितनी बार मनुष्यका अपमान होता है, परन्तु परिचित खड़े

---

[1] स्वीकृतिका विश्वास ।

देखते रहे और उनके समक्ष अपमान होता रहे, यह अत्यन्त कष्टदायक और ग्लानिकारक होता है। अतः परमात्माका धन्यवाद है कि उसने परदेशमे प्राण लेकर बेकसी और मजबूरियोकी शर्म रख ली।

इसी मज़मूनको ग़ालिबने कई तरहसे बाँधा है:—

> हुए हम जो मरके रुसवा हुए क्यों न ग़र्क़ेदरिया।
> न कभी जनाज़ा उठता, न कहीं मज़ार होता॥

अथवा

> करते किस मुँहसे हो गुरबतकी शिकायत 'ग़ालिब'!
> तुमको बेमहरिए याराने वतन याद नहीं?

× × ×

> थी वोह इक शख़्सके तसव्वुरसे।
> अब वोह रानाइयेख़याल कहाँ?

जब प्रेम करते थे तो प्रेयसीके चिन्तनमे तल्लीन रहते थे और अनेक रंगीन विचार मस्तिष्कमे आते थे। अब न प्रेम, न प्रेयसी, तो विचारोमे रंगीनी (रानाइए ख़याल) कहाँसे आवे। जीवनका सोता ही सूख गया है।

> फ़िक्रेदुनियामें सर खपाता हूँ।
> मैं कहाँ, और यह वबाल कहाँ?

सचमुच, एक साहित्यिक अथवा कविके लिए आटे-दालकी चिन्ता हृदयविदारक आडम्बर है।

> आज हम अपनी परेशानियेख़ातिर[1] उनसे।
> कहने जाते तो हैं, पर देखिये क्या कहते हैं*॥

---

[1]मनोवेदना,

*इस विषयके चन्द अशआर दिये जाते है.—

पानीसे सगगज़ीदा डरे जिस तरह 'असद' !
डरता हूँ आईनेसे कि मर्दुमगज़ीदा हूँ ॥

जिस तरह पागल कुत्ते (सगगजीदा) का काटा हुआ पानीसे डरता है, उसी तरह मै आईनेसे डरता हूँ, क्योकि मैं (मर्दुम गज़ीदा) आदमीका काटा हुआ हूँ। औरोसे तो क्या, अपने प्रतिबिम्ब तकसे घबराता हूँ।

क़र्ज़की पीते थे मय, लेकिन समझते थे कि हाँ।
रंग लायेगी हमारी फ़ाक़ामस्ती एक दिन ॥

कहते हैं कि यूँ कहते, यूँ कहते, जो आ जाता।
सब कहनेकी बातें हैं, कुछ भी न कहा जाता ॥

—मीर

जब पुरसिशे हाल वह करते हैं, क्या जानिये क्या हो जाता है।
कुछ यूँ ही जबान नहीं खुलती, कुछ दर्द सिवा हो जाता है ॥

—फ़ानी

कुछ इस अदासे आपने पूछा मेरा मिजाज।
कहना ही पड़ा' 'शुक्र है परवरदिगारका' ॥

—अज्ञात्

पुरसिशेग़मका शुक्रिया, क्या तुझे आगही नहीं।
तेरे बग़ैर जिन्दगी, दर्द है जिन्दगी नहीं ॥

—एहसान दानिश

शुक्रिया पुरसिशे अहवालका, इसरार न कर।
पूछनेवाले, कहीं तेरा ही यह राज़ न हो ॥

—अज्ञात्

० नग़्माहायेगमको[1] भी ऐ दिल ! ग़नीमत जानिये ।
बेसदा[2] हो जायगा यह साज़ेहस्ती[3] एक दिन ॥

कैसा कठोर सत्य इस शेरमे भर दिया है । एक दिन प्राणका पछी उड जायगा, और न दुख शेष रहेगा, न सुख । जब सुख भाग्यमे नही है तो दुख का अत होने का अर्थ है जीवनका समाप्त हो जाना । इसलिए दुखको ही गनीमत जानो कि वह जीवनका द्योतक तो है ।

० किस मुँहसे शुक्र कीजिये उस लुत्फ़ेख़ासका[4] ।
पुर्सिश[5] है और पाएसुख़न[6] दरमियाँ नहीं ॥

आँखो ही आँखोमे बिना किसी प्रकारका वार्तालाप किये मेरे मन-की बात और मेरा हाल पूछ रहे है । उनके इस अनुग्रहका किस प्रकार धन्यवाद करूँ ?

० जब करम रुख़सते बेबाकी-ओ-गुस्ताख़ी दे ।
कोई तकसीर बजुज़ ख़िजलते तकसीर नहीं ॥

जब तू स्वयम् इतना रहमदिल और दयालु है कि हमारे सारे गुनाह माफ कर देगा, और तू स्वयम् अनुमति देता है कि हम निडर और गुस्ताख़ बन बैठे तो अपने गुनाहोपर शर्मिन्दा (ख़िजल) हो, इस अपराध (तकसीर) से बड़ा अपराध और क्या हो सकता है ? अर्थात् और सारे अपराध तो तू क्षमा कर देगा, लेकिन अपराधोसे लज्जित होना

---

[1]रुदनरूपी सगीतको,
[2]बेआवाज़;
[3]जीवन रूपी वाद्य;
[4]विशेष अनुग्रहका;
[5]पूछ ताछ;
[6]वार्तालाप ।

एक ऐसा अपराध है जिसे तू भी क्षमा न करेगा, क्योंकि इससे तेरी क्षमाशक्तिके प्रति अविश्वास झलकता है*।

जहाँ तेरा नक़्शेक़दम देखते हैं।
ख़याबाँ-ख़याबाँ[1] अरम[2] देखते हैं॥

जिस जगह तेरे कदमोके निशान होते है वहाँ बहिश्तके बागका दृश्य दिखाई देता है।

बनाकर फ़क़ीरोंका हम भेस 'ग़ालिब'!
तमाशाए अहले करम[3] देखते हैं॥

× × ×

ता फिर न इन्तज़ारमें नींद आये उम्रभर।
आनेका वादा कर गये आये जो ख़्वाबमें॥

माशूक स्वप्नमे आ कर कह गया कि तू निराश मत हो, मैं अवश्य आ कर तुझे मिलूगा। अब उसकी इन्तजार करनी पड गई और इन्तज़ारमे सो भी नही सकते। यानी घडी दो घड़ीको आँख लगनेसे जो शान्ति मिलती थी वह भी लोप हो गई।

मुझतक कब उनकी बज़्ममें आता था दौरेजाम[4]॥
साक़ीने कुछ मिला न दिया हो शराबमें॥

और लोग शराब पीते रहते थे, हम उनको पीते देखते थे और अपने भाग्यको कोसते थे। आज हमारे पीनेके लिए जो प्याला आया तो सन्देह होता है कि कही शराबमे जहर तो नही मिला दिया। वरना साकीसे

***फ़रिश्ते हश्रमें पूछेंगे पाकबाज़ोंसे।**
गुनाह क्यों न किये, क्या ख़ुदा ग़फ़ूर न था॥

—अज्ञात

[1]बाग; [2]बहिश्त; [3]दानियोका तमाशा; [4]शराबका दौर।

यह आशा कहाँ कि हमे शराब पिलाए। ज़हरकी जगह "कुछ" लिखनेमे शेर चमक उठा है।

मै और हज़्ज़ेवस्ल[1] ख़ुदासाज़[2] बात है।
जाँ नज़्र देनी भूल गया इज़्तराबमें[3] ॥

मै इस हैरतमे रहा कि कहाँ मै और कहाँ वस्लकी लज़्ज़त। मारे ख़ुशीके मुझे मर जाना चाहिए था। परन्तु घबराहटमे जान देनी ही भूल गया।

c लाखों लगाव एक चुराना निगाहका।
लाखों बनाव एक बिगड़ना अताबमे ॥

माशूकका आँखे चुराना लगावटकी लाखों बातोसे भी अधिक आकर्षक है, और गुस्सेमे एक बार बिगड़ना लाखों शृंगारोंसे भी अधिक मोहक।

हैराँ हूँ दिलको रोऊँ कि पीटूँ जिगरको मैं।
मक़दूर[4] हो तो साथ रखूँ नौहागरको[5] मैं ॥

ईरानमे शोक करनेवाले किराये पर आते थे। जो जितना वैभवशाली होता था, अपने निकटजनकी मृत्युके समय उतने ही अधिक शोक करनेवालोको बुलाता था। उसी प्रथाकी ओर इशारा है। चूकि दिलकी और जिगरकी दो मौते एक साथ हो गई है और यह ख़ुद अकेले है, इसलिए नौहागरकी ज़रूरत महसूस हुई है।

जाना पड़ा रक़ीबके दरपर हज़ार बार।
ऐ काश जानता न तेरी रहगुज़रको मैं ॥

---

[1]मिलनका आनन्द; [2]ईश्वरीय देन; [3]घबराहटमे; [4]सामर्थ्य, [5]शोक करनेवालेको।

फिर बेखुदीमें[1] भूल गया राहे कूए यार[2]। ०
जाता वगर्ना एक दिन अपनी ख़बरको मैं ॥

× × ×

छोड़ा न रश्कने कि तेरे घरका नाम लूँ। ०
हर-इकसे पूछता हूँ कि जाऊँ किधरको मैं ॥

रश्ककी वजहसे किसीसे तेरा घर नही पूछ सकता कि कही मुझसे पता सुन कर कोई और न वहाँ पहुँच जाय। इस लिए रास्ता मालूम करनेके लिए बस इतना पूछता हूँ कि क्यों भाई मै किधरको जाऊँ। ऐसा पथिक निर्दिष्ट स्थान पर कब और कैसे पहुँचेगा, इसका अनुमान भी नही किया जा सकता। रश्कने किस दयनीय स्थितिको पहुँचा दिया है।

जिक्र मेरा ब-बदी भी उसे मंजूर नहीं।
ग़ैरकी बात बिगड़ जाय तो कुछ दूर नहीं ॥

आज कल तो गैरकी माशूकके साथ बनी हुई है। लेकिन जल्दी चटक जायगी। कारण, वह मेरी बुराई करनेसे बाज नही आयगा, और माशूक मेरा नाम (ब-बदी) बुराईके शब्दोमे भी सुननेको तय्यार नही। गैर अपनी हरकत नही छोड़ेगा और इसलिए माशूक उससे भी बिगड़ जायगा।

क़तरा अपना भी हक़ीक़तमे है दरिया लेकिन।
हमको तकलीदे तुनक ज़र्फ़िए मनसूर नहीं ॥

हम भी वह बून्द (कतरा) है जो दरिया बनजानेकी शक्ति रखते है, परन्तु अपनी शक्ति और महत्ताका वर्णन अपने मुँहसे नही करना चाहते। क्योकि हम मन्सूरकी तरह ओछे (तुनकजर्फ) नही है, जिसने अपने मुँहसे अनलहक (मै ईश्वर हूँ) कह दिया था। हम उसका अनुकरण (तकलीद) नही करेगे।

---

[1]तन्मयतामे, [2]प्रेयसीकी गलीका रास्ता।

० मैं जो कहता हूँ कि हम लेंगे कयामतमें तुम्हें।
किस रऊनतसे[1] वोह कहते है कि "हम हूर नही" ॥

× × ×

० कम नहीं वोह भी खराबीमें पै वुसअ़त मालूम।
दश्तमें है मुझे वह ऐश कि घर याद नहीं ॥

यूँ तो हमारा घर भी उजाडपने और वीरानीमें किसी जंगलसे कम नही। मगर उसका क्षेत्र सीमित है। उसमे इतनी विशालता नही जो हमारे उन्मादके लिए चाहिए। इसी कारण घर छोड़ कर हम जगलोमें रहते है, और वह जगह हमे इतनी आरामदेह है कि हमे भूलकर भी घर याद नही आता।

० कम नहीं जलवागरीमें तेरे कूचेसे बहिश्त।
यही नक़्शा है वले[2] इसकदर आवाद नहीं ॥

सजावट तो वहिश्तमे भी माशूककी गलीसे कम नही है, परन्तु भीड-भाड़ और रौनक इतनी नही है। किस ढगसे माशूककी गलीको वहिश्तसे वढ़ा कर दिखाया है।

० थक-थकके हर मुकामपै दो-चार रह गये।
तेरा पता न पाएँ तो नाचार क्या करें ॥

शेर तसव्वुफमे है। ईश्वरको खोजनेवाले रास्तेमे ही थककर रह जाते है।

० हो गई है ग़ैरकी शीरींबयानी कारगर[3]।
इश्कका उसको गुमाँ[4] हम वेजबानोंपर नहीं।

गैर चरब-चरब वोलकर और चिकनी-चुपड़ी वाते करके माशूक-को फुसला लेता है। हमे ऐसी वाते नही आती और चुप रहते है तो वह इसका यह अर्थ निकाल बैठा है कि हम उसके प्रेमी नही है।

---

[1]गर्वसे; [2]लेकिन; [3]सफल; [4]सन्देह।

दिल लगाकर लग गया, उनको भी तनहा बैठना। ०
हाय अपनी बेकसीकी हमने पाई दाद याँ ॥

हम तो बेकस थे ही वह भी किसीको दिल दे बैठे और अब उन्हे भी पता लग गया कि प्रेममे क्या पापड़ बेलने पड़ते है।

यह हम जो हिज्रमे दीवारोदरको देखते हैं। ०
कभी सबाको कभी नामाबरको देखते है ॥

दीवारको इसलिए देखते है कि शायद उसके कूचेकी हवा ही इस तरफ आजाय और हमारे विरह-पीडित मनको शान्ति दे और दरवाज़ेको इसलिए कि कासिद अब भी आये, अब भी आये।

वोह आएँ घरमें हमारे ख़ुदाकी क़ुदरत है। ०
कभी हम उनको कभी अपने घरको देखते है ॥*

इतना वडा सौभाग्य हमारा हो सकता है, सुदामाके घर कृष्ण आ सकते है, यह विश्वास ही नही होता।

जहाँमे हों गमोशादी बाहम[1] हमे क्या काम। ०
दिया है हमको ख़ुदाने वह दिल कि शाद नहीं ॥

---

*इस शे'र पर एक साहबने मज़ाहिया तजमीन करके शे'रको दो कौडीका करके रख दिया है—लेकिन नई बात निकाली है जो दिलचस्पीसे ख़ाली नही।

सुना है जबसे कि चोरीकी उनको आदत है।
हमें हिफ़ाज़ते सामाँकी सख़्त दिक़्क़त है ॥
निगाहदाश्तकी हर वक़्त किसको फ़ुर्सत है।
वह आएँ घरपै हमारे ख़ुदाकी क़ुदरत है ॥
कभी हम उनको कभी अपने घरको देखते हैं।

[1]परस्पर।

लोग कहते है कि जहाँ सुख है, वहाँ दुख है, जहाँ शोक है, वहाँ हर्ष भी है। हमे तो इससे मतलव कुछ नही, क्योकि हमारे भाग्यमें तो दुख ही दुख है।

कभी जो याद भी आता हूँ मै तो कहते है—
कि "आज बज़्ममें कुछ फ़ितन-ओ-फ़िसाद[१] नहीं।।"

तुम उनके वादेका जिक्र उनसे क्यों करो 'ग़ालिब'!
यह क्या कि तुम कहो और वोह कहें कि याद नहीं*।।

आशय यह है कि इतना भी गिरना किस कामका।

आहका किसने असर देखा है?
हम भी इक अपनी हवा बाँधते हैं।।

आह करनेका कुछ प्रभाव नही होगा, यह हम भी जानते है। हम तो केवल शेख़ीके मारे कहते है कि हमारी आह उनको प्रभावित करके रहेगी।

सब कहाँ कुछ लालओगुलमें नुमायाँ हो गईं।
ख़ाकमें क्या सूरतें होंगी कि पिनहाँ हो गईं।।

सब सूरते तो नही, हाँ कुछ सूरते फूलोके रूपमे प्रकट (नुमाया) हुई है। यानी फूलोके सौन्दर्यसे अनुमान लगाया जा सकता है कि मिट्टी-मे कैसी-कैसी सूरते विलीन हो गई है।

---

[१]झगड़ा, ऊधम,

*तेरे सवालपै चुप है इसे ग़नीमत जान।
कहीं जवाब न दे दें कि मै नही सुनता।।

——अज्ञात

अर्ज़ेग़म न कर ऐ दिल, देख हम न कहते थे।
रह गये वह 'ऊँह' कहकर, सुन लिया जवाब उनका!

——जिगर मुरादाबादी

याद थीं हमको भी रंगारंग बज्मआराइयाँ। ०
लेकिन अब नक़्शोनिगारे ताक़ेनिसयाँ हो गईं॥

ऐ बज्म आराई पर नाज करने वालो! हम भी बज्मकी रगा-रगी (सुखके दिन) देख चुके है। मगर अब तो वे दिन ताकेनिसियां (वह आला जिसमे कोई वस्तु रखकर भूल जाएँ) की सजावट (नकशो-निगार) के रूपमे रह गये है अर्थात् स्मृतिपटसे भी लोप हो गये है।

नींद उसकी है, दिमाग़ उसका है, रातें उसकी हैं। ०
तेरी ज़ुल्फ़ें जिसके बाज़ूपर परेशाँ हो गईं॥*

रंजसे ख़ूगर हुआ इन्साँ तो मिट जाता है रंज। ०
मुश्किलें इतनी पड़ीं मुझपर कि आसाँ हो गईं॥

× × ×

वाँ जो पहुँचा भी तो उनकी गालियोंका क्या जवाब?
याद थी जितनी दुआएँ सर्फ़े दरबां हो गईं॥

माशूकके घर घुसते ही पहिले तो दरबानने गालियोसे सत्कार किया। उसको गालियोंके बदले असीस दी। नही तो वह अन्दर कब घुसने देता? अन्दर पहुँचे तो माशूकने गालियोसे खबर ली। उसको भी बदलेमें दुआ देना जरूरी। लेकिन जो दुआएँ याद थी, वह दर्बानको दे आये। दरबानवाली दुआएँ माशूकको कैसे दे, इसमे उसकी हतक है। नई और याद नही। इसी असमजसमे है।

दिलको नियाजे हसरते दीदार कर चुके। ०
देखा तो हममें ताक़ते दीदार भी नहीं॥

---

*दिन वही दिन है शब वही शब है। ०
जो तेरी यादमें गुजर जाएँ॥
—हसरत मोहानी

हसरते दीदार (देखनेकी अभिलाषा) के पीछे रो-रो कर और घुल-घुल कर हमने दिल नष्ट कर दिया। यानी जिस दिलको हसरते दीदार थी, हमने उसी को नष्ट कर दिया। मगर जब उनका दीदार हुआ, तो पता लगा कि हम मे उनका सौन्दर्य्य देखने की शक्ति ही नही है, अर्थात् सारा प्रयत्न व्यर्थ गया।

० मिलना तेरा अगर नहीं आसॉ तो सहल है।
दुश्वार तो यही है कि दुश्वार भी नही॥

तेरा मिलना आसान न होता, यानी दुश्वार होता तो कोई दिक्कत नही थी। क्योकि हम हताश होकर बैठ रहते और उत्कठा तथा अभिलाषा की चिन्तासे मुक्ति पाते। परन्तु मुश्किल तो यह है कि तेरा मिलना जिस तरह आसान नही, उसी तरह दुश्वार भी नही। प्रयत्न करने पर सफलता मिल सकती है। इसी आशा और विश्वास पर हम दिन-रात सलग्न रहते हैं।

० बेइश्क उम्र कट नहीं सकती है और यॉ।
ताकत बकदरे लज्जते आजार भी नहीं॥

जिस जीवनमे प्यार नही वह जीवन भी क्या ? प्रेमके बिना जीवन व्यतीत हो ही नही सकता, परन्तु यहाँ निर्बलताका यह हाल है कि कष्टोके आनन्दको सहन करनेकी भी क्षमता नही रही; फिर प्रेम किस बलबूते पर किया जाय ?

० शोरीदगीके हाथसे सर है वबालेदोश।
सहरामें ऐ खुदा कोई दीवार भी नही॥

हमारी दीवानगी (शोरीदगी) का यह आलम है कि अपने कन्धों पर सरका बोझ भी वबालेजान मालूम होता है। जी चाहता है कि सरको फोड़-फोड़ कर ख़त्म कर दे, मगर अफसोस जगलमे सर फोड़नेको दीवार भी नही मिलती।

गुंजाइशे अदावते अग़ियार इक तरफ़ । ०
याँ दिलमें ज़ोफ़से हविसे यार भी नहीं ॥

हम प्रतिद्वन्द्वी (अगियार) के प्रति शत्रुताके भाव कहाँसे रखे। हमारा हृदय तो निर्बलताके कारण अब प्रेयसीकी चाहतका भार भी नही उठा पा रहा है।

न जानूँ नेक हूँ या बद हूँ, पर सुहबत मुख़ालिफ़ है । ०
जो गुल हूँ तो हूँ गुलखनमें जो खस हूँ तो हूँ गुलशनमें ॥

यह तो मुझे मालूम नही कि मै अच्छा हूँ या बुरा हूँ। लेकिन सुहवत मुझे मुखालिफ मिली है अर्थात् वातावरण प्रतिकूल है। यदि मै फूल हूँ तो बजाय गुलशनके मै भट्टी (गुलख़न) मे हूँ और अगर मै काटा (ख़स) हूँ तो चमनमे हूँ।

दिल ही तो है न संगोख़िश्त[1] दर्दसे भर न आये क्यों ? ०
रोएँगे हम हज़ार बार, कोई हमें सताये क्यों ?

दैर[2] नहीं, हरम[3] नहीं, दर नहीं, आस्ताँ[4] नहीं । ०
बैठे है रहगुज़रपै[5] हम, ग़ैर हमे उठाए क्यों ॥

× × ×

क़ैदेहयातो बन्देगम अस्लमें दोनों एक हैं । ०
मौतसे पहले आदमी ग़मसे निजात पाए क्यों ?

यह जीव शरीर रूपी पिजरेमे कैद है। जब तक इस शरीरमें रहेगा कष्ट उठाता रहेगा। जिन्दगी और कष्टोका बधन (कैदेहयात और बन्देगम) परस्पर भिन्न नही, अपितु एक ही अवस्थाके दो नाम है।

---

[1]ईट-पत्थर, [2]मन्दिर; [3]मस्जिद;
[4]किसीकी बैठक; [5]रास्तेमे।

दुखोके पुजको ही जिन्दगी कहते है। इसलिए मुक्तिसे पूर्व गमोसे छुटकारेकी आशा व्यर्थ है*।

○ वॉ वोह गरूरे इज्जोनाज यॉ यह हिजाबेपासे वजअ़।
राहमें हम मिलें कहॉ, बज्ममें वोह बुलाएँ क्यों?

उन्हे अपने हुस्न पर गरूर है और हम अपनी वज़अदारी (स्वाभिमानता) के सबब घरसे नही निकलते। मारे घमडके वे हमे महफिलमें नही बुलाते और हम घरसे न निकलनेकी वजहसे रास्तेमें नही मिलते, फिर मुलाकात हो तो कैसे हो?

○ हॉ वोह नहीं खुदापरस्त, जाओ वोह बेवफा सही!
जिसको हो दीनोदिल अजीज उसकी गलीमें जाये क्यों?

जब लोगोने नुकताचीनी करते-करते नाकमे दम कर दिया, किसीने कहा कि तुम्हारा माशूक नास्तिक है, किसीने कहा कि वह बेवफा है, तो झल्ला कर कहते है कि हॉ, वह तो सब कुछ है, परन्तु जिसको अपना धर्म और दिल प्यारा हो, वह उस नास्तिक और बेवफाकी तरफ रुख ही क्यो करे।

○ ग़ालिबे खस्ताके[1] बग़ैर कौन-से काम बन्द है।
रोइये जार-जार क्या, कीजिये हाय-हाय क्यों?

× × ×

रातके वक़्त मय पिये साथ रक़ीबको लिये।
आये वोह यॉ खुदा करे, पर न करे खुदा कि यूँ॥

---

*एक और जगह गालिब इसी मज़मूनको यूँ बाँधते है:—
गमे हस्तीका 'असद' किससे हो जुज मर्ग इलाज।
शमअ़ हर रंगमें जलती है सहर होने तक॥

[1]फटे हालके।

ख़ुदा करे वे रात को यहाँ आएँ । मगर साथमें न रकीव हो, न शराब पी-हुई हो ।

मुझसे कहा जो यारने "जाते है होश किस तरह ?" ०
देखके मेरी बेखुदी चलने लगी हवा कि "यूँ" ।।

× × ×

ताअ़तमें ता रहे न मय ओ अंगबींकी लाग । ०
दोज़ख़मे डाल दो कोई लेकर बहिश्तको ।।

बहिश्तमे शराब और शहद जी भर कर मिलेगे । इसी लालचमें लोग ख़ुदाकी इबादत करते है ताकि ख़ुश होकर वह बहिश्तमे भेज दे । मगर यह इबादत ख़ुदगरजीको लिये हुए है । इसलिए इस बहिश्तको दोज़ख़में फेक दिया जाय ताकि बेगरज हो कर लोग इबादत करें, ऐसा करनेसे असली और नकली उपासकोका पता लग जायगा कि कौन निष्काम और कौन स्वार्थवश उपासना करते है ।*

वारस्ता इससे है कि मुहब्बत ही क्यों न हो । ०
कीजे हमारे साथ अदावत ही क्यों न हो ।।

हम इस फर्माइशसे आजाद (वारस्ता) है कि आप हमसे मुहब्बत ही करे । चाहे तो आप हमसे अदावत ही रखे, मगर वोह हमीसे हो, किसी गैरसे न हो । क्योकि मुहब्बत हो या अदावत, हम किसी औरकी शिरकत उसमे बर्दाश्त नही कर सकते ।

है आदमी बजाए ख़ुद इक महशरेख़याल । ०
हम अंजुमन समझते है ख़िलवत ही क्यों न हो ।।

***सौदागरी नहीं यह इबादत ख़ुदाकी है । ०**
ऐ बेख़बर, जज़ाकी तमन्ना भी छोड़ दे ।।
—इकबाल

मनुष्यके दिलमें अनेक विचार चक्कर काटते रहते है, अकेलेपन (खिलवत) मे भी एक विचारोकी महफिल (अजुमन) छाई रहती है।

वफादारी बशर्ते इस्तवारी अस्ल ईमाँ है।
मरे बुतखानेमें तो काबेमें गाड़ो बिरहमनको ।।

जब ब्राह्मण अपनी सारी उम्र मन्दिरमे काट दे और उसीकी पूजा करते हुए मर जाये तो वह इस प्रतिष्ठाका अधिकारी है कि उसकी समाधि काबेमे बनाई जाये। क्योकि उसने अपना समस्त जीवन एक ही क़रीने-से बिताया। जिसका एक बार हो गया, उसको मरते दम तक निभाया, यही ईमान और प्रेमकी सच्ची कसौटी है।

॰शबको किसीके ख्वाबमें आया न हो कहीं।
दुखते है आज उस बुतेनाज़ुकबदनके पाँव ।।*

× × ×

॰ तुम वोह नाज़ुक कि खमोशीको फ़ुगाँ कहते हो।
हम वोह आजिज कि तगाफुल भी सितम है हमको ।।

तुम हमारे चुप रहने को भी रोना समझ कर नाराज होते हो। हम इतने दीन-हीन है कि तुम्हारा सितम तो क्या उपेक्षाभाव भी सहन नही कर सकते।

॰तुम जानों तुमको ग़ैरसे जो रस्मोराह हो।
मुझको भी पूछते रहो तो क्या गुनाह हो ।।

मैं गैरसे मिलनेको तो मना नही करता, पर मेरी भी पूछ-ताछ करते रहोगे तो अनुग्रह होगा।

---

*क्या नजाकत है कि आरिज उनके नीले पड़ गये।
हमने तो बोसा लिया था ख्वाबमें तसवीरका ।।
—अज्ञात

जब मयकदा छुटा तो फिर अब क्या जगह्की कैद ।
मस्जिद हो, मदरसा हो, कोई ख़ानकाह हो ॥

जब शराब खाना ही छुट गया तो आदमी कही भी बैठ कर पी ले। मस्जिद, पाठशाला अथवा मठ, कोई भी स्थल हो । धार्मिक स्थानोका नाम लेकर जान बूझ कर जाहिदका मुँह चिढाया है ।

सुनते है जो बहिश्तकी तारीफ़ सब दुरुस्त ।
लेकिन ख़ुदा करे वोह तेरी जलवागाह हो ॥

तू वहाँ पर न हो तो ऐसी बहिश्तको क्या हम फूँकेगे ?

वोह अपनी ख़ू[1] न छोड़ेगे हम अपनी वजअ़[2] क्यों छोड़े ?
सुबकसरबनके[3] क्या पूछें कि हमसे सरगराँ[4] क्यों हो ॥

× × ×

किया ग़मख्वारने रुसवा लगे आग इस मुहब्बतको ।
न लाये ताब जो गमकी वोह मेरा राजदाँ क्यों हो ॥

हम तो मोहब्बतकी आगको किसी तरह अपने कलेजेमे दबाए हुए थे; परन्तु गमख्वार बर्दाश्त नही कर सका और लगा फरियाद करने । उसके फरियाद करनेसे भेद खुल गया और बदनामी हो गई । ग़मख्वार कमबख्तमे बर्दाश्त नही थी तो मेरा विश्वासपात्र क्यो बना था । हमारा जब्त देखिये कि जिस चीजको गमख्वार स्वय भुक्तभोगी न होते हुए भी न झेल सका, हम उसे अपने पर बीतने पर भी मुहँसे उफ न करते थे । [मेरे एक मित्र हैं जिनकी साहित्यक क्षेत्रमे काफी ख्याति है। उनकी माताने एक सभ्रान्त महिलाके यहाँ कुछ धन जमा किया था, किन्तु उनकी आर्थिक स्थिति यकायक बिगड जानेसे वह धन वापिस न मिल सका । वक्त बे वक्त की जरूरत के लिए ही किसी तरह जोड-तोड़ कर

---

[1]आदत; [2]आन, [3]अपने दर्जेसे गिरकर, [4]नाराज ।

उनके यहाँ जमा कराया था, किन्तु जब वे देने योग्य ही न रही तो मन ही मनमे इस व्यथाको पीकर वे चुप हो गईं और अनेक आर्थिक कष्ट सहने पर भी यह भेद किसीको न बताया, किन्तु अपनी बडी लडकीके समक्ष रुपये जमा कराये थे अत उसे यह भेद मालूम था। उनकी जब माँ मरने लगी तो मै भी मौजूद था। माँके मरने पर उसकी प्रशसामे रोते हुए बेटीने इसका संकेत किया तो मेरे मित्र तत्काल बोले--"बहन! जिस भेद-को माँने मरते दम तक छुपाया, तुमने उसके मरते ही फाश क़र दिया।" तभी मेरे मुँहसे गालिबका उक्त शेर यकायक निकल गया था]

वफा कैसी, कहाँका इश्क जब सर फोड़ना ठहरा।
तो फिर ऐ संगदिल तेरा ही संगेआस्ताँ[1] क्यो हो ?

× × ×

कफ़समें मुझसे रूदादे चमन कहते न डर हमदम।
गिरी है जिसपै कल बिजली वोह मेरा आशियाँ क्यों हो॥

इस शेरमे एक पूरी कहानी बयान कर दी है। एक पछी पिंजरेमे बन्द है। एक और साथी भी गिरफ्तार हो कर आया है। पहिला पछी नवागतसे चमनका और अपने घोसलेका हाल पूछना चाहता है। हाल यह है कि घोसलेको बिजलीने जला कर राख कर डाला है। नवागत इस दुसबादको सुनानेमे झिझकता है। इसका मन भी नवागतकी चुपसे आशङ्कित हो जाता है। फिर भी पूरी बात जाने बिना चैन नही है। उसे हौसला देनेके लिए कहता है कि तू पूरी बात बता दे, तुझे गलत-फ़हमी हुई है, बिजलीने किसी औरका घोसला फूँका होगा। इस प्रकार कूजेमे दरिया बन्द करना गालिबका ही काम था।

यह फित्ना[2] आदमीकी ख़ानावीरानीको[3] क्या कम है ?
हुए तुम दोस्त जिसके दुश्मन उसका आसमाँ क्यों हो ?

---

[1]चौखटका पत्थर, [2]माशूकसे अभिप्राय है; [3]बरबादी को।

यही है आजमाना तो सताना किसको कहते है ।
उदूके हो लिये जब तुम तो मेरा इम्तहाँ क्यों हो ॥

जब तुम मेरे हो ही नही सकते दुश्मनके हो लिये, तो फिर मेरी परीक्षा लेनेसे क्या लाभ ? परीक्षामे उत्तीर्ण होने पर भी जब तुम्हे पानेकी आशा नही, तो ऐसी परीक्षा तो सितम ही है ।

तोड़ बैठे जब कि हम जामोसुबू[1] फिर हमको क्या ?
आसमाँसे बादयेगुलफ़ाम[2] गर बरसा करे ॥*

मस्जिदके जेरेसाया ख़राबात चाहिए ।
भौंपास आँख किब्लयेहाजात[3] चाहिए ॥

ऐ वाइज ! मसजिदके नजदीक शराबख़ाना भी उसी तरह लाज़िमी है, जैसे भवोके करीब आँख । जेरसायेसे मुराद नजदीकके ही नही, बल्कि सरपरस्तीके भी है । यानी मसजिदके सरक्षणमे ही शराबखाना जारी किया जाय, ताकि नमाजियो और रिन्दोमे भाई चारा भी निभ सके । भवे महराबदार होती है और आँख मस्तीभरी, इसलिए मसजिद और शराबख़ानेकी उपमा इनसे दी है ।

मेरे दिलमें है 'ग़ालिब'! शौके वस्लो[4] शिकवए हिज्राँ ।[5]
ख़ुदा वह दिन करे जब उससे मैं यह भी कहूँ वह भी ॥

---

[1]मद्य पात्र; [2]गुलाबी रगकी शराब;

* **बुलबुलने आशियाना चमनसे उठा लिया ।**
उसकी बलासे बूम बसे या हुमा बसे ॥

—अज्ञात

[3]आवश्यकताओकी पूर्त्तिका केन्द्र, [4]मिलनकी अभिलाषा;
[5]विरहकी शिकायत ।

गैरसे देखिये क्या खूब निबाही उसने।
न सही हमसे, पर उस बुतमें वफा है तो सही॥

अतएव उसे बेवफा कहना उपयुक्त नहीं।

ता हमको शिकायतकी भी बाकी न रहे जा[1]।
सुन लेते हैं गो जिक्र हमारा नही करते॥

आँखकी तसवीर सरनामेपै[2] खींची है कि ता—
तुझपै खुल जावे कि इसको हसरतेदीदार[3] है॥

पीनसमें गुजरते हैं जो कूचेसे वोह मेरे।
कन्धा भी कहारोको बदलने नही देते॥

खिजाँ क्या? फ़स्लेगुल कहते हैं किसको? कोई मौसम हो।
वही हम हैं, कफ़स है, और मातम बालोपरका है॥

दिनपर दिन बीतते चले जाते है, हम उसी तरह रोते-पीटते रहते है, हमारी अवस्थामे परिवर्तन ही होनेमें नही आता।

हम भी तसलीमकी खू डालेंगे।
बेनियाजी तेरी आदत ही सही॥

लापरवाहीकी जो शिकायत की तो जवाब मिला कि मैंने कोई जान कर लापरवाही थोडा ही की थी, मेरी तो आदत ही ऐसी है। फर्माया है कि अच्छा तेरी तो आदत बदलनेसे रही, हम भी तेरे इस व्यवहारको सहर्ष सहन करनेकी आदत डालेगे, क्योंकि तुझसे बिगाड़ करनेकी सामर्थ्य हममे नही है।

---

[1] मौका; अवसर,
[2] लिफाफे पर;
[3] देखनेकी अभिलाषा।

यारसे छेड़ चली जाय 'असद'।
गर नहीं वस्ल तो हसरत ही सही ॥

× × ×

उस बज़्ममें मुझे नहीं बनती हया किये।
बैठा रहा अगर्चे इशारे हुआ किये ॥

मँजा हुआ आशिक ढीठ बन जाता है। उनकी महफ़िलमें तरह तरहके अपमानजनक इशारे लोग मेरी तरफ करते है, फव्तियाँ कसते है, लेकिन मै हूँ कि वेहयाईकी चादर ओढे बैठा रहता हूँ।

मकदूर[1] हो तो ख़ाकसे पूछूँ कि ऐ लईम[2]!
तूने वोह गंजहाये गिराँमाया[3] क्या किये ?

× × ×

रखता फिरूँ हूँ ख़िरक़ा ओ सज्जादा रहने मय।
मुद्दत हुई है दावते आबो हवा किये ॥

नमाजी कपड़े (खिरका) और नमाज़ पढ़नेका आसन (सज्जादा) शराब खरीदनेके लिये गिरवी रख दिये है। पल्ले फूटी कौड़ी नही और शराब पिये (दावते आबो हवा किये) बहुत दिन हो गये थे और पीनेको बहुत जी कर रहा था, इसलिए यह नौबत आई। घरके सारे सामानमेसे नमाजी कपडे और नमाज पढनेके आसनको ही गिरवी रखनेके लिए छाँटना अर्थात् इनको ही निरावश्यक समझना, और वह भी शराब पीनेके लिए, कमालकी शोखी है।

---

[1]सामर्थ्य, [2]कजूस;
[3]अमूल्य खजाने अर्थात् अनेक ख्याति प्राप्त कलाकार जो मरनेपर खाकमे दबाये गये है।

सुहबतमें ग़ैरकी न पड़ी हो कहीं यह ख़ू ।
देने लगा है बोसे बग़ैर इल्तजा किये ॥

° जिदकी है और बात, मगर ख़ू[1] बुरी नहीं ।
भूलेसे उसने सैकड़ों वादे वफ़ा किये ॥

° 'ग़ालिब'! तुम्हीं कहो कि मिलेगा जवाब क्या ?
माना कि तुम कहा किये और वोह सुना किये ॥

गुजरा 'असद' मसर्रते पैग़ामेयारसे ।
क़ासिदपै मुझको रश्के सवालोजवाब है ॥

मैं यारके सन्देशेके आनन्द (मसर्रते पैगामे यार) से बाज आया । मुझे तो इस बातकी ईर्ष्या हो रही है कि क़ासिदको यारसे वार्तालाप करनेका सौभाग्य क्यों प्राप्त हुआ ।

° देखना किस्मत कि आप अपनेपै रश्क आ जाय है ।
मैं उसे देखूँ भला कब मुझसे देखा जाय है ॥

ईर्ष्याका यह आलम है कि अपने आपको भी ग़ैर समझ लिया है, और ईर्ष्या उत्पन्न हो गई है, इसलिए माशूकको देख ही नही सकते है । दुर्भाग्य इसे कहते है ।

° ग़ैरको यारब ! वोह क्योंकर मनएगुस्ताखी करे ।
गर हया भी उसको आती है तो शरमा जाय है ॥

ऐसे उदाहरण आये दिन देखनेमे आते है, दुष्टोके छेड़ने पर भी सम्भ्रान्त कुलकी ललनाएँ लज्जाके कारण अपना मुहँ नही खोलती है ।

° गरचे है तर्जे तग़ाफ़ुल पर्दादारे राजेइश्क ।
पर हम ऐसे खोये जाते है कि वोह पाजाय है ॥

---

[1] आदत ।

यद्यपि हम अपने प्रेमको गुप्त रखनेका भरसक प्रयत्न करते है, और उसकी ओरसे उपेक्षाभाव (तर्ज़ेतगाफ़ुल) बनाये रखते है; परन्तु हम उसके प्रेममे इतने लीन हो जाते है, और सुध-बुध खो बैठते है कि वह हमारे हृदयके भाव भॉप लेता है।

साया मेरा मुझसे मिस्लेदूद भागे है 'असद'!
पास मुझ आतिशबजॉके किससे ठहरा जाय है॥

प्रेम-अग्नि मेरे हृदयमे ऐसी सुलगी हुई है कि मेरी परछाई भी धुएँ (दूद) की तरह मुझसे भागती है, इष्टमित्रोका तो जिक्र ही क्या? मुझ दग्ध हृदयके पास ठहरनेकी सामर्थ्य किसीमे नही है।

हविसेगुलका तसव्वुरमें भी खटका न रहा।
अजब आराम दिया बेपरोबालीने मुझे॥

सैयादने मुझको सतानेकी नीयतसे मेरे पर और बाल नोचे। मगर मेरे लिए वह अत्याचार वरदान सिद्ध हुआ। क्योकि गुल तक पहुँचनेकी क्षमता न रहनेके कारण अब मुझे स्वप्नमे भी फूलकी तृष्णा नही खटकेगी*।

देखना तकरीरकी लज्ज़त कि जो उसने कहा।
मैंने यह जाना कि गोया यह भी मेरे दिलमें है॥

× × ×

गरचे है किस-किस बुराईसे वले बाईं हमा[1]।
ज़िक्र मेरा मुझसे बहतर है कि उस महफ़िलमे है॥

यह माना कि उनकी महफिलमे मेरी बुराई की जाती है, परन्तु

---

*इसी भावको एक और जगह व्यक्त किया है—

न लुटता दिनको तो क्यों रातको यूँ बेखबर सोता।
रहा खटका न चोरीका दुआ देता हूँ रहज़नको॥

[1]इसपर भी।

मुझे इससे प्रसन्नता होती है, ख्वाह किसी वहानेसे भी सही, मेरा जिक्र तो वहाँ होता है* ।

हर वुलहविसने हुस्नपरस्ती शआ़रकी ।
अब आवरूए शेवए अहले नजर गई ॥

प्रत्येक कामुक प्रेमीने सौन्दर्य्य पूजाको अपना धन्धा वना लिया । टके सेर भाजी टके सेर खाजा हो गया । अब पारखियोके हुनरका कौन सम्मान करेगा, सच्चे प्रेमीके गुणको कौन जानेगा ।

तुमको भी हम दिखाएँ कि मजनूँने क्या किया ।
फ़ुरसत कशाकशे ग़मेपिनहाँसे गर मिले ॥

वडा चर्चा है इस वातका कि मजनूँ सरीखा ससारमे आज तक कोई आशिक नही हुआ । हमारा दावा है कि हमारे सामने मजनूँ भी कुछ नही, और हम यह सावित कर सकते है, परन्तु क्या करे, दुखोकी खीचातानी दम लेने दे तभी तो ।

कोई दिन गर जिन्दगानी और है ।
अपने जीमे हमने ठानी और है ॥
आतिशे दोजखमें[1] यह गर्मी कहाँ ?
सोजेगमहाए निहानी[2] और है ॥

× × ×

देके खत मुँह देखता है नामावर ।
कुछ तो पैगामेजबानी और है ॥

---

* वोह दुश्मनीसे देखते है, देखते तो है ।
मै शाद हूँ कि हूँ तो किसीकी, निगाहमें ॥
—अमीर मीनाई

[1]नर्काग्नि मे; [2]दिलमे छुपे हुए दुखोकी जलन ।

नामावर पत्र देकर मुहँ देखने लगा है। पत्र देनेपर इसे चला जाना चाहिए था। पर मुहँ देखनेसे अनुमान होता है कि इसे कुछ कहना है। कहनेका साहस नही है, मालूम होता है शायद पत्रके साथ ज़बानी गालियाँ भी भेजी है।

बारहा देखी हैं उनकी रंजिशें।
पर कुछ अबके सरगरानी और है* ॥

यूँ तो अनेक वार (बारहा) हमने उन्हे नाराज देखा है, पर अबकी वार तो इतने नाराज है कि मननेमे ही नही आते।

कोई उम्मीद बर नहीं आती[1]।
कोई सूरत नज़र नहीं आती ॥
मौतका एक दिन मुअय्यन है[2]।
नींद क्यों रातभर नहीं आती ॥

× × ×

आगे आती थी हालेदिलपै हँसी।
अब किसी बातपर नहीं आती ॥

हाले दिल जितना क़ाबिले रहम था, वह तो सब जानते हैं, पहले हमारी सहनशक्ति इतनी थी कि उन दुखोपर भी हँस दिया करते थे। अव जी इतना बुझ गया है कि सुख-सवाद भी हमे हर्षित नही कर सकता।

जानता हूँ सवाबेताअतो जुहद[3]।
पर तबियत उधर नहीं आती ॥

---

*वफ़ाएवादा नहीं, वादएदिगर भी नहीं।
वह हमसे रूठे तो थे, लेकिन इस क़दर भी नहीं ॥
—फ़ैज़

[1]पूरी नही होती, [2]निश्चित; [3]सदाचरणका पुण्य।

दागेदिल गर नज़र नही आता ।
बू भी ऐ चारागर ! नही आती ?

लानत है मेरे इलाज करनेवालो पर । कहते है कि हमारी नज़रमे तो इसे कोई रोग नही है । मूर्ख कहीके, अन्दर ही अन्दर कोई चीज जले तो उसकी गध तो बाहर आती ही है । वह मेरे दिलका दाग नही देख सकते तो क्या उसके जलनेकी गध भी नही सूघ सकते ?

हम वहाँ है जहाँसे हमको भी ।
कुछ हमारी खबर नहीं आती ॥

मरते है आरज़ूमे मरनेकी ।
मौत आती है, पर नही आती ॥

काबे किस मुँहसे जाओगे 'गालिब' !
शर्म तुमको मगर[1] नही आती ॥

× × ×

दिलेनादाँ तुझे हुआ क्या है ?
आखिर इस दर्दकी दवा क्या है ?

हम है मुश्ताक और वोह बेज़ार ।
या इलाही ! यह माजरा क्या है ?

हाँ भलाकर तेरा भला होगा ।
और दरवेशकी सदा क्या है ?

जान तुमपर निसार करता हूँ ।
मै नही जानता दुआ क्या है ॥

मैने माना कि कुछ नही 'गालिब' !
मुफ़्त हाथ आये तो बुरा क्या है ॥

---

[1]शायद ।

जल्लादसे डरते हैं न वाइज़से झगड़ते।
हम समझे हुए हैं उसे, जिस भेसमें जो आये ॥

जो भी जिस भेष मे हमारे समक्ष आवे, हम उसे ईश्वरका रूप समझते है। जल्लाद भी वही है, वाइज भी वही है और हम भी वही हैं। हममेसे प्रत्येकमे ईश्वर ही का रूप है। इसीलिए हम न किसीसे डरते है, न झगड़ते है।

बेखुदी बे सबब नहीं 'गालिब'!
कुछ तो है जिसकी परदादारी है ॥

इस तन्मयताके पर्देमे अवश्य इश्कको छुपाया हुआ है।

तेरी वफ़ासे क्या हो तलाफ़ी कि दहरमें।
तेरे सिवा भी हमपै बहुतसे सितम हुए ॥*

संसार (दहर) मे तेरी बेवफाईके अलावा और भी अनेक सितम हमपर हुए है। इसलिए तेरी वफा हमारा अधिक कष्ट निवारण (तलाफी) कैसे कर सकती है? माशूकके कृपापात्र होने पर भी निराश रहना ग़ालिबकी शायरीके फलसफए गमका यह एक नमूना है।

यूँ ही दुःख किसीको देना नहीं खूब, वर्ना कहता—
"कि मेरे उदूको यारब! मिले मेरी जिन्दगानी ॥"

सहृदयता देखिये कि दुश्मनको भी दुख देना नही चाहते।

जुल्मतकदेमे मेरे शबेगमका जोश है।
इक शमअ़ है दलीलेसहर सो खमोश है ॥

***गर एक आसमाँको मिटाया तो क्या हुआ।**
ऐसे हजार बससरेकीं[1] और भी तो है ॥
—जौक

[1]कीनेबाज।

मेरे अधेरे घर (जुलमतकदे) मे दुखकी रात (शबेगम) पूर्ण रूपसे अपना प्रभुत्व जमाए हुए है, और काटे नही कटती। रात समाप्त हो तो कुछ चैन नसीव हो। पर सुवह है कि होनेमे ही नही आती। यूं, शमअ्का वुझ जाना सूर्योदयका द्योतक होता है, पर यहाँ शमअ् भी वुझ चुकी (ख़ामोश) है, फिर भी अधेरा ज्योका त्यों है। दुख और निराशाके अधकारका कितना भयानक चित्र है*।

हूँ सरापा[1] साज़े आहंगे शिकायत[2], कुछ न पूछ।
है यही बहतर कि लोगोंमे न छेड़े तू मुझे॥†

मैं शिकायतोसे भरा बैठा हूँ, तूने जरा छेडा और मैंने दिलकी भडास निकाली। सवमे तेरी वदनामी हो जायगी।‡

और बाज़ारसे ले आये अगर टूट गया।
साग़िरे जमसे[3] मेरा जामेसिफ़ाल[4] अच्छा है॥

---

*एक और जगह इसी मज़मूनको गालिब इस तरह बाधते हैं:—

जिसे नसीब हो रोज़ेसियाह मेरा-सा।
वह शख्स दिन न कहे रातको तो क्योकर हो॥

[1]मुजस्सिम, [2]शिकायतके सुर निकालनेका बाजा;

†हम भरे बैठे थे क्यों आपने छेड़ा साहब।
देखा आखिर न, कि फोड़ेकी तरह फूट बहे॥

—ज़ौक

‡इसी मजमूनको एक जगह और बाँधा है—

पुर हूँ मैं शिकवेसे यूँ रागसे जैसे बाजा।
एक ज़रा छेड़िये फिर देखिये क्या होता है॥

[3]जमशेद वादशाहका प्रसिद्ध प्याला; [4]मिट्टीका प्याला।

वैभवके आडम्बरोपर कैसी करारी चोट की है।

बेतलब[1] दें तो मज़ा उसमें सिवा मिलता है।
वोह गदा[2] जिसको न हो ख़ूएसवाल[3] अच्छा है॥

क़तरा दरियामें जो मिल जाय तो दरिया हो जाय।
काम अच्छा है वोह जिसका कि मआल[4] अच्छा है॥

हमको मालूम है जन्नतकी हक़ीक़त लेकिन—
दिलके ख़ुश रखनेको 'ग़ालिब' यह ख़याल अच्छा है॥

× × ×

न हुई गर मेरे मरनेसे तसल्ली न सही।
इम्तहाँ और भी बाक़ी हो तो यह भी न सही॥

अगर मेरे मरनेसे भी तुम्हारी तसल्ली नही हुई है और अभी अत्याचार करनेके वलवले बाकी हैं तो अभी मेरी लाश मौजूद है, आप शौकसे अपनी अभिलाषा पूरी करे।

इशरते सुहबते ख़ूबाँ ही ग़नीमत समझो।
न हुई 'ग़ालिब' अगर उम्रेतबीई न सही॥*

प्रथम तो जीवनमे सुख मिलता नही और मिलता भी है तो क्षणिक। अतः यदि पूरी आयु (उम्रे तबीई) प्राप्त न हुई तो न सही, प्रेयसीके निकट जो क्षण भर गुजरा है वही गनीमत है।

---

[1]बे माँगे; [2]फ़क़ीर सन्यासी; [3]माँगनेकी आदत; [4]अन्त।

*उम्रभर रोगते रहनेसे कहीं बहतर है।
एक लम्हा जो तेरी रूहमें वुसअ़त भर दे॥

एक लम्हा जो तेरे गीतको शोख़ी दे दे।
एक लम्हा जो तेरी लै में मसर्रत भर दे॥

—साहिर लुधियानवी

खुदाके वास्ते दाद[1] इस जुनूनेशौककी[2] देना।
कि उसके दरपै पहुँचते हैं नामावरसे हम आगे ॥

× × ×

खूब था पहलेसे होते जो हम अपने बदख़्वाह[3]।
कि भला चाहते हैं और बुरा होता है ॥

जब सूरत यह है कि जो हम चाहते हैं उससे उल्टा होता है तो पहले-से ही अपना बुरा चीतते, जिसका उल्टा प्रभाव यह होता कि हमारा भला हो जाता।

हरएक बातपै कहते हो तुम कि तू क्या है।
तुम्ही कहो कि यह अन्दाज़े गुफ़्तगू क्या है ॥

यह भी कोई बात करनेका ढग है कि ज्यूँही हमारे मुहँसे कोई बात निकली और तुमने डाटाँ कि चुप रह, तू बीचमे बोलनेवाला कौन है।

यह रश्क है कि वोह होता है हमसुख़न[4] तुमसे।
वगर्ना ख़ौफेबदआमोज़िये उदू[5] क्या है ॥

हमे यह भय नही है कि दुश्मन जो तुमसे बात करता है, वह तुमसे हमारी बुराई करेगा, तुम्हारे कान भर देगा। ईर्ष्या इस बातकी है कि उसे तुमसे बात करनेका सौभाग्य प्राप्त है।

रगोमें दौड़ने फिरनेके हम नहीं कायल।
जब आँख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है ॥

आँखसे टपक कर लहू सार्थक होता है, केवल नाड़ियोमे प्रवाह करे तो इसका कुछ मूल्य नही। तात्पर्य यह है कि भावुकता और सहृदयतासे

---

[1]शाबाशी, [2]प्रेमोन्मादकी;
[3]बुरा चीतनेवाले; [4]बात करना;
[5]दुश्मनकी तरफसे बुराई करनेका भय।

मनुष्यमे मनुष्यत्व आता है, नही तो निरा पशु है। शेरकी तारीफ़ नही हो सकती।

वोह चीज़ जिसके लिए हमको हो बहिश्त अज़ीज़।
सिवाय बादए गुलफामोमुश्कबू[1] क्या है॥
रही न ताक़तेगुफ़्तार[2] और अगर हो भी।
तो किस उम्मीदपै कहिये कि आरज़ू क्या है॥

× × ×

मेरी क़िस्मतमे गम गर इतना था।
दिल भी यारब! कई दिये होते॥

दिल तो एक, और दुखोका बोझ इतना! बर्दाश्त हो तो कैसे?

गैर[3] लें महफ़िलमें बोसे जामके।
हम रहे यो तिश्नालब[4] पैगामके॥
खत लिखेंगे गर्चे मतलब कुछ न हो।
हम तो आशिक है तुम्हारे नामके॥

कब वोह सुनता है कहानी मेरी।
और फिर वह भी जबानी मेरी॥

× × ×

कर दिया ज़ोफने आजिज़ 'गालिब'!
नंगे पीरी है जवानी मेरी॥

इश्कके गमने इतना कमजोर कर दिया है कि अब मै बिलकुल अशक्त हो गया हूँ। भरी जवानीमे बूढोसे भी गया गुजरा हो गया हूँ। मेरी जवानी ऐसी है कि बुढापा भी इससे शर्माए।

---

[1]सुगधित व गुलाबी शराब, [2]वाक् शक्ति,
[3]दुश्मन; [4]प्यासे।

है वस्ल हिज्र आलमे तमकीनोज़ब्तमें ।
माशूक शोख़ो आशिके दीवाना चाहिए ॥

प्रेयसीसे मिलनके समय उचित यह है कि प्रेयसीका व्यवहार चंचल हो और प्रेमी प्रेममे विभोर हो । ऐसा न हो तो आनन्द नही आता । दोनो तरफसे सजीदगी और आत्म दमनका व्यवहार (आलमे तमकीनो ज़ब्त) होने पर मिलन भी विरह सदृश्य हो जाता है । शयन गृहमे भी राजदर्बारके नियमो पर चलनेका परिणाम जाहिर ही है ।

उस लबसे मिल ही जायगा बोसा कभी तो, हाँ ।
शौके फिज़ूलो जुरअ़ते रिन्दाना चाहिए* ॥

आशय यह है कि ससारमे शौक और हिम्मत बिना कुछ नही होता ।

दोस्तीका परदा है बेगानगी ।
मुँह छुपाना हमसे छोड़ा चाहिए ॥

माशूकसे पर्दा छुडवानेके लिए कैसी दलील पेश की है । मुँह छुपानेसे लोग जानेगे कि तुम्हारी मुझसे बिगड गई है, जिसका अर्थ वह यह निकालेगे कि पहिले हमारी परस्पर मित्रता थी । अगर तुम नही चाहते हो कि लोग इस भ्रममे पडे तो मुझसे पर्दा करना छोड दो ।

नुक्ताचीं[1] है गमेदिल उसको सुनाये न बने ।
क्या बने बात जहाँ बात बनाये न बने ॥
ग़ैर फिरता है लिये यूँ तेरे ख़तको कि अगर ।
कोई पूछे कि यह क्या है तो छुपाये न बने ॥

---

*मीरीमें, फ़क़ीरीमें, शाहीमें, गुलामीमें ।
कुछ काम नही बनता बे जुरअ़ते रिन्दाना ॥
—इकबाल

[1]बालकी खाल निकालता है ।

इश्कपर जोर नही, है यह वोह आतिश 'गालिब' !
कि लगाये न लगे और बुझाये न बने ॥

इश्क वह आग है कि माशूकके दिलमे लगा नही सकते और अपने दिलसे बुझा नही सकते । हर तरह मजबूर है ।

वोह आके ख्वाबमे तसकीनेइज्तराब तो दे ।
वले मुझे तपिशेदिल मजाले ख्वाब तो दे ॥

वह तो स्वप्नमे आकर मुझे तसल्ली दे सकते है, लेकिन मेरी तपिशे दिल (दिलकी आग) मुझे सोने दे तभी तो स्वप्नमे वे आये ।

हाँ खाइयोमत फ़रेबेहस्ती ।
हरचन्द कहे कि है, नही है ॥

जिन्दगी एक धोका है, इसके फरेबमे न आओ । चाहे लोग कितना ही इसके अस्तित्वका ढोल पीटे, तुम यही समझो कि कुछ भी नही है ।

हम रश्कको अपने भी गवारा नहीं करते ।
मरते है मगर उनकी तमन्ना नहीं करते ॥

हम उनकी मुहब्बतमे मरे जाते है, परन्तु हमे अपने ऊपर भी इतनी ईर्ष्या होती है कि हम उनसे मिलनेकी अभिलाषा नही रखते । गोया अपनेको भी गैर समझ लिया है ।

दिया है दिल अगर उसको, बशर है क्या कहिए ।
हुआ रकीब तो हो, नामाबर है क्या कहिए ॥

उनका जमाल ही ऐसा है कि जो देखता है दिल खो बैठता है । फिर हमारा नामाबर खत देनेके साथ-साथ अपना दिल भी दे बैठा तो उसका दोष भी क्या ? आखिर इन्सान है पत्थर तो नही !

ज़हे करिश्मा[1] कि यूँ दे रखा है हमको फ़रेब ।
कि बिन कहे भी उन्हे सब खबर है, क्या कहिए ॥
यह ज़िद कि आज न आये और आये बिन न रहे ।
कज़ासे शिकवा हमें किस कदर है, क्या कहिए ?

मौतसे कहते है कि कम्बख्त जब तुझे एक दिन आना ही है तो आज जब हमे तेरी आवश्यकता है, क्यो नही आ जाती कि हमारा काम भी बन जावे, और तेरा काम भी पूरा हो जावे। जरूरतके समय तो आती नही और किसी न किसी दिन ख्वाहमख्वाह सर पर आन खडी होगी । कैसी दुष्ट है ।

समझके करते हैं बाज़ारमें वोह पुरसिशेहाल[2] ।
कि यह कहे कि सरे रहगुज़र है, क्या कहिए ॥

माशूक महोदय बडे चालाक है । जानते है कि शिष्टाचार हमे इस बातकी आज्ञा न देगा कि बीच बाजार हम आपसकी बाते करे, इसीलिए जान बूझकर बाजारमे हाल पूछते है, ताकि हम कुछ न कह सके ।

कभी नेकी भी उसके जीमें गर आजाय है मुझसे ।
जफाएँ करके अपनी याद शरमा जाय है मुझसे ॥

इस शर्मकी वजहसे जो कभी नेकी करनेका विचार बनता भी है तो वह विचारमात्र रह जाता है ।

वोह बदखू[3] और मेरी दास्तानेइश्क[4] तूलानी[5] ।
इबारत मुख्तसिर[6] कासिद भी घबरा जाय है मुझसे ॥

---

[1]जादू तो देखो,　　[2]हाल पूछना;
[3]बद दिमाग,　　[4]प्रेम गाथा ,
[5]लम्बी,　　[6]सक्षेपमे बात यह है कि।

उधर वोह बदगुमानी है, इधर यह नातवानी है ।
न पूछा जाय है उससे न बोला जाय है मुझसे ।।

वह मेरे इश्कको झूठा समझते है, इस कारण मेरा हाल नही पूछते; और मै निर्बलताके कारण बोल नही सकता, फिर बात बने तो कैसे ।

सम्भलने दे मुझे ऐ नाउमीदी ! क्या क़यामत है !
कि दामाने खयाले यार छूटा जाय है मुझसे ।।

इससे बढ़कर और निराशा क्या हो सकती है कि प्रेयसीका चिन्तन भी (दामाने खयाले यार) मनसे लोप होनेको है ।

क्या ताज्जुब है कि उसको देखकर आजाय रहम ।
वाँ तलक कोई किसी हीलेसे[1] पहुँचा दे मुझे ।।

बाजीचए अतफाल[2] है दुनिया मेरे आगे
होता है शबोरोज तमाशा मेरे आगे

दुनियाका महत्त्व मेरी आँखोमे बच्चोके खेलसे अधिक नही ।

मत पूछ कि क्या हाल है, मेरा तेरे पीछे ।
तू देख कि क्या रंग है तेरा मेरे आगे ।।

× × ×

नफरतका गुमाँ गुज़रे है, मै रश्कसे गुजरा ।
क्योंकर कहूँ लो नाम न उनका मेरे आगे ।।

मेरे अतिरिक्त कोई उनका नाम भी ले तो मुझे बर्दाश्त नही, मुझे उससे रश्क होता है । लेकिन लोग समझते है कि मै नफरतकी वजहसे उनका नाम नही सुनना चाहता । मै और उनसे नफरत करूँ ? यह लांछन मुझे पसन्द नही । बलासे ईर्ष्याकी आगमे जलता रहूँगा, किन्तु किसीको अब उनका नाम लेनेको मना न करूगा ।

---

[1]बहानेसे, [2]बच्चोका खेल ।

ईमाँ मुझे रोके है तो खींचे है मुझे कुफ़्र ।
काबा मेरे पीछे है कलीसा मेरे आगे ॥

काबा ईमानकी तरफ़ खींचता है, कलीसा कुफ़्रकी तरफ । ऐसी स्थितिमे न जाने मेरा क्या हाल होगा ।

फिर देखिए अन्दाज़े गुलअफ़शानिए गुफ़्तार[1] ।
रख दे कोई पैमाना-ओ-सहबा मेरे आगे ॥

मेरे सामने शराव और प्याला (पैमाना व सहवा) रख दो, फिर देखो, मेरे मुँहसे कैसे फूल झडते हैं । मेरी ख़ुशवयानी शराव पीनेपर निर्भर है ।

ख़ुश होते हैं पर वस्लमे यूँ मर नहीं जाते ।
आई शबेहिजराँकी तमन्ना मेरे आगे ॥

वस्लमे ख़ुश तो सब होते हैं, पर मैं ख़ुशीके मारे प्राण त्याग वैठा हूँ । यह असाधारण वात शायद इसलिए हुई है कि विरह-रात्रिमे मैंने मौतकी दुआ मागी थी जो ईश्वरने वस्लके समय पूरी की ।

कहूँ जो हाल तो कहते हो मुद्दआ कहिए ।
तुम्हीं कहो कि जो तुम यूँ कहो तो क्या कहिए ॥

मैं जो अपना हल वताता हूँ तो कहते हैं कि आख़िर तू चाहता क्या है । जो जान कर अनजान वने उसे कोई क्या वताए ।

न कहियो तानसे फिर तुम कि हम सितमगर हैं ।
मुझे तो ख़ू है कि जो कुछ कहो बजा कहिए ॥

आपने अपनेको सितमगर कहा और मैंने कह दिया कि आप वजा फ़र्माते हैं तो इसमे मेरा क्या क़ुसूर ? मुझे तो आपकी हर वात पर

[1] वातोंके फूल झडना ।

'बजा है' 'मुनासिब है' कहनेकी आदत पडी हुई है। उसी आदतकी वजहसे यह गुस्ताख़ी हुई। बराय मेहर्बानी आइन्दा ऐसा जुमला न कहे, जिसके जवाबमे मै 'बजा है' कहूँ तो आपको नागवारे खातिर हो।

रोनेसे और इश्क़मे बेबाक हो गये। ०
धोये गये हम ऐसे कि बस पाक हो गये॥

जब तक आँखसे आँसू न निकले थे, हमारा प्रेम गुप्त था। अब जब आठ पहरका रोना हो गया तो लज्जा जाती रही। अब खुले खजाने प्रेम-व्यापार चलता है। गोया बिल्कुल शोहदे बन गये।

कहता है कौन नालये बुलबुलको[१] बेअसर। ०
परदेमे गुलके लाख जिगर चाक[२] हो गये॥
करने गये थे उससे तगाफ़ुलका[३] हम गिला[४]।
की एक ही निगाह कि बस खाक हो गये॥
इस रंगसे उठाई कल उसने 'असद'की लाश।
दुश्मन भी जिसको देखके गमनाक हो गये॥

रोनेसे ऐ नदीम[५]! मलामत न कर मुझे। ०
आख़िर कभी तो उक़दयेदिल वा करे[६] कोई॥

इब्नेमरियम[७] हुआ करे कोई।
मेरे दुखकी दवा करे कोई॥
बातपर वाँ जबान कटती है। ०
वोह कहे और सुना करे कोई॥

---

[१]बुलबुलके रोनेको; [२]टुकडे-टुकडे; [३]उपेक्षाका;
[४]शिकायत; [५]मित्र;
[६]मनकी घुडी खोलना, जीकी बात कहना, [७]ईसामसीह।

कौन है जो नहीं है हाजतमन्द ।
किसकी हाजत रवा करे कोई ॥

× × ×

० क्या किया खिज्रने सिकन्दरसे ।
अब किसे रहनुमा करे कोई ॥

खिज्र सिकन्दरको आवेहयातके चश्मेपर ले तो गया, मगर आवेहयात स्वयं पी लिया और उसे उन आदमियोके सामने ले गया, जिन्होने यह आवेहयात पी तो लिया था, लेकिन बुढापे और कमजोरीकी वजहसे गोश्तके लोथडेसे मालूम होते थे। सिकन्दरने उनकी यह हालत देखकर पानी न पिया। मिर्ज़ा फर्माते है जब खिज्र जैसा राहबर ऐसा धोखा दे सकता है, तब और किस रहनुमापर विश्वास किया जाय ?

० हज़ारों ख्वाहिशें ऐसी कि हर ख्वाहिशपै दम निकले ।
बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले ॥
मगर[1] लिखवाये कोई उसको ख़त तो हमसे लिखवाये ।
हुई सुबह और घरसे कानपर रखकर क़लम निकले ॥

× × ×

० हुई जिनसे तवक़्क़ोह खस्तगीकी दाद पानेकी ।
वोह हमसे भी ज़ियादा खस्तये तेग़े सितम निकले ॥

जिन लोगोसे हमें अपने दुख (खस्तगी) मे सहानुभूति और सहायता पानेकी आशा (तवक्कोह) थी, वह हमसे भी बढकर दुखो का शिकार (खस्तएतेगे सितम) नजर आये। अर्थात् अब किसी तरफसे कोई आशा नही।

० मुहब्बतमें नही है फर्क जीने और मरनेका ।
उसीको देखकर जीते है जिस काफिरपै दम निकले ॥

---

[1]शायद ।

कहाँ मयखानेका दरवाज़ा 'ग़ालिब' और कहाँ वाइज़ ।
पर, इतना जानते है, कल वोह जाता था कि हम निकले ।।

× × ×

सियाही जैसे गिर जाये दमेतहरीर काग़ज़पर ।
मेरी किस्मतमें यूँ तसवीर है शबहायेहिजरॉकी ।।

मेरे जीवनमे विरहकी राते (शबहाए हिज्रॉ) यूँ भरी पडी है, जैसे लिखते समय (दमे तहरीर) कागजपर सियाही गिर पड़े और काले धब्बोंसे कागज भर जाय ।

पच आ पड़ी है वादयेदिलदारकी मुझे ।
वोह आये या न आये, मुझे इन्तज़ार है ।।*

मुझे भी उनके वादा करनेसे ज़िद (पच) हो गई है कि इन्तजार जरूर करना, चाहे वोह आवे या न आवे ।

फूँका है किसने गोशेमुहब्बतमें ऐ खुदा !
अफ़सूने इन्तज़ारे तमन्ना कहें जिसे ।।

तानेके ढंग पर मिर्जा खुदासे पूछते है कि ऐ खुदा ! मुहब्बतके कानमे यह जादू (अफसूँ) किसने फूँक दिया कि तमन्नाके पूरी होनेका इन्तजार करते रहना । न तमन्ना कभी पूरी होगी न मोहब्बतका इन्तज़ार समाप्त होगा । यह इन्तज़ार ही शायद मोहब्बतकी जान है ।§

---

* न जाने किस लिए उम्मीदवार बैठा हूँ ।
एक ऐसी राहपै जो उनकी रहगुज़र भी नहीं ।।
—फ़ैज़

§ कहीं वह आके मिटा दें न इन्तज़ारका लुत्फ़ ।
कहीं क़बूल न हो जाय इल्तजा मेरी ।।
—जिगर मुरादाबादी

ग़ालिब बुरा न मान जो वाइज़ बुरा कहे।
ऐसा भी कोई है कि सब अच्छा कहे जिसे॥

× × ×

नाकरदा[1] गुनाहोंकी भी हसरत की मिले दाद[2]।
यारब! अगर इन करदा गुनाहोंकी सजा है॥

हे ईश्वर! यह कहाँका न्याय है कि जो मैंने गुनाह किये है, उनकी तो तू सजा दे रहा है, लेकिन जो गुनाह मैंने नही किये है, उनका पुरस्कार कुछ भी नही मिल रहा है। ईश्वरके समक्ष इतनी निर्भीकता और स्पष्टता-से वोलना, मिर्जाकी दिलेरी और शोख़ीकी बहतरीन मिसाल है।

वाइज़! न तुम पियो न किसीको पिला सको।
क्या बात है तुम्हारी शराबेतहूरकी!!

वाइज़ पर छीटा फका है कि तुम बहिश्तकी शराब (शराबे तहूर) की शेख़ी क्या वघारते हो, प्रत्यक्ष कोई चीज हो तो हम माने।

गरमी सही कलाममे लेकिन न इस क़दर।
की जिससे बात उसने शिकायत ज़रूर की॥

ज़बानमे थोडी-बहुत शोख़ी और चुस्ती तो ठीक, लेकिन इतनी गर्मी भी किस कामकी कि हर एक शिकायत करे।

'ग़ालिब' गर इस सफरमे मुझे साथ ले चलें।
हजका सवाब नज़्र करूँगा हुज़ूरकी॥

कौन दीवाना हजके पुण्य (सवाव) का अभिलाषी है। किसी तरह उनके साथ रहूँ, यही मेरी तमन्ना है। अगर मुझे वे अपने साथ हजको ले चले तो हज यात्राका पुण्य जो मुझे प्राप्त होगा, वह मै उन्हीको दे दूगा। वादशाहके हजको जानेके लिए तय्यार होते समय यह शेर कहा था।

---

[1] न किए हुए, [2] पुरस्कार।

कहते हुए साक़ीसे हया आती है वर्ना।
है यूँ कि मुझे दुर्देतहेजाम बहुत है॥

हमारा स्वाभिमान हमे इजाजत नही देता कि हम अपना भरम साकी पर प्रकट करे। अन्यथा हमारी स्थिति तो ये है कि जिस शराबकी तलछट (दुर्देतहेजाम) को वह फेक रहा है, वही हमारे लिए पर्याप्त है। एक स्वाभिमानीकी अभिलषित मनोदशाका कितना सजीव चित्रण है।

नै तीर कमाॅमे है न सैयाद कमींमे।
गोशेमे क़फ़सके मुझे आराम बहुत है॥

वुलवुल कहती है कि मै पिजरेमे बहुत आरामसे हूँ, न अब मेरे लिए कोई कमानमे तीर लगाता है और न सैयाद ताकमे रहता है। भाव ये है कि मै एकान्तमे रहकर इतना गुमनाम जीवन व्यतीत कर रहा हूँ कि किसीको भी ईर्ष्या नही होती*।

जमज़म ही पै छोड़ो मुझे क्या तोफ़ेहरमसे।
आलूदा बमय जामये अहराम बहुत है॥

जमज़म कावेके एक पवित्र कुएँका नाम है। जहाँपर हाजी मदीनेकी परिक्रमा देनेसे पूर्व शरीर-शुद्धिके लिए वजू करते है, और जामये अहराम उस लिबासका नाम है, जिसे पहनकर परिक्रमा दी जाती है। मिर्जाकी रिन्दाना जुरअतका क्या कहना? वे हजमे भी शराब साथ ले गये और गजब यह किया कि जामये अहराम पहन कर जमजम पर बैठकर इतनी पी कि बेखुदीमे वह यात्रा करनेका पवित्र लिबास भी

---

*—शोहरत और खुशीकी ज़िन्दगी ही दुखोको निमत्रण देती है, इस भावको असगर गोण्डवीने यूँ अदा किया है—

नग़मये पुरदर्द छेड़ा मैने इस अन्दाज़से।
खुदबखुद पड़ने लगी मुझपर नजर सैयादकी॥

भिगो लिया। होश आने पर जामये अहरामकी हालत देखी तो बडे पसोपेशमे पडे, इससे यात्रा कौन करने देगा और ज़ाहिदोनासेह क्या-क्या न बकेगे। इसीलिए वह यात्रा स्थगित करके जामये अहरामके धब्बोको आवे जमजमसे धोनेके लिए रुकना चाहते है! एक तो रिन्दाना जुरअत यह देखिये कि हजके कपडोसे जमजमपर शराब पी, दूसरी शोख़ी यह कि जिस कुएँपर हाजी आचमन करते है, उसे आप धोबीघाट समझते है[1]। इसी मज़मूनका एक और शेर है।

रात पी जमजमपै मय और सुबहदम।
धोये धब्बे जामए अहरामके॥

× × ×

ख़ूँ होके जिगर आँखसे टपका नहीं ऐ मर्ग!
रहने दे मुझे याँ कि अभी काम बहुत है॥*

---

[1]—इसी भावको रियाज़ खैराबादीने भी किस ख़ूबीसे वयान किया है—

धोना है दागे जामये अहराम सुबह-सुबह।
हुजरेसे शेख़ पानीकी छागल उठा तो ला॥

मिर्ज़ा ज़मज़मको धोवी घाट बनाते है तो रियाज धर्माचार्य्यको अपना नौकर समझकर उसीसे पानी मँगाते है; और 'दर्द' की हिम्मत देखिये कि वे अपने वस्त्रोको धोना तो दरकिनार, अब भी उसे इतना पवित्र समझते है कि फरिश्ते भी उससे वज़ू करना चाहें—

तर दामनीपै शेख़ हमारी न जाइयो।
दामन निचोड़ दें तो फ़रिश्ते वज़ू करें॥

---

*बागे बहिश्तसे मुझे हुक्मे सफ़र दिया था क्यों?
कारेजहाँ दराज है, अब मेरा इन्तजार कर॥
—इक़बाल

मौतसे कहते है कि अभी तो इश्कका शुरू है, और तू अभीसे हमारी जान लेनेको आ गई। अभी तो मुझे बहुत काम करने है। कमसे कम जिगरका ख़ून तो आँखोसे टपक जाय। अर्थात् इश्ककी कुछ मंजिलें तो तै कर ले।

होगा कोई ऐसा भी कि ग़ालिबको न जाने।
शायर तो वह अच्छा है, पै बदनाम बहुत है॥

मुद्दत हुई है यारको मेहमाँ किए हुए।
जोशे क़दहसे[1] बज़्म चराग़ाँ[2] किए हुए॥
करता हूँ जमा फिर जिगरे लख़्त-लख़्तको[3]।
मुद्दत हुई है दावते मिज़गाँ[4] किए हुए॥
फिर दिल तवाफ़े कूए मलामत[5] को जाए है।
पिन्दारका[6] सनमकदा[7] वीराँ किए हुए॥
फिर शौक़ कह रहा है ख़रीदारकी तलब।
अर्जे मताए अक़्लो दिलोजाँ किए हुए॥
दौड़े है फिर हर एक गुलो लाला पर ख़्याल।
सदगुलसिताँ निगाहका सामाँ किए हुए॥
फिर चाहता हूँ नामए दिलदार खोलना।
जाँ नज़्रे दिल फ़रेबिए उनवाँ[8] किए हुए॥
माँगे है फिर किसीको मुक़ाबिलमें आर्ज़ू।
सुरमेसे तेज दश्नए मिजगाँ[9] किए हुए॥

---

[1]प्यालों से; [2]आलोकित, [3]जिगरके टुकडोको,
[4]पलकोंको निमत्रित, [5]बदनाम कूचेकी तरफ़; [6]स्वाभिमानका,
[7]मन्दिर; [8]सरनामेकी दिलफरेबीपर न्यौछावर;
[9]पलकोका खजर।

एक नौबहारे नाजको ताके है फिर निगाह।
चेहरा फरोगे मयसे[1] गुलिस्ताँ किए हुए ॥

फिर जीमे है कि दरपै किसीके पड़े रहें।
सर जेरे बारे मिन्नते दरबाँ किए हुए ॥

जी ढूँडता है फिर वही फ़ुर्सत कि रातदिन।
बैठे रहे तसव्वुरे जानाँ किए हुए ॥

'ग़ालिब'! हमें न छेड़ कि फिर जोशे अश्क से।
बैठे हैं हम तहियये तूफ़ाँ किए हुए ॥

यह गज़ल मुसलसल है। अलफाजके चुनाव और बयानकी ख़ूबीके लिहाजसे यह गालिबकी बहतरीन गजलोमेसे है। इसमें प्रवाहकी छटा देखते ही बनती है। मजमून गहरा नही है, लेकिन हुस्ने बयान तारीफ़से बाहर है। बात केवल इतनी-सी कहना चाहते है कि बहुत दिनोके बाद जीमे इश्कका वलवला उठा है, किन्तु इस भावनाने उदित हो कर दिलमे क्या-क्या कैफियते पैदा की है और कैसे-कैसे ख़याली नक़्शे बनाए है। बार बार जो 'फिर' के शब्द का उपयोग किया है, इससे साबित होता है कि यह इन मजिलोसे पहिले भी गुजर चुके है। भावार्थ यूँ है—

"यारको अपने घर पर बतौर मेहमान बुलाए और शराबके प्यालोसे महफिलको आलोकित किए अर्थात् मय नोशीका जलसा किए बहुत दिन हो गए है। एक बार माशूकने आँख भर कर मेरी तरफ़ देखा था तो जिगर टुकड़े-टुकड़े हो गया था। अब चाहता हूँ कि वह फिर मेरी तरफ देखे, इस लिए जिगरके टुकड़ोको जोड़ रहा हूँ ताकि वह फिर माशूककी नज़रका निशाना बन सके। जिस स्वाभिमानको मैं प्रतिष्ठित समझ कर पूजता था, उसे छोड़ कर दिल आज फिर रुसवाई और बदनामीके मार्ग

---

[1] शराबके नशेसे।

पर जा रहा है, और शौक यह चाहता है कि बलासे अक्ल और दिल और जान तीनों जाते रहे, लेकिन प्रेमपात्र कोई मिल जावे। मेरी कल्पना फिर सुन्दर युवतियोंकी तरफ दौड़ती है और कल्पनाके फूलोने एक बहुरग उद्यान सजा लिया है। यारके पत्रको फिरसे हाथमे लेकर खोलनेकी अभिलाषा है और खोलनेसे पहिले चाहता हूँ कि सरनामेकी दिल फरेबीके कारण उस पर अपनी जान ही न्यौछावर कर दूं। इच्छा यह है कि काली जुल्फे चेहरे पर फैलाए माशूक अपने कोठेसे फिर अपना जलवा दिखलाए, और वह यूँ मेरे सामने आवे कि सुरमेसे उसने अपनी पलके खजरकी तरह घातक बना रखी हो। शराबके नशेमे मखमूर एक अल्हड़ सुन्दरीको फिर से मेरी आँखे ताक रही है। बस, अब तो यह जी मे है कि माशूकके दर्वाजे पर उसके दर्बानकी खुशामद करके पड़ा रहूँ, और ऐसी फ़ुरसतकी तलाश है कि यारके चिन्तवनमे ही बैठा रहूँ। इस प्रकारके विचारोसे जी इतना भर आया है कि मुझे कोई मत छेड़े, वरना मैं रोकर एक तूफान उठा दूँगा।

नवेदे अम्न है बेदादे दोस्त जाँ के लिए।
रहे न तर्जे सितम कोई आसमाँ के लिए॥

माशूकके सितम (बेदादे दोस्त) तो मेरे लिए शान्ति समाचार (नवेदे अम्न) है, क्योकि जब माशूक सब प्रकारके सितम मुझ पर ढा लेगा तो आस्मान कोई नया सितम न ढा सकेगा और आसमानकी दी हुई मुसीबते मुझे मुसीबते न मालूम देगी। उर्दू शायरीका आशिक माशूकको किसी तरह भी दोष देना ही नही चाहता।

मिसाल यह मेरी कोशिशकी है कि मुर्गे असीर।
करे क़फ़समें फ़राहम ख़स आशियाँके लिए॥

कैदी पछी (मुर्गे असीर) अगर पिजरे (कफस) मे इसलिए घास

फूस और तिनके (ख़स) जमा (फराहम) करे कि मैं घोंसला (आशियाँ) बनाऊँगा तो ज़ाहिर है कि वह वेकार मेहनत कर रहा है। न वह पिंजरे-से बाहर आयगा, न घोंसला बना सकेगा। मेरा भी प्रत्येक प्रयत्न इसी प्रकारका है। व्यर्थ भी और दयनीय भी।

गदा समझके वह चुप था मेरी जो शामत आई।
उठा, और उठके कदम मैंने पासबाँ के लिए॥

यह शेर एक पूरा अफसाना है। कहानी यूँ है कि हम माशूकके घर पर गये, वहाँ दरबान चौखट पर पहरा दे रहा था। उसकी नजर बचाकर भला कैसे अन्दर घुसा जा सकता था और वापिस जानेके लिए दिल कहाँ मानता था। इसलिए एक तरफको गलीमें बैठ गये कि शायद कोई सूरत बन जाय। फटा हाल और चेहरे पर फिटकार तो थी ही, दरबान यह समझा कि यह कोई भिखमगा है जो थक कर या भीख मिलनेकी आशा-मे बैठ गया है, इसलिए कुछ न वोला। पर थोडी देर बाद जब इन्तजार दूभर हो गया तो यह तरकीब सूझी कि दर्बानकी खुशामदसे शायद काम वन जाय। (रिश्वतके लिए शायद पैसे न होंगे!) यह सोचकर दर्बान-के पैरो पर झुक गये कि इससे बढकर और क्या खुशामद हो सकती है। पैरो पर पडना था कि दर्बान समझ गया कि आँ हज़ारत तो—आशिक है और ऐसे ही दुष्टोको दूर रखनेके लिए उसे पहरेदारीकी नौकरी मिलती है। बस, पडने लगे ऐसे तड़ातड़, कि तबियत झक्क होगई। न पैरोपर पडते न शामत आती।

मीरके शेरका अहवाल कहूँ क्या 'गालिब'।
जिसका दीवान कम अज गुल्शने कशमीर नहीं॥

भारत क्या सारे संसारमें कशमीरके उद्यानोका सौन्दर्य्य प्रसिद्ध है। 'मीर' की कविताकी इस सौन्दर्य्यसे उपमा देकर गालिबने अपनी उदारताका परिचय दिया है। और भी दो तीन स्थानो पर

गालिबने मीरकी मुक्तकठसे प्रशंसा की है। मीर सचमुच मीर है।

कमाले हुस्न अगर मौक़ूफ़े अन्दाजे तगाफुल[1] हो।
तकल्लुफ बर तरफ[2], तुझसे तेरी तसवीर अच्छी है ॥

उपेक्षाके व्यवहार पर ही यदि सौन्दर्य्यकी परख है तो तुम्हारी तसवीर तुमसे भी बढकर सुन्दर है, क्योकि तसवीरका उपेक्षा भाव तुमसे भी अधिक है, वह तो किसीसे भी नही बोलती।

अब्र रोता है कि बज़्मे तरब आमादा करो।
बर्क हँसती है कि फ़ुर्सत कोई दम है हम को॥

बादलकी प्रेरणा यह है कि रंगरलियोकी महफिल जमाई जाय। लेकिन बिजली (बर्क) एक तरफको हँस रही है कि इन मूर्खोको पता नही कि इनका जीवन क्षणिक है, और यह मसूबे व्यर्थ है। बादल शराब पीने और रंगरलियां मनानेका द्योतक होता है और बिजली विनाशकी।

दीदा खूँबार है[3] मुद्दत से वले[4] आज नदीम[5]!
दिलके टुकडे भी कई खूनमे शामिल आये॥

सामना हूरो परी ने न किया था न करे।
अक्स तेरा ही मगर तेरे मुकाबिल आये*॥

तेरा सौन्दर्य्य अद्वितीय है। हूर और परीकी क्या मजाल कि तेरी समता कर सके। तेरा प्रतिबिम्ब ही तेरा मुकाबला करे तो करे।

१४ जनवरी १९५१

---

[1]उपेक्षाके व्यवहारपर निर्भर, [2]तकल्लुफकी बात और है। [3]आँख रक्त प्रवाह करती है; [4]लेकिन, [5]मित्र।

*संभल कर देखना आराइशोंके बाद आईना।
यह आईना नहीं है, अब यह टक्कर है बराबर की॥
—अज्ञात

७६

ममनून

मीर निज़ामुद्दीन 'ममनून' कमरूद्दीनके पुत्र और सोनीपतके थे, परन्तु देहली रहते थे। अपने पितासे शायरी सीखी। १८४४ मे समाधि पाई।

इलाही वोह जो वायदे हैं, वफ़ा किस तरह होवेंगे ?
न वाँ ख़ू[1] याद आने की न याँ शेवा तकाज़े का॥

यह न जाने थे कि उस महफ़िल में दिल रह जायगा।
हम यह समझे थे चले आयेंगे दमभर देखकर॥

कौन आये है ? कि सीने में बेदार होगई[2]।
सद आरज़ूए खुफ़्ता[3] सदाएकदम[4] के साथ॥

इन्तकादियात, भाग २, पृ० १३६

मेरे यह गर्म आँसू पूछ मत दस्ते हिनाईसे[5]।
कि इन आँखों से रहता है रवां सैलाब आतिशका॥

तबस्सुमे लबे गुंचाको[6] देख रोता हूँ।
कि रंग है यह उसी खन्दये निहानीका[7]॥

गुमां न क्योंकि करूँ तुझपै दिल चुरानेका।
झुकाके आँख सबब क्या है मुस्करानेका॥

---

[1]आदत, [2]जागृत हो गई, [3]सैकडो सुप्त अभिलाषाएँ, [4]पगध्वनि, [5]महन्दी रचे हुए हाथोसे, [6]कलीकी मुस्कानको, [7](प्रेयसिकी) छुपी हुई हँसीका।

खामोश हमज़बाँ यह लिया तूने किसका नाम ?
दिल में उठी वोह हूक कि दम-सा निकल गया ॥

ऐ वाये सादगीए वफ़ा बाद सदफ़रेब[1]।
आज उसके झूठे वादे पै मै फिर सम्भल गया ॥

तेरे मरीजे गमकी यह हालत है जौफ़से[2]।
इक आहे नातवाँ भी कभू है कभू नहीं ॥

किसके दिल पै रखा था तुमने हाथ ?
रात याँ दिलको बेकरारी थी ॥

सख्त कुछ अफ़सुर्दा ओ दिलगीर-से[3] रहते हो तुम।
खैर बाशद[4] मीर 'ममनूं' तुम पै क्या उफ़्ताद है[5] ?

बुलबुल ही इस चमनसे न कुछ नौहागर[6] गई।
बादे सहर[7] भी आके दमेसर्द भर गई ॥

—'निगार' जनवरी ५०

---

[1]सौ धोखोके बाद भी; [2]दौर्बल्यसे, [3]उदास-से;
[4]कुशल तो है; [5]कष्ट, [6]रोती हुई;
[7]प्रातः कालीन समीर।

८०

आज़ुर्दा

[हि० सन् १२०४–१२८५]

मुफ्ती सदरुद्दीन खा 'आज़ुर्दा' मौलवी लुत्फुल्ला काश्मीरीके पुत्र बडे विद्वान और साहित्यक हुए है। तत्कालीन साहित्यक और सभ्य गोष्ठियोमे यह सर्वश्रेष्ठ गिने जाते थे। उर्दू, फारसी और अरबी पर पूर्ण अधिकार था। रामपुर और भोपालके नवाब इनके शिष्य थे। सर सैयद महमूद भी इन्हीके शिष्य थे, और इनका उल्लेख अत्यन्त नम्रता पूर्वक किया करते थे। गालिब, मोमिन, जौक, शेफ्ता आदि इनके मित्रोमे थे। अरबी, फारसी और उर्दू तीनो भाषाओमे शेर कहते थे। उर्दूमे पहले नसीरसे फिर मुजरिम अकबरावादी और अन्तमे मीर ममनून-से इस्लाह लेते रहे।

यह शायरके बजाय विद्वान होनेके नाते अधिक प्रसिद्ध है।

मै और जौके बादाकशी ले गई मुझे।
यह कम निगाहियाँ तेरी बज़्मे शराबमे ॥

ऐ दिल! तमाम नफा है सौदाए इश्क़में।
इक जानका ज़ियाँ है सो ऐसा ज़ियाँ नहीं ॥

——इन्तख़ादियात, भाग २, पृ० १४४

८१

असीर

सैयद मुजफ्फर अलीखाँ 'असीर' के पिता इमदाद अली अमेठीके रहनेवाले थे। असीरका विवाह १२ वर्षकी अवस्थामें—लखनऊके शेख़-जादोंके घरानेमें हुआ, तबसे वे वहीं रहने लगे थे। 'मुसहफ़ी' से शायरीमें इस्लाह लेते थे। नवाब वाजिदअली शाहके ८–९ साल खास मुसाहबोंमें रहे, और उनसे तदबीरुद्दौला मुदब्बिरुल मुल्क-जैसा उच्च ख़िताब प्राप्त किया। नवाब वाजिदअलीकी कविताका संशोधन भी कभी-कभी कर दिया करते थे। १८५७ के विप्लवके बाद जब नवाब बन्दी बनाकर कलकत्ते भेजे गये तो ये उनके साथ नहीं गये। इससे वाजिदअलीको बड़ी मानसिक पीड़ा पहुँची, और उसे अपने अशआरमें भी प्रकट किया।

गदरके बाद ये रामपुर चले गये और वहाँके नवाब यूसुफअलीख़ाँ और उनके पुत्र नवाब कल्बअलीख़ाँने इनकी बड़ी क़द्रदानी की। ८१ वर्षकी आयुमें सन् १८८१ में लखनऊमें समाधि पाई।

"सियहबख़्तीमें कब कोई किसीका साथ देता है।
कि तारीकीमें साया भी जुदा रहता है इन्साँसे॥ ——नासिख

होता नहीं है कोई बुरे वक़्तमें शरीक।
पत्ते भी भागते हैं ख़िज़ाँमें शजरसे दूर॥

कौन होता है बुरे वक़्तकी हालतका शरीक।
मरते दम आँखको देखा है कि फिर जाती है॥ ——अज्ञात

इनकी कृतियोमे छः दीवान उर्दू, एक फारसी, और एक मसनवी हैं। इनके अतिरिक्त कसीदे और मर्सिये भी काफ़ी लिखे हैं। अमीर मीनाई-जैसे ख्याति प्राप्त शायर इन्हीके शिष्य थे। उर्दू-भाषापर असीरका आश्चर्य-जनक प्रभाव सभी उर्दू-साहित्यिक स्वीकृत करते हैं, परन्तु उनका कलाम साधारण लखनवी रगका है। कभी-कभी लखनवी रगसे अलग होकर लिखते थे तो खूब लिखते थे।

कहनेको यूँ जहाँमें हजारो हैं यार-दोस्त।
मुश्किलके वक़्त एक है परवर्दिगार दोस्त॥

जिदसे जितना है यहाँ काफ़िरो दीदारमें फ़र्क।
जाहिद इतना तो नही सबुहओ[1] जुन्नारमें[2] फर्क॥

आया है हमको हाथ यह मजमूँ चरागसे।
रोशन उसीका नाम रहे जो जलाये दिल॥

—तारीखे अदबे उर्दू, पृ० ३०४

काग़ज़ तमाम[3], किलक तमाम और हम तमाम।
पर दास्ताने शौक अभी नातमाम[4] है॥

बुतकदेकी मैं सैर कर आया।
वाँ खुदा ही खुदा नजर आया॥

नब्ज बीमारकी ऐ रश्के मसीहा देखी।
आज क्या आपने जाती हुई दुनिया देखी॥

खुदा जाने यह दुनिया जलवागाहे नाज है किसकी?
हजारो उठ गये, रौनक वही बाकी है महफ़िलकी॥

७ सितम्बर १९५०

---

[1]सुमरन, माला, [2]जनेऊमे, [3]समाप्त, [4]अधूरी।

८२

अमानत

[१८१६-१८५८ ई०]

सैयद आगाहसन 'अमानत' मीर आगा रिजवीके पुत्र थे। बीस वर्षकी उम्रमे यह अकस्मात गूगे हो गये और ९ वर्षके बाद जबान खुली। इनकी कई पुस्तके छप चुकी है। उनमे 'इन्दरसभा' 'वासोख्त' काफी प्रसिद्ध है। नासिखकी चलाई प्रथा रियायते लफ़्जीका इनमे पूर्ण विकास हुआ। दो पुत्र लताफत और फसाहतको छोडकर सन् १८५८ मे परलोक सिधारे।

बज्मे आलममे यह हर शब है 'अमानत'की दुआ।
शमअ़रूए यारसे रोशन मेरा काशाना हो॥

फी सबील अल्लाह पानी इनको दो ऐ आबलो!
काँटे अब देखे नही जाते जबाने खारके॥

आँसू रवाँ है ज़ुल्फ़े सियहके ख़यालमें।
मोती पिरो रहा हूँ तेरे बाल-बालमें॥

इश्कका ख़ंजर लगा है दिलपै कारी इन दिनों।
जख़्मकी सूरत है ख़ूँ आँखोंसे जारी इन दिनों॥

कूचये क़ातिल तलक ऐ दिल! रसाई कीजिये।
कासये सर हाथमे लेकर गदाई कीजिये॥

—तारीख़े अदबे उर्दू, पृ० ३०६

८ सितम्बर १९५०

८३

क़लक

ख्वाजा 'अरशद' अलीखाँ उर्फ असदुल्लाखाँ 'आफताबउद्दौला' की पदवीसे विभूषित थे। ख्वाजा वज़ीरके भान्जे और शागिर्द भी थे। खुशामद और ज़माना साज़ीके तौरपर वाजिदअलीका शिष्य भी अपनेको कहते थे। इनकी मसनवी 'तिलस्मे उल्फत' काबिले तारीफ है। ग़ज़लें मामूली हैं।

ऐसे दीवाने हो सर संगसे[1] फोड़े अपना।
कभी बादाम जो देखे तेरी प्यारी आँखें॥

वह कौन है जहाँमें नहीं जिसको हुब्बेज़र[2]।
ज़ाहिद लगाएँ आँखोंसे उस सीमतनके पाँव॥

६ सितम्बर १९५०

---

[1]पत्थरसे; [2]धनकी इच्छा।

८४

ज़की

शेख़ महदीअलीख़ाँ 'ज़की' करामतअलीख़ाँके पुत्र थे। लखनऊके रहने वाले थे। नासिखके शिष्य थे। नवाबकी प्रशंसामे कसीदा लिखनेसे पुरस्कृत हुए। फिर ये दिल्ली और दक्षिण भी गये, जहाँ अच्छा आदर-सत्कार हुआ। अन्तमे लखनऊ लौट आये और वाजिदअलीके दरबारी कवि बनाये गये और मलिकुश्शोअ़राकी पदवीसे विभूषित किये गये। अवधकी नवाबी (१८५७मे) समाप्त होनेपर मुरादाबाद चले गये थे, किन्तु नवाब युसुफ अलीख़ाँके निमंत्रण पर रामपुर रहने लगे थे और नवाबकी मृत्युके बाद अम्बाले चले गये थे। वही १८६४ ई० मे समाधि पाई। ये उर्दू काव्यशास्त्रके अच्छे ज्ञाता थे और उस विषयपर एक पुस्तक भी लिखकर १८५८ ई० मे प्रकाशित की थी। इनका एक दीवान प्रकाशित हुआ है।

जा-बजा चर्चे हुए जब हुए हमसे दो-चार।
खुल गया राज़ पड़ी बात जो दो-चारके मुँह ॥

अब सबब क्या है जो काँटा-सा खटकता है 'ज़की'।
यही वह दिल है जो रहता था सदा आँखोंमें ॥

इन संगदिल बुतोंसे कहाँतक बराये दिल।
पहलूमें संग काश कि होता बजाये दिल ॥

१० सितम्बर १९५०

८५

दरख्शां

सैयद अलीखाँ 'दरख्शा' मीर मुगलके पुत्र, असीरके शिष्य और लखनऊके रहनेवाले थे। महताबुद्दौला कोकबुलमुल्क सितारएजंगकी पदवीसे विभूषित थे। नवाब वाजिदअलीके बन्दी होनेपर ये भी उनके साथ कलकत्ते गये और वही समाधि पाई। ज्योतिष भी जानते थे। मावारण शायर थे।

खेद है कि इनका कलाम हमे दस्तयाब नही हो सका।

११ सितम्बर १९५०

८६

तसलीम

[१८२०–१९११ ई०]

शेख अमीरअल्लाह 'तसलीम' मौलवी अब्दुलसमद अन्सारीके बेटे थे। लखनऊमे परवरिश पाई थी। असगरअली 'नसीम' देहलवीके शिष्य थे। इनके ५ दीवान मिलते हैं। वर्तमान युगके तग़ज्जुलके सर्व-श्रेष्ठ शायर मौलाना हसरत मोहानी इन्हीके शिष्य थे, जिनका परिचय और कलाम 'शेरोशायरी' मे प्रकाशित हो चुका है। ९६ वर्षकी आयुमे समाधि पाई। देहलवीरंगमे शेर कहते थे।

अल्लामा 'नियाज़' फतहपुरीने अपने एक मित्रके पत्रोत्तरमे लिखा है—

"हॉ, मैने मुशी अमीरअल्लाह 'तसलीम, को देखा है, उनसे मिला भी हूँ और उनकी शायरीका भी मुअ़तरिफ (प्रशसक) हूँ। मेरी मसे भीग रही है और वे दौरे पुरअफशानीसे गुज़र रहे हैं। हड्डियोंका एक ढॉचा, जिसपर झुर्रियोका यह आलम जैसे कपड़ेपर अतू (ठप) कर दिया हो। वग़ैर असा (लकडी) के सहारेके एक क़दम चलना दुश्वार, समाअ़त और बीनाई (श्रवण और दृष्टि शक्ति) तकरीबन मफक़ूद (नष्ट), कमर झुकी हुई, रीश-ओ-बरूत (दाडी-मूँछ) सब बर्फके गालेकी तरह सफेद, हाथ-पाँवमे रअशा (कम्पन) लेकिन खुशदिली और खुशमिज़ाजीका यह आलम कि गोया जवानी अभी आई है।"

"रामपुरमे ब-जुमरये खुशनवीसान मुलाज़िम (सुन्दर अक्षर लिखनेके कार्यपर नियत) थे। तीस रुपये मशाहरा था। लेकिन खिदमत मुआफ थी। . . क्या बताऊँ किस कदर दिलचस्प इन्सान थे। बच्चोमे बच्चे, जवानोमे जवान और बूढे तो खैर वे थे ही। सौ से एक-दो साल कम। लखनऊसे कई माहके बाद वापिस आये है, यह वोह ज़माना है, जब लखनऊमे सख्त ताऊन फैला था और शायद इसमे मुब्तला भी हो चुके थे। किसीने पूछा—हज़रत! इस मर्तबा वतनमे बहुत कयाम रहा। फर्माने लगे—हाँ मियाँ, गया तो इसी इरादेसे था कि अब यहाँ वापिस न आऊँगा और हजरते ताऊनसे इल्तजा करूँगा कि मेरी मुश्किल भी हल कर दीजिये। लेकिन वहाँ वह इस कदर मसरूफ थे कि मेरी बात भी न पूछी। मजबूरन वापिस आगया। अब इरादा है कि यह सैकड़ा पूरा ही कर लूँ। कहनेवालेने कहा—हज़रत! इसके बाद फिर इकाई है। फ़र्माया—फिर जीना बेहयाई है।

"गज़लगोईमे चूँकि ये खान्दाने मोमिनसे ताल्लुक रखते है, इसलिए बावजूद लखनवी होनेके इनमे लखनवियत बहुत कम थी। जज़्बात निगारीके साथ-साथ मोमिनकी हल्की-हल्की फारसी तरकीबोका बाकपन इनके कलामकी भी खसूसियत थी। एकबार मैने खुद इनकी ज़बानसे एक गज़ल सुनी थी, दो-तीन शेर अब भी याद है—

जी में आता है कि इक दिन मरके हम।
हिम्मते दोशे अज़ीज़ाँ[1] देखलें।

इल्तफ़ाते जोशे वहशत[2] फिर कहाँ?
हो सके जबतक, बयाबाँ[3] देखलें।

---

[1]इष्ट-मित्रोके कन्धोकी सामर्थ्य, [2]उन्मादावस्थाकी यह कृपा; [3]जंगल, वीराना।

गर उन्हें है ख़ौफ़े अर्ज़े आरज़ू।
दूरसे हाले परीशाँ देखलें।*

मुहब्बतमें यह बेरहमी कि जीना हो गया मुश्किल।
ख़ुदा नाकरदा क्या होता जो वह काफ़िर उदू[1] होता॥

अल्लाहरे इज़्तराबे तमन्नाए दीदे यार।
इक फुरसते निगाहमें सौ बार देखना॥

तड़पते देखता हूँ जब कोई शय।
उठा लेता हूँ अपना दिल समझकर॥

——इन्तकादियात, भाग २

आबरू गर चाहता है कुंजेखिलवत कर क़बूल।
क़तरये नीसाँ[2] सदफ़में[3] आके गोहर[4] हो गया॥

उम्रभर रश्के उदू साथ था कहता क्या हाल?
वोह मिला भी कभी तनहा तो मैं तनहा न हुआ॥

कुछ कह दो झूठ-सच कि तवक़्क़ोह बँधी रहे।
तोड़ो न आसरा दिले उम्मीदवारका॥

'तसलीम' किसके वास्ते बैठे हो? घर चलो।
क्या ऐतबार वादये बेऐतबारका॥

वाइज़ ख़ुदाशनास न होगा तमाम उम्र।
अबतक पड़ा हुआ है हरामो हलालमें॥

---

*मकतूबाते नियाज भाग २ पृ० १५–१७

[1]शत्रु; [2]वर्षाका पानी;
[3]सीपमें; [4]मोती।

गर्दिशेवक़्त बहुत देख चुके ए 'तसलीम'!
चलके मयख़ानेमे अब गर्दिशे साग़र देखो ॥

करते है सजदे इसलिये दैरो हरम्मे हम।
क्या जानिये वोह शोख़ कहाँ हो कहाँ न हो ॥

तिफ़्लीसे जो बुत शोख़ हो आफ़तका बना हो।
वोह फ़ित्ना जवानीमें क़यामत न हो क्या हो ॥

१२ सितम्बर १९५०

८७

अमीर मीनाई

[१८२८–१९०० ई०]

मुंशी अमीर अहमद 'अमीर' मीनाई, मौलवी करम मुहम्मदके पुत्र थे, और नवाब नसीरुद्दीनके शासनकाल १८२८ ई० मे लखनऊमे उत्पन्न हुए थे। शेरोसुखनका शौक बचपनसे ही था, क्योंकि उन दिनों शेरो-शायरीके चर्चे आम थे। आतिश और नासिखके शिष्योंके रोज़ाना मार्के, मुशायरोंकी हर गली-कूचोमे धूम, अनीस और दबीर जैसे बाक-माल मर्सियेगो उस्तादोंके हंगामे, अमीर मीनाईको शायरीकी तरफ आकर्षित करनेके लिए काफी थे।

नवाब मुजफ़्फरअलीखाँ 'असीर' मुशीजीके कवितागुरु थे, परन्तु हक तो यह है कि असीरका नाम मुशीजीकी बदौलत चमका। कुछ दिनकी लगन और मेहनतके बाद मुशीजीकी ख्याति फैलने लगी। नवाब़ वाजिद-अलीने प्रशंसा सुनी तो उन्होंने भी १८५२ ई० मे बुलाकर सुना, और दो ग्रन्थ—इरशादुलसुलतान, हिदायतुलसुलतान लिखाये। जिसके एवज़में मुशीजीको खिलअत और इनाम दिये गये।

मुशीजीकी ख्याति तबसे और भी अधिक बढ़ती गई। १८५७ के विप्लवके कारण आर्थिक चिन्ताओंमे ग्रसित हो गये। हितैषी मित्रोके समझाने बुझानेपर अंग्रेजी नौकरी करनेपर प्रस्तुत भी हुए, परन्तु जब मालूम हुआ कि सर्विसके लिए प्रार्थनापत्र देना होगा तो उन्होंने नौकरीका

इरादा तर्क कर दिया, और थोड़े दिन वेकार रहनेके वाद नवाव रामपुरके निमन्त्रणपर रामपुर चले गये।

नवाब रामपुर बड़े गुणज्ञ और कला-पारखी थे। उन्होंने भारतके हर कोनेसे प्रसिद्ध-प्रसिद्ध हर प्रकारके गुणी एकत्र कर लिये थे। मुंशीजीको उन्होने अपना कविता गुरु बनाकर काफी प्रतिष्ठा दी। रामपुरमे मुंशीजी अत्यन्त आदर और सन्मानकी दृष्टिसे देखे जाते थे। साहित्यिक और सामाजिक क्षेत्रोमे उनका व्यक्तित्व वहुत प्रभावशाली था।

मुशीजी शायर होनेके अतिरिक्त, अरवी-फारसी और उर्दूके पूर्ण पण्डित, भाषा शास्त्र और शब्दकोपके प्रामाणिक अधिकारी और छन्द-शास्त्रके योग्य विद्वान थे। रामपुरमे सुख-शान्ति पूर्वक रहते हुए अध्ययन और ग्रन्थ-निर्माणमे जीवन व्यतीत करते थे। मुशीजी वहुत अधिक लिखते थे। १८५७ के गदरमे उनका एक दीवान और वाज़ गद्य पुस्तके नष्ट हो गईं। १८९५ ई० मे मकानमे आग लग जानेसे उनकी अक्सर कृतियाँ भस्म हो गईं। फिर भी उनके २२ ग्रन्थ मिलते है। इनमे ये चार दीवान गजलोंके हैं—

१—मिरातुलगैब—लखनवी रगकी गज़लों और कुछ कसीदोंका प्रारम्भिक दीवान।

२—जौहरे इन्तखाब—
३—गौहरे इन्तखाब
} ये दोनो दीवन मीर और दर्दके रंगमे लिखे हैं।

४—सनमखानये इश्क—यह दीवान मुंशीजीने अपने प्रतिद्वन्द्वी मिर्जा दाग के रंगमें कहा है।

मुशीजीकी कृतियोमे 'अमीरूललुगात' उर्दू-साहित्यको उनकी बहुत वडी देन है। इसकी ८ जिल्द निर्माण करनेका संकल्प था, किन्तु २ ही प्रकाशित हो पाईं और तीसरी अधूरी लिखी रह गई कि उम्रने वफा न की।

मुशीजी ४३ वर्ष रामपुरमे आदर-सत्कार पूर्वक रहे, किन्तु दुर्भाग्यसे १९०० ई० मे हैदराबाद चले गये। वहाँ थोड़े दिन कयाम किया था कि

बीमार हो गये और वही बीमारी आपकी मौतका बहाना बन गई। बीमारीकी स्थितिमे नवाब मिर्जा दाग और प० रतननाथ 'सरशार' अयादतको आते थे। कभी-कभी हैदराबादके प्रधान मंत्री महाराजा सर किशनप्रसाद भी कदमरंजा फर्माते रहते थे।

हैदराबाद जानेकी वजह यह थी कि १९००ई० मे हैदराबाद-निजाम बनारस तशरीफ़ लाये तो मुंशीजीने उनकी शानमे बनारस पहुँचकर एक क़सीदा पढा। जो कि निजामको बहुत पसन्द आया। तभी निजामने हैदराबाद रहनेका निमंत्रण दिया था।

मुंशीजीकी मृत्युपर मिर्जा दाग ने एक नौहा लिखा था, जिसे हम 'शेरोशायरी' मे दे चुके है।

'अमीर' लखनवी शायरोंमें बहुत प्रसिद्ध हुए है। आतिश और नासिख के बाद आपका मर्तबा सबसे बुलन्द समझा जाता है। जिस तरह उर्दू-शायरीके ख़ुदाये सुख़न 'मीर' हुए है, लोग आपको भी लखनऊ-बज्मेअदबका ख़ुदाए सुख़न समझते है।

अल्लामा नियाज फतहपुरी लिखते हैं—"मुताक्ख़रीनके दूसरे दौरमे अमीर और दागको जितनी शोहरत हासिल हुई, किसी औरको नसीब न हो सकी, और इसका सबब शायद यह था कि एकको नवाब रामपुरकी कद्रअफजाईने उछाला और दूसरेको शाह दकनकी सुख़न फहमीने। अमीर मीनाई अपने फज्लो कमालके लिहाजसे बडे मर्तबेके शख़्स थे। लेकिन हकीकत ये है कि वे शायर पैदा नही हुए थे। बरख़िलाफ इसके, दाग शायर महज़ (केवल शायर) थे और कुछ नही। अमीरकी शायरी इक्तसाबी (पेशेवरी, आजीविकाके लिए) थी और दागकी फ़ितरी (स्वाभाविक)। लेकिन इन (मुशीजी) के इक्तसाबका भी यह आलम था कि गज़ल, कसीदे, मसनवी—सभी कुछ लिखा और हकीक़त ये है कि ज़बानकी सेहत, लुगतकी तहकीक, मुहावरोका इस्तेमाल, अल्फाजकी बन्दिश और मजमून आफ़रीनीके लिहाज़से बडे जबर्दस्त उस्ताद थे। लेकिन जज्बात

(भावो) के लिहाजसे उनके कलाममे कोई कैफियत नही पाई जाती। उनके दो दीवान हैं। एक 'मिरातुलगैब' जो बिलकुल उनके उस्ताद 'असीर' के रगमे है, और दूसरा 'सनमखानये इश्क' जिसमे दाग़का ततबअ (अनुकरण) किया है, इसीके साथ 'गौहरे इन्तखाब'' मे दर्द और मीरके रगके अशआर पेश किये गये है, और इसीसे साबित होता है कि वे अपनी जहानत (बुद्धि) से काम लेकर हररंगमें लिख सकते थे और फितरतन वह खुद किसी मखसूस जौके शायरीके मालिक न थे।

"दाग देहलवी स्कूलके शायर थे और लालक़िलेके अन्दर उनकी तरबियत (लालन-पालन) हुई थी। मिर्ज़ा फखरूके साथ-साथ ज़ौकके सामने ज़ानूए अदब इन्होने भी तय किया था। वोह किले मुअल्लाकी ज़बान, वोह शेरोसुखनका चर्चा, वोह रगीन सुबहते। फितरी ज़ौक (स्वभाविक शौक) चमक उठा और आखिरकार दुनियाए शायरीमे वोह शोहरत हासिल की कि उस दौरमे किसी दूसरेको नसीब न हो सकी। उनके कलामकी खूबी मामलाते हुस्नोइश्कके बयान करनेपर मुनहसिर है, और इस कूचेकी खाक उन्होने ऐसी छानी कि क्या कोई छानेगा[1] ?"

मुशीजी शायर, विद्वान होनेके अतिरिक्त मनुष्योचित गुणोंसे परिपूर्ण थे। बातहज़ीब, सजीदा, नेक, हमदर्द, बाअदब, और बाहया थे। धार्मिकतापूर्वक सादा और सरल जीवन व्यतीत करते थे। कभी किसीकी हिजो नही लिखी और न एक शब्द मुंहसे ऐसा निकाला जिससे किसीका दिल दुखे। हर एकसे बड़ी मुहब्बत और इज्ज़तसे पेश आते थे। निष्पक्ष ऐसे कि अपने बडे-से-बडे प्रतिद्वन्द्वीके कलामकी मुक्तकण्ठसे सराहना करते थे। दाग जैसे प्रतिद्वन्द्वीका भी अत्यन्त आदर और सन्मान करते थे। उनके साथ जितना सौजन्यता और प्रेमपूर्ण व्यवहार करते थे, वह अनु-

---

[1]इन्तकादियात, भाग २, पृ० १४६

करणीय है। उनका एक पत्र मिर्जा दाग के नाम लिखा हुआ हम 'शेरो-शायरी' मे दे चुके है। केवल दो घटनाओंका उल्लेख यहाँ किया जाता है।

रियाज खैराबादी मुशीजीके सर्वप्रिय और योग्य शिष्य थे। उनकी शोहरत काफी फैल चुकी थी। नवाब रामपुरके बार-बार आग्रह करनेपर मुशीजीने इन्हे रामपुर बुलवाया। इस घटनाका उल्लेख करते हुए मुशीजीके पौत्र 'तसनीम' मीनाई लिखते है—"रियाज जिस दिन रामपुर पहुँचे, अमीर मीनाई दूसरे रोज़ या उसी रोज़ उनको मुसाहब मंजिल ले गये। वहाँ हस्बदस्तूर अरबाबे कमालका जमघटा था। अमीर मीनाईने रियाज को अहले बज़्मसे मुतअर्रिफ़ कराया और खुद खुल्द आशियाँ (नवावका आदर सूचक नाम) के पास रियाजकी आमदकी इत्तला करने चले गये। यहाँ नवाब मिर्ज़ा दागने मज़ाहन (हँसीमे) रियाजको छेडनेके लिए कहा कि 'अख्वाह! आप ही है सैयद रियाज़ अहमद 'रियाज़', अमा तुमको तो यारोंका शागिर्द होना चाहिए था। कहाँ इन फ़िरगी मुहल्लीके मौलवी साहबके फन्देमे फँसे हो?' अशआरे रियाज़की शोखी और बेसाख्तगी उस वक्त भी मशहूरे खलायक (प्रसिद्ध) हो चुकी थी और दागका यह खास मैदान था। इसी मुनासबतके खयालसे उन्होंने यह फिकरा कहा। मगर रियाजको कहाँ ताब थी? यह सुनते ही चरागपा हो गये और कहा—'जनाब, वे मेरे उस्ताद है, उनका जिक्र ही क्या? आपको दावा हो तो मुझ हेचदा (तुच्छ) से ही दो-दो हाथ हो जाएँ। बिस्मिल्लाह कलम-दावात मँगवाइये, यहाँ सब अहले कमाल जमा है। सबके सामने जमीन मुतईन (समस्यापूर्ति) हो जाये। हम आप इसी वक्त गजल कह ले। देखे कौन बाजी ले जाता है'। नवाब मिर्जाखाँ बेचारेने महज़ मज़ाहन एक बात कही थी, उसका बतगड़ बन गया; रियाज़के जवाबपर वह जर्द होकर चुप हो गये। पास ही मौलवी अब्दुलहक खैराबादी बैठे थे। रियाजके हमवतन, अजीज, बुजुर्ग और रियाज़से कहीं अधिक आतिशखू और शोलामिजाज (आग्नेय स्वभावी)।

उन्होंने रियाजको डाँटा—'दिमाग ख़राब हो गया है क्या ? मालूम है किससे मुख़ातिब हो, तुम्हारे उस्तादके मुहब्बेख़ास, मुआसर, बिरादर वजा बराबर। इनका अदब और अहतराम करना तुमपर उसी तरह फर्ज़ है, जिस तरह अपने उस्तादका। माफी माँगो'। रियाज़की क्या मजाल थी कि मौलवी साहबके सामने दम मारते। सिर्फ इस कदर कहा—'हजरत ! पहले तो इन्होंने छेड की, मैंने तो सिर्फ जवाब दिया है।' मगर मौलवी साहब कहाँ मानने वाले थे। उसी वक़्त रियाज़से माज़रत कराई और मामला रफा-दफा हो गया। अमीर मीनाई जब अन्दरसे वापिस आये तो उनको इसका इल्म न हो सका। घर पहुँचकर पता चला। उनकी पाकीज़ा-नफ़्सी देखिये। उसी वक्त सवारी मँगाकर रियाजको ले नवाब मिर्ज़ाख़ाँके यहाँ पहुँचे। रियाजसे मुकर्रर माफ़ी मँगवाई और खुद भी माजरत की कि मेरे शागिर्दने यह गुस्ताख़ी की। मेरा सर शर्म और नदामतसे ख़म है। तुम मुहब्बेख़ास हो, मुझे भी माफ करो।' अल्लाह-अल्लाह क्या लोग थे ! साहबे कमाल, साहबे तौकीर, मगर शकिस्तगी-को किसीकी रवा नहीं रख सकते थे"[१]

दूसरी घटना इस प्रकार है—

"एक मर्तबा नवाब मिर्ज़ाख़ाँ दागकी नई गजल किसी सिलसिलेमें अमीर मीनाईकी नज़रसे गुजरी—

> **बुताने माहवश उजड़ी हुई मंजिलमें रहते हैं।**
> **यह जिसकी जान लेते हैं, उसीके दिलमें रहते हैं॥**

अमीर मीनाईके शागिर्दो और बेटो सबने इसरार किया कि हजरत इस जमीनमे गज़ल कही जाय। लेकिन अमीर मीनाईने किसी सूरतसे हामी नही भरी। यही जवाव दिया कि दागने ज़मीनको मिटा दिया,

---

[१]मयख़ानयेरियाज, पृ० ४६–४७

अब मेरे फिक्र करनेका मौका नही। यह मसलक-ओ-मशरब था अमीर मीनाईका अपने मुआसरीन (समकालीन, बराबरवालों) के मुताल्लिक़। तो जाहिर है कि कदमा और मुतवस्सतीन (प्राचीन और मध्यवर्ती पूर्वज शायरों) की कद्रो-मजिलतका उनके दिलमे क्या मुकाम होगा? शागिर्दोंका इसरार रायगाँ (व्यर्थ) गया। सबने आपसमे सलाह की, रियाज आये हुए है, वोह हज़रतके बहुत चहेते और मुँह चढे हुए ह, उनको हमवार करना चाहिए। रियाजसे मशवरा हुआ। वोह (रियाज) एक काइयाँ। दूसरे सब शागिर्दोंके इस बाबमे कान काटे। शागिर्दोंने तो इसरार करनेकी फर्माइश की थी। ये हजरत बाकायदा रूठ गये, और रातको जब अमीर मीनाईने खानेपर याद किया तो उन्होने साफ कह दिया कि 'हजरत जबतक नासिखकी जमीनमे गजल न होगी, मैने कसम खाई है कि निवाला मुँहमे न रखूँगा।' अब हजरत लाख-लाख समझा रहे है, इसरार कर रहे है, खाना ख़राब हो रहा है, भूखसे हजरतका और दूसरे शागिर्दो और अजीज़ोका बुरा हाल है, और खुद बानिये साज़िश (रियाजको भरेंपै चढानेवाले) हजरत भूखसे घबराके रियाजको समझा रहे है, मगर यह हजरत है कि टससे मस नही होते। आख़िरकार दस्तरख्वान बढा दिया गया और अमीर मीनाई और दूसरे सब लोग भूके ही उठ खड़े हुए। मगर रियाज थे कि अकड़े बैठे रहे। गर्मियोंका ज़माना था। अमीरमीनाई सहनमे इस्तराहत फर्माते थे। गिर्द खास शागिर्द और अजीज मूढोपर बैठे थे। ख़ादिमने चप्पी शुरू की और अमीर मीनाईने कहा—'लाओ भई, कागज-पेंसिल लाओ रियाजकी फर्माइश पूरी की जाय।' अब रियाज खुश-खुश दूसरे शागिर्दोंके साथ कागज पेंसिल हाथमे लिये पास आकर बैठ गये। मिसरा दुहराया गया। घण्टे सवा घण्टेमे दो गजले पूरी हुई, और अमीर मीनाईने मक्ता लिखवाकर रियाज़से कहा—'लो मियाँ, अब तो खाना खाओ, सब तुम्हारी वजहसे भूके है।' मगर रियाजने कहा कि 'हजरत! आस्तीनका काफिया गजलमे नही है।

मैं आस्तीनके काफियेमे शेर लिखवाये वगैर खाना न खाऊँगा'। अमीर मीनाईने कहा कि—'भई, रियाज़ तुम वहुत सताते हो। तुम्हारा शौक़ पूरा तो हो गया, अव जिद न करो, मगर रियाज कहाँ मानने वाले थे। फिर उठकर बैठ गये और जब अमीर मीनाईने तंग आकर कदरे ताम्मुलके बाद यह शेर लिखवाया—

क़रीब है यार रोज़े महशर छुपेगा कुश्तोंका ख़ून क्योंकर ?
जो चुप रहेगी ज़बाने खंजर लहू पुकारेगा आस्तीं का ॥

तो उछल पडे। अमीर मीनाईके कदमोपर हाथ रख दिये और रोने लगे।"[1]

उक्त दो घटनाओसे अमीर मीनाईकी सौजन्यता, नम्रता, भद्रता और शिष्यस्नेहका परिचय मिलता है। आपके सैकड़ों शिष्योंमेसे कुछ निम्न लिखित थे—

नाजिम, नवाब, सफदर, जाह, जलील, रियाज, बरहम, ज़ाहिद, कौसर, हैरान, मुहसन, आबिद, रज़ा, दिल, क़रार, साकिब, असगर, मुज़तर, सरशार, हफीज, आह, अख़्तर, कमर वगैरह। इनमे जलील, रियाज, दिल, साकिब, हफीज़, सरशार, आदिने काफ़ी शुहरत पाई है। इनका उल्लेख शेरो-सुख़नके दूसरे भागमे वर्तमान युगीन शायरोमे किया जायगा।

हमारी प्रबल अभिलाषा थी कि अमीर मीनाईके गजलोंके चारो दीवानोको अध्ययन करके उनके अशआरका सकलन करे और उनके प्रतिद्वन्द्वी दागके कलामसे तुलना भी करे, किन्तु खेद है कि बार-बार प्रयत्न करनेपर भी उनके दीवान प्राप्त नही हो सके। लाहौर, लखनऊ, दिल्ली सभी जगह जाकर स्वयं तलाश किये। आख़िर उनकी प्रारम्भिक

[1]मयख़ानये रियाज, पृ० ४३–४५

ग़जलोंका लखनवी रंगका दीवान 'मिरातुल गैब' हमे अपने प्रिय मित्र सुमत साहबके यहाँसे प्राप्त हुआ। अमीर जैसे ख्याति प्राप्त शायरका कलाम केवल उनकी प्रारम्भिक ग़जलोंसे चयन करना, उनके साथ अन्याय करना है; परन्तु मजबूरीका उपाय भी क्या ? भारतके बटवारेसे उर्दूका साहित्य अब मिलता ही कहाँ है ? जो भी प्राप्त है उसीको गनीमत समझिये।

'मिरातुलगैब' चूँकि शुरू-शुरूकी गजलों और लखनवी रंगका मजमूआ है, इसलिए इसमे वे सब अयूब मौजूद है, जो नासिख़के रगके लिए मख़सूस है। मुसन्निफ, तारीख़ेअदबे उर्दू लिखते हैं—"जा बजा रियायते लफ्जी, इब्तजाल, रक़ीक और बदनुमा तशबीहे, औरतोके लिबास और सामाने जीनत, मसलन—अगिया, कुरती, कघी, चोटी, वगैरह। इसमें कोई बात नई नही है। बल्कि वही पुराने फर्सूदा मजामीन है, जो उलट-पलटकर रगीन इबारतमे बयान किये गये है। अलबत्ता उनका दूसरा दीवान 'सनमख़ानये इश्क' उनके बड़े हरीफ और मुआसिर (समकालीन प्रतिद्वन्द्वी) दाग़की तर्जपर है, और इसमे आला तख़ैय्युल, सलासत, रवानी और दिलकश आशिकाना तरकीबे बकसरत मौजूद है। अमीरकी नातिया गज़ले भी बहतरीन है। मुशीजीको गज़ल, कसीदे, रूबाई, मुख़म्मस, मुसद्दस, वगैरह पर अबूर हासिल था।"[1]

मिरातुलगैबमे तक़रीबन ६१८० अशआर है, जिनमेसे चन्द नमूने पेशेनजर हैं। अश्लील, चुम्बन, और अमरद परस्तीके अशआर चुननेसे गुरेज़ रखा है।

---

[1]तारीखे अदबे उर्दू, पृ० ४२२–२३

ज़ाहिद ! लिहाज़ रख कि न गुल हो चिराग़ेज़ुहद[1]।
झोंका न आने पाये हवाएगरूरका ॥
क्या डर जो क़स्रेउफ़ू[2] मुक़ामेबुलन्द है।
ज़ीना लगाके पहुँचूँगा उजरे गुनाहका ॥
या रब ! अकेले रहनेकी आदत नहीं मुझे।
जमघट रहे मज़ारपै ग़िलमानो हूरका ॥

मिरे ही सामने दामन उठाकर नाज़से चलना।
मुझीसे फिर गिला उलटा मेरे चाकेगरेबॉंका[3]॥

कहाँ सामाँ था वहशतमें कि नामा[4] यारको लिखता।
दिया क़ासिदको पुर्ज़ा फाड़कर मैंने गरेबॉंका ॥
किया इज़हारे दर्देदिल तो खींचा म्यानसे ख़ंजर।
नया नुस्ख़ा निकाला आपने यह दर्देहिजराँका[5] ॥
कहाँ जायेंगे उड़कर यह परीरू[6] मेरी चालोंसे।
मजावर[7] मैं बनूँगा जाके दरगाहे सुलेमॉंका ॥
लबेबाम उस परीने बाल क्या चहरेसे सरकाये।
उठाकर अब्रके[8] परदेको गोया बर्क़ने[9] झॉंका ॥
ज़रा-सी छेड़में क्यों फूट बहते हो तुम ऐ छालो।
इसीसे छेड़ता है तुमको हर कॉंटा बयाबॉंका ॥

---

[1]संयमका दीपक, [2]क्षमा मन्दिर; [3]कुरता, अंगरखाका गला फाड़नेकी शिकायत; [4]पत्र; [5]विरहव्यथा मिटानेका, [6]परीसूरत, हसीन; [7]क़ब्रका रक्षक; [8]वर्षारूपी घूंघटको, [9]बिजलीने।

आया न एक बार अयादत[1]को वोह मसीह।
सौ बार मै फ़रेबसे बीमार हो चुका॥
जब आस्तानेयारपै[2] हाज़िर हुए हैं हम।
दरबाँसे यह सुना है कि दरबार हो चुका॥

वाइज़ो ! इश्क़का हर मर्तबा चरचा कैसा?
रोज़का तुमने निकाला है ये झगड़ा कैसा?
नब्ज़ देखी तो हरारतसे जली नब्ज़ेमसीह*।
तेरे बीमारे मुहब्बतका मदावा[3] कैसा॥

मस्जिदसे सूए मैकदा ऐ शेख़ ! यूँ न देख।
बालाएताक हो न अक़ीदा मुरीदका॥
आने तो दो बहार यह दोनो है रहने मय।
ख़िरका[4] न पीरका है न जुब्बर मुरीदका॥
इस ग़मकदेमें कट गई यूँ अपनी ज़िन्दगी।
क़ैदीपै जैसे रोज़ गुज़र जाये ईदका॥

पछता रहे हैं ख़ून मेरा करके क्यों हुज़ूर?
अब इसपै ख़ाक डालिये जो कुछ हुआ-हुआ॥
यह ज़ोफसे सुबक[5] हूँ कि नक़्शे क़दम मेरा।
पड़ता तो है ज़मीनपै लेकिन मिटा हुआ॥
बोसा तलब किया तो यह कहने लगा वो बुत।
"कुदरत खुदाकी ! तुमको भी यह हौसला हुआ"॥

---

[1]बीमारीकी हालत पूछनेको; [2]प्रेयसीके दर्वाज़ेपर;
* नाड़ी छूअत वैदके पड़ो फफोला हाथ।
[3]इलाज; [4]पुराना वस्त्र;
[5]हलका-फुलका।

बराबर आइनेके भी न समझे कद्र वोह दिलकी।
इसे जेरे क़दम रक्खा, उसे पेशे नजर रक्खा॥

बड़ा अहसाँ है मेरे सरपै उसकी लगज़िशेपाका[1]।
कि उसने बेतहाशा हाथ मेरे दोशपर[2] रक्खा॥

फले-फूले चमनमें दफ़्न करना चाहिए मुझको।
कि हूँ मारा हुआ इक नौजवाँ गुलरूके जोबनका॥

खुला है बाबेअजाबत[3] हुआ तो कर ग़ाफ़िल!
दरेकरीम[4] सुना है कभी कि बन्द हुआ?

किसीने लफ़्ज़ख बेनुक़्ता कब आलममें देखा है।
न होता किस तरह नुक़्ता रुख़ेमहबूबपर तिलका॥

इस तरह लिक्खी मेरी तक़दीरकी बरगश्तगी[5]।
घिसके उलटा हो गया खत नामये तक़दीरका॥

चमकी यह किस ग़रीबकी सहरामें[6] वर्क़ेआह[7]।
रहज़नसे[8] डरके रहरवे मंज़िल[9] लिपट गया॥
लैला तो महमिले दिले मजनूँमें थी मकीं।
दीवाना था जो देखके महमिल लिपट गया॥

रोके उस शोखसे क़ासिद मेरा रोना कहना।
हँस पड़े उसपै तो फिर हर्फ़े तमन्ना[10] कहना॥

---

[1]काँपते हुए पाँवोंका; [2]कन्धेपर;
[3]न्यायका दर, [4]दयालुका दर्वाजा;
[5]भाग्य फिरना; [6]जंगलमें,
[7]आहरूपी बिजली; [8]लुटेरेसे;
[9]यात्री, [10]अभिलाषा।

फाड़ खाता है जो ग़ैरोंको झपटकर सगेयार[1] ।
मैं यह कहता हूँ "मिरे शेर, तेरा क्या कहना" ॥
दमे आखिर तो बुतो ! यादे ख़ुदा करने दो ।
जिन्दगी भर तो किया मैंने तुम्हारा कहना ॥
शौक काबे लिये जाता है हविस जानिबेदैर ।
मेरे अल्लाह बजालाऊँ मैं किसका कहना ॥

गोर भी बेगोरकन[2] तामीर हो सकती नहीं ।
कौनसे घरमें गुज़र होता नहीं मज़दूरका ॥

वोह मस्त हूँ नसीब मुझे तब कफ़न हुआ ।
जब रहन मयफरोशके घर पैरहन हुआ ॥
वाइज़का था लिहाज़ तो फ़स्ले खिज़ाँ तलक ।
लो आ गई बहार, मैं तौबा शिकन हवा ॥

शेख काबेसे गया उसतक बिरहमन दैरसे ।
एक थी दोनोंकी मंजिल फेर था कुछ राहका ॥
कुछ न समझे हो न बूझे हो कि वह क्या चीज़ है ?
नाम तुमने सुन लिया हे ज़ाहिदो ! अल्लाहका ॥

है किश्वरे अदममें ख़ुदा जाने सैर क्या ।
आया न फिरके मंजिले हस्तीसे जो गया ॥
पीरीमें आई मौत, जवानी गुज़र गई ।
जागा तमाम शब मैं दमे सुबह सो गया ॥
मातम किया किसीने न मेरा तो क्या हुआ ?
अब आके ख़ाकेगोरपै[3] हर सान्न रो गया ॥

---

[1]प्रेयसीका कुत्ता, [2]क़ब्र खोदने वालेके बिना; [3]क़ब्रकी धूलपै ।

हया तो उसको छिपाये हज़ार पर्देमें।
मगर जो बैठने दे शौक़ ख़ुदनुमाईका[१]॥
सम्भलके देखो अगर देखते हो आईना।
फिसल न जाये कहीं पाँव ख़ुदनुमाईका॥
वोह नातवाँ[२] हूँ अगर नब्ज़को हुई जुम्बिश।
तो साफ़ जोड़ जुदा हो गया कलाईका॥

ग़ैरने उस गुलके बालोंमें कभी कंघी जो की।
मिस्ले सम्बुल[३] तार-तार अपना गिरेबाँ हो गया॥

क्या बला थी निगहे होश रुबा साक़ीकी।
उठ गई आँख तो कोसों कोई हुश्यार न था॥
बात रख ली मेरे क़ातिलने गुनहगारोंमें।
इस गुनहपै मुझे मारा कि गुनहगार न था॥

वाक़िफ़ वोह हालसे हो जो रखता हो कुछ ग़रज़।
क्या जाने हम बख़ील[४] कि हातिम[५] करीम[६] था॥

राज़दारियेमुहब्बतका[७] मैं क्या दावा करूँ।
जिस क़दर महरम[८] हुआ उतना ही ना महरम हुआ॥

लज़्ज़तेशर्मेगुनह थी कब फ़रिश्तोंको नसीब।
यह मज़ा चखनेको पैदा ख़ल्क़में आदम हुआ॥

वोह कौन था जो ख़राबातमें ख़राब न था।
हम आज पीर हुए क्या कभी शबाब न था॥

---

[१]आत्मविज्ञापनका, [२]निर्बल; [३]एकप्रकारकी सुगन्धित बनस्पति, जटामासी; [४]कंजूस; [५]एक प्रसिद्ध दानी [६]दानी, दयालु, [७]प्रेमके भेद जाननेका, [८]परिचित।

न पूछ ऐश जवानीका हमसे पीरीमें।
मिली थी ख्वाबमें वोह सल्तनत शबाब न था ॥
कलीम[1] ! शुक्र करो हश्रतक न होश आता।
हुई यह खैर कि वोह शोख बेनकाब न था ॥
यह बार-बार जो करता था जिक्रेमय वाइज़।
पिये हुए तो कहीं खानुमा खराब न था ?
कहा जो मैंने कि यूसुफ़को यह हिजाब[2] न था।
तो हँसके बोले "वोह मुँह क़ाबिले नकाब न था" ॥
मेरे जनाज़ेपै अब आते शर्म आती है।
हलाल करनेको बैठे थे जब हिजाब न था ॥
दुआए तौबा भी हमने पढ़ी तो मय पीकर।
मजा ही हमको किसी शैका बेशराब न था ॥
वे बैठे-बैठे जो दे बैठे क़त्लेआमका हुक्म।
हँसी थी उनकी, किसीपर कोई अताब[3] न था ॥
जो लाश भेजी थी क़ासिदकी, भेजते खत भी।
रसीद वोह तो मेरे खतकी थी, जवाब न था ॥

कहाँका काबा है, दैर कैसा, बताओ कूचेका उसके रस्ता।
मैं पूछता हूँ पता कहींका, निशान देते हो तुम कहींका ॥

जो बगोला दश्तेग़ुरबतमें[4] उठा, समझा ये मैं।
करते हैं तामीर दीवाने मेरे घरका जवाब ॥
शेख़ कहता है बिरहमनको, बिरहमन उसको सख़्त।
काबओ बुतख़ानेमें पत्थर हैं पत्थरका जवाब ॥

---

[1]हज़रते मूसा, [2]लाज; [3]क्रोध, [4]प्रवासमे जंगलमे।

मेरे चेहरयेज़र्दके अक्ससे।
हुई साकिया ज़ाफ़रानी[1] शराब ॥

दिल शिकस्ता मैं वोह हूँ ख़त जो कबूतरको दिया।
गिर पड़ा उड़ते ही टूटे हुए परकी सूरत ॥
बाँध रख कसके गिरहमें कि बहुत थोड़ी है।
आबरू है जो खुदादाद गुहरकी सूरत ॥
रात-दिन काबये दिलमे है बुतोंका मजमा।
क्यासे क्या हो गई अल्लाहके घरकी सूरत ॥

क़ाज़ी बरहना[2] सर है तो जख़्मी है मुहतसिब[3]।
शायद कि पी गये है बहुत बादाख़्वार[4] आज ॥

हमारे रोनेपै आती नहीं किसे रिक़्क़त[5]।
हुबाब[6] रोते है आँखोंपै रखके दामने मौज ॥

तुम तो आते ही क़यामत करते हो साहब बपा।
दिलमें आते हो तो आओ घरमें आनेकी तरह ॥
दरसे काबेके नही उठता सर अपना इसलिए।
इसमें भी कुछ-कुछ है तेरे आस्तानेकी तरह ॥

पूछो न कुछ जवानी ओ पीरीकी सरगुज़िश्त[7]।
यह माजराए शाम है वोह माजराए सुबह ॥

---

[1]केसरिया, [2]नगे सर,
[3]आचरणका निरीक्षण करनेवाला कर्मचारी;
[4]शराबी, [5]तरस,
[6]पानीके बुलबुले,
[7]बीती हुई बाते।

छनता है नूर[1] आरिजे गुलगूँसे इस कदर।
हो जाती है सफ़ेद भी उसकी नकाब सुर्ख ॥

है वसीयत मेरी मरकदपै[2] यह लिख दे अहबाब।
"कि करे कोई किसीसे न वफ़ा मेरे बाद" ॥
शुक्र है कुछ तो मुहब्बतमें हुआ रंगे असर।
तीन दिन उसने लगाई न हिना[3] मेरे बाद ॥

ढीली है कमर, कसके जरा बाँध दुबारा।
गिर जाये न खत खुलके कहीं राहमें क़ासिद !

आशिक़ोमाशूक़ अपने-अपने आलममें है मस्त।
वाँ नजाकतपै तो याँ है नातवानीपर[4] घमंड ॥

काटकर राह मेरे घरकी चले और तरफ़।
यह तरीका नहीं मुझको किसी दस्तूर पसन्द ॥

मेरे रोनेने फ़ुरकतमें रुलाया एक आलमको।
बहाये अब्रने[5] दरिया मेरे एक-एक आँसूपर ॥

सदफ़की[6] क्या हकीकत है अगर उसमें न हो गौहर[7]।
न क्योंकर आबरू हो आँखकी मौकूफ आँसूपर ॥

वे करते है बाते अजब चिकनी-चिकनी।
यह मतलब कि चौपट हो कोई फिसलकर ॥

---

[1]सौन्दर्यरूपी रग, [2]समाधिपर, [3]मुहदी; [4]निर्बलतापर, [5]मेहने, वर्षाने; [6]सीपकी; [7]मोती।

यही सोज़ेदिल[1] है जो महशरमें जलकर ।
जहन्नुम उगल देगा मुझको निगलकर ॥
यह मेरी तरफ़ पाँव महफ़िलमें कैसे ?
ज़रा आदमीयतसे बैठो सम्हलकर ॥
'अमीर' अहले मस्जिदसे इज़हारेतक़वा[2] !
अभी आये हो मयकदेसे निकलकर ॥
इरादा है ख़ुद उनसे पूछूँ मैं चलकर ।
"यह ख़त तुमने फाड़ा कि क़ासिदने जलकर" ॥
जो बरसातमें तादरेयार[3] पहुँचे ।
बहाना किया ख़ुद गिरे हम फिसलकर ॥
तवक़्क़ोह है धोकेमें आकर वोह पढ़ लें ।
कि लिक्खा है नामा[4] उन्हें ख़त बदलकर ॥
थके मुद्दतों राहमें जिनकी चलकर ।
वे दरतक भी आये न घरसे निकलकर ॥
उठा ऐ दिल ! आँखोसे इतना न तूफ़ाँ ।
कुए बैठ जाते हैं अक्सर उबलकर ॥

मयसे कपड़े ज़ाहिदाने ख़ुश्कके क्या तर किये ।
जलके हमने आग रख दी जुब्बहोदस्तारपर[5] ॥

मर्तबा पेशे ख़ुदा होता है उतना ही बुलन्द ।
जिस क़दर चलता है इन्सानसे इन्साँ झुककर ॥
है यह ईमाँ कि चला चाहते हैं ज़ेरे ज़मीं ।
चलते हैं मौसमेपीरीमें जो इन्साँ झुककर ॥

---

[1]दिलकी डाह, [2]सदाचार का वर्णन; [3]प्रेयसीके दर्वाज़े तक;
[4]पत्र; [5]पगडीपर ।

वोह नातवाँ हूँ जो लेटा कभी मैं बिस्तरपर।
गुमाँ हुआ कि शिकन पड़ गई है चादरपर॥
किया उदूने जो गेसूए यारमें शाना[1]।
हुआ यह रश्क कि आरे चले यहाँ सरपर॥

बोला वोह बुत सिरहाने मेरे आके वक़्तेनज़अ[2]।
"फ़रियादको हमारी चले हो ख़ुदाके पास ?"

ज़ेबा हो ख़ाक ! इश्क़का जामा रक़ीबको।
क्योंकर ख़ुश आये मर्दका पहने जो ज़न लिबास॥

नजर आ जाये जो वह मुसहफ़ेरुख़[3]।
हिन्दुओंको भी हो इस्लामकी हिर्स॥
हिजोए[4] मयकश[5] है लबेवाइजपर।
दिलमें पोशीदा मय-ओ-जामकी हिर्स॥

तुम्हारी ज़ातसे मतलब है दोनो दुनियाँमें।
न कुछ यहाँसे ग़रज़ है न कुछ वहाँसे ग़रज़॥

तौबा सौबार मैं कर लूँगा कुछ इन्कार नहीं।
मयकशीसे तो जरा हो मुझे फ़ुरसत वाइज़ !
काँपता खौफ़से मस्तोंका है रूआँ-रूआँ।
कुछ ज़बाँसे नहीं तौबाकी ज़रूरत वाइज़ !
तू जो रिन्दोंकी हक़ीक़त नहीं समझा, न समझ।
रिन्द समझे हैं तेरी खूब हकीकत वाइज़ !

---

[1]कंघी; [2]मृत्युके समय,
[3]कुरान-जैसी किताबी सूरत, [4]बुराई;
[5]शराबियोंकी।

जामेमय देखके जामेसे हुआ तू बाहर।
पीले दो घूँट तो क्या हो तेरी सूरत वाइज़ !
देख मयखानेमें घनघोर घटा छाई है॥
सरपै मस्तोंके है अल्लाहकी रहमत वाइज़ !
ऐसे पढ़नेसे तो अच्छा था कि जाहिल रहता।
न हया तुझमें है बाकी न मुरव्वत वाइज़ !

फूल गर मुरझाएँ तो मुझसे न करना कुछ गिला।
ऐ सबा! चलनेको मैं चलता हूँ गुलशनकी तरफ़॥

लागिर[1] हूँ इस क़दर मुझे पहचानती नही।
रह-रहके देखती है कज़ा सरसे-पाँवतक॥

गश आया है मुझे मस्जिदमे बे मय।
चलो लेकर मुझे पीरेमुगा[2] तक॥

हो गये मुर्दा हिज्रेयारमें हम।
घरमें अपने है या मजारमें हम।
कौन पूछेगा हम गरीबोंको।
रोजेमहशर है किस शुमारमे हम*॥

शबेविसाल सरेशामसे वोह कहते है।
कि आज क्यों नही होती सहर[3], नहीं मालूम॥

---

[1]निर्बल, [2]मधुशालाके स्वामी,

* ऊँचे-ऊँचे मुजरिमोंकी पूछ होगी हश्रमें।
कौन पूछेगा मुझे ? मैं किन गुनहगारोमें हूँ ?

—अज्ञात

[3]सुबह।

काँटा हुआ हूँ सूखके लेकिन निहाल हूँ।
खटकूँगा और अपने उदूकी निगाहमें ॥

मुझको साहिलतक ख़ुदा पहुँचायगा ऐ नाख़ुदा[1]!
अपनी किश्तीकी बयाँ तुझसे तबाही क्या करूँ ?

ऐ इन्कलाबेदहर ! मिटाता है क्यों मुझे।
नक़्शे हजार मिट गये हैं, तब बना हूँ मैं ॥

नामे[2] वोह बारी-बारी उश्शाक़के[3] पढ़ेंगे।
उजलतमें[4] कुछ न होगा नम्बर लगे हुए हैं ॥
मैं जानता हूँ बुलबुल ! है जो तेरी हकीकत।
इकमुश्ते इस्तख़्वाँ[5] है दो पर लगे हुए हैं ॥
है हुक्मे यार कोई मेरी तरफ न देखे।
ये इश्तहार अब तो घर-घर लगे हुए हैं ॥
मुझ बेनवा[6] गदाको[7] पूछे 'अमीर' वोह क्या ?
शाहोंके उस गलीमें बिस्तर लगे हुए हैं ॥

मिलनेका वादा उनके तो मुँहसे निकल गया।
पूछी जगह जो मैंने कहा हँसके 'ख़्वाबमें' ॥
क़ासिद ! है क़ौल-ओ-फ़ेलका[8] क्या उनके एतबार।
पैग़ाम कुछ कहा है, लिखा कुछ जवाबमें ॥

---

[1]मल्लाह, [2]पत्र,
[3]प्रेमियोके; [4]जल्दी करनेसे,
[5]मुट्ठीभर हड्डियाँ; [6]मूक,
[7]भिक्षुकको, अभिलाषीको,
[8]कहने और करने का।

क़ाजी भी अब तो आये हैं बज्मेशराबमें ।
साक़ी हजार शुक्र खुदाकी जनाबमें ॥
हाजत नहीं तो दौलते दुनियासे काम क्या ।
फँसता है तिश्नादाम[1] फरेबे सराबमें[2] ॥
दिल साफ़ हो तो कशमकशेदहर[3] क्या करे ?
शोला हैं कब धुएँकी तरह पेचोताबमें ॥
परवा नहीं है हमको अगर है क़फ़समे बन्द ।
सैयाद ! सैर बाग़की करते हैं ख्वाबमें ॥
जाहिदको फ़ैजे सुहबते रिन्दाँसे क्या 'अमीर' ।
आलिम कभी न रहके हो, कीड़ा किताबमे ॥

हरचन्द मान्दगीने हमको बिठा दिया है ।
सद्शुक्र दूरसे तो मंजिलको देखते हैं ॥
आँखोंको बन्द कर लें ख़ालिकसे लौ लगाएँ ।
क्यों ग़र्क होनेवाले साहिलको[4] देखते हैं ॥

यह कजा है कि अदा आपकी सुभान अल्लाह ।
सफ[5] उलटती है जो मस्जिदमें जनाब आते हैं ॥

ताबो[6] तवाँ[7] न मुझमें न अक्लो हवासो होश ।
शक्ल आदमीकी सूरते मरदुमगयाह[8] हूँ ॥

मैं मरके खाक हुआ ख़ाक हो गई बरबाद ।
वे मौतका भी नहीं ऐतबार करते हैं ॥

---

[1]प्यासा पथिक, [2]मृगमरीचिकामे; [3]ससारका मायाजाल; [4]किनारेको; [5]नमाजियोंकी कतारे; [6]तेज; [7]बल;
[8]चीन देशकी एक घास जो मनुष्यकी सूरतसे मिलती है।

मुहतसिबके[1] लाख-लाख अहसाँ कि खोशेकी[2] तरह ।
काटकर मस्तोंके सर लटका दिये अंगूरमें ।।

जमा-माल, इन्साँ तो क्या, हैवाँको करता है तबाह ।
शहद दिलवाता है आतिश[3], खानये जम्बूरमें[4] ।।

दुनियासे हाथ धोके चले कूए यारमें ।
जाइज़ नहीं कि तौफ़े हरम बेवजू करें ।।
दीवानगीका सिल्सिला ताअ़तमें[5] भी न जाय ।
पहले पढ़ें नमाज़ तो पीछे वजू करें ।।
ज़ाहिद तेरे फ़रिश्तोंको यह दिन नहीं नसीब ।
जन्नतसे हूर आये जो हम आरज़ू करें ।।

घबराके जब फ़िराक़में माँगी दुआए वस्ल ।
आई सदा "यही तो मुक़ाम इम्तहाँके हैं" ।।
मरकर भी हमको मयसे तअ़ल्लुक वही रहा ।
तख्ते लहदमें[6] पीरेमुग़ाँकी[7] दुकाँके हैं ।।

निहाँ रहता है आईनेसे वोह बेगानाखू[8] बरसों ।
हया देखो, नहीं आता है अपने रोबरू बरसों ।।
सरापा जुर्म हूँ लेकिन वोह रिन्दे पाकतीनत हूँ ।
किया ज़ाहिदने मेरे आबेखिजलतसे[9] वजू बरसों ।।

---

[1]आचरण निरीक्षकके, [2]गुच्छोंकी, [3]आग; [4]मधुमक्खियोंके छत्तेमें, [5]उपासनामें; [6]कब्रमें, [7]मधुशालाकी; [8]स्वभावत उपेक्षा रखनेवाला; [9]शर्मके पसीनेसे ।

मैं उल्फ़तके वोह हुस्नके जोशमें ।
न मैं होशमें हूँ न वोह होशमें ॥
न उठो अभी बज्मसे मयकशो !
हमे भी तो आ लेने दो होशमें ॥

समझा यह मैं, जो निकले शाखोसे गुल चमनमें ।
सूफी निकलके बैठे खिलवतसे[1] अंजुमनमें[2] ॥

साफ़ कह दो नहीं दीदार दिखाना है अगर ।
काबा-ओ-दैरमें दौड़ाते हो क्यों तुम मुझको ॥

आज महफिलसे तुम आये हो उठाने हमको ।
हाय ! वोह दिन कि जो उठते थे बिठाने हमको ॥*

बुलहविस[3] और दुआए सोजेइश्क़[4] ।
दाग खानेको कलेजा चाहिए ॥

यह वजह है जो आरिज़ेजानाँपै है नक़ाब ।
करती है जिल्द खूब हिफ़ाजत किताबकी ॥

देखो तो इत्तहाद जरा हुस्नोइश्कका ।
बुलबुलके आँसुओंमें है खुशबू गुलाबकी ॥

तुम चौधवीका चाँद हो तो अपने वास्ते ।
क्या फायदा, किसीको किसीके कमालसे ॥

---

[1]एकान्तसे,　　[2]महफिलमे,

*　　वोह जो उठते थे बिठानेके लिए ।
　　आज बैठे है उठानेके लिए ॥
　　　　—अज्ञात

[3]विषयलोलुपी,　　[4]सच्चे प्रेमकी प्रार्थना ।

मेर घरकी तरफ़ भी आलमेमस्तीमें आ निकले ।
तरंग ऐसी कभी या रब ! मिज़ाजेयारमें आये ।।

है नमाज़ उन ज़ाहिदोंकी ज़ोफ़े ईमाँपर दलील ।
सामने अल्लाहके जाते हैं उठते-बैठते ।।
ख़ुदनुमाईकी बदौलत कितने ओच्छे हैं हसीन ।
मँहदी मलते हैं तो इतराते हैं उठते-बैठते ।।

यक़ीं हुआ जो गिरा दाँत कोई पीरीमें ।
कि आज खुल गई खिड़की क़ज़ाके आनेकी ।।

बाद मुर्दन भी मेरे ज़ोफकी कूवत न घटी ।
खाक उठी भी तो चकराके वहीं बैठ गई ।।
इन दिनों दुख़्तरेरिज़का[1] नहीं मिलता है पता ।
कहीं क़ाज़ीके तो घर जाके नहीं बैठ गई ।।

वाइज़ा समझा है तू दोज़ख जिसे ।
कुछ शरर है आहेआतिश बारके ।।

लिया जो ख़्वाबमें बोसा तो यार जाग उठा ।
तमाम उम्रका हम एतबार खो बैठे ।।
बलाएँ लेते ही वोह और हो गया वहशी ।
हम अपने हाथोंसे अपना शिकार खो बैठे ।।

हज़ारों खार, लाखों फूल, उस गुलशनमें हैं लेकिन ।
न तुम-सा नाज़नीं कोई, न हम-सा नातवाँ कोई ।।

नसीहत करनेवालोंको अगर कुछ भी समझ होती ।
जो समझाते हैं मुझको वोह मेरे दिलबरको समझाते ।।

[1]अंगूरकी बेटी (शराब) का ।

भारी बहुत है लाऊँगा रोज़े जज़ामें रिन्द !
रखवाके सरपै शेखके गठरी गुनाहकी ।।

हुरमतमें दुख़्ते-रिज़की इसरार है जो इतना ।
यह बात क्या है रिन्दो ! वाइज़ पिये हुए है ?

न तड़पा चारागरके सामने ऐ दर्द ! यूँ मुझको ।
कहीं ऐसा न हो ये भी तकाज़ाए दवा ठहरे ।।
ख़याले यार आ निकला मेरे दिलमें तो यूँ बोला ।
"यह दीवानोंकी बस्ती है यहाँ मेरी बला ठहरे" ।।

वाइज़ किताबे वाज़ लिये है तो क्या हुआ ?
बोतल शराबकी भी तो पिन्हाँ बग़लमें है ।।

७ नवम्बर १९५०

८८

जलाल

[१८३३–१९०९ ई०]

सैयद जामिनअली 'जलाल' हकीम असगरअली दास्तानगोके पुत्र थे और १८३३ ई० मे उत्पन्न हुए थे। अरबी-फारसीकी स्कूली शिक्षा समाप्त करके ख़ान्दानी पेशा हकीमी शुरू किया। तत्कालीन वातावरणके अनुसार इन्हे भी शायरीका शौक बचपनसे था। धीरे-धीरे इस ओर इतनी रुचि बढ़ी कि हिकमत छोड़कर आजीविकाका साधन भी शायरीको बना लिया। प्रारम्भमे अमीर अलीखॉ 'हिलाल' से इसलाह लेते रहे। जब कलाममे कुछ पुख़्तगी आगई तो हिलालकी इच्छासे उनके उस्ताद 'रश्क' से मशवरये सुख़न लेने लगे।

रश्ककी उन दिनो बहुत शुहरत थी और वे नासिखके शिष्योमे सर्व श्रेष्ठ थे। रश्क जब ईराकके सफरको गये तो वे जलालको अपने गुरुभाई 'बर्क' के सुपुर्द कर गये। जिनकी शायरीका उन दिनो जोर-शोर था।

१८५७ के विप्लवके बाद लखनवी मुशायरे दरहम-बरहम हो गये। जलाल भी अपने ख़ान्दानी पेशेकी ओर प्रवृत्त हुए, किन्तु मन न लगा। आख़िर नवाब यूसुफअलीखॉ रामपुरकी गुणज्ञताके कारण यह भी रामपुर चले गये। वही पर इनके पिता किस्से कहॉनियॉ कहनेके लिए मुलाज़िम थे। नवाब यूसुफअली ख़ॉके बाद नवाब कल्बअलीखॉ शासनारूढ हुए तो, इनका बाकायदा सौ रुपये मासिक वेतन नियत कर दिया गया। अपने स्वाभिमानी स्वभावके कारण कई बार रामपुर छोड़नेका प्रयत्न

किया, किन्तु नवावकी गुणग्राहकता और उदारताके कारण वही रहनेको वाध्य रहे। रामपुरमे २० वर्षके लगभग रहे। इसी ज़मानेमे मिर्जा 'दाग', 'अमीर' मीनाई, और 'तसलीम' भी रामपुरमे कयाम फर्माते थे, और चारो उस्ताद मिसरा-तरही मुशायरोमे गज़ल पढते थे।

नवावकी मृत्यु होनेके बाद रियासतमे 'कौसिल आफ रीजेन्सी' कायम होनेके कारण जलाल लखनऊ वापिस चले गये। फिर काठियावाड़ इलाके-की एक छोटी-सी रियासत मगलोरके नवावने इन्हे अपने यहाँ रखना चाहा, किन्तु दूर होने तथा स्वास्थ्यके अनुकूल न होनेके कारण चन्द ही दिनमे वहाँसे भी लखनऊ चले आये। फिर भी नवाव साहव इनको २५ रु० मासिक और हर कसीदेपर १०० रु० भेजते रहे। ७६ वर्षकी आयुमे १९०९ ई०मे लखनऊमे इन्तकाल हुआ।

अल्लामा नियाज फतहपुरी अपने किसी मित्रको पत्रोत्तर देते हुए लिखते है—

"लखनऊके दौरे मुताख्खरीनमे 'जलाल' का-सा अन्दाज़े बयान 'अमीर' का क्या जिक्र है; मुतवस्सतीनमे 'आतिश' को भी नसीव न हुआ। और इस हैसियतसे कि ख़ारजी-ओ-दाख़िली दोनो रग उसके यहाँ पूरी तरह रचे हुए है, मुझे तो देहलीमे भी कोई नज़र नही आता। वोह न सिर्फ फनका वादशाह था, वल्कि जज्वात निगारीका मालिक था। यकीनन उसमे न मोमिन का रग है, न ग़ालिवके-से तेवर, न आतिश का-सा जोशोखरोश है, न मुसहफीकी-सी हलावत, न हसरत और जुरअतका सा खुल-खेलना है, न मीरो दर्दकी-सी उफतादगी। लेकिन फिर भी एक चीज़ ऐसी है जो थोडी देर के लिये उन सवको भुला देती है। इसमे शक नही कि लखनऊका खारजी रंग उसमे पूरी तरह पाया जाता है। लेकिन उसका असलूवे वयान एक ऐसी दिलकश बैकग्राउण्ड पैदा कर देता है कि गहरा-इयोकी जुस्तजू करनेवाले भी एक वार सतहपर ठहरकर महव हो जाते है। रही ज़वानकी सेहत और पाकीज़गी। सो इस वातमे उसकी एहतयातसे

कौन वाकिफ नही ? उसके यहाँ यकीनन मुहब्बतकी कोई टीस नही है, कोई तड़पा देनेवाला दर्द नही है, कोई ऐसा नश्तर नही है जो दिलमे पैवस्त हो जाये। उसके यहाँ तमाम बाते वही हैं, जो आँख लड़ाने और आँख लग जानेके सिलसिलेमे पैदा होती है। वही घाते और लगावटे है, जो मुहब्बतकी अदना किस्ममे पाई जाती है। यानी उसका कलाम जो फिजा पेश करता है, वोह वही 'जहरेइश्क' वाली फिजा है कि —

जिस मुहल्लेमें था हमारा घर।
वहीं रहता था एक सौदागर ॥

"उस (सौदागर)की एक माहेजबी लड़की थी। जिससे आँख लड़ गई। आपसमे खतोकिताबत हुई। मिलनेके बहाने ढूँडे गये। कभी कामयाबी हुई, कभी नाकामयाबी। कामयाबी हुई तो सरशारिएवस्लकी लज्जतोंका जिक्र होने लगा। नाकामी हुई तो गिला-शिकवा शुरू हो गया। चन्द दिन यह हगामा रहा और आखिरकार जब मुहब्बतके हौसले निकल गये या महबूबा कही चली गई या मर गई तो सब्र करके बैठ गये।

"ज़ाहिर है मुहब्बतकी इस दुनियामे जो जज्बात पैदा होगे, उनमे कोई गहराई न होगी और न वोह शायरीमे कोई मुस्तकिल नक़्श छोड़ जाएँगे। लेकिन जलालका कमाल यही है कि उसने इसी फिजाकी शायरीमे महज़ अपने अन्दाज़े बयानसे वोह बाते पैदा की है कि हम उसकी दाद देनेपर मजबूर होते है"।[1]

जलालकी गजलोके चार दीवान मिलते है। इनके अतिरिक्त ७–८ ग्रन्थ अन्य विषयोंपर लिखे है। अल्लामा नियाज फतहपुरी लिखते है— "जलालके कलामकी खसूसियत यह है कि बावजूद लखनऊमे नश्वोनुमा

---

[1]मक्तूबाते नियाज़, भाग दूसरा, पृ० १५०–५१

पाने (शिक्षित-दीक्षित होने) के उन्होने देहलवी रगे तगज्जुलको पसन्द किया।"[1] लखनवी शायरीका उल्लेख करते हुए आगे लिखते है—लखनवी शायरीका यह वदनुमा दौर 'अमीर' मीनाईके वक्त तक रहा। लेकिन इसके बाद शागिर्दाने मोमिन-ओ-गालिवका कलाम फिर मकवूल होने लगा, और खुद अहले लखनऊने भी आखिरकार इसको महसूस किया कि शायरी नाम जिला जुगतका नही, वल्कि वाग्दाते कल्वसे वहस करनेका है। सवसे पहले यह अहसास जलालको हुआ और इसके वाद जब शुअराये देहलीने रामपुर पहुँचकर लखनवी शुअराको मुतास्सिर (प्रभावित) किया तो रफ्ता-रफ्ता वोह तमाम नकाइस व मुआइव (नुक्स और ऐब) दूर होने लगे। हत्ताकि इस वक्त कोई एक भी काबिले जिक्र शायर लखनऊका ऐसा नही है, जो देहली स्कूलका पैरो न हो।"[2]

शायरे इन्कलाब जोश मलीहावादी लिखते है—"हजरत जलालको मैने अपने लडकपनमे देखा था। उस वक्त वहुत ही जईफ (वृद्ध) हो चुके थे और दमेकी पुरानी शिकायतने उनकी जिस्मानी हालतको और भी अवतर कर रक्खा था। जवानीमे उनका शुमार खूवसूरत लोगोमे होगा। क्योकि इस उम्रमे भी वोह सुर्खो-सफेद और खुशरू थे। दमेकी वजहसे वोह ऊभ-ऊभ कर वाते करते थे। लेकिन उसमें एक दिलकशी थी। उनकी आँखोमे जहानतका फरोग था और कलामे फनका गरूर। उनके कलाममे देहली और लखनऊका गगा-जमुनी रग था। उनकी गजले धूप-छाँव होती थी। वे फन्ने शेरके वहुत वडे माहिर और तानीस-ओ तजकीर और अलफाजकी तहकीकके नव्वाज (शब्दोकी प्रामाणिकताके डाक्टर) थे, और मतरूकातमे उन्हें गुलो (वहिष्कृत

---

[1]इन्तकादियात, भाग २, पृ० १५१
[2]इनाकादियात, भाग २, पृ० २००

शब्दोंसे बचनेकी प्रवृत्ति) शायद जरूरतसे ज्यादा, और जबानके हकमे नुक़्साँ रसाँ हद तक (हानिकी परिधि तक) गुलो था। हमारे मुतक़द्दमीनकी बिसात (पुरातन शायरी रूपी शतरज) के वे आख़िरी मुहरे थे।

"अमीर-दागके बाद मेरे वालिदेमाजिद उनसे मशवरये सुख़न करते थे। वे वालिदके पास अक्सर तशरीफ लाया करते थे, और कभी-कभी वालिदके हमराह, कभी-कभी तनहा, मै भी हजरते जलालके यहाँहाजिरी दिया करता था। उस जमानेके तीन काबिले जिक्र वाकयात मुझे याद है। बाते छोटी-छोटी है, मगर उनसे उस जमानेके मिजाजपर रोशनी पड़ती है।

१—एक रोज मै हजरते जलालके यहाँ पहुँचा। सुबहका वक्त था। वे डयोढ़ीकी दहलीजपर जनानेकी तरफ मुँह किये खडे अपनी बीवियोको जो आपसमे नजाएलफ्जी (गाली-गलौज) कर रही थी, डॉट रहे थे। लेकिन गुस्सेकी आवाजको दबा-दबाकर, ताकि कोई और न सुन ले। अपना दुबला-पतला हाथ किस बेकसीसे उठा-उठाकर कह रहे थे कि—'अरे कम्बख़्तो 'मुझ मुर्देको जीने भी दोगी कि नही ?' कि मेरी चाप सुनकर वोह झटसे चुप हो गये। शर्माकर फर्शपर बैठ गये और मेरा सलाम लेकर बड़े इत्मीनानके साथ बोले कि 'मियाँ बड़ी ख़ैर हुई, तुम तो ख़ैर अपने बच्चे हो। अगर इस वक्त कोई और आ जाता तो जलाल मुँह दिखानेके काबिल न रहता।' फिर थोडी देर ख़ामोश रहकर कहने लगे—'देखो बेटे ! एक नसीहत करता हूँ, उसे गिरहमे बाँध लो। इस दुनियामे जो जीमे आये करना, लेकिन दो बीवियाँ न करना। हरगिज-हरगिज न करना। जलालकी कितनी गजले हलाल (स्वाहा) करके रख दी है, इन चुडैलोकी तू-तू मै-मै ने।'

२—एक रोज शाहपीर मुहम्मदके टीलेकी तरफसे वे मेरे वालिदके साथ गाड़ीमे गुजर रहे थे कि टीलेकी मस्जिदपर नजर पडी। उन्होने

मस्जिदकी तरफ हाथ उठाकर वालिदसे कहा—'ख़ॉ साहव वहादुर ! यह क्या चीज है ? वालिदने हैरतसे कहा—'मस्जिद ! भला मीर साहव ! यह भी कोई पूछनेकी वात है ?' जलालने पुरजलाल अन्दाजमे आँख उठाई और मस्जिदकी तरफ इशारा करते हुए वडे तमतराकसे कहा—'ख़ॉ साहव ! इस मस्जिदकी हुरमतकी क़सम खाकर कहता हूँ कि जलालका-सा शायर न अब तक पैदा हुआ है न आइन्दा पैदा होगा।' वालिदने फौरन ताईद फरमाई। लेकिन मेरे मुँहसे निकल गया—'उफ' इतनी वडी वात।' जलालने या तो सुना नही या सुनी-अनसुनी करके वालिदसे पूछने लगे 'ख़ॉ साहव ! साहबजादेके तेवर वता रहे हैं कि इन्हे चश्मेबद्दूर मेरा यह दावा गिरॉ गुज़रा।' वालिदने वडी लजाजतसे वात काटकर कहा—'तौवा-तौवा मीरसाहब ! इसकी क्या मजाल है कि इसे नागवार गुजरे। जलाल फ़र्ते गरूरसे मुस्कराने लगे।

३—वालिदकी यह आदत थी कि हिन्दोस्तानके अहवावको विल-अमूम और लखनऊके अहबावको विलखसूस फल, गल्ला, घी, वगैरह हमेशा रवाना करते थे। चुनाँचे हस्वदस्तूर हज़रत जलालकी ख़िदमतमे घी रवाना किया गया। लेकिन ख़िलाफ दस्तूर वह वापिस आ गया। एक हफ्तेके वाद जव वालिद लखनऊ तशरीफ ले गये तो सवारी भेजकर हजरत जलालको तलव फरमाया और पूछा—'कि भला मीर साहब ! यह इस वार ख़िलाफे आदत घी क्यो वापिस फरमा दिया ?' यह सुनते ही जलाल-के चेहरेपर खुशूनतो कुब्र (क्रोध और घमड) के आसार पैदा हो गये। और कहने लगे—'ख़ाँ साहब ! इस मर्तवा आपने यह किस गँवारको मेरे पास भेजा था ? इस्तगफ़र अल्लाह ! मै घरमे बैठा हुआ था कि दरवाज़ेपर किसी मर्दकने आवाजे देना शुरू कर दी—'जलाल होत, जलाल होत,' यह सुनकर मुझपर बिजली-सी गिर पड़ी। मवहूत होकर रह गया। मै और 'जलाल होत' से पुकारा जाऊँ ? मेरी वड़ी बीवीने उस मर्दककी तीसरी 'जलाल-होत' आवाजपर विलबिलाकर मुझसे कहा—'है ! क्या

सोच रहे है आप ? जल्दी उठिये और इस मुएकी जबानको बन्द कीजिये। नही तो हम मुहल्लेमे मुँह दिखानेके काबिल नही रहेगे।' चुनॉचे हाँफता-कॉपता मै जल्दी-जल्दी दरवाजेपर आया। उस गँवारने मेरी तरफ घीका ज़र्फ (बर्तन) बढाया और मैने झुझलाकर कहा—'ले जाओ वापिस, ले जाओ, यह जलाल होत वाला मरदूद घी इसी वक्त वापिस ले जाओ। मै नही लूगा, नही लूँगा, नही लूँगा।'

"यह थे हजरत जलालके तेवर, यह थी कदमाकी वज़अदारियॉ, अब न वोह रख रखाव है न वोह आन-बान; लद गये वे जमाने, निकल गये वोह कारवाँ और उजड गई वोह बस्तियॉ, रहे नाम अल्लाहका।"[1]

जलालके शिष्योंमे—जलालके पुत्र 'कमाल', मीर जाकिर हुसैन 'यास', 'आरज़ू' लखनवी, 'एहसान' शाहजहाँपुरी, प्रसिद्ध है। इनका परिचय वर्तमानयुगीन गज़लगो शायरोंमे शेरोसुख़नके दूसरे भागमे दिया जायगा।

---

[1] 'आजकल', अप्रेल १९५० ई०

न जीते जी मिली राहत न बादेमर्ग उल्फतमें।
फ़लककी क्या शिकायत? हमको पीसा की जमी बरसों॥

आये थे लाख दिलसे तेरी अंजुमनमें[1] हम।
जाते हैं अपने घर अजब इक बेदिलीके साथ॥

उठ देर न कर कहती हैं वोह सीधी निगाहें।
"जल्द आके लिपट, देख जमाना न पलट जाय"॥

यह अश्केहसरत[2] जो गिर पड़ा है तुम्हारे आगे अभी टपककर।
इसीने आँखोंमें सुबह करदी बहुत-सी रातें खटक-खटककर॥

एक अपनी आरज़ू हो, तो बताएँ ऐ फ़लक!
झगड़े लगे हुए हैं, हजार आदमीके साथ॥

बाँधो कमर बदीपै दिया था दिल इसलिए?
नेकी कोई जहाँमें करे क्या किसीके साथ?॥

जलवा किसीका देखके आँखें-सी खुल गईं।
परदे जो गफलतोंके पड़े थे उलट गये॥

सितम है तेरा लुत्फ़से पेश आना।
यही मार रखता है, कातिल यही है॥

बहसने आया जो तुमसे आईना, आने भी दो।
खैर, तुम अपनी तरफ़ देखो, चलो, जाने भी दो॥

-रुखेरोशनसे किसने उलटी नक़ाब?
जल उठे दाग इक बुझेदिलके॥

---

[1]महफिलमें, [2]अभिलाषाका आँसू।

जब ज़ख़ुद रफ़्तगीसे[1] आँख खुली।
सामने ही खड़े थे मंज़िलके॥

काबिले लुत्फ़ कोई और सही।
ख़ैर हमपर जफ़ाओ जौर सही॥

अबतक है जोशे आह वही, कुछ कमी नहीं।
कल रातसे चली है जो आँधी, थमी नहीं॥

वादा क्यों बार-बार करते हो।
ख़ुदको बेऐतबार करते हो॥

फाँस होती है दिले आशिक़की क्या कम्बख़्त फाँस।
रह गई तो जान ली, निकली तो रुसवाई हुई॥

गुज़र गया तेरी फ़ुरक़तमें यूँ शबाब अपना।
कि जैसे वस्लकी शब ऐ निगार! जाती है॥

निजात हो गई नासहसे उम्रभरके लिए।
उसीको भेज दिया यारकी ख़बरके लिए॥

हमसे उक़बा न बनाई गई ज़ाहिदकी तरह।
कोई मज़दूर न थे रोज़ जो मेहनत होती॥

वस्लमें मना मयकशी! आपकी है ज़्यादती।
हाँ यह कहेंगे, शेख़जी! हिज्रमें मय हराम है॥

शबको मय ख़ूब-सी पी सुबहको तौबा करली।
रिन्दके रिन्द रहे हाथसे जन्नत न गई॥

किसकी महशरमें हम करें फ़रियाद।
दावरेहश्र[2] हो तुम्हीं न कहीं॥

---

[1]तन्मयतासे; [2]हश्रमे न्याय करनेवाला, न्यायाधीश, ख़ुदा।

बेहिजाबाना वोह शक्ल अपनी दिखाते भी नहीं ।
और मुँह देखनेवालोंसे छुपाते भी नहीं ।।

ग़ज़बका सामना है हश्रमें भी ।
नक़ाब उठती नहीं शरमा रहे हैं ।।

नीची नज़रें ऊँची अब हों या न हों ।
ख़ाकमें मिलना था जिसको मिल गया ।।

वोह हाथ रखके दिले बेक़रारपर बोले—
"जो यूँ भी इसको न आया करार, क्या होगा ?"

तुम्हारी मेहर्बानी ग़ैर ही को बस मुबारिक हो ।
हमें तो इक नज़र तुम देख लो नामेहर्बाँ होकर ।।

कह रही है कि ज़रूर आयेगा बेदर्द कोई ।
यह तरक़्क़ी तेरी ऐ दर्दे जिगर आजकी रात ।।

बिलफ़र्ज़ मुज़दा दे भी अगर कोई वस्लका ।
दिल लाइये कहाँसे जिसे शाद कीजिये ।।

जहाँ-जहाँ हमें गुज़री है बेख़ुदी लेकर ।
बता न सकते अगर आपमें भी आ जाते ।।

आजकल, अप्रेल १९५०

तग़ाफ़ुलके गिले सुनकर झुका लीं तुमने क्यों आँखें ?
मेरे शर्मिन्दा करनेको ज़रा बेबाक होना था ।।

अगर्चे एक भी तसकीनका जवाब न था ।
मगर कुछ आते ही क़ासिदके इज़्तराब न था ।।
किसे ख़बर ? जो हुई मुझमें यारमें बातें ।
यहाँ ख़िताब न था कुछ वहाँ जवाब न था ।।

गिला है हमसे कि तुम ज़ब्ते गिरया कर न सके।
हँसी जब आ गई उनको कब अख़्तियार रहा॥

कब आयगा कोई मुझतक जवाब देता जा।
तसल्लियाँ भी तो ऐ इज़्तराब देता जा॥

मेरी दास्ताने फ़िराक़ने शबेवस्ल तुर्फ़ा मज़ा दिया।
कभी मैंने रोके हँसा दिया, कभी उसने हँसके रुला दिया॥

न ख़ौफ़े आह बुतोंको न डर है नालोंका।
बड़ा कलेजा है इन दिल दुखानेवालोंका॥

हश्रमें छुप न सका हसरते दीदारका राज़।
आँख कम्बख़्तसे पहचान गये तुम मुझको॥

इन्तख़ाबियात, भाग २, पृ० १०१

ख़ूबरूओंके बिगड़नेमें भी हैं लाखों बनाव।
कहीं अच्छोंकी कोई बात बुरी होती है?

एक-सी शोख़ी ख़ुदाने दी है हुस्नोइश्क़में।
फ़र्क़ बस इतना है वोह आँखोंमे है यह दिलमें है॥

आँसू रुके तो क्या? नहीं छुपनेका राज़े इश्क।
हसरत टपक पड़ेगी हमारी निगाहसे॥

इन्तख़ाबियात, भाग २, पृ० १५१

कह दें तुमसे कौन है, क्या है, कहाँ रहते हैं हम।
बेख़ुदोंको अपने जब तुम होशमें आने भी दो॥

चौंका रहा हूँ वस्लकी शब, चौंकते नहीं।
कुछ नींद है शबाबकी, कुछ ख्वाबेनाज़ है॥

तुम्हारी वज़्ममें हम खुद सम्भल जाते यह मुश्किल था।
तुम्हीं वेताव करते थे, तुम्हीं फिर थाम लेते थे॥

हम फिर उनके रूठ जानेपर फ़िदा होने लगे।
फिर हमें प्यार आगया, जब वोह खफ़ा होने लगे॥

हाय ! कातिलने हमीको न किया कत्ल 'जलाल' !
मुजरिम आखिर वही ठहरा जो गुनहगार न था॥
मकतूबातेनियाज़, दूसरा हिस्सा, पृ० १५३

वोह दिल नसीब हुआ जिसको दाग भी न मिला।
मिला वोह गमकदा जिसमें चराग भी न मिला॥
गई थी कहके मैं लाती हूँ जुल्फ़ेयारकी बू।
फिरी तो बादेसबाका दमाग भी न मिला॥
असीर करके हमें क्यों रिहा किया सैयाद ?
वोह हमसफ़ीर भी छूटे वोह बाग भी न मिला॥
बुतोंके इश्कमें क्या होती हमसे यादे खुदा ?
कि दिल भी था न ठिकाने फ़राग भी न मिला॥
ख़बरको यारकी भेजा था गुम हुआ ऐसा।
हवासेरफ़्ताका अबतक सुराग भी न मिला॥
दिखाएँ यारको क्या जिस्मे दागदारकी सैर।
नज़रफ़रेब हमें एक दाग भी न मिला॥
भर आये महफ़िले साक़ीमें क्यों न आँख अपनी।
वोह बेनसीब हैं खाली अयाग़ भी न मिला॥
चराग लेके इरादा था बख्त ढूंढ़ेंगे।
शबे फ़िराक़ थी कोई चराग भी न मिला॥

'जलाल' बाग़ेजहाँमें वोह अन्दलीब हैं हम।
चमनको फूल मिले, हमको दाग़ भी न मिला॥

दाग़पर मेरे पड़ी मुरग़ाने गुलशनकी जो आँख।
सबने मिनक़ारोंमें ले-लेकर गुलेतर रख दिया॥

अन्दाज़े, पृ० ८५

१४ नवम्बर १९५० ई०

८६

निज़ाम

[१८१९ से १८६९ ई० तक]

मियाँ निजामशाह 'निज़ाम' के पिता अहमदशाहका शुमार रामपुर रियासतके भद्र व्यक्तियोमे था। निजामने अरबी-फ़ारसीकी शिक्षा प्राप्त की थी। जब इन्होने होश सम्भाला तो रामपुरमे शेरोसुखनकी चर्चाएँ आम थी। इनका भी कुदरती झुकाव इस ओर था। प्रारम्भमे शेख़ अलीबख्श 'बीमार' से मशवरये सुखन लिया। लेकिन उस्ताद-शागिर्दकी तबियते जुदागाना थी। 'बीमार' मोमिनके शिष्य थे और उन्हे देहलवी-दाखिली रग पसन्द था, निजाम लखनवी रगके दिलदादा थे और उन्हे जुरअतका रग रुचिकर था। इसलिए 'बीमार' के बजाय उन्होने अहमद अलीशाहसे इसलाह लेना अधिक उपयुक्त समझा।

जब इनकी ख्याति नवाब युसुफअली खा 'नाज़िम' तक पहुँची तो उन्होने इन्हे अपना दरबारी शायर नियत कर दिया। नवाब स्वयं बहुत अच्छे शायर थे और फन्ने शायरीपर उस्तादाना अधिकार रखते थे। अत. 'निजाम' दरबारी शायर नियुक्त होनेके बाद नवाबसे भी कवितामें संशोधन लेने लगे।

निजामने अपने कलामको सुरक्षित और सकलित रखनेका कभी भी प्रयत्न नही किया। उनकी इस उपेक्षाके कारण उनका श्रेष्ठतम कलाम अब प्राप्त नही है। अपनी स्मरण शक्तिके बलपर निजामकी मृत्युके बाद मुशी क़ुदरतअली 'कुदरत' ने २७७ पृष्ठका दीवान प्रकाशित कराया था। जिसकी एक जिल्द इत्तफाक़से अल्लामा नियाज़ फ़तहपुरीके

हाथ रामपुरमे लग गई। उनका कहना है कि "इस दीवानमे मुश्किलसे सौ शेर ऐसे नज़र आते है, जिन्हे निगाहे इन्तख़ाब पसन्द कर सके, और मै इसे भी मिया निज़ामशाहका कमाल समझता हूँ कि इस मजमूएमे से जो उनके नजदीक बिलकुल वेकार और कलमजदा (व्यर्थ) कलामका मजमूआ है, इतने अशआर निकल सके।....निज़ामके रंगके मुताल्लिक आमतौरपर यही मशहूर है कि वोह अदाबन्दीके बड़े मश्शाक थे। चुनांचे वोह ख़ुद भी एक जगह लिखते है—

हाल्लिया शेर सुनके मेरे कहते हैं 'निज़ाम' !
अब फ़न्ने शायरीमें तुझे भी कमाल है॥

'हालिया' शायरीसे उनकी मुराद गालिबन 'मुआमला बन्दी' है। और इसमे शक नही कि उनपर यही रग गालिब था। वस्ल-ओ-हिज्रकी कैफियात, माशूकाना अदाओका बयान, महबूबकी कज अदाइयाँ, अगियारके साथ उसकी वफादारियाँ, वग़ैरह, यह वोह मुबाहिस है जिनपर आमतौर पर मामलाबन्दीके तहतमे ख़ामा फरसाईकी जाती है और इनके यहाँ भी यह ब-कसरत नजर आते हैं। चुनाचे इसीलिए इन्हे सोज़ और जुरअतका मुकल्लद (अनुकरण करनेवाला) कहा जाता है। लेकिन मेरे नजदीक मुसव्वरीके लिहाजसे यह बाज़ मुकामातपर जुरअतसे भी बढ जाते है और जज्बात-निगारीकी हैसियतसे तो ख़ैर इनका मर्तबा इस कदर बुलन्द है कि जुरअतका ख़्याल भी वहाँ तक नही पहुँच सकता।

"मामलाबन्द शुअराके यहाँ सबसे ज्यादा उरियाँ (नग्न) मजामीन वस्ल और मुतल्लकातेवस्ल (वस्ल सम्बन्धी) के हुआ करते है और मियाँ निज़ामशाहने भी बाज़ जगह बहुत उरयानीसे काम लिया है—

ऐसेको शबे वस्ल लगाये कोई क्या हाथ।
हरबार झटककर जो कहे "टूटे तेरा हाथ"॥

उस दस्तेनिगारीको जरा मैंने छुआ था ।
किस नाजसे कहने लगे "उफ छोड़, गया हाथ" ॥

लेकिन इस नौअ (विषय) के अशआर उनके यहाँ इस कदर कम हैं कि मुश्किलसे सारे दीवानमे ३०–४० से जाइद न मिल सकेंगे। उसमे शक नही कि यह रग भी एक हदतक पायएतहजीब (सभ्यता) से गिरा हुआ है और जौके सलीम (सुरुचि) पर ऐसे अशआरका सुनना बार (भार) होता है। लेकिन न इस कदर कि उसे सनअत (कला) की हदसे अलहदा समझा जाय। मगर जिन शुअराको इस तरफ गलू (आकर्षण) हो जाता है, आखिरकार वोह मुब्तजलनिगारी (अश्लील, घटिया शायरी) पर उतर आते है और उनका शुआर (रुचि) सिर्फ बेहूदा गोई हो जाता है। जुरअतके यहाँ ऐसी मिसाले ज्यादा मिलेगी, लेकिन 'निजाम'के यहाँ शायद दो-तीन ही शेर ऐसे नजर आएँगे—

'निजाम' आती है उस मुँहसे क्या दमे बोसा ।
वोह कुछ तो पानकी बू और कुछ शराबकी[1] बू" ॥

निजामके यहाँ इस तरहके गिरे हुए शेर बहुत कम है। उनके यहाँ ऐसे शेर अधिक है, जो 'अदानिगारी'[2] और 'मुआमलाबन्दी'[3] के अन्तर्गत आ सकते है—

अदानिगारी—

बिगड़कर वोह उसका इधर देखना ।
सितम वोह भी फिर इक नजर देखना ॥

---

[1]इन्तकादियात, भाग १, पृ० ७–८

[2]माशूककी अदाओ, बेवफाइयो, और अगियारके साथ उसकी वफादारियोका बयान करना अदानिगारी है।

[3]इश्केमजाजीकी हकीकी वारदातका बयान करना मुआमलाबन्दी है।

वोह यूँ मुसकराकर न मुँह फेरते ।
न मंजूर होता अगर देखना ।।
वोह चल-चलके रुकना किसीका ग़ज़ब ।
वोह फिर-फिरके अपनी कमर देखना ।।

अन्दाज अपना देखते हैं आईनेमें वोह ।
और यह भी देखते हैं कोई देखता न हो ।।

उसका कहना वोह शबेवस्ल 'निज़ाम' !
"हाथ मुझको न लगाये कोई" ।

अँगड़ाई भी वोह लेने न पाये, उठाके हाथ ।
देखा जो मुझको, छोड़ दिये मुसकराके हाथ ।।
बे साख़्ता निगाहें जो आपसमें मिल गईं ।
क्या मुँहपर उसने रख लिये आँखें चुराके हाथ ।।
वोह ज़ानुओंमें सीना छुपाना सिमटके हाय !
और फिर सम्भालना वोह दुपट्टा छुड़ाके हाथ ।।
देना वोह उसका साग़रेमय याद है 'निज़ाम' !
मुँह फेरकर इधरको उधरको बढ़ाके हाथ ।।

मामलाबन्दी—

मामलाबन्दीके अन्तर्गत ऐसे समस्त शेर आ सकते हैं, जिनमें प्रेमी-प्रेमिकाके एकान्त संबध, बातचीत, छेड-छाड, रूठना-बिगड़ना, हँसी-मजाक आदिका उल्लेख हो और जिनका सम्बन्ध उच्चभावो और सभ्य विचारोसे न हो । जैसे कि अदानिगारीके शेर देनेसे पहले नमूनेके तीन शेर दिये गये हैं ।

किन्तु यही मामलाबन्दी शायरी जब कलापूर्ण ढगसे सीधे-साधे शब्दोमे हृदयके सही भावोमे व्यक्त की जाय तो इसके शेर भी बुलन्द हो

उठते हैं और उनमे एक विशेषता आ जाती है। इसी तरहकी कलापूर्ण अदानिगारी और मामलाबन्दी शायरीको निजामने 'हालिया' शायरी कहा है। इस बदनाम रंगमे लिखते हुए भी निजामने क्या खूब शेर कहे हैं—

खुदा जाने मुझको दिखायेगा क्या ?
यह छुप-छुपके अपना उधर देखना ॥

वोह हाय बिगड़कर उसका जाना।
रोना वहीं ज़ार-ज़ार मेरा ॥

तुम्हें यह भी कहीं खयाल आया।
कि कोई राह देखता होगा ॥

गो न किया अर्ज़े तमन्नाये दिल।
मुँहको वोह लेकिन मेरे देखा किया ॥

मुझको सुना-सुनाके वोह कहना किसीका हाय।
"जिससे कि जीमें रंज हो उससे कलाम क्या" ॥

मुँह फेरकर हँस-हँसके वोह इकरारकी बातें।
इस तौरसे करते हैं कि बावर नहीं होता ॥

"कह, 'निजाम' अब तेरे क्या जीमें है कह दे मुझसे"।
हाय पूछे वोह कभी मुझसे यह तनहा होकर ॥

ऐ जान ! कहो फिर इस अदासे—
"मैं आज 'निजाम' से ख़फ़ा हूँ" ॥

अबस यह हर दमका चौंकना है अबस यह उठ-उठके देखना है।
भला वोह ऐसे हुए थे किस दिन वही तो वादा वफ़ा करेंगे ॥

यूँ वोह उठ जाएँ सम्भाले हुए दामन अपना ।
और मेरे हाथ दुपट्टेका न आँचल आये ॥

यूँ तो रूठे हैं, मगर लोगोंसे ।
पूछते हाल हैं अक्सर मेरा ॥

अहद किया था अभी कैसा 'निज़ाम' !
फिर वहीं जानेका इरादा किया ॥
तौबा वाँ जानेसे करते हो 'निज़ाम' !
क्या करोगे वोह अगर याद आया ॥

बे वहाँ जाये भला हमसे रहा जाये कहाँ ?
दिलसे उस बज़्ममें जानेका मज़ा जाये कहाँ ?

फिर उसीसे तू जा मिलेगा 'निज़ाम' !
तेरी तौबाका एतबार नहीं ॥

अब हमारा न हाल पूछो 'निज़ाम' !
क्या कहें कुछ कहा नहीं जाता ॥

अब हाले 'निज़ाम' कुछ न पूछो ।
ग़म होगा तुम्हें भी गर कहूँगा ॥

आजकल आपसे[1] बाहर हैं 'निज़ाम' !
कहीं महफ़िलमें न बुलवाइयेगा ॥

अब हम उनकी गजलोके चन्द शेर 'इन्तकादयात' से और पेश करते हैं—

---

[1]आपेमे नही ।

एकदम दिलसे भुलाया नहीं जाता तुमको ।
कुछ ख़ुदा जाने कि किस हाल में देखा है तुम्हें ॥

चैन मिलता नहीं ज़रा दिलको ।
तुमसे मिलकर यह क्या हुआ दिलको ॥
किसी चर्चामें जी नहीं लगता ।
या इलाही यह क्या हुआ दिलको ॥

क्या कहें आपके नज़दीक ही रहता है 'निज़ाम' ।
रोज़ पिछलेको जो रोनेकी सदा आती है ॥

उनको मैं किस तरह भुलाऊँ 'निज़ाम' !
याद किस बातपर नहीं आते ॥

किया क़हर वादेने वर्ना शबेहिज्र ।
मुझे ग़म तो होता पर इतना न होता ॥

तुझसे कुछ कहनेको था, भूल गया ।
हाय क्या बात थी, क्या भूल गया ॥

जो दिलमें आये किसीके वोह कुछ कहे मुझको ।
मुझे तो नाज़ है इस दर पै जिबहसाईका[१] ॥

'निज़ाम' उनको तो आदत कभी सितम की न थी ।
ख़याल आगया क्या उल्फ़त आज़माईका ॥

यूँ आप तो कहूँगा न रंजिशका माजरा ।
पूछोगे तुम तो मुझसे छुपाया न जायगा ॥

---

[१]नतमस्तक होनेका ।

सच है 'निज़ाम' याद भी उसको न होंगे हम।
पर क्या करें वोह हमसे भुलाया न जायगा ॥

कहनेसे न मना कर, कहूँगा।
तू मेरी न सुन, मगर कहूँगा ॥
तुझसे ही छुपाऊँगा ग़म अपना।
तुझसे ही कहूँगा, गर कहूँगा ॥

कहा क्यों दोस्तो तुमने ख़ुदा जाने वोह क्या समझें ?
हमारा हाल उनपर आप ही इजहार हो जाता ॥

ख़ुदा ही जाने कि क्या दिल पै चोट लगती है।
तुम्हारे पास जो आया वोह दर्द मन्द हुआ ॥

मैंने जो तुझसे कहा था वोह तो तूने कह दिया।
नामाबर! मुझसे न कहना उस सितमगरका जवाब ॥

वोह झरोकेसे जो देखें तो मैं इतना पूछूँ।
बिस्तर अपना पसेदीवार करूँ या न करूँ ॥
तू भी उस शोख़से वाकिफ़ है बता कुछ तो 'निज़ाम'!
मुझसे दिल माँगे तो इनकार करूँ या न करूँ ॥

लपेटे मुँह पड़े रहना तेरी कुछ याद ला-ला कर।
बनाया करते हैं अब दिलसे हम दो-दो पहर बातें ॥

क्या कहें यह कि "कब उन तक है रसाई अपनी ?"
पूछनेवालोंसे कहते हैं कि "हाँ मिल आये" ॥

बातें थीं दिलमें क्या-क्या कहनेको थे न क्या कुछ।
मुँहसे न उसके आगे कुछ भी कलाम निकला ॥

हैरानसे रह जाते है हम सामने उसके।
हमसे तो 'निज़ाम' उससे गिला हो नहीं सकता ॥

मुझे उम्मीदेवफ़ा तुमसे, तुम्हे दुश्मनसे।
यह अगर जन्त है तो, मुझसे ज्यादा है तुम्हे ॥

कलका वादा किया फिर उसने आज।
और भी एक दिन जिये ही वनी ॥

तेरा मिलना तो एक आफत है।
गैरका हाल क्या हुआ होगा ॥
आप ही आप ऐसे रोये 'निज़ाम'!
दिलमें कुछ ध्यान आ गया होगा ॥

जो मेरे देखनेको आता है।
फिर वोह बारे दिगर नहीं आता ॥

वाँ जानेसे फ़ायदा तो मालूम।
दिल और भी वेकरार होगा ॥

वोह मुझको 'निज़ाम' क्यो मनाते?
क्या जानिये यह भी क्या महल था ॥

हम तो कह गुज़रे हाले दिल अपना।
नहीं मालूम उसने क्या जाना ॥

जुज उस गलीके दिल नहीं लगता कही 'निजाम'!
सौबार हमतो साकिने दैरो हरम हुए ॥

सव कहते हैं मुझको नहीं वचनेका 'निजाम' अव।
"किस वास्ते मरता है ?" तुम इतना नहीं कहते ॥

हमदम ! न कह वोह बात जो दिलको बुरी लगे ।
उस बेवफ़ासे गो मेरी रंजिश हज़ार है ।।

रूठकर बैठे हो उनसे किस तवक़्कोह पर 'निज़ाम' !
होशमें आओ, वोह आएँगे मनानेके लिए !

यह बात पूछते हैं उनके जानेवालों से ।
हमारे बाबमें वोह कुछ कहा भी करते हैं ?

शिकवा उस बुतका हर किसीसे 'निज़ाम' !
उससे कहदे ख़ुदा करे कोई ।।

कहीं उस बज़्मतक रसाई हो ।
फिर कोई देखे अहतमाम मिरा ।।

२१ दिसम्बर १९५०

६०

जावेद

[हि० स० १२८० से १३४० तक]

सैयद मुहम्मद काजिम साहब 'जावेद' हिजरी सन् १२८० के लगभग लखनऊमे उत्पन्न हुए और ६० वर्षकी अवस्थामे वही जन्नत नशीन हुए। जावेदके दादा बादशाही जमानेमे जजीके पदपर नियुक्त थे और पिता सैयद मुहम्मदजफर अल्लाह, 'उम्मीद' उपनामसे शायरी करते थे। आपको बचपनसे ही शायरीका शौक था। प्रारम्भमे अपने पितासे और बादमे खुरशीद लखनवीसे मशवरये सुखन लिया। सुना जाता है आपने अपने कलामके दो अप्रकाशित सकलन छोडे, किन्तु उन्हे आपके एक सम्बन्धी उठाकर ले गये, जिनसे फिर वे वापिस नही मिले। 'आसी' गाजीपुरी और 'तमन्ना' लखनवी (जावेदके भाई) से चन्द अशआर अल्लामा नियाज़ फतहपुरीको किसी तरह दस्तयाब हो सके थे। उनमेसे चन्द यहाँ साभार दिये जा रहे है। जावेद लखनवी रगके बहुत अच्छे शायर थे।

यह अपने चाहनेवालोंसे आपका बर्ताव ?
यहाँतक आती है आवाज़ लनतरानीकी ॥
जो बचपना है तो मेरी तरफ़से फेरलो मुँह ।
यह कोई खेल नहीं मौत है जवानीकी ॥
हमारी उम्रसे कुछ रोज़ घटते जाते हैं ।
क़सम हुज़ूर न खाया करें जवानीकी ॥

अब इक बोसे पै इतनी बहस जेबा है न शायां है ।
निगाहें नीची कर लो, खैर, अच्छा, ले लिया होगा ॥
अभी तो आग-सी दिलमें कहीं कम है कहीं ज़ाइद ।
अगर मिल जायेंगे आपसमें सब छाले तो क्या होगा ॥

कफ़न पहने हुए ख़ुद चान्दनी आई मेरे घरमें ॥
ख़ुदा आलम न दिखलाये शबेमहताब हिजराँका ॥
उदासी चारागरके मुँहपै जब आती हुई देखी ।
मैं समझा यह कि टूटा ज़ख़्मके मेरे कोई टांका ॥

मिला शबाबमें जो दिल बुझा वोह पीरीमें ।
चिराग़े सुबह था अब उसका एतबार न था ॥

मरनेकी इक उम्मीद पै जी जाएँ बेनसीब ।
तुम भी किसीके ग़ममें अगर सोगवार हो ॥

कहते हैं देखकर मेरी सूरत यह उनसे ग़ैर ।
अब उसके रंजकी न कोई बात कीजिये ॥

हम जिसको उम्र समझे मुद्दत ही उसकी क्या थी ।
इतना न कहने पाये किस फ़ित्नागरने मारा ॥

अब कहाँ था मै जो देता उस मुहब्बतका जवाब ।
जिसकी तुरबत देखली मुझको सदा देने लगे ।।

अरे यह हश्र है, है सैकड़ो तेरे मुश्ताक ।
यहाँ पै हम भी है राज़ी नकाब डालके चल ।।
कही यह तफ़रका अन्दाज़ चर्ख़ देख न ले ।
न इस तरीकसे बाहें गलेमें डालके चल ।।

कल भी गर पहचानिये तो मान लूं ।
देखली है आज सूरत आपने ।।

इक जमाही-सी उसे महफ़िलमें आकर रह गई ।
मै यह समझा इक कली थी मुसकराकर रह गई ।।

शबेतारीक हिज्र आती है 'जावेद' ।
सबेरेसे चरागोंको जलालो ।।

रातको दरियामें मोजें किसतरहसे चैन लें ।
इक किनारे चान्द है और इक किनारे आप हैं ।।

जमा आँखोमें है इतने कि खटक होती है ।
कुछ तो आँसू मिरी आँखोंसे निकल जाने दो ।।

२५ दिसम्बर १९५०

उत्तरार्द्ध युगीन देहलवी शायर

जौकके शिष्य—

६१

ज़फ़र

[१७७५ से १८६२ ई०तक]

बहादुरशाह 'जफर' मुगलिया सल्तनतके अन्तिम बादशाह थे। बादशाह इन्हे इस दृष्टिसे कहा जा सकता है कि इन्होने भी बादशाही खान्दानमे जन्म लिया, लालकिलेमें पले-पोसे और उस राज्यासनपर बैठनेका अवसर मिला, जिसपर बैठकर इनके पूर्वज हुक्मरानी किया करते थे। वर्ना इनकी सामर्थ्य तो शतरजके बादशाह जितनी भी न थी जो अपनी सुरक्षाके लिए इधर-उधर इच्छानुसार चल तो सकता है। इन्हे उतनी भी स्वतंत्रता प्राप्त नही थी। एक पेन्शनयाफ्ता रईसकी-सी हैसियत रखते थे, और लालकिलेकी परिधि भी इनकी हुक्मरानीके लिए ज़रूरतसे ज्यादा समझी जाती थी।

इसमे जफरका कोई दोष नही था। जिस समय (१८३७ ई०मे) ये राज्यासीन हुए, उस वक्त मुगलराज्यकी स्थिति ऐसी ही शोचनीय थी। मुगलराज्यके पतनका श्रीगणेश औरगजेबके ही शासनकालमे प्रारम्भ हो गया था। जाहिरामे वह दिन-रात राज्य विस्तार कर रहा था और विद्रोहियोका दमन कर रहा था, किन्तु उसके इसी राज्यविस्तार और दमनके खाद-पानीसे पतनके अकुर फूट निकले थे। उसके असहिष्णु स्वभाव, शक्की मिजाज और धर्मोन्मादने अपने-पराये, हिन्दू-मुस्लिम, सभीको विद्रोही बना दिया था। उसके जीवनकालमे प्रान्त-प्रान्त और जिले-

ज़िलेमे विद्रोहाग्नि सुलग चुकी थी। उसने इस आगको यथा शक्य बुझानेका प्रयत्न किया, किन्तु उसके उत्तराधिकारी इस बढते हुए सैलावको न रोक सके। अत. दिन-रातके घरेलू झगडे और वाहरी आक्रमणोने मुगलराज्यकी जड़े हिला दी। मुगल वादशाहोकी भोगलिप्सा और अकर्मण्यताने इन हिली जडोमे घुन लगा दिया।

मुहम्मदशाह रंगीलेके शासनकालमे मुगलराज्य डगमग-डगमग हिलने लगा था और उसके हरवक्त गिर पडनेकी आशंका वनी रहती थी कि १८५७ की विप्लवकी आँधीमे वह सदैवको धराशायी हो गया।

सन् १७७५ ई० मे 'ज़फर' का जन्म हुआ। इनके पिता अकवरशाह (द्वितीय) इनसे सदैव अप्रसन्न रहे। वे अपने अन्य पुत्रको उत्तराधिकारी वनाना चाहते थे, किन्तु वास्तविक हकदार ज़फर अपनेको समझते थे। अपने हकमे अंग्रेज़ो द्वारा उत्तराधिकारका निर्णय दिये जानेपर भी पिताके जीते जी सुख-चैनसे जीवन नही विता सके, और सारी जिन्दगी वड़ी वेमज़े कटी।

ज़फर जव ६२ वर्षके वूढ़े हो गये, तव कही पिताकी मृत्यु हुई और १८३७ मे उन्हे शतरंजी विसातके वादशाह वननेका अवसर प्राप्त हुआ। वादशाह वननेके वाद भी मनकी अभिलाषाएँ क्या ख़ाक पूर्ण होती, वे तो अतृप्त ही नष्ट हो चुकी थी। जवानीमे सिर्फ ५०० रु० मासिक गुज़र औकातको मिलते थे। उसीमे चार रुपये माहवार अपने उस्ताद ज़ौक़को भी देने पड़ते थे, और जव राज्य प्राप्त हुआ तो मनके वलवले सव किरकिरे हो गये थे। इस आयुमे गुलछर्रे उड़ाना तो कुजा, ईश्वरीय उपासनाकी भी शक्ति नष्ट हो गई होगी।

ज़फरकी वड़ी अभिलाषा थी कि अच्छे-अच्छे कलाकारोसे अपने दरवारकी ज़ीनत वढाएँ, किन्तु किस विरतेपर तत्ता पानी? राज्य-कोष सव रिक्त हो चुका था। वादशाह होनेपर अपने उस्तादको ही २५ रुपयेसे अधिक मासिक नही दे सके और री-री करके उनके अन्तिम दिनोंमे १०० रु० मासिक देकर अपना हौसला निकाल सके थे।

ज़फर ने वादशाहोके उपयुक्त शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की, लालकिलेकी 'उर्दूएमोअल्ला' (टकसाली, प्रामाणिक, लालित्यपूर्ण उर्दू) विरासतमे मिली। तबियतका रुझान कुदरती शायरीकी तरफ था। गालिब या मोमिन जैसे साहिबे कमाल उस्ताद नसीब हुए होते तो आज इनका भी शायरीमे एक विशेष स्थान हुआ होता, किन्तु दुर्भाग्यसे इन्हे शाह 'नसीर' जैसे उस्ताद मिले। जो कि मुश्किल जमीनो, अटपटे काफ़ियो, रदीफोमे गजल कहना कमाले शायरी समझते थे। वे नासिख़ जैसी ख़ारजी शायरीके दिलदादा थे।

जफरके कलामके अध्ययनसे विदित होता है कि उनकी तबियत रगीन थी, और इशा और जुरअत जैसी शायरीकी तरफ उनका रुझान था। यदि उन्हे इस रगका अच्छा उस्ताद मिला होता तो यकीनन उनका कलाम 'जुरअत' और 'इंशा' से बुलन्द होता। न तो उन्हे अच्छा उस्ताद ही मिला और न उनकी अभिलाषाएँ पूर्ण होनेसे उनके मनकी भूक मिटी। मानसिक भूकको किसी तरह शायरी द्वारा पूर्ण करनेका प्रयत्न किया है, किन्तु उसमे भी सफलता नही मिली।

जफरकी शायरीमे दिल्ली स्कूलका न तो सोजोगुदाज आ पाया है, न लखनऊ स्कूलकी रगीनी। बल्कि उनकी शायरी अफसुर्दा-सी होकर रह गई है। हाँ यदि उन्हे किसी भी रगका उस्ताद अच्छा मिला होता तो वे भी आज आस्माने शायरीपर चमकते हुए होते।

'नसीर' के बाद उन्हे बुढापेमे उस्ताद जौक मिले भी। परन्तु वे अब इस योग्य नही रहे थे कि उनका जौके सलीम बदला जा सके। मोमिन तो दरबारमे जाते ही न थे। हाँ चाहते तो गालिबसे मशवरये सुख़न लिया जा सकता था। परन्तु उनकी तबियतका रुझान गालिवकी शायरीके उपयुक्त नही था। वोह जिस साँचेमे ढाले गये थे, उसके लिये जौक ही उपयुक्त हो सकते थे। क्योकि वे भी शाह 'नसीर' के शिष्य रह चुके थे। अतः ज़फरके मनोभावोको समझने और उन्हे शेरमे व्यक्त करा सकनेमे जौक ही उपयुक्त हो सकते थे।

'ज़फर' बहुत ज्यादा शेर कहते थे। और उनके पास काम भी क्या था ? उनके जीवनकालमे ही नवलकिशोर प्रेससे मुद्रित चारो दीवान हमारे समक्ष है। दूसरे और चौथे भागके अन्तिम पृष्ठ फटे हुए होनेके कारण पृष्ठोकी सही सख्या नही दी जा सकती। फिर भी इन फटे हुए चारो भागो-की पृष्ठ सख्या १०२६ है, और हर पृष्ठमे ३० के लगभग शेर है। इस हिसाबसे अन्दाजन ३६७८० अशआर होगे।

दीवान पुराने ढगके छपे हुए है। हाशिये तक पर शेर लिखे हुए है कागजका ज़रा-सा हिस्सा भी कोरा नही रहने दिया गया है। पढते हुए ऐसा मालूम होता है कि चिरायतकी घूंट भरी जा रही है। इतने बडे जखीरेमे सुरुचिपूर्ण शेर, आटेमे नमककी तरह मिले हुए है। फिर भी उनको अपनी शायरीपर बडा नाज था, सैकडो गज़लोमें इसका उल्लेख किया है—

ज़र्फे सुख़नका अपने 'ज़फ़र' बादशाह है।
उसके सुख़नसे यॉ न किसीका सुख़न लगा॥

× × ×

कोई गज़लपर अपनी जो नाज़ॉ आगे तेरी गज़लके हो।
शेर सुनादे उसको 'ज़फ़र' इक इसमेंका इक उसमेंका॥

और सचमुच 'जफर' का कलाम इसी तरहका है, कि कोई शेर इस दीवानमेसे ढूँढलो और कोई उस दीवानमे से खोज निकालो। जफरको शाह 'नसीर' की तरह मुश्किल-से-मुश्किल ज़मीन और अटपटे-से-अटपटे काफिये, रदीफोमे शेर कहनेका बडा चाव था। और इसमें कमालका अभ्यास भी था। चन्द नमूने मुलाहिज़ा हों—

कहूँ क्या रंग उस गुलका अहा, हा-हा अहा, हा-हा।
हुआ रंगीं चमन सारा अहा, हा-हा, अहा, हा-हा॥

दाग़ कब दिलको ऐ निगार ! लगा ।
इश्क़के घरपै इश्तहार लगा ॥

तू आ इसदम कि है वक़्तेसहर[1] ऐ गुलबदन ! ठंडा ।
जमीं ठंडी, हवा ठंडी, मकाँ ठंडा, चमन ठंडा ॥

'ज़फ़र'का रेख़्ता गर वोह सुने तो बन जावे ।
हरेक शायरेनाज़ुकदमाग़ पत्थरका ॥

फ़लकने[2] तेरे सरका अम्मामा[3] मजनूँ !
जुनूँको[4] लगाकर उछाला-बिगाड़ा ॥

तेरे दामनसे जो टपका ख़ूँ शहीदेनाज़का[5] ।
ख़ूब गहरा दामनेमहशर[6] गुलाबी हो गया ॥

ख़ुदाने जब कि जमालेबुताँ[7] बनाया था ।
मज़ः[8]को तीर, भवोंको कमाँ बनाया था ॥

वस्ल ज़ाहिर तो न होता था हमें उसका नसीब ।
ख़्वाबमें वोह छुपके आया यूँ न था तो यूँ हुआ ॥
देके उस बेदर्दको दिल, हूँ 'ज़फ़र' मैं दर्दमन्द ।
वाह दुःख बैठे बिठाये यूँ न था तो यूँ हुआ ॥

तूने क्यों डोरेसे पेटी बाँधी ऐ सैयाद ! वाह ।
बाँधनी बुलबुलकी थी ताररंगेगुलसे[9] कमर ॥

---

[1]प्रातः समय; [2]आकाशने;
[3]साफा; [4]उन्मादको;
[5]प्रेममे मरनेवालेका; [6]प्रलय-स्थान;
[7]प्रेयसीका रूप; [8]मिजगाँका संक्षिप्त, पलकोंको;
[9]फूलकी रगसे ।

कभी तो आओ हमारे घरमें सुनो हमारी भी चार बातें।
अजब है शिकवा[1] रक़ीबका, याँ हज़ार मुँह हैं हज़ार बातें॥
चढ़ा है कोठेपै कौन अपने कि देखनेको अब आह जिसके।
बगोला बनकर यहाँ फ़लकसे करे है अपना ग़ुबार बातें॥
गये 'ज़फ़र' कल जो उसके घर हम, खुला यह शिकवेका आगे दफ़्तर।
गुज़र गई शब[2] तमाम, तिसपर न हो चुकी ज़ीनहार[3] बातें॥

यूँ तो अफ़साना मेरा वोह नहीं सुनता ऐ दिल!
उससे यह क़िस्सा दमेख़्वाब कहे तो कह दूँ॥

एक-दो सागरसे क्या होता है हम तो ख़ुमके ख़ुम।
बैठकर साक़ीके सब ज़ानू ब ज़ानू पी गये॥

की सहर[4] हमने तड़पकर हिज्रकी शब[5] महजबीं[6]!
रातभर सोया किये तुम माहताबीमें[7] पड़े॥
गर न खाये साथ अपने वोह, नहीं खानेका लुत्फ़।
है मज़ा जब हाथ दोनोका रकाबीमें पड़े॥
ऐ 'ज़फ़र'! जाने वोह कैफ़ीयत निगाहेमस्तकी।
आँख उस मयकशकी[8] जिसपर बेहिजाबीमें[9] पड़े॥

यूँ है तबीयत अपनी हविसपर[10] लगी हुई।
मकड़ीकी जैसे ताक मगसपर[11] लगी हुई॥

---

[1]शिकायत; [2]रात्रि; [3]कदापि,
[4]सुबह; [5]विरहरात्रि, [6]चन्द्रमुखी;
[7]बरसाती कमरेमें; [8]मद्यपकी, [9]बेपर्दहालतमें;
[10]तृष्णा, सुखभोगकी अभिलाषाओंपर,
[11]मक्खीपर।

आज़ाद कब करे हमें सैयाद देखिये।
रहती है आँख बाबेकफ़सपर[1] लगी हुई॥

इसी तरह—दिलवर गाँठा, मिजगाँ टाँका, इक इसमेका इक उसमेका, गिलाफ़तंग, हँसौड़की एक, फ़ौलादकी नौक, संगतड़क, कातिलके चार पाँच, क़लकलसे कमर, घरसे सलाख—जैसे अनोखे और विचित्र-विचित्र काफ़ियोमे गज़ले कही है, और यह शौक इतना गालिव रहा है कि समूचे कलामका पौन हिस्सा इसी तरहका है। इस तरहकी ऊबड़-खाबड़ जमीनों-मे वही शेर लिखेगा, जिसे अपनी शायरीका ज़ोरे पहलवानी दिखाना इष्ट हो, अन्यथा मनोभाव तो व्यक्त हो ही नही सकते। महज़ ऊटपटाँग क़ाफ़िये रदीफोको बाँधनेके लिए जो शेर कहा जाय, वह उटपटाँगके सिवा और हो भी क्या सकता है।—

'जैसी गन्दी देवी वैसे ऊत पुजारी'

ज़फरकी शायरी वही पुराने ढर्रेकी शायरी है। उसका माशूक बाजारी भी है और मद्यप भी है। उसके कलाममे वही वस्लकी ख्वाहिश, गिले-शिकवे, हिज्रके सदमे, बोसे बाज़ी, चूमा-चाटीके शेर कसरतसे हैं। जफ़रकेदीवानमे नासिख़ की ख़ारजी शायरी, जुरअत की मुआमले बन्दी, और अमरदपरस्तीके अशआरकी भरमार है। कही-कही नीतिपूर्ण और तसव्वुफके भी शेर मिलते हैं—

गर फ़िक्रमें हो राहके तोशेका[2] करो फ़िक्र।
ऐ ग़ाफ़िलो! नजदीक है रोजेसफ़र[3] आया॥

न दरवेशोंका ख़िरक़ा[4] चाहिए ना ताजेसुलताना।
मुझे तो होश दे इतना रहूँ मैं तुझपै दीवाना॥

---

[1] पिंजरेके दर्वाज़ेपर; [2] यात्राके सामानका; [3] मृत्यु यात्राका दिवस; [4] फकीरोका लिबास।

न देखा वह कहीं जलवा जो देखा खानये दिलमें।
बहुत मस्जिदमें सर मारा बहुत-सा ढूँढ़ा बुतखाना ॥

न थी हालकी जब हमें अपनी खबर, रहे देखते औरोंके ऐबोहुनर।
पड़ी अपनी बुराइयोंपर जो नजर तो निगाहमें कोई बुरा न रहा ॥
'जफ़र' आदमी उसको न जानियेगा वोह हो कैसा ही साहबेफ़हमोजका।
जिसे ऐशमें यादे खुदा न रही, जिसे तैशमें खौफ़े खुदा न रहा ॥

नीचे कुछ चुने हुए शेर दिये जा रहे हैं—

किसीने उसको समझाया तो होता।
कोई यॉतक उसे लाया तो होता ॥
मजा रखता है जख्मे खंजरे इश्क।
कभी ऐ बुलहविस[1] खाया तो होता ॥
न भेजा लिखके तूने एक परचा।
हमारे दिलको परचाया तो होता ॥
जो कुछ होता सो होता तूने तकदीर !
वहाँतक मुझको पहुँचाया तो होता ॥

क्या जानें बनी कैसपै[2] क्या दश्ते जनूँमें[3]।
जो खाकबसर आज बगोला नजर आया ॥

गुलसे भी नाजुक बदन उसका है लेकिन दोस्तो !
यह गजब क्या है कि दिल पहलूमें पत्थर-सा बना ॥

चारागर[4] भर न सके मेरे जिगरके नासूर।
एक गर बन्द किया दूसरा रोजन[5] निकला ॥

---

[1]कामान्ध; [2]मजनूपै; [3]दीवानगीमे;
[4]चिकित्सक; [5]सूराख।

पहले तो दिलमें मुहब्बतका शजर[1] पैदा हुआ।
फिर लगे हसरतकेगुल[2] गमका समर[3] पैदा हुआ॥
सोजिशेदाग़ेअलमसे[4] पहले भेजा जल गया।
बाद उसके दिल जला और फिर कलेजा जल गया॥
उफ़! मिरे मजमूने सोजे दिलमें भी क्या आग है।
खत जो क़ासिद उसको मैंने लिखके भेजा जल गया॥

मेरी आँख बन्द थी जबतलक वोह नजरमे नूरेजमाल था।
खुली आँख तो न ख़बर रही, कि वोह ख़्वाब था कि ख़याल था॥
मेरे दिलमें था कि कहूँगा मैं जो यह दिलपै रंजोमलाल है।
वोह जब आ गया मेरे सामने, न तो रंज था न मलाल था॥

उसको इन्साँ मत समझ हो सरकशी जिसमें 'ज़फर'!
ख़ाकसारीके लिए है खाकसे इन्साँ बना॥

उड़ाकर आशियाँ सर-सरने मेरा।
किया साफ़ इस क़दर तिनका न पाया॥
उसे पाना नहीं आसाँ, कि हमने
न जबतक आपको खोया, न पाया॥

तुझे भी ख़बर है कि ओ ग़ैरतेगुल[5]!
कोई हो गया ग़ममें घुल-घुलके काँटा॥

है इश्ककी मंजिलमे यह हाल अपना कि जैसे।
लुट जाये कहीं राहमे सामान किसीका॥

---

[1]वृक्ष; [2]अभिलाषाओके फूल;
[3]फल; [4]व्यथा-पीड़ाकी आगसे;
[5]अपने सौन्दर्यसे फूलोको लज्जित करने वाले।

बात करनी मुझे मुश्किल कभी ऐसी तो न थी।
जैसी अब है तेरी महफिल कभी ऐसी तो न थी॥
ले गया छीनके कौन आज तेरा सब्रोकरार।
बेकरारी तुझे ऐ दिल कभी ऐसी तो न थी॥

हाथको हाथपै तू रखके लगा जब चलने।
हाथ हम मलते थे दिल था कि मला जाता था॥
आँख चाहतकी 'ज़फ़र' कोई भला छपती है।
उससे शरमाते थे हम, हमसे वोह शरमाता था॥

मै उसको देखके यह महव हूँ कि हैराँ हूँ।
जो कुछ वह पूछेगा मुझसे जवाब क्या दूँगा॥
न पूछ मुझसे 'जफर' तू मेरी हकीकते हाल।
अगर कहूँगा अभी तुझको मै रुला दूँगा॥

न पहुँचा तू, न पहुँचा तालिबेदीदारतक[1] अपने।
तेरी तकते ही तकते राह वक़्ते वापिसीं पहुँचा॥

'जफर' १७७५ ई० मे उत्पन्न हुए, १८३७ ई० मे ६२ वर्षकी आयुमे नाममात्रके बादशाह कहलाये। २० वर्ष बादशाह बने रहनेके बाद अग्रेजो द्वारा बन्दी बनाकर १८५७ मे रगून भेज दिये गये, और १८६२ ई० मे रंगून मे ही मृत्यु हुई।

'जफर' को जिस अग्रेजने कैद किया, वोह उर्दूशायरीका भी शौक रखता था। 'जफर' को देखकर चिढानेकी गरजसे यह शेर पढा—

दम-दमेमें दम नही, अब खैर माँगो जानकी।
ऐ 'ज़फ़र' बस हो चुकी शमशीर हिन्दुस्तानकी॥

---

[1] दर्शनाभिलाषी तक।

'जफर' न जो फिलवदी जवाब दिया वोह स्वराज्यके इतिहासमे स्वर्गाक्षरोमे लिखने योग्य है—

हिन्दयोंमें बू रहेगी जबतलक ईमानकी।
तख्तेलन्दनपर चलेगी तेग़ हिन्दुस्तानकी॥

'जफ़र' का तमाम दीवान नष्ट भी हो जाय, तो भी केवल उनका यही शेर उनकी ख्यातिके लिए काफी है। जफर बहुत नेक और भद्र थे। हिन्दू-मुसलमानोको एक दृष्टिसे देखते थे। उनमे मनुष्योचित अनेक गुण थे। सुना है बन्दी होनेके बाद उनकी शायरीमे बहुत परिवर्तन हो गया था। दिल्ली स्कूलकी परिपाटीके अनुकूल उनके अशआर व्यथा-पीडामे डूबे हुए होते थे, परन्तु खेद है कि उनका वह कलाम दस्तयाब नही है। जिनमे न तहजीब है, न अदब है, न शऊर है, ऐसे पढेलिखे लोगोके लिए जफरने क्या खूब फर्माया है—

न हो जिसमें अदब, और हो किताबोंसे लदा फिरता।
'ज़फ़र' उस आदमीको हम तसव्वुर बैल करते है॥

१४ दिसम्बर १९५०

९२

आज़ाद

[१८२९ से १९१० ई० तक]

मौलाना मुहम्मद हुसेन 'आजाद', 'ज़ौक' के परम श्रद्धालु और ख्याति-प्राप्त शिष्य हुए हैं। १८५७ के विप्लवकी लूट-मारमे भरा घर छोड़, केवल उस्तादका हस्तलिखित कलाम वगलमे छुपाकर, वीवी-वच्चोंको लेकर भाग निकले थे।

तत्कालीन रिवाजके अनुसार प्रारम्भमे आपने भी गजलें कही, किन्तु वहुत शीघ्र आपका मन इस इश्किया शायरीसे उचाट हो गया और विचारोमे अभूतपूर्व परिवर्तन हो गया। परिणामस्वरूप गजल कहना तर्क कर दिया और नज्म लिखने लगे। नज्मकी ओर स्वयं ही प्रवृत्त नही हुए, अपितु १८६७ ई० मे 'अंजुमने उर्दू' नामक समिति स्थापित करके, उसके द्वारा नज्म लिखनेका खूब प्रचार किया, और वहुतसे शायरोंको इस ओर प्रेरित किया। परिणाम इसका यह हुआ कि वर्तमानमे नज्म साहित्य काफी समृद्ध वन गया है और उसपर प्रत्येक उर्दू-साहित्यिक गर्वका अनुभव करता है।

आजाद जो दिलो-दमाग लेकर उत्पन्न हुए थे, उसके लिए शायरीका सीमित क्षेत्र उपयुक्त नही था। उन्हे एक विशाल और खुले हुए मैदानकी आवश्यकता थी, जहाँ उनके मनोभाव मनमानी कुलाचे भर सकें। अतः उन्होंने जनतामे नज्मकी रुचि उत्पन्न करनेके वाद स्वयको गद्यकी ओर प्रवृत्त किया, और गद्यमें—आवेहयात, दरवारे अकवरी, निगारस्ताने फारस, सुख़नदानेफ़ारस, सैरेईरान, आदि जैसी अमर कृतियाँ देकर उर्दू-

साहित्यका मस्तक ऊँचा किया। आजादका गद्य क्या है, मालूम होता है प्रत्येक अक्षर पर मोती टाँक दिये है।

आजादकी रंगीन उर्दूका क्या कहना, एक-एक वाक्यपर दिल लहालोट होने लगता है। आपके 'आबेहयात' को पढे बगैर अब उर्दू-शायरीका इतिहास लिखा नही जा सकता। किस बाँकपन और सुघडताके साथ आपने शायरोका परिचय दिया है कि मालूम होता है हम स्वयं उनके जवाने मुबारिकसे कलाम सुन रहे है, और शाने-ब-शाने उनके साथ चल फिर रहे है। यदि आपने 'आबेहयात' न लिखा होता तो आज बहुतसे शायरोका इतिहासके पृष्ठोमे अस्तित्व नही होता। आपने आबेहयात (अमृत) पिलाकर सचमुच उन्हे अमर कर दिया है।

'आजाद' गजलगो शायर नही थे। इसीलिए हम उनके कलामका नमूना पेश नही कर रहे है। हमने आपका परिचय नज्मगोकी हैसियतसे 'शेरोशायरी' मे दे दिया है। चूँकि जौकके आप प्रसिद्ध शिष्य हुए है, इसलिए उनका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक था।

आजादके पौत्र आगामुहम्मद अशरफ भी अत्यन्त योग्य और विचारक विद्वान है। आप और हमारे अनन्य मित्र सुमत साहब एक साथ मिशन कॉलेजमे पढते रहे है। उन्हीके साथ बीसोबार हमे भी मुलाकातका शर्फ हासिल हुआ। बड़े ही जिन्दा दिल, बामज़ाक और मिलनसार है। बात-बातमे हँसीकी ऐसी भीनी-भीनी फुलझडियाँ छोडते है, ऐसा चुस्त और सुथरा फिकरा कसते है कि दिल बाग-बाग हो उठता है। एम० ए० करनेके बाद सन् १९३५-३६ मे आलइण्डिया रेडियोके प्रोग्राम डायरेक्टर रहे, फिर १९३९ मे लदन विश्व विद्यालयके हिन्दुस्तानी जबानके प्रोफेसर होकर लन्दन चले गये। फिर बी० बी० सी० वालोने आपकी खिदमात चाही तो 'चचा अशरफ' के नामसे आपने भारतीय बच्चोके लिए, बहुमूल्य लन्दन रेडियो स्टेशनसे सन्देश प्रसारित किये। वहाँ

रहकर आपने अनेक बड़े-बड़े व्यक्तियों—वादशाह, सेनापति, प्रधानमंत्री, भारतमंत्री, आदिसे मुलाकाते की और वे सब अपनी लच्छेदार भाषाका परिधान पहनाकर जनताके समक्ष पेश की। लड़ाई समाप्त होनेके वाद आप भारत आये, किन्तु भारत विभाजन होनेके वाद पाकिस्तान चले गये और वहाँ सम्भवत आपको शिक्षा विभाग सौंपा गया है।

१२ सितम्वर १९५० ई०

९३

दाग़

[सन् १८३१ से १९०५ ई० तक]

नवाब मिर्जा खाँ 'दाग' २५ मई १८३१ ई० मे दिल्लीके चाँदनी चौकमे उत्पन्न हुए। इनके पिता नवाब शम्शउद्दीन खाँ, लुहारू रियासतके अधिपति नवाव जियाउद्दीन खाँ 'नैयर' के बडे भाई थे। छः वर्षकी आयुमे ही दागके सरसे पिताका साया जाता रहा। तब इनकी माताने बहादुरशाह बादशाहके पुत्र मिर्जा मुहम्मद सुलतान उर्फ 'फखरू' से पुनर्विवाह कर लिया और 'शौकतमहल' खिताब पाया।

माँके साथ दाग भी लालकिलेमे रहने लगे। वहाँ इनको शाहजादो-के साथ शिक्षा-दीक्षा मिली। आवश्यक अरबी-फारसीका ज्ञान प्राप्त करनेके अतिरिक्त शाही ढगसे सैनिक शिक्षा और घुड़सवारी भी सीखी। उन दिनो शेरोसुखनकी महफिले खूब गरम रहती थी। गालिब, मोमिन और जौक जैसे अमर शायरोसे बज्मे अदबमे चार चाँद लगे हुए थे। क्या बादशाह, क्या रैयत, सभी इस शमये महफिलके परवाने बने हुए थे। बेगमात भी गिर्वीदा थी और शायरी करती थी[1]। तब दाग कैसे अछूते रह सकते थे? अभी १० वर्ष के होने भी न पाये थे कि इन्होने भी मुस्कराते हुए बज्मे अदबकी चौखटपर पाँव रख दिया।

इनके बाबा बादशाह 'जफर' और पिता 'फखरू' तो ज़ौकके शिष्य

१—बेगमातो, शहजादियो और अन्य महिला शायराओका परिचय 'शेरोसुखन' के किसी अन्य भागमे देनेका हमारा विचार है।

थे ही, स्वयको भी उनके शिष्य होनेका गौरव प्राप्त हुआ। बचपनसे ही शेरोशायरीके वातावरणमे रहे, और स्वयकी प्रवृत्ति भी शायराना थी। अत थोड़ेसे ही अभ्यास और परिश्रमसे शायरीमे उरूज हासिल कर लिया। अभी शायराना शवाव पूरे जौवन पर आने भी न पाया था कि १८५६ मे इनके द्वितीय पिता मिर्जा फखरूका अचानक देहान्त हो गया, और १०-११ माहके पश्चात ही १८५७ का विप्लव उठ खड़ा हुआ।

२५-२६ वर्षकी आयुमे दाग आश्रयहीन हो गये और अन्य लोगोकी तरह इन्हे भी दिल्ली छोडनी पडी। कुछ दिन विपदा झेलनेके वाद सपरिवार रामपुर पहुँच गये, और वहाँ नवाव यूसुफअलीखाँकी कृपासे सुख-शान्ति पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। प्रारम्भमे कल्ब़ अलीख़ाँ युवराजके मुसाहव नियत हुए और उनके शासनाधिकार प्राप्त कर लेनेपर अस्तवल और फराशख़ानेके दारोगा मुकर्रर हुए।

दागने २४ वर्ष रामपुरमे आदर-सत्कार पूर्वक कयाम किया। उन्होंने नवावकी कद्रदानियों और मेहर्बानियोका मुक्तकठसे अक्सर उल्लेख किया है। वे रामपुरको आरामपुर कहा करते थे।

रईसे मुस्तफा आबादके नौकर हुए जब से।
बताएँ 'दाग़' क्या, आराम हमने किस क़दर पाया॥

१८८६ ई० मे नवाव कल्वअली खाँकी मृत्युके वाद दागको रामपुर परित्याग करके पुन दिल्ली आना पड़ा। यहाँ चन्द रोज रहनेके बाद—लाहौर, अमृतसर, किशनगढ, अजमेर, आगरा, अलीगढ, मथुरा वगैरह भी गये, परतु कही भी आजीविकाका प्रवन्ध न हो सका। रात-दिन परेशानियोमे व्यतीत होते थे। कही चैनसे बैठना नसीव न होता था। १८८८ ई० मे वे हैदरावाद भी पहुँचे, परन्तु वहाँ भी सफलता न मिली और वहाँके ख़र्चसे घवराकर चन्द माहमे ही फिर दिल्ली चले आये।

दो वर्ष निरन्तर चिन्ताओमे ग्रसित रहनेके बाद भाग्योदय हुआ तो

जिस हैदराबादमे उनको किसीने न पूछा था, उसी हैदराबादके निजामका ७ अप्रेल १८८८ को निमत्रण पाकर दाग दुबारा वहाँ पहुँचे, और साढे तीन वर्ष प्रतीक्षा करनेके बाद निजाम के गुरु होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रारम्भमे ४५० रुपया मासिक वेतन नियत हुआ और तीन वर्षतक यही मिलता रहा। जिसमे प्रतीक्षाकाल भी सम्मिलित था।[१]

तीन बरसके बाद ५५० रु० वेतन वृद्धि हुई, यानी १००० रु० वेतन मिलने लगा, और इस एक हज़ारका हिसाब भी प्रतीक्षाकालसे यानी हैदराबाद पहुँचनेकी तारीख़से लगाया गया। जिसकी सख्या ४०–४१ हजारके अनुमान हुई। इस वेतन वृद्धिपर दागने यह तारीख़ कही—

---

[१]—इस प्रतीक्षा-कालकी चिन्ताओं और नौकरी मिलनेकी परेशानियो का उल्लेख 'दाग' अमीर मीनाईको पत्र लिखते हुए इस प्रकार करते है—"यार हम नौकर तो हो गये, मगर दुआ करो कि उजरा भी जल्द (काम भी शीघ्र चालू) हो। सख़्त परेशान हूँ। यह तीन बरस आख़िर उम्रके बहुत बेमजा गुजरे।... ...."

"यहाँ मुफस्सलात और सीगेजातमे गरीबुलवतन (सरकारी महकमोमे ग़ैरहैदराबादी) को नौकरी मिलनी उनका सिफत (असम्भव) है। यहाँके लोग अहले हिन्दको (उत्तरभारतके निवासियोसे तात्पर्य है। आज भी दिल्ली और यू० पी० वाले अन्य प्रान्तोमे हिन्दुस्तानी सम्बोधित किये जाते है) मिटानेपर आमादा हुए है। खुदाने हुजूर पुरनूरको मेरा कद्रदान बिलज़ात कर दिया। तीन बरसकी जॉफिशानी और दस हजारके ख़र्चके बाद यह सूरत पैदा हुई है। खुदा करे करिश्मा भी जल्द हो।..निहायत मक़रूज (ऋणग्रसित) हो गया हूँ।"

(निगार, नवम्बर १९५०)

हो गया मेरा इज़ाफ़ा आज दूनेसे सिवा।
यह करम अल्लाहका है यह इनायत शाहकी ॥
इस इज़ाफ़ेकी कहो ऐ 'दाग' यह तारीख़ तुम।
इब्तदासे अपनी साढ़े पानसौ नकदी बढ़ी ॥

थोडे दिनके वाद १५०० रु० वेतन हो गया। जो अन्तिम समयतक मिलता रहा। वेतनके अतिरिक्त इनाम-खिलअत आदि भी समय-समयपर मिलते रहे। एक गाँव भी जागीरमे मिला। नवावके कविता-गुरुके पदपर प्रतिष्ठित होनेके वाद दागको निम्न उपाधियाँ प्राप्त हुई—

जहाँउस्ताद, नवाव फसीहउलमुल्क, नाजिमयारजग दबीरुद्दौला[1]

---

[1]—इन उपाधियोके सम्बन्धमे मिर्जा 'दाग' अपने एक पत्रमे—'अमीर' मीनाईको लिखते है—

"दाग नाचीजका जो एजाज़ (आदर-सत्कार) व—इनायत इलाही यहाँ हुआ, किसी परदेशीको कहाँ नसीव? अक्सर उमरा और रऊसा मुल्की भी हनूज महरूम (परदेशी तो छोडिये यहाँके जागीरदार और धनिक भी इन उपाधियोंको प्राप्त नही कर सके) है। चुनाँचे सरूरजग, महबूबजग, अफसर जग, वगैरह-वगैरह अभी जगसे आगे नही बढे। और वहुत लोग सौ-सौ बरससे इस तमन्नामे है, बल्कि मर गये। मुझको ख़ुदावन्द आलमने एक ही वार सब ख़िताबोसे सरफराज फरमाया। ख़िताबके लिहाजसे कमोवेश एजाज़ (दरवारी मानप्रतिष्ठा) मे जरूर फर्क होता है। खसूसन दरवारके मौकेपर। मुगली दरबारमे सालहाएदराज़ (अनेक वर्षो) से वजुज़ (सिवाय) आठ-नौ सरदारोंके कोई नही बैठ सकता। वडे-वडे राजा, वडे-वडे नवाव, दस्तबस्ता (हाथ वान्धे) खड़े रहते है। मुझको ऐसे दरवारमे भी बैठनेकी इजाज़त हुई, जो महसूदे आलम (लोगोके ईर्ष्या-योग्य) होनेका वाइस हुआ। जिसको जंगका ख़िताव भी होता है, जरूर है कि उसके ख़िताबके साथ लफ्ज़ नवाव-ओ-बहादुर लिखा जाये।

मिर्जा दागकी इस प्रतिष्ठा आदिके बारेमें 'चकबस्त' लिखते हैं—

"दाग देहलवी ऐसा खुशकिस्मत शायर हिन्दोस्तानमे कम पैदा हुआ होगा। जौक मरहूम शहन्शाहे देहलवीके उस्ताद थे। मगर तीस रुपये माहवारका वजीफ़ा उनके लिए मैराजेतरक्की होकर रह गया। गालिबकी रग-रगमे आबाई रियासतका नाज़ खूनके साथ शामिल था। मगर इस आली हौसला और जिन्दादिल शायरकी जिस शकिस्ता हालीमे बसर हुई, सबपर ज़ाहिर है। आतिशके कमालपर गौर करो और फिर यह देखो कि ख़ाकके बिछौनेके सिवा बोरिया भी उसे मयस्सर न हुआ, और अक्सर इस शहन्शाहे सुख़नके तीन-तीन दिन फाकेसे गुजर गये। नासिख़ की जरूर किसी कदर फारिग उलबाली (बेफिक्री) मे गुजरी। लेकिन वह शानो शौकत उनको भी नसीब न हुई जो कस्सामेअजल (विधाता) ने 'दाग' देहलवीके लिए मख़सूस कर रक्खी थी। इस माल-ओ-दौलतके अलावा अगर शुहरतपर नजर डालो तो जो नाम आज दागका है, उसपर हर फ़रदो बशरको नाज़ हो सकता है। हिन्दोस्तानमे आज कौन शहर ऐसा है, जहाँके कूचओ बाजारमे दागकी गजले अरबावे-निशातके दिलोंको न गरमाती हो[1], और रगीन तबअ सामईनको

'दौला' और 'मुल्क' का रुतबा तो बड़ा है। अलावा मन्सबे जलीलए-उस्तादी (उस्तादीके महान प्रतिष्ठित पद) के अब मै स्टाफख़ासमे भी दाख़िल हुआ, इसकी तनख्वाह दो हजार रुपयेसे कम नही होती। लोग मुबारिकबाद दे रहे है। मै समझता हूँ कि जो कुछ मुझे मिला है, यही मेरी लियाकतसे ज्यादा है। मुझमें तो दस रुपये माहवारकी भी लियाकत नही।"

—(निगार, नवम्बर १९५० ई०)

[1]यह मजमून चकबस्त ने दागकी मृत्युके बाद तत्कालीन लिखा था। दाग के जीवनमे ऐसी ही शुहरत थी, परन्तु अब वह शुहरत कहाँ ?

(रगीन मिजाज-श्रोताश्रो) को वज्दमे न लाती (श्रात्म विभोर न कर देती) हो।"[1]

मिर्ज़ा दागके शिष्य श्रहसन माहरहरवी लिखते हैं—

"मिर्ज़ा दाग ख़ुशपोशाक, ख़ुश-ख़ुराक श्रौर ख़ुशमिजाज श्रादमी थे। नफासत श्रौर सफाईको बहुत पसन्द करते थे।..उनका दस्तरख्वान बहुत वसीश्र था। कभी तनहा नही खाते थे। चन्द शागिर्द श्रौर हाशिया नशीन श्रहबाब जरूर शरीक होते। .ख़ुश मिजाजीका यह श्रालम था कि किसी वक़्त किसीसे मज़ाक करनेमे न रुकते थे। बूढा, जवान, बच्चा, श्रौरत, मर्द, सब उनकी ज़राफत श्रौर ख़ुशमिजाजीसे लुत्फ श्रन्दोज़ होते। ..उनके श्रन्दाजे कलाम श्रौर शराबके मज़ामीनको पढ़कर श्रक्सर श्रशख़ास इस गलत फ़हमीमे मुब्तला है कि वोह शराबी थे। लेकिन राकिम श्रपनी चन्दसाला हाजिरबाशी (यह तुच्छ शिष्य कुछ वर्षोकी उपस्थिति) श्रौर रात दिनके मुशाहिदो (देखभाल) की बिनापर शाहिद (साक्षी) है कि उन्होने कभी शराबको मुँह नही लगाया। श्रकसर फर्माया करते थे कि—मै मौलवी श्रब्दुलहक श्रौर मुशी 'श्रमीर' मीनाईका ममनून हूँ कि इन दोस्तोकी बदौलत इस बलामे मुब्तिला नही होने पाया। वे श्राशिक मिजाज थे श्रौर ऐय्याश भी, मगर शराबख्वार हरगिज़ न थे। चुनॉचे ख़ुद कहते है—

गो है श्राशिक़ मिज़ाज-श्रो-शाहिद बाज़।
'दाग़' लेकिन शराब ख़्वार नहीं॥"[2]

मिर्ज़ा दाग श्रपने इष्ट-मित्रोका तो स्नेह श्रौर श्रादर-सत्कार करते ही थे। श्रपने समकालीन श्रौर प्रतिद्वन्द्वी—जलाल, श्रमीर, तसलीम,

---

[1]मज़ामीने चकबस्त, पृ० ६६
[2]मुन्तखिबेदाग—मुकदमा

ज़हीर, वग़ैरहसे भी उनके मैत्री सम्बन्ध थे। हर शायर अपनी-अपनी शायरीके जौहर दिखानेमें तो एक दूसरेसे आगे बढनेका प्रयत्न करते थे, परन्तु मित्रतामे कड़वाहट नही आने देते थे। परस्पर अत्यन्त आदर और प्रेमका व्यवहार करते थे। दागने कभी किसीकी हिजो नही कही और न अपने समकालीन शायरोसे लडे-झगड़े।

राम बाबू सक्सेना लिखते हैं—"दाग अपने ज़मानेके बहुत मशहूर शायर थे। उनकी ज़बानमे फसाहत (खुशबयानी), सादगी और बयानमे एक ख़ास किस्मकी शोख़ी और बाँकपन है। जिसकी वजहसे वोह अपने मआसरीन (समकालीन) अमीर, जलाल, तसलीम, वगैरहसे ज्यादा मशहूर हुए। उनका तर्ज़ आमपसन्द और बहुत दिलचस्प है। इसी वजहसे उनके मुतबईन (अनुयायी) कसरतसे है। मशहूर है कि उनके शागिर्दोंकी तादाद १५०० से मुतजाविज (अधिक) है। यही शुहरत व इज्जत और शागिर्दोकी कसरत उनके जौहरे ज़ाती (प्रभावशाली व्यक्तित्व) और शायराना काबलियतपर दाल है। दागने एक बाजाब्ता दफ़्तर खोल दिया था। जिसके कारकुन बाज़ उनके शागिर्द और अक्सर तनख्वाहदार मुशी भी थे। इस दफ्तरमे इसलाहेकलाम (कविता-सशोधन) का काम जारी था"।[1]

मिर्जा दागके कविता सशोधनका वर्णन उन्हीके शिष्य आगाशायर[2] देहलवीकी जबानसे सुनिये—

---

[1]तारीख़े अदबेउर्दू, पृ० ४३०

[2]इन बुजुर्गवार शायरकी ज़बाने मुबारिकसे बीसो बार मुशायरोमे ग़ज़ले सुननेका लेखकको सौभाग्य प्राप्त हुआ है। ये दिल्लीके ख्याति प्राप्त शायर थे और बर्क देहलवीके उस्ताद थे। खेद है इनका भी स्वर्ग-वास हो गया है। इनका परिचय हम दाग़के अन्य शिष्योके साथ इस पुस्तकके दूसरे भागमे देगे।

"मैं उस्तादकी खिदमतमें इस तरह हाजिर होता था जैसे गुलाम आका (स्वामी) के सामने, या गुनहगार हाकिमे वक्तके रोवरू। लरज़ता, काँपता, थर्राता और कभी वजुज़ जरूरत के (आवश्यकताके अतिरिक्त) कोई कलमा मेरी जबानसे न निकलता। जो कुछ पूछना होता पूछा, जो पूछा वह अर्ज़ किया। वाकी वक़्त ख़ामोश—और यही हाल उनका था। वे भी मुझे शेरकी निगाहसे देखते थे। मैं हाज़िर हुआ हूँ, कमरेमें कहकहे उड रहे हैं, और जहाँ मैंने अन्दर कदम रक्खा, लवे फर्श पहुँचकर आदाव वजा लाया और सवसे फर्दतर बैठ गया। अव वही मुकाम इस तरह सुन सान और खामोश था, जैसे वहाँ कोई ज़ीरूह (कोई भी प्राणी) नही। मेरी इसलाह क्या होती थी, गोया जंगेअज़ीम (महासमर) का एक अल्टीमेटम होता था। उधर हज़ार गोशवर आवाज़ (सैकडो सुननेवाले उपस्थित) इधर मैं खौफसे लरज़ाँ और लव कुश्तये मतालिव (ओठ मनकी वात कहनेमें असमर्थ), उधर उस्तादको मामूलसे ज्यादा कावशेमतलूव (आवश्यकतासे अधिक मतलवकी वात सुननेकी जल्दी), त्यौरी चढी हुई है, एक भौं माथेतक खिचकर जा पहुँचो है, और जितना वुलन्द-से-वुलन्द शेर होता था, विगड़-विगड़कर फर्माते—'आगे चलो जी' और जहाँ ज़रा-सा भी सुकम (नुक़्स) नज़र आगया वस वरस पडे, कयामत कर दी। 'यह क्या साहव! यह क्या? ज़रा फिर इनायत कीजिए। माशा अल्लाह! सुभान अल्लाह!! यह आपने लिखा है?' गरज जान छुड़ानी मुश्किल हो जाती। इस सरज़-निश (मलामत, तम्बीह) और मुआसरीन (समकालीन अन्य शिष्यो) की मौजूदगीका इस दर्जा ख़ौफ होता था कि एक-एक मिसरेपर जान लगा देनी पडती थी। तव जाकर वोह फर्माते थे कि—'आगे चलो, आगे चलो।' हाँ, अलवत्ता जिन मिसरोपर मिसरा लगाना मेरे वसका रोग न होता, वह वेशक मैं चुनकर ले जाता था, और वाज औकात उन्हीकी इसलाहमें उन्हे सख़्त काविश करनी पड़ती थी, और उन्हीं पर वे अक्सर मुनग़ज़

(अप्रसन्न) भी हो जाते थे। बार-बार पहलू बदलते । 'इधर तकिया लगाओ, फिर पढो, और फिर पढ़ो, क्या मिसरा बका है ? क्या लग्व (व्यर्थ) वन्दिश है ? यह हमारे पास इसलाह लेने थोड़े ही आते है, यह तो हमारा इम्तहान लेने आते है साहब !'

बाहरके शागिर्दोंके कलामकी इसलाह देनेकी सूरत इस तरह बयान करते है—"आप पलगड़ी पर लेटे है या गावतकियेसे लगे बैठे हैं। चारों तरफ तलामजा (शिष्यो) का झुरमुट है, और एक साहब गजलोका थब्बा (बण्डल) सामने रखे कलम हाथमे लिये एक-एक गजल पढते जाते है। हाज़रीन (उपस्थित शिष्य समूह) हर शेरको गौरसे समाअ़त फर्माते (सुनते) है, और मुनासिब मौकेपर अपनी-अपनी राय भी देते जाते है। अगर इस मशवरेसे उस्तादकी रायको भी इत्तफाक हो गया तो वही अल्फाज उस गजलमे बना दिये गये, वर्ना जो उस्तादने बतौर खुद ईमा फरमाया बजिन्सही (हू-ब-हू) वोह उस मुकामपर जड़ दिया गया। इस तरह इस्लाहकी इस्लाह हो जाती थी और आपसके तबादलए ख़यालातसे मालूमातका दायरा भी वसीअ़ हो जाता था"।[1]

दागके एक दूसरे शिष्य अहसन माहरहरवी फर्माते है—"जिस ज़मानेमे राकिम (लेखक) हैदराबाद गया और चन्दसाल मुसलसल (बराबर) ख़िदमतमे हाजिर रहा, उस जमानेमे रोजाना १५–२० गज़ले इसलाह होकर डाकमे भेजी जाती थी। इनके अलावा मुकामी शागिर्द और बाहरसे आये हुए तलामज़ा सुबहोशाम हाजिर रहते और इसलाह लिया करते।. आलाहजरत (निजाम हैदराबाद) की गजल अमूमन कोई शाही चौबदार लाता। जिसको वह ख़ुद देखते और अक्सर ख़िलवत (एकान्त) मे देखते और जल्दसे जल्द इस्लाहके बाद वापिस कर दी जाती"।[2]

---

[1]नक्दो नजर, पृ० २१२–१३; [2]मुन्तख़िबेदाग–मुकदमा।

इन संशोधनोसे तंग आकर दाग अपने पत्रमे अमीर मीनाई को लिखते है—

"आप यह जानते होगे कि दागकी मश्क बढी हुई है। 'महताबे-दाग' (दागका दीवान) को छपे दो बरसका जमाना गुज़रा। इन दो बरसमे बीस गजले कही है। क्या इसका नाम मश्क है? हर महीनेमे दो-चार नये खत वास्ते दुआए शागिर्दी (शिष्य बननेकी प्रार्थनाके) आते रहते है। दुहाई देता हूँ कि फुरसत नही, सेहत नही, नौकर हूँ, आजाद नही। मुसन्निफ अमीरूललुगात (अमीरमीनाई) के पास कलाम भिजवाओ। वे उस्ताद मुसल्लिमउलसबूत (प्रामाणिक विद्वान और श्रेष्ठ गुरु) है। कोई कमबख्त नही सुनता। गजलोसे कसीदोका नम्बर बढा, कसीदोसे दीवानका नम्बर आया। अब दीवानके दीवान चले आते है। छ महीनेके सफरमे तीन सौ गज़ले मैने बनाकर भेजी है। हजार आठसौ इस वक्त बाकी है। अगर आपको फुर्सत हो तो भेज दूँ? मगर आपके पास क्या इससे कम होगी।"[1]

दागके ख्याति प्राप्त शिष्योमेसे कुछ नाम ये है—नवाब मीर महबूब अलीखाँ 'आसफ' (निज़ाम हैदराबाद), सर 'इकबाल', नवाब 'साइल' देहलवी, 'बेख़ुद' देहलवी, आगाशायर देहलवी, अहसन माहरहरवी, 'बेख़ुद' बदायूनी, 'नूह' नारवी, 'सीमाब' अकबरावादी 'नसीम' भरतपुरी, 'जिगर' मुरादाबादी आदि।

दागके उक्त शिष्योका परिचय 'शेर-ओ-सुख़नके दूसरे भागमे दिया जायगा। दागकी ख्याति और प्रतिष्ठाके कारण अनेक ईर्षालु और आलोचक भी उनके जीवन-कालमे ही हो गये थे, और उनपर फब्तियाँ कसने और कीचड उछालने लगे थे। इन कटु आलोचनाओके निम्न तीन कारण थे—

---

[1] निगार, नवम्बर १९५०।

१—दागके शिष्यो और प्रशसकोने उनकी महत्ताका अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन करते हुए पूर्ववर्ती और समकालीन शायरोसे उन्हे श्रेष्ठ सिद्ध करनेका कुछ इस प्रकार प्रयत्न किया कि पूर्ववर्ती और समकालीन शायरोके अनुयायियोको कुछ चुनौती-सी मालूम दी। इसलिए फिर उन्होने भी नहलेपर दहला लगाना उचित समझा।

२—दागकी बढ़ती हुई कीर्ति और ख्यातिको ईर्ष्यालु सहन न कर सकनेके कारण मनमाने छीटे उड़ाने लगे।

३—कुछ ऐसे निष्पक्षपाती साहित्यिक जो दागकी शायराना हैसियत-से अवगत थे, दागकी अनावश्यक कीमत बढते देख वास्तविक मूल्य बतानेको मजबूर हुए। ताकि जनता भ्रममे न पड़ जाए।

अब हम तीनो प्रकारके आलोचकोका सक्षिप्तमे सार देनेका प्रयत्न करेगे। जहाँ दागके प्रशसक यह कहते हुए नही थकते कि दागकी कमाले-शायरीके समक्ष आतिश, नासिख़, गालिब, और मोमिन भी फीके पड़ते है। वहाँ ईर्ष्यालु यह कहनेसे बाज़ नही आते कि अमीर मीनाईके अक्सर शागिर्द दाग़से अच्छा कहते है।[1] दागके शिष्य अपने उस्तादको सदाचारी और सयमी घोषित करते है तो विरोधी 'हिजाब' वेश्याके सम्बन्धका ढिढोरा पीटते है। यदि दागके प्रशसक उनको खुशरू और खुशरग सिद्ध करते है तो विरोधी जवाबमे स्वय दागका यह मिसरा पेश करते है—

"जिसे दाग़ कहते है दोस्तो! इसी रूसियाहका नाम है।"

जब दाग़के अनुयायी कहते है कि रामपुरमे जो कद्र दागकी हुई, वह किसीकी न हुई, तब ईर्ष्यालु जवाब देते है कि दाग रामपुरमे सिर्फ ५० रु० माहवारपर अस्तबलके दारोगा थे, और पुष्टिमे किसी बेअदबका यह शेर पेश करते है—

---

[1]मजामीने चकबस्त, पृ० ६८।

आया दिल्लीसे एक नया मुश्की।
आते ही अस्तबलमें दाग हुआ॥

दागके भक्त कहते हैं कि रामपुरके मुशायरोंमें जब दाग गजल पढ़ चुकते थे तो आधे लोग उठ जाते थे और मुशायरा बर्खास्त होनेपर हजरत अमीर आड़में खड़े होकर यह देखते थे कि लोगोंकी जबानपर किसका शेर है, तो अक्सर दाग़का ही शेर ज़बानज़द पाते थे। विरोधी इसकी काट इस बेरहमीसे करते हैं कि—'गुलजारे दाग़' जो उनकी श्रेष्ठ रचना है, उनकी अपनी कृति नहीं है। अपितु उसका श्रेष्ठ अंश जौक का कहा हुआ है और असीर अमीरने उसका संशोधन किया है। दाग़ दूसरोंके कलामकी बदौलत प्रसिद्ध हैं।[1] इसी प्रकार दागकी जबानपर, महावरोंपर उपमाओं और बन्दिशोंपर, पक्ष-विपक्षकी ओरसे बहुत कुछ कहा गया है।

दागकी शायरी

दागके शिष्य अहसन माहरहरवी लिखते हैं—

"दाग न सूफी थे, न मुफ़्ती। सिर्फ एक शायर थे और शायर भी गजलके और गजल भी ऐसी जिसमें शोखी शरारत, जलीकटी, ताने, रश्क, बदगुमानी, छेड़-छाड़, लाग-डाट, छीन-झपट, और उरियानीके सिवा-कुछ नहीं। कहा जाता है कि उनकी शायरी ऐय्याशाना शायरी है, उनकी जबान बाज़ारी जबान है, उनका बयान आमयाना (सर्वसाधारणके अनुकूल) बयान है, और उनके अशआरसे वे बुलन्द जज्बात (भाव) जोशमें नहीं आते, जिनका ताल्लुक हुस्नोइश्कके आला मफहूमसे है। बल्कि उनका कलाम उस नफसयाती ख्वाहिश (इन्द्रिय विषय वासनाओं) को बरअंगेख्ता (प्रज्वलित) करता है, जो महज़ हैवानी जज़्बात (केवल पशु-भावों) से वाबिस्ता (सम्बधित) है। दाग का माशूक बाज़ारी

[1] मजामीने चकबस्त, पृ० १०१।

माशूक है, और दाग़के नजदीक इश्क, नफ्स परस्ती (काम-लोलुपता) का दूसरा नाम है।"[१]

अहसन माहरहरवी साहबने आलोचकोका उक्त मत देनेके बाद चन्द सम्मतियाँ दाग़के पक्षमे लिखकर उक्त दागोको दामने दाग़से धोनेका प्रयत्न किया है, किन्तु ईमानकी बात तो ये है कि उनके चारो दीवान इन्ही ख़यालातोसे भरे पडे है। चन्द शेर बतौर नमूना पेश किये जाते है—

हरजाई और बाजारी माशूक—

है मुझको खबर रातको जो तेरे करी था।
मैं गर्चे न था पास, मगर दिल तो वही था॥

छुपकर कहाँ गये थे वोह शबको कि मेरे घर।
सौ बार उनका आके निगहबान फिर गया॥

तुम्हारा घर, तुम्हारा घर नहीं, मेहमान हो गोया।
कहीं है दख़्ल दुश्मनका, कहीं क़ब्जा है दरबॉका॥

तुम पारसा सही, मगर इतना तो सोच लो।
कुछ देख ही लिया था जो दिल बदगुमॉ है अब॥

आज क्या है जो निकलवाये गये घरसे रकीब।
और दरबानोंके फिकवा दिये बिस्तर बाहर॥

इलाही क्यो नहीं उठती क़यामत माजरा क्या है?
हमारे सामने पहलूमें वोह दुश्मनके बैठे है॥

खुमार आलूदा आँखें, बल जबीं पर, दर्द है सरमे।
रहे तुम रात भर बेचैन किस कम्बख्तके घरमे?

---

[१]—मुन्तख़िबे दाग़-मुकदमा।

खु़श हूँ मैं जबसे सुना है वोह हुए हरजाई ।
मेरे घर देखिये किस रोज करम करते हैं ॥

गैरके मिलनेसे दुनियाँमे हुई बदनामी ।
तुमने आलममें बड़ा नाम उछाला अपना ॥

यह सुना है कि अब वोह हरजाई ।
सुबह आता है शामका निकला ॥

उसके तो निगहबान मजे लूट रहे हैं ।
तनहा नही आता, कभी तनहा नहीं जाता ॥

घरसे निकलें न कभी पूछ न ले वोह जब तक ।
जमा दस-बीस खरीदार हुए है कि नही ॥

आपकी बज्म मुहब्बतकी अदालत ठहरी ।
रोज़ दो-चारके इजहार हुआ करते है ॥

कहाँ थे रातको हमसे जरा निगाह मिले ।
तलाशमे हो कि झूठा कोई गवाह मिले ॥

दागका माशूक तो बाज़ारी एव हरजाई है ही, खुद भी कुछ कम हरजाई नही । वे अन्य उर्दू शायरोकी तरह किसी एक पर ही जान फिदा नही करते, अपितु भौंरेकी तरह लोलुप नज़र आते है—

अच्छी सूरतकी रहा करती थी अक्सर ताक-झाँक ।
रह गईं आँखे, मगर वह देखना जाता रहा ॥

इक न इक हम लगाये रखते है ।
तुम न मिलते तो दूसरा मिलता ॥

'दाग' ने देखे हज़ारों है हँसीं ।
आपने किस शख्ससे दावा किया ?

इलाही आशिक़ीमें हम बड़ी तक़दीर वाले है
सुने है खुशगुलू क्या-क्या, चुने है ख़ूबरू क्या-क्या ।।

हाय वह दिन कि मयस्सर थीं हमे रात नई ।
रोज माशूक़ नया रोज मुलाकात नई ।।

कहाँ तक उठाये यह नाजुक मिज़ाजी ।
किसी और को अब गुलामी करेंगे ।।

है तबियत भी अपनी हरजाई ।
किस जगह यह, कहाँ नही आई ?

दागके इस दागको धोनेके लिए उनके प्रशसक—मीर, दर्द, आतिश, गालिब, जैसे उच्चकोटिके शायरोके कलामसे इस तरहके उद्धरण पेश करके यह सिद्ध करते है कि यह तो उर्दू शायरीका आम रिवाज है, दाग ही ने सिर्फ़ इस कूचेमे अकेले कदम नही रक्खा है ।

दलील मुनासिब और वजनी है क्योकि उर्दू शायरोने अमरद परस्ती और विषय वासनाके बड़े घिनावने अशआर कहे है, परन्तु वे शेर उनकी शायरीके पृष्ठपर बदनुमा धब्बे है । वे इस तरहकी ऐय्याशाना शायरीके कारण प्रसिद्ध नही है । अपितु पाक और अछूती इश्किया शायरीकी वजहसे मशहूर हुए है । इश्क (प्रेम) और ऐय्याशी (विषयवासना) मे पृथ्वी-आकाशका अन्तर है । उन्होंने इश्कका वर्णन जिस ऊँचाईपर किया है, दागके यहाँ उसका अभाव है ।

चश्मे नामहरमको बर्क़ेहुस्न कर देती थी बन्द ।
दामने अस्मत तेरा आलूदगीसे पाक था ।।

—आतिश

मै ऐसे साहिबे अस्मतपरी पैकर पै आशिक़ हूँ ।
नमाजे पढ़ती है हूरे हमेशा जिसके दामन पर ।।

—जौक

हाय ! कहना वह किसी बुतका दमे नज्जारा ।
"आँख भर कर जो हमें देखे तो बस अंधा हो" ।

—दाग

वातावरणसे प्रभावित होनेपर या किसीकी फर्माइशपर अथवा मुँहका जायका बदलनेको पूर्ववर्ती शायरोने भी ऐय्याशाना शेर कहे है, परन्तु वह आटेमे नमकके समान, और इन शेरोसे उनकी कीर्तिमे कलंक ही लगा है। उन्होने न कहा होता तो उर्दू-शायरी आज इन घिनावने विचारोसे अछूती मिली होती ! परन्तु दागकी शायरी तो ऐसे ही भावोसे भरपूर है। इसलिए उनकी शायरीको लोग इश्किया शायरी न कहकर ऐय्याशाना शायरी कहते है। चकबस्त दागपर आलोचना करते हुए लिखते है—

"अक्सर हजरात फर्माते है कि दागका कलाम दिलमे चुटकी लेता है, यह बात आतिश, जौक और ग़ालिब वगैरहको नसीब नही। मगर इन हजरातको यह खयाल कर लेना चाहिए कि दागका कलाम किस किस्मकी चुटकी लेता है। यानी किस किस्मकी तासीर पैदा करता है ? अगर कोई हसीन व हयापरवर सूरत नजर आये या किसी शादाव चमन या दिलफरेव मज़रकी सैर नसीब हो तो इन्सानके दिलको एक रूहानी सरूर हासिल होता है। इसका नाम भी तासीर है, और मै कहूँगा कि ज़ौक आतिश, वगैरहकी शायरी इसी किस्मकी तासीरसे मालामाल है। वरक्स इसके, अगर कोई चरवाँक औरत बाँका दुपट्टा ओढकर सामनेसे निकल जाये, तव भी दिलमे एक खास कैफियत पैदा होती है। इसको भी तासीर कहेगे। दागका कलाम सुननेसे इसी क़िस्मकी तासीर दिलमे पैदा होती है—

दर्दे दिलके वास्ते पैदा किया इन्सानको।
वर्ना ताअ़तके लिए कर्रोबयाँ कुछ कम न थे॥

—ज़ौक

ज़ौकका यह ख़याल कि इन्सान दर्दे दिलके वास्ते पैदा हुआ है, यानी ग़ैरोंसे हमदर्दी पैदा करनेके लिए। न कि महज अपने भलेके लिए इबादत करनेको। यह वोह पाकीजा खयाल है जिसको तहज़ीबे इन्सानीका मियार (मानव सभ्यताका आदर्श) समझना चाहिए, और चूँकि यह ख़याल इस शेरमें शायराना लताफतके साथ नज़्म किया गया है, लिहाजा इसके पढने-सुननेसे बुलन्द-हिम्मती और हमदर्दीके जज्बातेआली जोशमें आते हैं। दागने भी इसी तर्जका एक शेर कहा है—

पिन्दे वाइज सुनते-सुनते कान अपने भर गये।
क्या इबादत को हमीं हें, सब फ़रिश्ते मर गये॥

इस शेरका मफ़हूम यह है कि हम क्यों इबादत करने लगें? यह काम तो फ़रिश्तोंका है। अन्दाजे बयानमें एक जरीफाना शोखी है, जो दिलमें चुटकी जरूर लेती है। मगर किसी जज्बये आलीको जोशमें नहीं लाती। वोह बात कहाँ?'''

दागका प्रतिद्वन्द्वी

चकबस्त लिखते हैं—"दागके मुकाबिलमें यूँ तो बहुतसे हजरात आस्तीन चढाया किये। लेकिन अगर मैदाने सुखनमें इसका कोई काबिले वकअत मुद्दई था, तो वह लखनऊका चिराग अमीर मीनाई था। गोकि अमीरको दागके बराबर शुहरत हासिल नहीं हुई थी। लेकिन ख़ास-ख़ास तबकोंमें अमीरका नाम हमेशा दागके मुकाबिलेमें लिया गया। इसमें शक नहीं कि अमीरकी मुश्किल पसन्द तबियतने अक्सर ऐसे जौहर दिखाये, जिसकी बदौलत इस पहलवाने सुखनको जमानेसे उस्तादीकी सनद मिली। लेकिन अमीरकी तबियतको शायरीसे वह अजली (कुदरती) मुनासबत नहीं है, जो दागका हिस्सा है। यह जरूर है कि दागका

---

[1]मजामीने चकबस्त, पृ० ७६–७७।

मजाके सुखन आला दर्जेका नही है । लेकिन उसके कुदरती शायर होनेमे कलाम नही । यह और बात है कि उसकी निगाह बुलन्द-बीनी (उच्च दृष्टि) के एवज माइल ब-पस्ती (गिरी हुई) हो और कुदरतके वसीअ मैदानसे कतअ नजर करके एक खास दायरे तक महदूद हो । मगर इसमे कोई इन्कार नही कर सकता कि यह निगाह शायरकी निगाह है । दागके सीनेमे शायरीकी आग रोशन है । लिहाजा उसका कलाम गरमिये तासीरसे मालामाल है । अमीरका कलाम इस कैफियतसे खाली है । उनकी शायरी मसनूई (बनावटी) शायरी है । उन्होने शायरीको मश्क (अभ्यास) के जरिये हासिल किया है । वोह अस्ल जौहरे शायरी, जो कुदरती शायर अपने साथ लेकर पैदा होता है, अमीरकी तबियतका हिस्सा नही । यही वजह है कि दागके अन्दाजे कलाममे जो पुख्तगी है, उसका निशान अमीरके तर्जेसुखनमे नही मिलता । दागका कलाम शुरूसे आखिर तक उसकी तबियतके कुदरती रगमे डूबा हुआ है । इसका शेर जबाने हालसे पुकारकर कहता है कि मै दागका शेर हूँ । वह किसीका मुकल्लद (अनुयायी, नकलची) नही है । वोह एक खास तर्जका मालिक है । जिसको एक हदतक उसीकी ईजाद समझना चाहिए । अमीरके साथ किसी तर्जेखासको खसूसियत नही है । उनके दो दीवान है और दो रगके । 'मरातुलगैब' मे मीर-ओ-नासिखकी शायरीका उतरा हुआ चेहरा नजर आता है और 'सनमखानये इश्क' मे कदीमी मतानत (पुरानी सजीदगी) को बालायेताक रखकर दागकी शोखीका चर्बा (प्रतिलिपि) उतारनेकी कोशिश की गई है । अमीरके कलामकी दो रगी इस बातकी शाहिद (साक्षी) है कि उनकी तबियत कुदरती तौर पर शायराना वाकअ नही हुई थी । क्योकि असली शायर अपनी तबियतका रग नही बदल सकता ''[१]

---

[१]—मजामीने चकबस्त, पृ० ९०–९१ ।

दागके—गुलजारेदाग, आफताबेदाग, महताबेदाग, यादगारेदाग चार दीवान हैं। जिनमे १६१६२ शेर गजलोंके है। उनमे बहुत अधिक अश्लील और चूमा-चाटीके है। दागका माशूक बाजारी और खुदका इश्क भी बाजारी है। दागका माशूक कसाइयोका सिरमौर, धोकेबाजोका उस्ताद, बेअदबोका मास्टर मालूम होता है। उसकी शायरी जुरअत जैसी चुम्बन, कघी-चोटीकी शायरीसे ओत-प्रोत है। आटेमे नमककी तरह इस प्रकारके भी सुभाषित कही-कही नजर आते है—

आशिकीसे मिलेगा ऐ जाहिद !
बन्दगीसे नही खुदा मिलता ॥

तकलीदसे जाहिदकी हासिल हमे क्या होता ?
इन्साँ न मलिक बनता, बन्दा न खुदा होता ॥

यह तीरह खाकदां भी है काजलकी कोठरी।
आया जो रूसपेद यहाँ, रूसियह गया ॥

न बदले आदमी जन्नतसे भी बैतुलहज्न अपना।
कि अपना घर है अपना, और है अपना वतन अपना ॥

मौतसे गाफिल न रहना चाहिए।
देखो इस सैयादकी है ताक क्या ॥

यह काम नही आसां इन्सानको, मुश्किल है।
दुनियामें भला होना, दुनियाका भला करना ॥

अल्लाहका घर काबेको कहते है व लेकिन।
देता है पता और वोह मिलता है कहीं और ॥

फलक देता है जिनको ऐश उनको गम भी होते है।
जहाँ बजते है नक्कारे वहाँ मातम भी होते है ॥

गर फरिश्तावश हुआ कोई तो क्या ?
आदमीयत चाहिए इन्सान में ॥

वोह आदमी कहाँ है वोह इन्सान है कहाँ ।
जो दोस्तका हो दोस्त उदूका उदू न हो ॥

दिल दे तो इस मिजाजका परवर्दिगार दे ।
जो रंजकी घड़ी भी खुशीसे गुजार दे ॥

हौसला चाहिए इन्सानको पाये जो उरूज ।
पस्त हिम्मतको बुलन्दी भी जो है पस्ती है ॥

न इतराइये, देर लगती है क्या ?
जमानेको करवट बदलते हुए ॥

गुरबतके रंज, फ़ाकाकशीके मलाल खींच ।
ऐ दाग ! पर जमानेसे दस्ते सवाल खींच ॥

ख़ूबियाँ लाख किसीमे हो तो जाहिर न करें ।
लोग करते हैं बुरी बातका चर्चा कैसा ?

क्या गजब है कि नही इन्सांको इन्सानकी क़द्र ।
हर फ़रिश्तेको यह हसरत है कि इन्सां होता ॥

गुज़र गये है जो दिन फिर न आयेंगे हरगिज़ ।
कि एक चाल फ़लक हर बरस नहीं चलता ॥

कहा गुंचेसे मुरझाकर यह गुलने ।
"हमेशा कब रहा जोबन किसीका" ॥

दागकी ज़बान देहलीकी टकसाली ज़बान है। उन्होने अरबी-फारसीके कठिन शब्दों और दुरुह उपमाओ अलकारोसे बचनेका सफल प्रयत्न किया है। उनकी जबान खालिस उर्दू है, फर्माते हैं--

कहते हैं उसे ज़बाने उर्दू ।
जिसमे न हो रंग फ़ारसीका ।।

नही खेल ऐ 'दाग' यारोसे कहदो ।
कि आती है उर्दू जबाँ आते-आते ।।

उर्दू है जिसका माम, हमी जानते है 'दाग' ।
सारे जहाँ मे धूम हमारी जबाँकी है ।।

अब हम दागके १६, १२० शेरोंमे-से कुछ नमूने पेश करते है—

निगह पटके ही देती है, तो दिल फेंके ही देता है।
तुम्हारे घर ठिकाना कौन-सा हम बेसहारों का ?

दुश्मनके आगे सर न झुकेगा किसी तरह।
यह आस्माँ जमींसे मिलाया न जायगा ॥
ऐ 'दाग' ! तुमको रिज्ककी ख्वाहिश है चर्खसे।
इतना यह गम खिलायगा, खाया न जायगा ॥

आलमर्गें एक तू नजर आया नजर फरेब !
आलम तमाम अपनी नजरसे निकल गया ॥
काहीदगीने फेंक दिया दूर इस क़दर।
कोसों मैं आप अपनी नजरसे निकल गया ॥

न रोना है तरीकेका न हँसना है सलीकेका।
परेशानीमें कोई काम जीसे हो नही सकता ॥

रूपोश हुआ सुनते ही पैग़ाम हमारा।
ढूँढ़े कोई कासिदको, अभी तक तो यहीं था ॥

जान जाती दिखाई देती है।
उनका आना नजर नहीं आता ॥
इश्क़ दर परदा फूँकता है आग।
यह जलाना नजर नहीं आता ॥

तेरी उल्फ़तकी चिंगारीने जालिम इक जहाँ फूँका।
इधर चमकी उधर सुलगी यहाँ फूँका वहाँ फूँका ॥

ग़ैरके साथ दिलमें भी देखा।
कभी तनहा नजर नही आता॥

मुझसे वहतर मेरा मलाल रहा।
कि तेरे दिलमें महजमाल रहा॥

जहाँमें क्या न ढूँडा क्या न पाया।
मिजाज उनका, दमाग उनका न पाया॥
तिरी जानिब ही फिर जाती खुदाई।
मगर काफ़िर तुझे इतना न पाया॥
खुशी मिलती तो क्या मिलती अज़लमे।
ग़नीमत है कि गम थोड़ा न पाया॥
कयामतका किया है उसने वादा।
क़यामत है अगर तनहा न पाया॥

देखा है मयकदेमे जो, ऐ शेख़! कुछ न पूछ।
ईमानकी तो ये है कि ईमान तो गया॥

मुझ-से मयकशको कहाँ सब्र कहाँकी तौबा।
ले लिया दौड़के जब सामने साग़र आया॥
ग़ैरके रूपमें भेजा है जलानेको मेरे।
नामावर उनका नया भेस बदलकर आया॥

क्या कहूँ तेरे तग़ाफ़ुलने, हयाने क्या किया।
इस अदाने क्या किया और उस अदाने क्या किया।

कहा ज़ालिमने मेरा हाल सुनकर—
"वोह इस जीनेसे मरजाये तो अच्छा"॥

गिरियेने एक दममें बना दी वह घरकी शक्ल।
मेरी नज़रमें साफ़ बयाबान फिर गया।
लाये थे कुए यारसे हम 'दाग' को अभी।
लो उसकी मौत आई, वोह नादान फिर गया॥

हम तो उस मुद्दआके कायल हैं।
जो ज़बाँसे निकल नही सकता॥

सुन-सुनके तेरे इश्क़में अग़ियारके ताने।
मेरा ही कलेजा है कि मैं कुछ नहीं कहता॥
ख़तमें मुझे अव्वल तो सुनाई हैं हज़ारों।
आख़िरमें यह लिखा है कि मै कुछ नहीं कहता॥
तुमको यही शायाँ है कि तुम देते हो दुश्नाम।
मुझको यही ज़ेबा है कि मैं कुछ नहीं कहता॥

दुनियामें मज़ा इश्क़से बहतर नही होता।
यह ज़ायक़ा वोह है कि मयस्सर नही होता॥
बेदाद तेरी देखके यह हाल हुआ है।
आशिक़ कोई दुनियामें किसीपर नही होता॥

उनकी शुहरत भी मिटी जाती है।
कुछ ठिकाना मेरी रुसवाईका?

न मयस्सर हुई कहीं खिलवत।
कुछ हमें भी कलाम करना था॥

गज़ब किया तेरे वादेका एतबार किया।
तमाम रात क़यामतका इन्तज़ार किया॥

यूँ आँख उनकी करके इशारा पलट गई।
गोया कि लबसे होके कुछ इरशाद रह गया॥

नासहका दिल चला था हमारी तरफ़ मगर।
उलफ़तकी देख-देखके उफ़्ताद रह गया॥
हैं तेरे दिलमें सबके ठिकाने बुरे-भले।
मैं खानुमाँ खराब ही बर्बाद रह गया॥

देखना हश्रमें जब तुमपै मचल जाऊँगा।
मैं भी क्या वादा तुम्हारा हूँ कि टल जाऊँगा॥

तेरे वादेपर सितमगर अभी और सब्र करते।
अगर अपनी जिन्दगीका हमें एतबार होता॥

नामावर कहता है मुझको क्या करामत है तुम्हें।
जो वोह लिखते वह भी तुमने खतमें लिखकर रख दिया॥
जिबह करते ही मुझे कातिलने धोये अपने हाथ।
और खूँ आलूदा खंजर गैरके घर रख दिया॥
शामने ही लोटना है मुझको अंगारों पै आज।
इसलिए मैंने अलग तह करके बिस्तर रख दिया॥

मेरे सवालके मानी वोह मुझसे कह देते।
मगर सवालका मेरे कोई जवाब न था॥
हज़ारों परदेमें मुश्ताक़ देख लेते है।
उसे हिजाब था मूसाको तो हिजाब न था॥
पयाम्बर! तुझे लाखों सवाल करने थे।
न था हज़ारमें इक बातका जवाब न था॥
अगर्चे वादाकशी थी गुनाह ऐ ज़ाहिद!
जो तुमसे छीनकर पीता तो कुछ अजाब न था॥
सुना कलाम जो रिन्दोंका शेख़ घबराया।
वहाँ तो बातका छींटा भी बेशराब न था॥

ले लिया हाथोंमें मुझको देखकर बेअख़्तियार।
आज उनका पासबाँ मेरा निगहबाँ हो गया॥

चुप रहेंगे हयासे वे कबतक ?
गुस्सा इलज़ामसे तो आयेगा॥

ऐ 'दाग़' ! क्या बताएँ मुहब्बतमें क्या हुआ ?
बैठे बिठाये जानको आज़ार हो गया॥

ग़श आजाता है उसको आँखसे जब आँख मिलती है।
निगहबाँ और पैदा कीजिए अपने निगहबाँका॥

अदममें ले गया मुझको फ़रिश्ता, मैं यह समझा था।
बुलानेको कोई आया है मुझको आदमी वाँ का॥

कुछ तो है आराम उस कूचेमें हम जो जा रहे।
वर्ना क्या रहनेको अपने, अपना काशाना न था ?

मर गये हम तो वज़अ़दारीमे।
दोस्तीके निबाहने मारा॥

ईमान कुछ बज़ू तो नही है जो टूट जाय।
ऐ शेख़ ! क्या हुआ जो मै तौबाशिकन हुआ॥

रोज़ जाता हूँ नये रूपसे उसके दर पर।
रोज़ रखता हूँ नया नाम बदलकर अपना॥

मै बदगुमान उससे जियादा ख़ुदाकी शान।
है ऐतबार उसको मेरे ऐतबारका॥

निकली पयाम्बरकी ज़बाँसे न कोई बात।
कमबख़्त उसके सामने थम होके रह गया॥

दिल चुराकर आप तो बैठे हुए हैं चैनसे।
ढूँड़ने वालेसे पूछे कोई, क्या जाता रहा॥

बुतोंने होश सम्भाला जहाँ शऊर आया।
बड़े दमाग़, बड़े नाज़से ग़रूर अया॥
उसे हया इधर आई, उधर गरूर आया।
मेरे जनाज़ेके हमराह दूर-दूर आया॥

दुआ माँगलो तुम भी अपनी ज़बाँसे।
कि "पूरा हो जो मुद्दआ है किसीका"॥
मिरी इल्तजापर बिगड़कर वोह बोले—
"नही मानते! इसमे क्या है किसीका?"
सुना करते हैं छेड़कर गालियाँ हम।
वगर्ना कोई सर फिरा है किसीका?

यूँ हो गई निजात, यह तदबीर बन पड़ी।
नासेहको हमने गैरके पीछे लगा दिया॥
इन्सान जानते तो न लिखते वोह यह जवाब।
क्या जाने नामावरने मुझे क्या बता दिया॥

फिर बुलाया फिर कहा कुछ, फिर उसे रुखसत किया।
नामावर जब हसरतोंका मेरी दफ़्तर ले चला॥

ख़तकी लूँ नक़्ल कि क़ासिदकी उतारूँ तसवीर।
यह भी गुम होगा मेरा नामा भी खो जायेगा॥
वस्लके बाबमे की अर्ज तो हँसकर बोले—
"क्यों मरे जाते हो, हो जायेगा, हो जायेगा"॥

बुराईमें भी होगा कोई मतलब।
वे करते जिक्र क्यों बेकार मेरा॥
मुझे कोसे बलासे गालियाँ दें।
मगर वोह नाम लें हर बार मेरा॥

क़यामत है सुनें वोह सर भुकाये ।
खुदाके सामने इजहार मेरा ॥

इन्कार तो करते हो मगर यह भी समझ लो ।
बे वजह किसीसे कोई साइल नही होता ॥

मेरे ही दमसे जिन्दा है आज़ार इश्कका ।
मै मर गया अगर तो यह आज़ार मर गया ॥

तरीका खूब है यह उम्रके बढ़ानेका ।
कि मुन्तज़िर रहूँ ताहश्र उनके आनेका ॥
चढ़ाओ फूल मेरी कब्रपर जो आये हो ।
कि अब ज़माना गया तेवरी चढ़ानेका ॥
समाएँ अपनी निगाहोंमें ऐसे-वैसे क्या ?
रकीब ही सही, हो आदमी ठिकानेका ॥

ऐ काश ! अब हम ठोकरें खाकर ही सम्भलते ।
सर मिलते है उस कूचेमें पत्थर नही मिलता ॥

शौक ऐसा कि तेरी राहमें मरकर भी चलूँ ।
ज़ौफ ऐसा कि नहीं जानसे जाया जाता ॥

नामाबर देखके तेवर उन्हें खत देना था ।
बातो-बातोमें फकत काम निकाला होता ॥

दिए जा ऐ फ़लक ! पूरा ही आज़ार ।
न हो क़िस्मतसे कम हिस्सा हमारा ॥
तेरे आलमको जबसे हमने देखा ।
तमाशाई है इक आलम हमारा ॥

अपने दिलको भी बताऊँ न ठिकाना तेरा ।
सबने जाना, जो पता एकने जाना तेरा ॥

इस सलीकेकी अदावत कहीं देखी न सुनी ।
तू ज़मानेका उदू, दोस्त ज़माना तेरा ॥

क़िस्मत उसकी है कि जिसने उसे पाया तनहा ।
ख़्वाबमें भी तो न आया मेरे डरसे तनहा ॥
साथ लाकर वोह रकीबोंको यह फ़र्माते हैं ।
"क्या सबब था जो मुझे तूने बुलाया तनहा ?"

जब यह सुना कि 'दाग' का आजार कम हुआ ।
जानू पै हाथ मारके बोले "सितम हुआ" ॥
अफसोस है रकीबने की आपसे दगा ।
मुझको भी रंज आपके सरकी कसम हुआ ॥

यह मैं हज़ार जगह हश्रमें पुकार आया ।
कि "और भी कोई मुझ-सा गुनाहगार आया" ॥
जो वजह देरकी पूछी कहा ये क़ासिदने—
"गुज़ारने थे मुसीबतके दिन, गुजार आया" ॥
उड़ाये हैं मलिकुल्मौतने भी तेरे ढंग ।
हजार बार बुलाया तो एक बार आया ॥
खुदाके वास्ते झूठी न खाइये क़समें ।
मुझे यकीन हुआ, मुझको एतबार आया ॥

तौबाके बाद भी खाली-खाली ।
कोई साग़र नहीं देखा जाता ॥
मुख़्तसर ये है कि अब 'दाग' का हाल ।
बन्दापरवर नहीं देखा जाता ॥

दोस्तोंसे तो कुछ न निकला काम ।
कोई दुश्मन ही कामका मिलता ।।

सुनकर फ़साना क़ैसका जालिमने यह कहा —
"आशिक खराबखस्ता रहे पेश्तर भी क्या ?"

तग़ाफुलसे बढ़कर भी क्या और होगा ?
सितम हो चुका या अभी और होगा ?
न आशिकको शिकवा न माशूक सरकश ।
इलाही वोह-क्या अहद क्या दौर होगा ?

तुम्हारे खतमे नया इक सलाम किसका था ?
न था रकीव तो आखिर वह नाम किसका था ?
वोह कत्ल करके मुझे हर किसीसे पूछते हैं—
"यह काम किसने किया है, यह काम किसका था ?"
"वफा करेंगे, निबाहेंगे, बात मानेंगे—"
तुम्हें भी याद है कुछ, यह कलाम किसका था ?

शिकायत सुनो आज क्या-क्या तिरी ।
कि दुश्मन मुझे अपने घर ले गया ।।

हो गई चूक हमसे ऐ नासेह !
तुझको अपना पयाम्बर न किया ।।

बिगड़के जाएँ तो नादान बनके आएँ हम ।
कि है रवा उन्हें दुश्मनको दोस्त कर लेना ।।
अबस निबाहके वादेसे तुम तो डरते हो ।
यह कौन बात है इक दिन बिगाड़ कर लेना ।।
हमें तो शौक़ है बेपरदा तुमको देखेंगे ।
तुम्हें है शर्म तो आँखों पै हाथ धर लेना ।।

गुलशनमें तेरे लबोंने गोया ।
रस चूस लिया कली-कलीका ।।

न सीधी चाल चलते हैं न सीधी बात करते हैं ।
दिखाते हैं वोह कमजोरोंको तनकर बाँकपन अपना ।।

दुश्नामकी भी आपसे किसको उम्मीद थी ।
हमने तो इसपै सब्र किया जो अता हुआ ।।

ऐसे नशेके क्यों न हो क़ुरबान ।
हाथ उनका मेरी कमरमें पड़ा ।।
नामावरका तो कुछ पता न मिला ।
नामा पाया है रहगुजरमें पड़ा ।।

खुदाके वास्ते करलो मुआमला दिलका ।
कि घरके घर ही में हो जाय फैसला दिलका ।।
शबाब आते ही ऐ काश मौत भी आती ।
उभारता है इसी सिनमें वलवला दिलका ।।

इधर देख लेना उधर देख लेना ।
कनखियोंसे उसको मगर देख लेना ।।
कहीं ऐसे बिगड़े सँवरते भी देखे ।
न आएँगे वोह राहपर देख लेना ।।
तगाफुलमें शोख़ी निराली अदा थी ।
गजब था वोह मुँह फेरकर देख लेना ।।

अपनी तसवीर वोह खिंचवाये यह मुमकिन ही नहीं ।
जिसने आईनेमें भी अक्स न डाला अपना ।।
खाक किस-किसकी खुदा जाने हुई दामनगीर ।
तुमने चलते हुए दामन न सम्भाला अपना ।।

वस्लकी उनसे हो गई उम्मीद।
सिलसिला जब कलामका निकला॥
गालियाँ सुनते हैं दुआ देकर।
खूब पहलू कलामका निकला॥

आक़बत पाक है मयख्वारकी, सुन रख जाहिद!
यह तो मयखानेसे अल्लाहके घर जायेगा॥

हँसी आती है अपने रोनेपर।
और रोना है जग हँसाईका॥

तुझे नामावर क़सम है यूँही दिनसे रात करना।
कोई एक बात पूछे तू हजार बात करना॥
नही और खौफ़ क़ासिद! मगर एक बात करना।
जो रकीब भी वहाँ हो, बहुत इल्तफात करना॥

सुनता हूँ कि नासहकी जबाँ बन्द हुई है।
हर रोजकी झक-झकसे मेरा नाकमें दम था॥

जाके पी आये वहाँ, आते ही तौबा करली।
इस क़दर दूर है मस्जिदसे खराबात ही क्या॥

बेकार मुफ़्त खाक उड़ाती फिरी सबा।
गोशा उलट दिया, न किसीकी नक़ाबका॥
साक़ी तो मुझको चाट लगाकर अलग हुआ।
धो-धोके पी रहा हूँ पियाला शराबका॥
रोजा रखें, नमाज पढ़ें, हज अदा करें।
अल्लाह यह सवाब भी है किस अजाबका॥
जब मै करूँ सवाल तो कहते है "चुप रहो"
क्या बात है! जवाब नही इस जवाबका!!

खुशबू वही, वही है नज़ाकत, वही है रंग।
माशूक क्या है फूल है तू भी गुलाबका॥

आस्माँ दूरसे करता है तुझे झुकके सलाम।
कोई तुझ-सा सितम ईजाद न देखा न सुना॥

नाज़ ये है न किया क़तअ़ ताल्लुक हमने।
वोह जताते है जफा करके भी अहसां उल्टा॥

बेड़िया डालके गर दफ़्न न करते अहबाब।
ऐ जुनूं! लाशा मेरा क़ब्रके अन्दर फिरता॥

गया काफ़िला छोड़के मुझको तनहा।
ज़रा मेरे आनेका रस्ता न देखा॥

यह भी है नई उनको नज़ाकतकी शिकायत।
कहते है—"तेरे दिलको सताया नहीं जाता"॥

आता है अब तो ज़ौफ़में आँसू भी इस तरह।
जैसे मुसाफ़िर आये थका माँदा राहका॥

परी हो, हूर हो, यूसुफ़ हो, आख़िर क्या कहे तुमको।
किसीको हुस्नपर अपने गरूर ऐसा नहीं होता॥

ग़ैरकी शक्ल दिखाई न ख़ुदाने मुझको।
शुक्र है आज उसे ख़्वाबमें तनहा देखा॥

वोह छलावा इस आनसे निकला।
"अल अमाँ" हरज़बानसे निकला॥
आगया ग़श निगाह देखते ही।
मुद्दआ कब ज़बानसे निकला॥
वहम आते है देखिए क्या हो।
वोह अकेला मकानसे निकला॥

हम खड़े तुमसे बात करते थे।
गैर क्यों दरमियानसे निकला ?

वोह दुनिया थी कि हमको देखकर तुम मुँह छुपाते थे।
यह महशर है यहाँ आशिकसे परदा हो नहीं सकता॥
इलाही क्या क़यामतमें बनेगी दादख्वाहों पर ?
वोह फ़र्माते हैं—"क्या दावे पै दावा हो नहीं सकता ?"
पड़ा था गैरकी गर्दन मे क्या, कुछ हमसे तो कहिये।
यह कैसा दर्द है, क्यों हाथ सीधा हो नहीं सकता॥
हमे भी नामाबरके साथ जाना था, बहुत चूके।
न समझे हम कि ऐसा काम तनहा हो नहीं सकता॥

आने पाता नहीं कोई आशिक।
खूब महफ़िलका इन्तज़ाम किया॥
बात तुझसे करे तो हम जाने।
जिसने अल्लाहसे कलाम किया॥
भेजकर खत यह मुझको आया रश्क।
उसने क़ासिदसे क्यों कलाम किया॥

तुम्हारा दिल मेरे दिलके बराबर हो नहीं सकता।
वोह शीशा हो नहीं सकता, यह पत्थर हो नहीं सकता॥
जफ़ाएँ 'दाग'पर करते हैं, वोह यह भी समझते हैं।
कि ऐसा आदमी मुझको मयस्सर हो नहीं सकता॥

रूठेको मनाते हैं वोह प्यारसे यह कहकर—
"तेरी तो यह आदत है नाहक़का गिला करना"॥

आये थे अयादतके लिए गैरको लेकर।
पछताये वोह मेरा जो बुरा हाल न निकला॥

अब दमाग उनका आस्माँ पर है।
क्यों मेरे मुँहसे मुद्दआ निकला॥
'दाग' को लोग रिन्द कहते हैं।
वोह हक़ीक़तमे पारसा निकला॥

ले जाएँगे फ़रिश्ते मुझे जो अज़ाबके।
रहमत कहेगी "लाओ गुनहगार, क्या हुआ?"

गैरकी तारीफ लिक्खी सारे ख़तमें और मुझे—
यह भी लिखते है कि लिक्खो मेरे दफ़्तरका जवाब॥

क्यो कहा यह किसीसे "क्या मतलब"?
इसी कहनेसे खुल गया मतलब॥
बात पूरी नही कही मैंने।
कि वोह तर्रार ले उड़ा मतलब॥

उसको भी मेरी वजहसे है बदगुमानियाँ।
जो हमनशीं मिरा है, तेरा पासबाँ है अब॥

सलाम मैंने किया रखके हाथ सीने पर॥
वोह जानते है मुझे देखकर छुपाई चोट॥

उम्मीद यह कहती है वोह आते है ठहरजा।
है यासकी ताकीद कि दुनियासे गुज़र आज॥

ऐ बेख़ुदी! वोह आएँ तो मै होशसे न आऊँ।
वोह भी तो मेरी तरह करें इन्तज़ार आज॥

कहते है जब वो मुझसे—"तुझे हम करेंगे कत्ल"
कहता हूँ हाथ बान्धके "जो आपकी सलाह"॥

आँसू गिरा जो आँखसे तक़दीरने कहा—
"मिलते है देख ख़ाकमे यूँ आबरू पसन्द"॥

दरबानके झगड़ेने बड़ा काम निकाला।
घबराके वोह निकले इसी तदबीरसे बाहर॥

नहीं है होशसे खाली हमारी बेहोशी।
कि बेखुदीमें गिरे भी जो हम तो सागर पर॥

मेरे दिलको बातोंमें बहलाये रखना।
कयामत करेगा यह फ़ित्ना मचलकर॥

मुहतसिब! तोड़के शीशा न बहा मुफ़्त शराब।
अरे कमबख़्त! छिड़कदे इसे मयख्वारो पर॥

मेरे दिलको देखकर, मेरी वफाको देखकर।
बन्दापरवर मुन्सिफी करना खुदाको देखकर॥
दिलरुबा है शर्म भी, शोखी भी, दिल किस-किसको दूँ!
इस अदाको देखकर या उस अदाको देखकर॥

मुझसे कहते हैं कि पहचानो यह खत।
हाथ रखकर वोह उदूके नाम पर॥

दिल्लीसे चलो 'दाग़' करो सैर दकनकी।
गौहरकी हुई कद्र समन्दरसे निकलकर॥

दिल मर गया है जबसे हमारा यह हाल है।
तारी हो जैसे सोग किसी सोगवार पर॥
पैग़ाम्बर रकीब बनें यह ख़बर न थी।
दुनियाके काम होते हैं सब एतबार पर॥

घरसे निकलो तो सही, आँखसे देखो तो सही।
उकरुबा आये हैं आशिकका जनाज़ा लेकर॥

देखते ही मुझे महफ़िलमें, उन्हें ताब कहाँ।
खुद खड़े हो गये कहते हुए "बाहर-बाहर"॥

आबाद मयकदा हो कि मस्जिद हो देखिये ।
तामीर साथ-साथ हुए दोनों पास-पास ॥

करता है सजदे हूरकी हसरतमें शेख तू ।
अल्लाहकी नहीं तुझे ऐ बेख़बर तलाश ॥

वोह नीम वादा करते ही दिलमें पलट गये ।
आधी कसम सही थी और आधी कसम ग़लत ॥

देखा न हमने रश्कसे अग़ियारकी तरफ़ ।
मुँह फेर बैठे बज्ममें दीवारकी तरफ़ ॥

"दुबारा हमको कभी भूलकर न लिखना ख़त" ।
यह शर्त है मेरे खतके जवाबमें दाखिल ॥

कै दिन हुए हैं हाथ में साग़र लिए हुए ।
किस तरह तौबा कर लें इलाही अभीसे हम ॥

खुदा करे कि न वोह आएँ फ़ातहा पढ़ने ।
तड़प-तड़पके निकल आएँगे मजारसे हम ॥

राहपर उनको लगालाए तो है बातोंमें ।
और खुल जाएँगे दो-चार मुलाकातोंमें ॥

भवें तनती है, खंजर हाथमें है, तनके बैठे हैं ।
किसीसे आज बिगड़ी है जो वह यूँ बनके बैठे हैं ॥
फ़सूं है, या दुआ है, यह मुअम्मा खुल नहीं सकता ।
वोह कुछ पढ़ते हुए आगे मेरे मदफनके बैठे हैं ॥
यह उठना-बैठना महफ़िलमें उनका रंग लाएगा ।
क़यामत बनके उट्ठेंगे भभूका बनके बैठे हैं ॥

तमाम रात वोह जागे, वोह सोयें सारे दिन ।
ख़बर है क्या उन्हें क्योंकर कटे हमारे दिन ॥

उन्होंने वादा किया आजकी शब आनेका ।
खुशी तो जब है ख़ुदा ख़ैरसे गुज़ारे दिन ॥

मैंने मरकर हिज्रमें पाई शफ़ा ।
ऐसे अच्छेका वोह मातम क्या करें ॥
एक साग़र पर है अपनी जिन्दगी ।
रफ़्ता-रफ़्ता इससे भी कम क्या करें ॥

साफ़ कब इम्तहान लेते हैं ।
वोह तो दम देके जान लेते हैं ॥
यूँ है मंज़ूर ख़ाना वीरानी ।
मोल मेरा मकान लेते है ॥
अपने बिस्मिलका सर है ज़ानू पर ।
किस मुहब्बतसे जान लेते हैं ॥
वोह झगड़ते हैं जब रक़ीबोंसे ।
बीचमें मुझको सान लेते हैं ॥

ज़मीपर पाँव नख़वतसे नहीं रखते परी पैकर ।
यह गोया इस मकाँकी दूसरी मंज़िलमें रहते हैं ॥
हमारे सायेसे बचता है हरइक बज्ममें उनकी ।
हमे देखो कि हम तनहा भरी महफ़िलमें रहते हैं ॥

यह क्या कहा कि दाग़को पहचानते नहीं ।
वोह एक ही तो शख़्स है, तुम जानते नहीं ?

क्या-क्या फ़रेब दिलको दिये इज़्तराबमें ।
उनकी तरफ़से आप लिखे ख़त जवाबमें ॥

तुमपर आशिक़ न हों तो किसपर हों ?
तुममें जो बात है वोह है किसमें ॥

गर कहा "तुम गलेसे मिल जाओ"।
मिल गया जहर कौन-सा इसमें ?

ज़बाँसे गर किया भी वादा तूने तो यकीं किसको।
निगाहें साफ कहती हैं कि देखो यूँ मुकरते हैं॥
कोई कह दे कि तुमने दिल लिया, फिर देखिये क्या-क्या
उचटते हैं, उखड़ते हैं, पलटते हैं, मुकरते हैं॥

कब किसी दरकी जिबहसाई की।
शेख़ साहब नमाज क्या जाने ?
जिनको अपनी खबर नहीं अबतक।
वोह मेरे दिलका राज क्या जानें ?
जो गुजरते हैं 'दाग'पर सदमे।
आप बन्दानवाज क्या जाने ?

क्या चोर हैं जो हमको दरबाँ तुम्हारा टोके।
कह दो कि यह तो जाने पहचाने आदमी हैं॥
नासहसे कोई कहदे कीजे कलाम ऐसा।
हज़रतको ताकि कोई यह जाने आदमी हैं॥
मैं वोह बशर कि मुझसे हर आदमीको नफरत।
तुम शमअ़ वोह कि तुमपर परवाने आदमी हैं॥

लगाके बातोंमें ले आये हम उन्हे घरतक।
हज़ार हमपै हुए गो अताब रस्तेमे॥
वोह रस्ता काटके चलते हैं इसलिए मुझसे।
कि कुछ कहे न यह खानाख़राब रस्तेमें॥

दिलमें समा गई हैं कयामतकी शोखियाँ।
दो-चार दिन रहा था किसीकी निगाहमें॥

उस तौबापर है नाज़ तुझे ज़ाहिद ! इस क़दर ।
जो टूटकर शरीक हो मेरे गुनाहमें ।।
आती है बात-बात मुझे याद बार-बार ।
कहता हूँ दौड़-दौड़के क़ासिदसे राहमें ।।

उड़ गई यूँ वफ़ा ज़मानेसे ।
कभी गोया किसीमें थी ही नहीं ।।
दिल लगी दिल्लगी नहीं नासह !
तेरे दिलको अभी लगी ही नहीं ।।

पड़ा फ़लकको अभी दिलजलोंसे काम नहीं ।
अगर न आग लगा दूँ तो 'दाग़' नाम नहीं ।।

दैरसे काबेको डरते हुए हम जाते हैं ।
देख लेता है जो कोई वहीं थम जाते हैं ।।

इन्हीं लोगोंके आनेसे तो मयख़ानेकी इज़्ज़त है ।
कदम लो शेख़के तशरीफ़ लाये बादा ख़्वारोंमें ।।

नहीं जानते इसका अंजाम क्या है ।
वोह मरना मेरा दिल्लगी जानते हैं ।।
समझता है तू 'दाग़'को रिन्द ज़ाहिद !
मगर रिन्द उसको वली जानते हैं ।।

नासहोंसे कलाम कौन करे ?
अपनी ऐसोंसे गुफ़्तगू ही नहीं ।।

ख़ुदा करे कि मज़ा इन्तज़ारका न मिटे ।
मेरे सवालका वोह दें जवाब बरसोंमें ।।

उसे लाएँ, मुझे ले जाएँ, या पैग़ाम पहुँचाएँ ।
यह क्या करते हैं सब बैठे हुए ग़मख़्वार पहलूमें ।।

नजर चुराके वोह यूँ हर बशरको देखते हैं।
किसीको यह नही साबित किधरको देखते हैं॥
तुम्हारे पास कही भूलकर न आया हो।
हमें तलाश है हम नामाबरको देखते हैं॥
हमे गुमान यह होता है, हमको रोता है।
किसी जगह जो किसी नौहागरको देखते हैं॥
हया तो देखिये आइनेसे भी परदा है।
वोह अपने हाथ ही पहले सहरको देखते हैं॥

कुछ इस तरहसे वोह कातिल सवाल करता है।
हमारे मुँह को हमारे गवाह देखते हैं॥

चला है काबेको तू खाक छानने जाहिद!
फकत खुदा ही खुदा है, हरममें खाक नहीं॥

कुछ न पूछो जो सदा आती है मयखानेसे।
कभी मस्जिदसे जो हम पढ़के नमाज आते हैं॥

वोह राते, वोह बातें, वोह घातें गजब।
जवानीमे थे किस शरारतके दिन॥

आँख पड़ती है कहीं पाँव कहीं पड़ता है।
सबकी है तुमको खबर अपनी खबर कुछ भी नहीं॥
काबे जाना भी तो बुतखानेसे होकर जाहिद!
दूर इस राहसे अल्लाहका घर कुछ भी नहीं॥

मेरे मरनेकी खबर सुनकर कहा—
"वाक़ई कुछ भी नहीं इन्सानमें"॥
जिसने दिल खोया उसीको कुछ मिला।
फ़ायदा देखा इसी नुकसानमें॥

मुझसे कहता है यह अहसान जताकर जालिम !
"हम सिवा तेरे किसीपर भी सितम करते हैं ?"

इलाही गैरने की कौन-सी वफादारी।
कि आज वह मुझे झुककर सलाम करते हैं ॥

मुहतसिब ! पत्थर है दिल तेरा, तेरे किस कामका।
डालदे उसको किसी मयखानेकी बुनियादमें ॥

देखकर दूरसे दरबॉने मुझे ललकारा।
न कहा यह कि ठहर जाओ खबर करते हैं ॥

वजाहिर उठाना मुझे बज्मसे।
इशारेसे कहना इजाज़त नहीं ॥

हम दूसरेको देख नही सकते उसके पास।
क्या आ गया है फर्क हमारी निगाहमें ॥

इधर शर्म हाइल उधर खौफ मानअ्।
न वोह देखते हैं न हम देखते हैं ॥
निगहबॉसे भी क्या हुई बदगुमानी।
अब उसको तेरे साथ कम देखते हैं ॥

कुछ तेरा शौक कुछ तेरी हसरत।
और रक्खा ही क्या है अब हममें ॥
हो गया ईद उनको मेरा सोग।
कहकहे उड़ रहे हैं मातममें ॥

होश जब आया तो यह जानो कयामत आ गई।
जिन्दगी मेरी अभीतक है कि मैं गफलतमें हूँ ॥

क्यो फिक्र इस कदर है रक़ीबोके बाबमें।
उनके भी गुनह डाल दो मेरे हिसाबमें ॥

सब लोग जिधर हैं वोह उधर देख रहे हैं।
हम देखनेवालोंकी नज़र देख रहे हैं॥
खत ग़ैरका पढ़ते थे जो टोका तो वह बोले—
"अख़बारका परचा है, ख़बर देख रहे हैं"॥

तेरे लबपर, जबाँपर तेरी, मेरा नाम क्यों आये।
उसे भी आर आती है कि क्यों झूठोमे शामिल हूँ॥

नजर आता हूँ न उस बज्मसे उठ सकता हूँ।
नातवानीसे बड़े काम लिये जाते हैं॥

मुझसे लाग़िर तेरी आँखोंमे खटकते तो रहे।
तुझसे नाजुक मेरी आँखोंमे समाते तो रहे॥

देखते ही मुझे महफिलमें यह इरशाद हुआ—
"कौन बैठा है उसे लोग उठाते भी नहीं"॥

बात करते हैं खुशीकी भी तो इक रंजके साथ।
वोह हँसाते भी हैं ऐसा कि रुला देते हैं॥

कस्द करते हैं वोह जो गैरके घर जानेका।
पढके कुछ पाँवको हम हाथ लगा देते हैं॥
मैंने जो माँगा कभी दूरसे दिल डर-डरकर।
उसने धमकाके कहा "पास तो आ देते हैं"॥

किस तरह जान देनेके इक़रारसे फिरूँ?
मेरी जबान है, यह तुम्हारी जबाँ नही॥

नाज हो, अन्दाज हो, ख़ुशरू हो, खुश इख्लाक़ हो।
क्या करे हम लेके माशूकोंकी ख़ाली सूरते॥

लड़ती जाती है गैरसे भी आँख।
मुझसे भी बात करते जाते हैं॥

"ग़ैर आने न पाये दरपै मेरे"।
तुमने दरबाँसे कह दिया कि नहीं ॥
बोलकर झूठ मुझसे पूछते हैं।
झूठमें भी है कुछ मजा, कि नहीं ?
इक ख़ुदाईको तुमने घेर लिया।
वोह हमारा भी है ख़ुदा कि नहीं ॥
'दाग़'को देखकर वोह कहते हैं—
"यह मरेगा भी बेहया कि नहीं" ॥

दरबाँको मिलाकर जो पुकारा उन्हें मैंने।
ख़ुद कहने लगे—"कौन है ? वोह घरमें नहीं है" ॥

काबे जाते तो हैं, यह धड़का है।
हम न पहुँचें ख़ुदाके पास कहीं ॥

फरिश्तेको पकड़ रक्खें तेरे दरबान ऐसे हैं।
ख़ुदासे भी नही डरते यह बेईमान ऐसे हैं ॥

रकीबोंको बिठाकर बज़्ममें कहते हैं वोह मुझसे।
जवाब उनका नहीं, देखो मेरे मेहमान ऐसे हैं ॥

चलिये ख़िलवतमें ही कुछ बातें हों।
आप महफ़िलमे तो शरमाते हैं ॥

मेहर्बां वोह हुए हैं, डरता हूँ।
राज़ दिलका न प्यारसें कह दूँ ॥

जब मेरी राहसे गुजरते हैं।
अपनी परछाईंसे वोह डरते हैं ॥

यह तो कहिये इस ख़ताकी क्या सज़ा।
मैं जो कह दूँ "आपपर मरता हूँ मैं" ॥

आशिक़के दिलमें—और तेरी आरज़ू न हो !
इस बागका तू फूल हो फिर उसमें बू न हो !!

तुम मकाँ मोल न लो ग़ैरके हम सायेमें।
आजतक वोह न हुआ है कभी आबाद, न हो ।।

ले जाएँ आह मुझको मेरी बदगुमानियाँ।
जालिम वहाँ कि तेरा पता भी जहाँ न हो ।।
बाज़ आए ऐसे लुत्फ़से जो हो सितम शरीक।
जालिम ख़ुदाके वास्ते तू मेहर्बाँ न हो ।।

इस तरहसे क़ासिदने तो रुक-रुकके कहा हाल।
जैसे कि सबक़ पढ़के कोई भूल गया हो ।।
क़ासिद ! यह समझना कि वही शहर है उसका।
मशहूर जहाँ नाम तग़ाफ़ुलका हया हो ।।
चाहतका मजा बाद हमारे न मिलेगा।
हर शख़्ससे तुम आप कहोगे "हमे चाहो" ।।

आफतकी ताक-झाँक क़यामतकी शोखियाँ।
फिर चाहते हो हमसे कोई बदगुमाँ न हो ।।
क्या कर सके वोह ग़ैरकी तुझसे शिकायतें।
जिस नातवाँसे अपनी हक़ीक़त बयाँ न हो ।।

मेरे पहलूसे वोह उट्ठे गैरकी ताजीमको।
बन्दगीको बन्दगी तस्लीम है तस्लीमको ।।

जालसाजोंने बनाया है शिकायतनामा।
क्यों ख़फ़ा आप हुए; यह मेरी तहरीर भी हो ?

अयादतको मेरी आकर वोह यह ताकीद करते हैं—
"तुझे हम मार डालेंगे नहीं तो जल्द अच्छा हो" ।।

वोह आई घटा झूमके ललचाने लगा दिल।
वाइजको बुलाओ कि चली हाथसे तौबा॥

मिलाते हो उसीको ख़ाकमें जो दिलसे मिलता है।
मेरी जाँ चाहनेवाला बड़ी मुश्किलसे मिलता है॥

मेरी तसवीर भी देखी तो कहा शरमाकर—
"यह बुरा शख्स है, इसकी नहीं नीयत अच्छी"॥

जब कहा मैंने कि लो मरता हूँ मैं।
बोले "बिस्मिल्लाह, अच्छी बात है"॥

यह जो है हुक्म मेरे पास न आये कोई।
इसलिए रूठ गये हैं कि मनाये कोई॥

फिरे राहसे वो यहाँ आते-आते।
अजल मर रही तू कहाँ आते-आते॥
मुझे याद करनेसे यह मुद्दआ था।
निकल जाये दम हिचकियाँ आते-आते॥
अभी सिन ही क्या है जो बेबाक़ियाँ हो।
उन्हें आएँगी शोखियाँ आते-आते॥
नतीजा न निकला थके सब पयामी।
वहाँ जाते-जाते यहाँ आते-आते॥
मेरे आशियाँके तो थे चार तिनके।
चमन उड़ गया आँधियाँ आते-आते॥

मैं बदगुमानियोंका भी ममनून हो गया।
वोह हाल पूछ लेते है मेरा तबीब से॥
दीवानगीमें भी न गई अपनी शोख़ियाँ।
गुलशनमें फूल माँगते है अन्दलीबसे॥

दुनियामें कोई लुत्फ़ करे या जफ़ा करे ।
जब मैं नहीं बलासे मेरी कुछ हुआ करे ॥

अभी तो खेल है ऐ 'दाग' शोखियाँ उनकी ।
फिर आरज़ूएँ करोगे हयाके आनेकी ॥

आह लबपर आये थम-थमकर, कि तुम घबरा न जाओ ।
दर्द दिलमें हो मगर कम-कम तुम्हारे सामने ॥

वोह भी दिन याद हैं, यह कहके मनाते थे मुझे—
"आ इधर, मैं तेरे कुर्बान, कहाँ जाता है" ॥

सुबह होने तो दो चले जाना ।
शबकी नीयत हराम होती है ॥

देख सकता क्या हमारा हाल वोह नाज़ुक मिजाज ।
आईनेमें आप अपनी शक्लसे हम डर गये ॥

हर अदा मस्ताना सरसे पाँवतक छाई हुई ।
उफ ! तेरी काफ़िर जवानी जोशपर आई हुई ॥

मय पी तो सही तौबा भी हो जायगी ज़ाहिद !
कम्बख्त ! क़यामत अभी आई नहीं जाती ॥

तुम-से बचकर इक वफा हिस्सेमें अपने आ गई ।
तुमने ख़ूबी कौन-सी छोड़ी जमानेके लिए ॥

ज़ुल्फ़ आहिस्ता झटकिये मेरा जी डरता है ।
देखिये हाथका झटका न कमरतक पहुँचे ॥

इक तेरा नाम कि हर दम है वज़ीफ़ा मुझको ।
इक मेरी बात कि बरसोंमें सुनी जाती है ॥*

रूह किसी मस्तकी प्यासी गई मयख़ानेसे ।
मय उड़ी जाती है साक़ी ! तेरे पैमानेसे ॥

आगे आती थी याद भी तेरी ।
अब कभी भूलकर नहीं आती ॥

सुनते हैं ख़ुशी भी है जमानेमें कोई चीज़ ।
हम ढूँडते फिरते है, किधर है वोह कहाँ है ॥

दिलको इस आजिज़ीसे देता हूँ ।
कोई जाने सवाल करता है ॥

अब मेरे एवज उसे सम्भालो ।
मिलती नहीं नब्ज़ चारागारकी ॥
क्या बात है ख़ैर हो इलाही !
रुकती है ज़बान नामाबरकी ॥

जम गई है आंखकी पुतली किसी मुश्ताक़की ।
मै न मानूँगा कि आरिज़पर[1] तुम्हारे ख़ाल[2] है ॥

याद रह जायगी जफ़ा तेरी ।
दिन गुज़र जायँगे मुसीबतके ॥

---

*एक तर्ज़े तग़ाफ़ुल है, सो वह उनको मुबारिक ।
एक अर्ज़े तमन्ना है, जो हम करते रहेंगे ॥

[1]कपोलपर; [2]तिल ।

हम तेरे जौर सब उठायेंगे।
ऐ सितमगर! अलावा फ़ुर्कतके॥
अपने बदले रकीबको भेजा।
ये नये ढंग हैं अयादतके॥

गर एक भी हज़ारमें वोह मान जायेंगे।
हम ऐ पयाम्बर! तेरे क़ुर्बान जायेंगे॥

मजनूँका हाल सुनके परेशान हो गये।
मेरी अगर सुनेंगे तो औसान जायेंगे॥

बड़ा मज़ा हो जो महशरमें हम करें शिकवा।
वोह मिन्नतोंसे कहें "चुप रहो खुदाके लिये"॥
ज़बाँ जलाई, किये क़तअ़ हाथ पहुँचोंसे।
यह बन्दोबस्त हुए हैं मेरी दुआके लिये॥
मेरे मज़ारको तोदह[1] किया है तीरोंसे।
बहाना ये है कि रोज़न[2] किये हवाके लिये॥

उतरे जो तनसे सर तो जहे सरफ़राज़ियाँ।
ऐसा न हो कि वोह मुझे दिलसे उतार दे॥

नातवाँ देखके अफ़सोस न आया मुझपर।
वोह ख़फ़ा है कि उड़ाई है नज़ाकत मेरी॥
जब कोई फ़ित्ना जमानेमें नया उठता है।
वोह इशारेसे दबा देते हैं तुरबत मेरी॥
बन गई जीपै कुछ ऐसी कि इलाही तौबा।
साँस लेनेसे बिगड़ती है तबीयत मेरी॥

---

[1]छलनी, [2]सूराख।

वोह दबे पाँव चले इश्क़के डरसे तौबा।
फ़िक्र है चाल उड़ाले न क़यामत मेरी॥
अपनी तसवीरपै नाज़ाँ हो, तुम्हारा क्या है?
आँख नरगिसकी, दहन गुंचेका, हैरत मेरी॥

जिस ख़तपै यह लगाई उसीका मिला जवाब।
इक मुहर मेरे पास है दुश्मनके नामकी॥

मेरे लाशेपर उसने मुस्कराकर।
मलीं आँखें उदूकी आस्तीसे॥
बताऊँ नाम ऐ दरबाँ! तुझे क्या?
यह कह दे कोई आया है कहींसे॥

हाथा पाई हुई मयख़ानेमे ज़ाहिदसे कहीं।
हमने तसबीहके बिखरे हुए दाने पाये॥
यह मेरे वास्ते ताकीद है दरबानोंपर।
कि उसे मै भी बुलाऊँ तो न आने पाये॥
हूरके वास्ते ज़ाहिदने इबादत की है।
सैर तो जब है कि जन्नतमें न जाने पाये॥

पानी पी-पीके तौबा करता हूँ।
पारसाई-सी पारसाई है॥

हज़ार भेज चुके एक नामाबर न फिरा।
गये थे कहके यह सब अब हुज़ूर हम आये॥

दरपै आकर जल्द तुम सुनलो जो है मेरा सवाल।
गर लगाई देर तो जानो कि साइल[1] घरमें है॥

---

[1]फकीर, अभिलाषी।

हो गई महफिल तिरी क्या बेअदब बेकायदा।
जो खड़े रहते थे अब वोह हैं बराबर बैठते॥
गैरके हमराह फिरते हो खुदाई ख़्वार तुम।
आर आती है हमारे पास दमभर बैठते॥
जब किया शिकवा कि महफिलमे रहे हम तुमसे दूर।
उसने झुँझलाकर कहा—"क्या मेरे सरपर बैठते?"

यह कहते हैं बुलबुलसे वोह गुल हाथमें लेकर—
"तू देख मिलाकर इसे गालोंसे हमारे"॥
इतना तो रहे पास कि महशरमे कहो तुम—
"बोले न कोई चाहनेवालोसे हमारे"॥

क्या कहिये किस तरहसे जवानी गुजर गई।
बदनाम करने आई थी बदनाम कर गई॥

पाक होना है रिन्दको लाजिम।
मयकशी बेवजू किये न बनी॥

चाहनेवालोंकी सूरत देख ली।
मौत बहतर है तुम्हारी चाहसे॥

बोसा माँगा तो कहा उसने बदलकर चितवन—
"आपको ये भी खबर है मेरी आदत क्या है?"

आये है वोह रकीबके घरसे।
इक खुशी है तो एक मातम है॥
मुझको देखा तो ग़ैरसे ये कहा—
"उम्र इस नौजवानकी कम है"॥

दर्दसे भरते है आँसू, जब्तसे पीते है हम।
आँखकी है आँख यह पैमानेका पैमाना है॥

मुझको ले जाकर कहा नासेहने उनके रोबरू—
"आपके सरकी क़सम यह आपका दीवाना है" ॥

इन्साफ़से दुश्मनने कभी हक़में हमारे ।
अच्छी भी कही है तो बुरी दिलको लगी है ॥
जबसे यह सुना 'दाग़'ने की इश्क़से तौबा ।
घबराये हुए फिरते हैं क्या दिलको लगी है ॥

कहा था हमने जो कुछ राज़दाँसे ।
सुना वोह आज दुश्मनकी ज़बाँसे ॥

फूल थे ग़ैरकी क़िस्मतमें अगर ऐ ज़ालिम !
तूने पत्थर ही मुझे फेंकके मारा होता ॥

उदू को फेर लाता तेरे दरसे ।
मुझे यह रहनुमाई क्यों न आई ॥
तेरा शफ़्फ़ाफ चेहरा, तन बदन साफ़ ।
तबियतमें सफ़ाई क्यों न आई ॥

ख़ाली नहीं फ़िसादसे यह तेवरीके बल ।
आते हो तुम कहाँसे मेरी जाँ भरे हुए ॥

कहते हैं वोह "जलाएँगे हम तुमको हश्रतक ।
दुश्मनकी क़ब्र तेरे बराबर बनाएँगे" ॥

जाते थे मुँह छुपाये हुए मयकदेको हम ।
आते हुए उधरसे कई पारसा मिले ॥*

---

*कहाँ मयख़ानेका दर्वाज़ा 'ग़ालिब' और कहाँ वाइज़ ।
पर इतना जानते हैं, कल वो जाता था कि हम निकले ॥

जन्नतसे आर, हूरकी सुहबतसे इज्तनाब।
क्या जाने बन्दगीका सिला मुझको क्या मिले ॥
यह भेद क्या है मुझसे मिला आज यूँ रक़ीब।
जिस तरह आश्नासे कोई आश्ना मिले ॥

आये हमसायेमे वोह गो न यहाँतक आये।
आज मक़बूल हुई मेरी दुआ थोड़ी-सी ॥

ले ही तो लेंगे गुनहगारोंके होते जाहिद !
ये तो दोजखके भी क़ाबिल नहीं जन्नत कैसी ॥
बेमहल बात भली भी तो बुरी होती है।
शुक्र करते हुए डरता हूँ, शिकायत कैसी ?

है यह अब बेअसरी, ग़ैरके ताने कैसे ?
हमपर आवाजे हमारी ही फ़ुग़ाँ कसती है ॥

मेरे क़त्लके रोज़ मेला लगेगा।
यह जलसा वोह इक धूम-धामी करेंगे ॥

क़यामत हैं बाँकी अदाएँ तुम्हारी।
इधर आओ ले लूँ बलाएँ तुम्हारी ॥

परदे-परदेमें गालियाँ देकर।
मुझसे वोह पूछते हैं, "क्या समझे ?"

इस तजाहुलका क्या ठिकाना है।
जानकर जो न मुद्दआ जाने ॥

सम्भलकर ज़रा पाँव रखिये ज़मींपर।
अगर चाल बिगड़ी तो बिगड़ा चलन भी ॥

ख़ुदाकी देन है ग़म हो कि शादी।
यह बन्दे लाये हैं क्या अपने घरसे ?

निराली वज़अ़ ज़ाहिदने बनाई।
ये है इन्सान क्या जाने किधरसे ॥

चुटकीमें उनकी तीर निगाहों मे उनके क़हर।
क्या जाने कितनी देर हमारी कज़ामें है ॥

खुदाके सामने, जब आपकी तलब होगी।
वहाँ भी आप निगहबान लेके जाएँगे ?

करता है इमाम आज बहुत सहवके[1] सजदे।
पोशीदा जमाअ़तमें वोह काफिर तो नही है !

हमको हासिल क्या हसीनोंमे हो गर तुम आफताब।
शबको हाथ आते नही, रहते हो दिनभर सामने ॥
या इलाही खैर हो बैठे है वोह यूँ बज्ममे।
तेग रक्खी है बराबर और खंजर सामने ॥

बना है मुद्दई पैगाम्बर भी।
जड़ी है जब मेरी खोटी जड़ी है ॥

रो-रोके कह रहे है वोह मुर्दपै गैरके—
"किसकी बुरी नजर तुझे ऐ नौजवाँ लगी ?"
बेताब मुझको देखके वोह पूछते है 'दाग'।
"कम्बख्त ! तेरे चोट बता तो कहाँ लगी" ?

कहते है "क्यों ख़ुदाको किया याद हिज्रमे,
फुर्सत बड़ी मिली तुझे मेरे खयालसे" ॥

दिलमें भी आये, तसव्वुरमें भी आये बेहिजाब।
उनको ज़ाहिरमें फ़क़त आँखोका परदा हमसे है ॥

---

[1] गलत, भूल भरे।

तू मेरे सरपर खड़ी रहती है हरदम ऐ अजल !
और फिर सारा जहाँ कहता है हरजाई तुझे ॥
बेहिजाबीका बहाना कोई तुझसे सीख जाय।
ग़ैरके आते ही ज़ालिम आई अँगड़ाई तुझे ॥

तुरबतमें मेरी डाल दे उसकी गलीकी ख़ाक।
हाजत नही है इसके लिये क़ब्रपोशकी ॥
ज़ाहिदकी सुर्ख़ आँखोंसे मालूम हो गया।
रिन्दोंसे जो बची थीं सो हज़रतने नोश की ॥

सहमे जाते है, डरे जाते है, वोह आशिकसे।
कमसिनी है अभी इस सिनमें झिझक होती है ॥

इस नज़ाकतपै सुने क्या वोह हमारी फ़रियाद।
ग़ुंचा चटके तो कहे "सरमें धमक होती है" ॥

पीकर न तौबा की हो तो वाइज़ ज़बाँ जले।
यह ऐतराज़ क्या है कि मयख़्वार क्यों हुए ॥

मुहतसब आ गया तो ऐ साकी !
हम अज़ाँ देंगे उठके महफ़िलसे ॥

कहते है मुझसे—"मर न गये मेरे नामपर—
क्या चाहमे वह चाह जो मुँह देखकर हुई" ॥

क़ासिद भी उसको देखके दीवाना हो गया।
पूछी ज़मीनकी तो कही आस्मानकी ॥
सर काटकर लगाते है गरदनके साथ फिर।
कुछ रह गई है उनको हविस इम्तहानकी ॥

उनसे निगाह मिलते ही दिलपर लगी वोह चोट।
बिजली-सी अपनी आँखोके नीचे चमक गई ॥

दिलको चुरा लिया है निगाहोंसे, और फिर ।
आँखोंमें बैठते है, ढिटाई तो देखिये ॥

जो घड़ी ऐशकी गुजरे वोह गनीमत जानो ।
जिन्दगानीका मेरी जान भरोसा क्या है ॥

मेरे दिलमे बर्छी चुभोकर कहा—
"ख़बरदार तूने अगर आह की" ॥

यह क्या कहा कि मेरी बला भी न आयगी ।
क्या तुम न आओगे तो क़ज़ा भी न आयगी ॥
कासिदका इन्तजार अबस, यह यक़ीन है ।
मुझ तक तो उस तरफ़की हवा भी न आयगी ॥

आँखें ख़ुदाने दी है मुरव्वतके वास्ते ।
यह क्या ख़बर थी तुझको हया भी न आयगी ॥

आने-जाने न दो रक़ीबोंको ।
कहीं बाजार घर न हो जाये ॥

क़रीनेसे अजब आरास्ता कातिलकी महफ़िल है ।
जहाँ सर चाहिए सर है, जहाँ दिल चाहिए दिल है ॥
भरोसा है ख़ुदापर ! नाख़ुदासे इल्तजा कैसी ?
मेरी किश्ती ही साहिल है, मेरी किश्तीमें साहिल है ॥
उठाया शौक़ने उट्ठे, बिठाया ज़ोफ़ने बैठे ।
यही रस्तेका रस्ता है यही मंज़िलकी मंज़िल है ॥
तेरी तलवारके क़ुर्बान ऐ सफ़्फ़ाक ! क्या कहना ?
इधर कुश्ते पै कुश्ता है उधर बिस्मिल पै बिस्मिल है ॥
सितम भी हो तो मुझपर हो, जफा भी हो तो मुझपर हो ।
मुझे इस शक़ने मारा वोह क्यो आलमका कातिल है ॥

मेरी तसवीरसे यूँ छेड़की बातें वोह करते हैं।
"ज़रा कम्बख़्त मुँहसे बोल, तू किस बुतपै माइल है" ॥

अपने दीवानोंको देखा तो कहा घबराकर—
"यह नई वज़अ़की किस मुल्कसे खलकत आई" ॥

वोह मुझको देते हैं गाली सलामसे पहले।
सलाम करती है दुनिया कलामसे पहले ॥

आगया है भूलकर खत इस तरफ़।
वोह तो आशिक़ हैं मेरे हमनामके ॥
हाथसे सैयादके गिरकर छुरी।
कटगये हलक़े हमारे दामके ॥

क़ासिदोंके मुन्तज़िर रहने लगे।
पड़ गये उनको मज़े पैग़ामके ॥
अब उतर आये हैं वोह तारीफ़पर।
हम जो आदी हो गये दुश्नाम के ॥

उनके दर्वाज़ेकी जंजीर लगी हो न कहीं।
कुछ पसीजा तो है दरबान बड़ी मुश्किलसे ॥

यह है बिजली भी ये है तलवार भी।
बचते रहना तुम हमारी आहसे ॥

जहाँ देखो हसीनोंका है मजमा आक़बतमें भी।
न जन्नत उनसे ख़ाली है न दोज़ख़ उनसे ख़ाली है ॥

लड़े मरते हैं आपसमें तुम्हारे चाहने वाले।
यह महफ़िल है तुम्हारी या कोई मुर्ग़ोंकी पाली है ॥

जो दिखाने की न हों चीज़ें दिखाएँ किस तरह।
उसने चेहरे ही की खिंचवाई फ़क़त तसवीर भी ॥

ख़ुदाके वास्ते नासेह इलाजकर अपना।
हमेशा अक़्लमें तेरी फ़तूर रहता है॥
ख़ुदा न डाले किसी बदमिजाजसे पाला।
कि पासवान भी अब उनसे दूर रहता है॥

ख़ाक इसलिए उड़ाई कि देखे न कोई ग़ैर।
परदा किया यह क़ैसने महमिलके सामने॥

हजारो आते-जाते हैं किसीसे कुछ नहीं मतलब।
फ़क़त इक चौकसी करता है उनका पासबाँ मेरी॥

सख्रो ऐशो निशात कैसे, बदल गये रंग ही जहाँके।
सुना न कानोसे था जो हमने, वोह आँखसे इन्क़लाब देखा॥

शबे हिजराँसे मौत बहतर है।
ख़्वाब आरामसे तो आयेगा॥

की तर्के मय तो माइले पिन्दार हो गया।
मैं तौबा करके और गुनहगार हो गया॥
इक हर्फ़े आरज़ू पै वोह मुझसे ख़फ़ा हुए।
इतनी-सी बात कहके गुनहगार हो गया॥

हम एक कहके सुनते हैं मुँहसे तेरे हज़ार।
लपका पड़ा हुआ है यह गुफ़्तोशुनीद का॥

क़तरये ख़ूने जिगरसे की तवाज़ा इश्क़ की।
सामने महमानके जो था मयस्सर रख दिया॥

कीजिए इश्क़े बुताँमें भी ख़ुदाको शामिल।
क्या रहा ख़ौफ़ जब अल्लाह मददगार रहा॥

गये होंगे तेरे ज़ाहिद! जो वोह चश्मे मस्त देखी।
मुझे क्या उलट न देती जो न बादाख़्वार होता॥

डरता हूँ देखकर दिले बे आरजूको मैं।
सुनसान घर यह क्यों न हो, मेहमान तो गया॥

छूटकर कुंजे क़फ़ससे भी यह खटका न गया।
जब सबा आई तो जाना वही सैयाद आया॥
दी मुअज्ज़नने शबेवस्ल अज़ां पिछली रात।
हाय! कम्बख़्तको किस वक़्त ख़ुदा याद आया॥

जो अर्जे तमन्नापर जालिमने कहा मुझसे।
अबतक न मिला होगा साइलको जवाब ऐसा॥

मुद्दआ यह था कि हम देखें तुझे।
वर्ना क्यों नूरे नजर पैदा किया॥

गुजार दी शबे वादा इसी तवक़्क़ोह पर।
मेरे बुलानेको अब आदमी जरूर आया॥
वहींसे 'दागे' सियह बख़्तको मिली जुल्मत।
जहाँसे हजरते मूसा के हाथ नूर आया॥

मज़मूने शौक़ छुप न सका इसको क्या करूँ?
गो मैंने ख़त रकीबके ख़तमें मिला दिया॥

मौतका मुझको न खटका शबे हिजराँ होता।
मेरे दर्वाजे पै गर आपका दरबाँ होता॥

जा चुके खुल्दमें कि दोजख़में।
तूले रोजे हिसाबने मारा॥

गो नज़अकी हालत है मगर फिर यह कहूँगा।
कुछ तुमने मेरा हाले परीशां नहीं देखा॥

महजूब कर न जुर्मे फ़ुग़ाँपर कि लुत्फ़ क्या ?
शर्मे गुनाहसे जो गुनहगार मर गया ॥

अहसाने अफवेजुर्मसे वोह शर्मसार हूँ ।
बख़्शा गया मैं तो भी गुनहगार ही रहा ॥

बे असर हो तो भी तूफ़ाँ हो नही, दरिया तो हो ।
हसरत उस आँसू पै है जो कतरये शबनम हुआ ॥

गुबार आलूदा है पाये हिनाई ।
मिटाकर आये हो मदफ़न किसीका ॥

ऐ नजाकत तेरे कुर्बान कि वक़्ते रुख़सत ।
वोह कहें "हमसे तो घरतक नही जाया जाता" ॥

तू ख़ुदा तो नही ऐ नासहे नादाँ ! मेरा ।
क्या ख़ता की जो कहा मैंने न माना तेरा ॥
काबओ दैरमें या चश्मो दिले आशिक़में ।
इन्हीं दो चार घरोंमें है ठिकाना तेरा ॥

वादये हश्र पै बेसाख़्ता दिल लोट गया ।
अहदका अहद, बहानेका बहाना तेरा ॥

मँगाई थी ख़ाके दरेयार आज ।
चुराकर मेरा चारागर लेगया ॥

यह कहनेको मुझे ज़ालिम सरे मजार आया—
"मेरे बग़ैर तुझे किस तरह करार आया" ?
डरे जो हश्रमें वोह मुझको देखते ही कहा—
"मेरा रफीक, मेरा 'दाग़' जाँ निसार आया" ॥

फ़रहाद जूए शीरसे मशहूर हो गया ।
आता है काम वक़्तपर अदना हुनर भी क्या !

या रब ! शबे फ़िराक़ बसर हो चुके कहीं ।
नाज़ुक ख़राम उसकी तरह है सहर भी क्या ॥

साक़ी तेरी महफ़िलमें चरचा ही नहीं मयका ।
इससे तो यह बहतर था कुछ ज़िक्रे ख़ुदा होता ॥
महफ़िलमें सुनाया था अफ़सानये ग़म मैंने ।
इल्ज़ाम यह रक्खा है ख़िलवतमें कहा होता ॥

हाल कुछ ऐ दावरे महशर न पूछ ।
हाल मुझमें अब कहाँ बाक़ी रहा ॥

न देना ख़ते शौक़ घबराके, पहले—
महल-मौक़ा ऐ नामाबर ! देख लेना ॥

मिट गई रस्मो राह भी उनसे ।
यह नतीजा पयामका निकला ॥

मक़तलमें वोह सफ़्फ़ाक जो मसरूफ़े सितम था ।
आगे सफ़े उश्शाक़से अपना ही क़दम था ॥

वोह हाल है मेरा कि मिरे कातिबे ऐमाल ।
लिखते हैं मगर उनसे भी लिक्खा नहीं जाता ॥

हाय मेरी खस्तगी-ओ मान्दगी ।
चल दिया सब क़ाफ़िला मैं रह गया ॥
'दाग़' से उट्ठा न इक रश्के रक़ीब ।
जो सितम सहनेके थे सब सह गया ॥

हम मिट गये मगर ख़लिशे दिल न मिट सकी ।
काँटे हमारे हक़में तेरा इश्क़ बो गया ॥

हम तो वहशतमें चले दीवारे ज़िन्दाँ फान्दकर ।
जिसको रहना हो, रहे वोह मुन्तज़िर मीयादका ॥

चलते-चलते यह खिज़ाँसे कह गई बादेसबा—
"ख़ाक़में मिलना न देखा जायगा औलादका" ॥
कोहमें जब शोर हो, तो गूँज उठता है पहाड़ ।
यह असर बाकी है अब तक मातमे फरहादका ॥
दावरे महशरके आगे उसने घबराकर कहा—
"'दाग़' कोताही न कर यह वक़्त है इमदादका" ॥
दिल देंगे हम तो हज़रते नासेह ! हजार बार ।
देना नही है आपके कुछ किबलागाहका ॥

वाइसे शुहरत हमारा इश्क़ है ।
नाम दुनियामें तुम्हारा हो गया ॥

बाकी है आधी रात मगर इसका क्या जवाब ।
घबराके वोह यह कहते हैं "वक़्ते अज़ाँ है अब" ॥
बन्देसे है क्यों पुरसिशे एमाल इलाही ।
इन्सानको रहती है कहाँ अपनी खता याद ॥
उस्तादने अच्छा सबक़े इश्क़ पढ़ाया ।
जब इसको भुलाता हूँ यह होता है सिवा याद ॥
मैं दावरे मशहरमे बहुत दाद तलब था ।
वह डांट गये मुझको बराबरसे निकलकर ॥
इस वहमसे वोह 'दाग़' को मरने नहीं देते ।
माशूक़ न मिल जाये उसे ज़ेरे ज़मीं और ॥
आये वोह बेवफ़ा यहाँ उसकी बलाको क्या ग़रज़ ।
जाये दरे क़बूल तक मेरी दुआको क्या ग़रज़ ॥

जोशे रहमतके वास्ते ज़ाहिद !
है ज़रा-सी गुनाहगारी शर्त ॥

३० नवम्बर १९५०

६४

ज़हीर

सैयद जहीरुद्दीन 'जहीर' सैयद जलालुद्दीनके पुत्र और देहलवी थे। शेरोसुख़नका बचपनसे ही शौक था। १४ वर्षकी अवस्थामे ही जौकके शिष्य हो गये। १८५७के ग़दरके उपद्रवोंके कारण दिल्ली छोडनेपर मजबूर हुए। झज्जर, सोनीपत, नजीबाबाद, बरेलीकी खाक छाननी पड़ी। बरेलीसे लखनऊ जाकर ४ वर्ष रहे। वहाँसे दिल्ली चले आये और चुंगीमें नौकरी कर ली। थोडे अर्सेके बाद बुलन्दशहरसे प्रकाशित होनेवाले 'जलवयेतूर'के सम्पादक नियत हुए। उक्त पत्रके लेखोसे प्रसन्न होकर अलवर-नरेश शिवध्यानसिंहने इन्हे अपने यहाँ बुला लिया। किन्तु रियासती साजिशोसे तग आकर ये चार वर्षके बाद फिर दिल्ली चले आये और नवाब 'शेफ़्ता'की सिफारिशसे जयपुर रियासतमें पुलिस विभागमे जगह मिल गई। वहाँ १९-२० वर्ष रहे होगे कि जयपुर-नरेश-का देहान्त होनेसे इनकी नौकरी जाती रही। चन्द रोज़ परेशान रहनेके बाद टौकके नवावने इन्हे अपने पास बुला लिया और बहुत इज्जत और आबरूसे रक्खा। वहाँ १५-१६ वर्ष रहनेके बाद हैदराबाद जानेका शौक हुआ। वहाँ ८ माहके बाद बमुश्किल नवाबसे मुलाकातकी नौबत आई, अभी वेतन निश्चित भी न हुआ था कि मृत्युने झपट्टा मारकर सारी चिन्ताओसे मुक्त कर दिया। हैदराबादमे महाराजा सर किशनप्रसादने इनकी काफी सहायता की। इनके तीन दीवान छप चुके हैं, चौथा दीवान तीन सौ ग़ज़लोका उनके नवासेके पास हस्तलिखित मौजूद है।

ज़हीर अपने युगके प्रसिद्ध शायर थे। जौकके शिष्य होते हुए भी

मोमिनके रगको पसन्द करते और उसीमे कहते थे। इनके मशहूर शागिर्द नज़ीमुद्दीन अहमद 'साकिब' बदायूनी है जो 'पहलवानेसुख़न'के लकबसे मशहूर है।

ज़हीरके कलाममे मोमिन जैसी लतीफ तरकीबे, दिलनशी-अल्फाज़ और रगीन कनाये पाये जाते है। दिल्ली स्कूलके ये आख़िरी यादगार थे, इनके साथ ही ये रग हमेशाको ख़त्म हो गया।

फ़कत एक सादगीपर शोखियोंके हैं गुमाँ क्या-क्या !
निगाहे शरमगींसे है निहाँ क्या-क्या, अयाँ क्या-क्या !

तसव्वुरमें विसाले यारके सामान होते हैं।
हमें भी याद है हसरत की बज़्म आराइयाँ क्या-क्या ?

ऐजाज़े दिल फ़रेबिये अन्दाज़ देखना।
हर-हर अदापै मुझको गुमाने नज़र रहा॥
परहेज़े इश्कसे मुझे वहशत फ़ज़ूँ हुई।
मैं कुछ दवासे और भी रंजूरतर रहा॥

क्या बुरी शै है मुहब्बत भी इलाही तौबा।
जुर्म ना करदा ख़तावार बने बैठे है॥
—इन्तकादियात, भाग २, पृ० १४०

१२ अगस्त १९५०

६५

अनवर

सैयद शुजाउद्दीन 'अनवर' जहीरके छोटे भाई थे, और जौकके शिष्य थे, ज़ौककी मृत्युके बाद गालिबसे मशविरा लेते थे। उदीयमान कवि थे, किन्तु ३८ वर्षकी आयुमे ही परलोक सिधार गये। इनके समकालीन इन्हे बड़ी प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखते थे। इनके दो दीवान नष्ट हो गये, किन्तु ला० श्रीराम साहब (खुमखानये जावेदके प्रसिद्ध लेखक)ने अत्यन्त परिश्रम और खोज करके एक दीवान प्रकाशित कराया है। अनवर—जौक, गालिब और मोमिन इन तीनो ही के रगमे कहते थे।

न हम समझे न आप आये कहींसे।
पसीना पूछिये अपनी जबींसे॥

मैंने कहा कि गैरसे परदा नहीं हुआ।
कहने लगे कि "आपको फिर क्या? नहीं हुआ"॥

बदमस्तियोंका रंग है जोशे शबाबमे।
गोया कि वे नहाये हुए है शराबमें॥

इधर लाओ ज़रा दस्ते हिनाई।
पकड़ लें चोरका दिल हम यहींसे॥

फेंकिये क्यों मये नाकिस साकी।
शेख साहबकी जियाफ़त ही सही॥

——इन्तकादियात, भा० २, पृ० १४६

१३ अगस्त १९५०

शेफ़्ता

नवाब मुस्तफाखाँ 'शेफ्ता' के पिता अज़ीमुद्दौला सरफराज़ुल्मुल्क नवाब मुर्तजा खाँ बहादुर मुजफ्फरजग बंगश थे, और माता जरनैल इस्माइल बेग हमदानीकी साहबजादी अकबरी बेगम थी। 'शेफ़्ता' के बाबा वलीदाद खाँ बगसात (कोहाट सरहदी इलाके) से किस्मत आज़माई-के लिए इधर आये और फर्रुखाबाद रहने लगे। मुगलिया सल्तनतके ज़वालके बाद शेफ्ताके पिता महाराजा जसवन्तराय होलकरके लश्करमे शामिल हो गये, जहाँ एक पल्टनकी कमान उनके सुपुर्द हुई। इन दिनो लार्ड लेक होलकरसे उलझा हुआ था। नवाब मुर्तजाके प्रयत्नसे यह लडाई सुलह सफाई पर खत्म हुई। या यूँ कहिये कि नवाबने अपने स्वामी होलकर महाराजको धोका देकर लार्ड लेककी सहायता की। जिससे प्रसन्न हो कर १८१३ ई० मे दिल्लीके समीप गुड़गाँवे ज़िलेके पलवल और होडल दो कसबे तीन लाख सालाना आमदनीके जागीरमे दिये। एक वर्ष बाद यू० पी० के बुलन्दशहर ज़िलेमे जहाँगीराबाद उन्होने स्वय खरीद लिया था, जोकि उनके वंशजोके पास अबतक विद्यमान है।

नवाब मुर्तज़ाके मरते ही अग्रेज सरकारने अपनी दी हुई जागीरे पल-वल और होडल वापिस ले ली। केवल २० हजार रुपये वार्षिककी पेन्शन भरण-पोषणके लिए पुरानी सेवाओंकी स्मृति स्वरूप बान्ध दी।

शेफ्ता १८०६ ई० मे दिल्लीमे उत्पन्न हुए। अरबी-फारसीमे पूर्ण पाण्डित्य यही प्राप्त किया। इसलाम धर्ममे भी पूर्ण योग्यता

प्राप्त की। युवावस्थामे ये भी उन कमज़ोरियोसे अछूते न रह सके थे, जो उन दिनों नवाबों-रईसोंकी खास खूबियाँ समझी जाती थी, परन्तु जल्दी ही सम्भल गये और तौबा करली[1]। १८३८ ई० मे हजको गये थे और वहीसे अपने मृत्युकालक लिए कफन भी आबे जमज़ममे भिगोकर ले आये थे, और १८४० ई० मे भारत आकर धार्मिक जीवन व्यतीत करने लगे थे। शायरीका शौक भी तर्क कर दिया था। बुजुर्गाने दीनकी खिदमतमे दिन गुजारते थे। बहुत कम शेर कहते थे।

१८५७ के विप्लवमे जहाँगीराबादको अरक्षित समझकर ये खानपुर रियासतमें चले गये थे। शान्ति होनेके बाद अंग्रेज सरकारने इनपर मुक-दमा चलाया कि ये क्यो उस जागीरको अरक्षित दशामे छोड़ गये, और क्यो बागियोको उसका उपयोग करने दिया। कोर्टने जागीर ज़ब्त कर ली और सात सालकी सज़ा दी। फिर नवाब भोपालके प्रयत्नसे आधी जागीर मिली और सजा माफ हो गई।

शेफ़्ताके मिर्जा गालिबसे बहुत गहरे ताल्लुकात थे, और गालिबको भी उनपर नाज था। वे शेफ्ताकी शायराना रायको खास वकअतकी नजरसे देखते थे और उनकी सुख़न-फहमीके प्रशंसक भी थे। मिर्ज़ा गालिबको १८४७ ई० मे जब कर्जके सम्बन्धमे छ. माहके लिए जेल जाना पड़ा तो इन्होंने उनकी हर तरहसे सहायता की।

शेफ्ता उर्दू-फारसी दोनोमे शेर कहते थे। उर्दूमे 'शेफ्ता' तखल्लुस था और मोमिनसे इसलाह लेते थे। फारसीमे उपनाम 'हसरती' था

---

[1]—इस तौबाके बाद एक रोज़ शेफ्ता रातको गालिबसे मिलने गये तो मिर्ज़ा उस वक़्त साग़रो-मीनासे शौक फर्मा रहे थे। शेफ़्ताको भी दावत दी तो इन्होने कहा—"हजरत ! मैने तो तौवा करली है।" ग़ालिब मुस्कराकर बोले—"अरे गज़ब किया, क्या जाड़ोंमे भी।"

और गालिबसे मशवराए सुखन लेते थे। १८५७ के गदरमे उस वक्त तकका लिखा समस्त कलाम नष्ट हो गया। उसके बादका कलाम निजामी प्रेस बदायूँसे १६१६ मे उनके साहबजादेने प्रकाशित कराया है।

शेफ्ता बहुत अच्छे समालोचक भी थे। उनकी "गुलशने बेखार" एक आलोचनात्मक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है, जो कि काफी प्रसिद्ध है। शेफ्ताके तीन लडके और दो लडकियाँ थी। इनमेसे एककी शिक्षाके लिए 'हाली' नियत हुए थे। १८६६ ई० मे ६३ वर्षकी आयुमे दिल्लीमे इन्होने समाधि पाई।

शेफ्ता ऊँचे पायेके शायर थे। वे अपने उस्ताद मोमिनकी तरह सिर्फ गजल कहते थे, और अपने उस्तादके रगमे ही लिखते थे, और तगज्जुलमे उनको कमाल हासिल था। यह भाग्यकी बात है कि वे ऐसे युगमे उत्पन्न हुए कि जब केवल जौककी तूती बोल रही थी, और गालिब-ओ-मोमिन जैसे अमर शायर भी मान्द पड़े हुए थे। तब शेफ्ताको कौन पूछता ?

किसलिए लुत्फ़की बातें है फिर ?
क्या कोई और सितम याद आया ?

'शेफ़्ता' ज़ब्त करो ऐसी भी क्या बेताबी ?
कोई भी हो, तुम्हें अहवाल सुनाना दिलका ॥

न दिया हाय मुझे लज्ज़ते आज़ारने चैन ।
दिल हुआ रंजसे गर खाली तो जी भर आया ॥

वह मुझसे खफा है तो उसे यह भी है ज़ेबा ।
पर 'शेफ़्ता' मै उससे खफा हो नहीं सकता ॥

याससे[1] आँख भी झपकी तो तवक़्कोसे[2] खुली ।
सुबहतक वादयेदीदारने[3] सोने न दिया ॥

मुहब्बत न हरगिज़ जताई गई ।
रहा ज़िक्र कल और हर बातका ॥

हम तालिबेशुहरत[4] है हमे नंगसे[5] क्या काम ?
बदनाम अगर होगे तो क्या नाम ना होगा ॥

सब बातें उन्हींकी है ये, सच बोलियो क़ासिद !
कुछ अपनी तरफसे तो तसर्रुफ[6] नहीं करता ॥

क्या हाल तुम्हारा है हमें भी तो बताओ ।
बेवजह कोई 'शेफ़्ता' उफ-उफ नही करता ॥

---

[1]निराशासे, [2]आशासे;
[3]दर्शनोके वायदेने, [4]प्रसिद्धिके इच्छुक;
[5]बदनामीसे; [6]बयान ।

इज़हारे इश्क़ उससे न करना था 'शेफ़्ता' !
यह क्या किया कि दोस्तको दुश्मन बना दिया ॥

हसरतसे[१] उसके कूचेको क्योंकर न देखिये ।
अपना भी इस चमनमें कभी आशियाना[२] था ॥

यादने जिसकी भुलाया सब कुछ ।
उसकी मैं याद भुलाऊँ क्योंकर ॥

ऐ ताबेबर्क़[३] थोड़ी-सी तकलीफ और भी ।
कुछ रह गये हैं ख़ारोख़शेआशियाँ[४] हनूज़[५] ॥

आरामसे है कौन जहानेख़राबमें[६] ?
गुलसीना चाक[७] और सबा इज्तराबमें[८] ॥

क्या जाने गुज़री ग़ैरपै क्या उसकी बज़्ममें ।
आये वे इस तरह कि मुझे प्यार आ गया ॥

तूफ़ानेनूह लानेसे ऐ चश्म ! फ़ायदा ?
दो अश्क भी बहुत हैं अगर कुछ असर करें ॥

वोह 'शेफ़्ता' कि धूम थी हजरतके जुहदकी[९] ।
मैं क्या कहूँ कि रात मुझे किसके घर मिले ॥

शायद इसीका नाम मुहब्बत है 'शेफ़्ता' ।
इक आग-सी है सीनेके अन्दर लगी हुई ॥

---

[१]अभिलाषासे, [२]घर, घोसला;
[३]बिजलीके करिश्मे, [४]घोसलेके तिनके और काँटे;
[५]अभीतक; [६]दुःखी संसारमें;
[७]फूलका सीना फटा है; [८]विकलतामें, बेचैनीमें;
[९]धार्मिकताकी ।

कुछ इन्तज़ार मुझको नहीं मय,[1] न साज़का[2] ।।
लाचार हूँ कि हुक्म नहीं कश्फ़ेराज़का[3] ।।

हमसे पूछे कि इसी खेलमें खोई है उम्र ।
खेल जो लोग समझते है लगाना दिलका ।।

अभी ऐ 'शेफ़्ता' ! वाक़िफ़ नही तुम ।
कि बाते इश्कमे होती है क्या क्या ।।

दुश्मनके फ़ेलकी तुम्हे तौज़ीह[4] क्या ज़रूर ।
तुमसे फ़कत मुझे गिलए दोस्ताना था ।।

अर्ज़ तमन्नामे रहा बेकरार ।
शब वोह मुझे, मै उसे छेड़ा किया ।।
गैरको ही चाहे है अब 'शेफ़्ता' !
कुछ तो है जो यारने ऐसा किया ।।

कम-रगबतीसे[5] लेते है दिल, होशयार है ।
बढ़ता है मोल, शौके ख़रीदार देखकर ।।

है जॉ-ब-लब[6] किसीकी इशारतको देर है ।
देखे है उस निगाहको क़ज़ा और कज़ाको हम ।।

बचते हैं इस क़दर जो उधरकी हवासे हम ।
वाकिफ है शेवए दिले शोरिश अदासे हम ।।

---

[1]शराब; [2]संगीतका,
[3]भेद खोलने का, [4]स्पष्टीकरण,
[5]उपेक्षासे, बेपरवाहीसे,
[6]मरणासन्न ।

कम इल्तफ़ातियोंका[1] है बहम अहले बज़मको ।
शर्मिन्दा हो गये तेरी शर्मो-हयासे हम ।।

गह हमसे खफ़ा वो है गहे उनसे ख़फा हम ।
मुद्दतसे इसी तरह निभी जाती है बाहम ।।

अहले ज़माना देखते है ऐब ही को बस ।
क्या फायदा कि 'शेफ़्ता' ! अर्ज़े हुनर करे ।।

कहता हूँ जो "गैरसे न मिलिये" ।
कहता है कि "क्या मै बेवफ़ा हूँ ?"

जो हाल पूछना है तुम उससे ही पूछ लो ।
मुझको दमागेकिस्सये ग़महाये दिल नहीं ।।

हम आजतक छिपाते है यारोंसे राज़े इश्क़ ।
हालाँकि दुश्मनोसे यह क़िस्सा[2] निहाँ नहीं ।।

लग जाये शायद आँख कोई दम शबेफ़िराक ।
नासेहको ही ले आओ गर अफ़सानाख्वॉ नहीं ।।

कहते है तुमको होश नहीं इज़्तराबमें ।
सारे गिले तमाम हुए इक जवाबमें ।।

इस नौबहारे हुस्नको बदनाम मत करो ।
थी 'शेफ़्ता'के पहले ही शोरिश दमाग़में ।।

दोनोंका एक हाल है यह मुद्दआ हो काश !
वो ही ख़त उसने भेज दिया क्यों जवाबमें ।।

अफसुर्दा ख़ातिरी वोह बला है कि 'शेफ़्ता' !
ताअ़तमें कुछ मजा है न लज्जत गुनाहमें ।।

---

[1]कृपाओंका; [2]छुपा हुआ ।

हैं दिलको शुक्रेवफ़ाएउदूसे बेताबी।
करूँ मैं कुछ गिलएलुत्फ़ गर अताब न हो॥
—शायर, जनवरी १९४९, पृ० ४६

हाय वोह 'शेफ़्ताकी' बेताबी।
थाम लेना वोह तेरे महफ़िलको॥

इतनी भी बुरी हैं बेकरारी।
अब आपसे उन्स कम करेंगे॥

न पूछो 'शेफ़्ता' का हाल साहब!
यह हालत है कि अपनेमें नहीं है॥
—निगार, अक्तूबर १९४६, पृ० ५९

७ अगस्त १९५०

९७

तसकीन

मीर हुसेन 'तसकीन' मीर अहसनके पुत्र थे और दिल्लीमे उत्पन्न हुए थे। प्रारम्भमे शाह नसीरसे कविता संशोधन कराते थे। उनकी मृत्युके बाद मोमिनके शिष्य हुए। मोमिनके शिष्योंमे ये बड़े पायेके शायर थे। इन्होने मोमिनका ठीक-ठीक अनुसरण किया। गुरु-शिष्यके कलाममे इतना साम्य है कि दोनोका कलाम खलत-मलत कर दिया जाय तो किसका कौन-सा कलाम है, फिर यह पहचानना दिक्कत तलब हो जायगा।

आजीविकाकी खोजमे लखनऊ और मेरठ गये, फिर रामपुर गये। वहाँके नवाब यूसुफ अलीखाँने इनकी अच्छी प्रतिष्ठा की। ५० वर्षकी आयु पाकर सन् १८४९ मे वही समाधि पाई। इनके पुत्र मीर अब्दुल रहमान 'आसी' रामपुरमे नवाब कल्ब अली खाके समय तक रहे। ये भी अच्छे शायर थे।

जिस वक़्त नजर पड़ती है उस शोखपै 'तसकीन'!
क्या कहिये कि जीमें मेरे क्या-क्या नहीं आता॥

कूचये यारमें 'तसकी' मैंने।
पॉव रक्खा था कि सर याद आया॥

यह तो सच है कि जो तुम चाहोगे कर गुजरोगे।
पर यह मुमकिन नहीं हमपर कभी बेदाद न हो॥

अभी इस राहसे कोई गया है।
कहे देती है शोख़ी नक़्शे पाकी॥

——इन्तकादियात, भाग २, पृ० १४५

नसीम

मिर्ज़ा असगर अलीख़ाँ 'नसीम' नवाब आकाअलीख़ाँके पुत्र थे। १७९४ ई० मे दिल्लीमे उत्पन्न हुए। पिताकी मृत्युके बाद भाइयोंसे अनबन होनेके कारण वाजिदअलीके जमानेमे लखनऊ जाकर बस गये थे। समस्त जीवन भरण-पोषणकी चिन्ताओमे व्यतीत हुआ, किन्तु कभी किसीसे सहायताकी याचना नही की। अत्यन्त स्वाभिमानी, धार्मिक और सहिष्णु थे। गदरके वाद मुशी नवलकिशोर प्रेसमे 'अलिफ लैला'के अनुवादककी हैसियतसे नौकर हो गये थे, परन्तु एक भागका अनुवाद करके ये वहाँसे पृथक हो गये। लखनऊमे उन दिनो लखनवी रग बहुत गहरा छाया हुआ था। फिर भी इन्होने देहलवी रगमे शायरी करके बडी ख्याति और सफलता प्राप्त की। ये वहुत अधिक कहते थे, परन्तु कलामको सम्भालकर नही रखते थे। इसलिए वहुत-सा कलाम नष्ट हो गया। इनके शिष्य अब्दुलवाहिदने किसी तरह कलाम सकलन करके एक दीवान छपवाया भी तो ये उसे अपनी प्रतिष्ठाके अनुकूल नही समझते थे। इनके कलामको मिर्जा गालिव भी पसन्द करते थे।

नसीमको दिल्लीकी भाषा और अपने देहलवी होनेपर नाज़ था। वे देहलवी रगके और भाषाके प्रबल अनुयायी थे। फिर भी कई अहले लखनऊ उनके शिष्य थे। जिनमे—अब्दुल्लाख़ाँ 'महर', अशरफअली 'अशरफ' और अमीर अल्लाह 'तसलीम' प्रसिद्ध है।

कहे देती हैं ये नीची निगाहें।
कि बालाए जमीं क्या-क्या न होगा॥

नाम मेरा सुनते ही शरमा गये।
तुमने तो खुद आपको रुसवा किया॥

हाथमें ख़ंजर कमरमें तेग तेज।
यह इरादे एक मुश्ते ख़ाक पर॥

आँखोमें है लिहाज तबस्सुम फिज़ा है लब।
शुक्रे खुदा कि आज तो कुछ राह पर आप हैं॥

इन्तख़ा०, भा० २, पृष्ठ १३८

नाम मेरा सुनते ही शरमा गये।
तुमने तो ख़ुद आपको रुसवा किया॥

हाथमें ख़ंजर कमरमें तेग़ नेज।
यह इरादे एक मुश्ते ख़ाक पर॥

आँखोमें है लिहाज तबस्सुम फ़िजा है लब।
शुक्रे ख़ुदा कि आज तो कुछ राह पर आप है॥

इन्तका०, भा० २, पृष्ठ १३८

सालिक

[स० १८६३ ई०]

कुरवान अली, 'सालिक' नवाब मिर्ज़ा आलमके पुत्र थे और हैदराबादमें उत्पन्न हुए थे, किन्तु परवरिश देहलीमे हुई। पहले मोमिनके फिर ग़ालिबके शिष्य रहे। गदरके बाद पहले अलवर गये और वहाँसे हैदराबाद चले गये थे। इनका कलाम भी मोमिनका अनुसरण है।

ऐतबारे निगहेनाज़ है क्या-क्या उनको।
क़त्लको आते हैं और हाथमे शमशीर नहीं[1]॥

तुम भी वही कहो तो कहे इक जहाँ बजा।
मैं भी वही कहूँ तो कहे इक जहाँ ग़लत[2]॥

फिरते हैं दादख़्वाह तेरे हश्रमें ख़राब।
तू पूछता नहीं तो कोई पूछता नहीं॥

नहीं इकबार भी अब सुननेकी ताक़त दिलमे।
पहले सौ बार तेरा नाम लिया करता था॥

—इन्तक़ादियात, भाग २, पृ० १४१

१० अगस्त १९५०

---

[1]इस सादगीपै कौन न मर जाय या ख़ुदा!
लड़ते है और हाथमे तलवार भी नहीं॥ —ग़ालिब

[2]जबमें चलूँ तो साया भी अपना न साथ दे।
जब तुम चलो ज़मीन चले, आसमाँ चले॥ —जलील

१००

हाली

[१८३७—१९१४ ई०]

ख्वाजा अलताफहुसेन 'हाली' १८३७ मे दिल्लीसे ४०–५० मीलके अन्तरपर पानीपतमे एक दरिद्र परिवारमे उत्पन्न हुए। ९ वर्षके भी न होने पाये थे कि माँ-बाप इस असार ससारसे कूच कर गये। भाई-बहनोके आश्रयमे १६ वर्षकी आयुतक रहना पडा। कुरान बचपनमे ही कण्ठस्थ कर लिया था, और १६ वर्षकी उम्रमे फारसीकी अच्छी योग्यता प्राप्त करली थी। अभी आपने अरबीका अभ्यास प्रारम्भ ही किया था कि अभिभावकोने १७ वर्षकी आयुमे बलात् शादीके बन्धनमे बाँध दिया, परन्तु आप उस बन्धनसे भाग निकले और १॥ वर्ष तक अज्ञातवास करके दिल्लीमे अरबी-फारसीका अभ्यास करते रहे।

१८५६ ई० मे हिसार जिलेके कलेक्टरके आफिसमे एक घटिया-सी नौकरी मिली, परन्तु वह भी १८५७ के विप्लवके कारण छोड़नी पडी और ५–६ वर्ष पानीपतमे बेकारीके काटने पडे। १८६३ ई० मे जहाँगीराबादमे नवाब शेफ्ताके पुत्रके अध्यापनका कार्य मिला।

नवाब शेफ्ता उर्दू-फारसीके मँजे हुए शायर और आलोचक थे। उनके सत्सगसे हालीको भी शायरीका शौक हो गया।

प्रारम्भमे हाली शायरीमे शेफ्ताके ही शिष्य हुए, फिर मिर्जा ग़ालिबके शिष्य होनेका भी सौभाग्य प्राप्त हुआ, किन्तु ग़ालिबकी मुश्किल

पसन्दी और दार्शनिकताके कारण हाली शेफ्तासे ही अधिक मशवरये सुख़न लेते थे। स्वय हालीने लिखा है कि मुझे "ग़ालिबके मशवर-ओ सलाहकी निसबत नवाब साहबकी सुहबतसे ज्यादा फायदा हुआ है।"

हाली सुखनमें 'शेफ़्ता'से मुस्तफीद हूँ।
'ग़ालिब'का मौतक़िद हूँ, मुकल्लद हूँ 'मीर'का ॥[1]

नवाब शेफ्ताकी ८ वर्ष मुलाजमतके बाद मुशी प्यारेलाल 'आशोब' देहलवी (मीर मुंशी गवर्नर पजाब) की सिफारिशपर हाली गवर्नमेण्ट बुक डिपो लाहौरमे नियुक्त किये गये। अग्रेज़ीसे अनुदित उर्दू पुस्तकोके संशोधनका उत्तरदायित्व आपको दिया गया। जिसे आपने अत्यन्त परिश्रम और योग्यतासे निभाया। वहाँ रहकर आपको यूरोपियन साहित्यकी गति-विधिका काफी परिचय मिला। उसकी प्रगति और शैलीसे प्रभावित होकर आपने उर्दू-शायरीमें भी परिवर्तन आवश्यक समझा, और उसे प्राकृतिक और कोमी रंगसे सज्जित किया।

१८७४ ई० मे कर्नल हालेण्ड (डाइरेक्टर शिक्षाविभाग पजाब) ने लाहौरमे नवीन ढगके मुशायरोका प्रचलन किया। इन मुशायरोंमे मिसरा तरहपर गजल न कहकर भिन्न-भिन्न उपयोगी विषयोपर कविताएँ पढी जाती थी। इन्ही मुशायरोकी नीवपर वर्त्तमान नज्मका महल निर्माण हुआ।

हालीने भी बडे उत्साहसे इनमे भाग लिया और इश्किया शायरीको सलाम करके जीवन पर्यन्त कौमीनज्मे लिखते रहे।

कुछ अर्सेके बाद हालीकी नियुक्ति दिल्लीके अरबिक स्कूलमे हुई। यह उनके लिए स्वर्णयुग सिद्ध हुआ। वहाँ उनका मुसलमानोंके परम-हितैषी अलीगढ यूनिवर्सिटीके जन्मदाता सर सैयद अहमदसे परिचय

---

[1]—शायरीमे 'मोमिन' से लाभान्वुत हूँ 'गालिब' का श्रद्धालु हूँ और 'मीर'का अनुयायी हूँ। यानी रग मुझे मीरका पसन्द है।

हुआ, और यही परिचय शनैः शनैः मित्रतामे परिणत हो गया। १८८८ ई० से हैदराबादके प्रधान मन्त्री अलीगढ यूनिवर्सिटी आये, तभी सर सैयद अहमदके अनुरोधपर हालीको ७५ रु० मासिककी वृत्ति बाँध दी, जो बादमे १०० रु० कर दी गई।

हाली सन्तोषी जीव थे। वृत्ति बन्धते ही स्कूलकी नौकरी छोडकर पानीपत चले गये और वहीं रहकर जीवन पर्यन्त उर्दू-साहित्यकी सेवा करते रहे। भारत सरकारने भी आपकी साहित्यिक सेवाओंके फलस्वरूप 'शम्शुलउलमाँ' जैसी सर्वोच्च पदवीसे विभूषित किया। ३० सितम्बर १९१४ को आपकी मृत्यु हुई।

हालीकी मृत्युसे उर्दू ससारमे कोहराम मच गया। पत्रोंके विशेषाक निकाले गये। स्मृति स्वरूप पानीपतमे 'हाली मेमोरियल हाई स्कूल' की स्थापना की गई। १९३५ म उनकी बड़े-बडे शहरोमे शताब्दि मनाई गई। पानीपतमे उनकी समाधिपर बृहत मुशायरेका आयोजन किया गया। जिसके सभापति नवाब-भोपाल थे।

हाली मृदु और मितभाषी थे। कभी किसीकी कटु-आलोचना या बुराई नही करते थे। सदाचारी और धार्मिक थे। गरीबोकी सहायताको सदैव प्रस्तुत रहते थे। भद्रता, सच्चाई, सादगी, सरलता, नम्रता, सतोषके मूर्तिवान रूप थे। उनके व्यवहार और व्यक्तित्वसे लोग प्रभावित होते थे। उनके हृदयमे किसी सुनयनाके तीर टीस नही पहुँचाते थे, वे अपनी कौमकी दुर्दशाके कारण विकल रहते थे।

हालीकी प्रकृति गज़लके अनुकूल नही थी। तगज्ज़ुलके लिए जिन तन्तुओंकी आवश्यकता होती है, वे उनमे नही थे। वे स्वभावत. धर्मभीरु और कौमी खिदमतगार थे। हुस्नोइश्कसे उन्हे कोई लगाव न था। शराब छूते न थे, परन्तु तत्कालीन वातावरण ही ऐसा था कि हाली तो दरकिनार कुँजडे, बिसाती भी उन दिनो शायरीके रगमे सराबोर रहते थे।

लखनऊमें आतिश ओ नासिख़के मुशायरोंने आस्मान सरपर उठा रक्खा था। देहलीमे ज़ौक ग़ालिब ओ मोमिन की खुशअलहानियाँ कयामत ढा रही थीं। उन दिनों शेरो-शायरीके चर्चे आम थे। गली-गली और कूचे कूचेमे मुशायरे होते थे। जिसे देखो उसीके सरपर शायरीका भूत सवार था। हर तबक़ेमे शायरोंकी आवभगत होती थी। इसी वातावरणमे हालीकी जवानीने अँगड़ाई ली, और सयोगसे उन्हे मुलाज़मत भी नवाव 'शेफ़्ता' के यहाँ मिली। जो बहुत अच्छे शायर होनेके अतिरिक्त शेरोसुख़नके वड़े माहिर थे। उन्हीके सत्सगसे हालीकी भी इस ओर प्रवृत्ति हुई और परम्पराके अनुसार गजल कहने लगे, परन्तु तगज्जुलका रग पक्का नही चढा था। वे कव तक नकली आशिक और मसनूई शराबी ने रहते? रग अस्ल और गहरा होता तो उम्रभर इस कूचेकी खाक छानते। कच्चा रग था, एक छीटेमे ही घुल गया।

गदरके वाद जो मुसलमानोंकी स्थिति हुई, उससे हाली अधिक दिन तक आँखे बन्द किये न रह सके। मुगलबादशाही और अवधकी नवाबी जिस बेरहमीसे अग्रेजोने समाप्त की थी, उसका अक्स हालीके दिलपर मौजूद था। बेगमात—बावर्चिन, टहलनी और रखैल बन गई, शहज़ादे ठेला जोतने और भीख माँगने लगे। नवाबज़ादे जूतियाँ चटखाते घूमने लगे, और निराश्रित कलाकारोका जो हश्र हुआ, उसे महसूस करके हालीके हृदयमे हूक उठती थी, परन्तु परिस्थिति ऐसी थी कि कुछ कर नही सकते थे।

हालीकी मसे अभी भीग भी न पाई थी कि इतना बड़ा इन्कलाब आँखोंके सामनेसे गुजर गया। यह आश्चर्यकी बात है कि जो शायर इन बादशाहों-नवाबोसे वाबिस्ता थे, वे उनके मिट जानेपर और खस्ता-खराब हो जानेपर भी 'गमेजाना' के मर्सिये पढते रहे। घरमे धू-धू करके आग जलती रही, मासूम बच्चो और अबलाओका करुण क्रन्दन सुनते रहे, फिर भी वस्ल-ओ-दीदारके ख्वाब देखनेकी अभिलाषामे आँखे बन्द

किये पडे रहे । जब अबेका अबा ही ऐसा था, तब हाली ही क्या करते ? और क्या करना चाहिए और क्या नही, यह सोचनेका शऊर भी तब हालीको कहाँ था ? अत वह भी नकली आशिक बने उस उजडे दयारमे मसनूई आहे भरने लगे, परन्तु ये आहे उन्हे अधिक दिन नही भरनी पडी और गवर्नमेण्ट बुकडिपो लाहौरमे नियुक्ति हो जानेसे उन्हे जल्दी ही छुटकारा मिल गया ।

लाहौर आकर हालीने उस बहुरूपिये स्वागको उतार फेंका और वे अपने वास्तविक रूपमे आ गये । वे शायरके बजाय चारण बन गये । और घर-घर अलख जगा दी । हर मस्जिद-ओ-खानकाहमें अज़ान देनी प्रारम्भ कर दी । उनका एक-एक पल मुसलमानोको जाग्रत करनेमे व्यतीत होने लगा ।

हालीने गद्य और पद्य द्वारा मुसलमानोमे जीवनज्योति जलादी । सर सैयदकी सुहवतने और भी चार चाँद लगा दिये ।

हमे अपनी प्रथम पुस्तक 'शेरो शायरी' मे हालीका उल्लेख एक नज्मगो शायरकी हैसियतसे करना था । तब उनका 'मुसद्दसे हाली' हमारे सामने था, और उनकी गजलोका दीवान हमने देखा नही था । केवल 'मुसद्दसेहाली' देखकर यह अनुमान कर लिया था कि "हाली ऊँचे पायेके शायर नही थे । यदि वे केवल गज़ल लिखते रहते तो उनका स्थान कही भी न होता । मीर, गालिब, मोमिन, और ज़ौक तो कुजा उनके शिष्योकी श्रेणीमें भी स्थान न मिलता, परन्तु नज्मगोईकी बदौलत उसी बज्मेअदबमे वे मसनदके सहारे बैठे हुए है ।"

और यह हमारा अनुमान निराधार नही था । हालीके समकालीन दाग और अमीरका उन दिनो बोलबाला था, और हालीकी आवाज़ उनके आगे नक्कार खानेमे तूतीकी आवाज़ होकर रह गई थी । हालीकी यह गज़ल—

है जुस्तजू कि ख़ूबसे है ख़ूबतर कहाँ ?
अब ठहरती है देखिये जाकर नज़र कहाँ ?

या रब ! इस इख़्तलातका अंजाम हो बख़ैर ।
था उसको हमसे रब्त मगर इस क़दर कहाँ ?

इक उम्र चाहिए कि गवारा हो नेशे इश्क़ ।
रक्खी है आज लज़्ज़ते ज़ख़्मे जिगर कहाँ ?

हम जिसपै मर रहे है, वोह है बात ही कुछ और ।
आलममें तुझसे लाख सही, तू मगर कहाँ ?

"दाग' के इस चुलबुले शेरके सामने फीकी पड़ गई—

मयख़ानेके क़रीब थी मस्जिद भलेको दाग़ ।
हर एक पूछता है कि "हज़रत इधर कहाँ ?"

और हालीका यह शेर —

उसके जाते ही हुई क्या मेरे घरकी सूरत ?
न वोह दीवारकी सूरत है न दरकी सूरत ॥

दाग़के इस शेरके आगे जनताको पसन्द न आया—

बज़्मेदुश्मनमें न खिलना गुलेतरकी सूरत ।
जाओ बिजलीकी तरह आओ नज़रकी सूरत ॥

परन्तु उनकी गजलोका दीवान देखकर अब हमारी धारणा बदल गई है । यद्यपि हमारा आज भी यही विश्वास है कि हालीको शायरीसे कुदरती लगाव नही था, वे तत्कालीन शेरो-सुख़नके आम चर्चोंसे प्रभावित होकर और शेफ्ता की सुहबत पाकर इस ओर प्रवृत्त हुए थे । फिर भी हम यह निसंकोच कहेगे कि अगर वे नज्मके बजाय गजल ही कहते रहते तो भी उनका मर्तबा दाग और अमीर से ऊँचा होता । आम जनताकी रुचिसे कलाकी परख नही की जा सकती । आम जनताकी राय का क्या मूल्य ?

वह गालिब और मोमिनके होते हुए ज़ौकको, मुसहफीके समक्ष इंशा और जुरअतको तरजीह देती रही है। वर्तमानमे भी आम जनताकी नज़रों-मे फिल्मी गायकोके समक्ष वास्तविक कलाकारोका क्या मूल्य है ?

मुसद्दसे हालीके बीसो सस्करण प्रकाशित हुए है और होते रहेगे, उसकी बदौलत उन्हे अमर ख्याति प्राप्त हुई। पर यह ख्याति हालीकी शायरीकी ख्याति नही, उनके मुस्लिम-हितैषी भावोकी ख्याति है। लोग उन्हे शायराना तख़ैयुलकी वजहसे नही, कौमीसेवककी हैसियतसे जानते है। हालीका कवित्व मुसद्दसमे नही, उनकी गज़लोमे बोलता है। यह दूसरी बात है कि उनका मुसद्दस आज भी हर मुस्लिम घरकी आल्मारीमें रखा हो, परन्तु मजनूँ गोरखपुरीके शब्दोंमे—"बमुश्किल दो-चार ऐसे निकलेगे जो उसे पढ़ते भी हों।"[१]

मुसद्दसको पढ़कर मुसलमानोंकी तत्कालीन स्थितिका तो दिग्दर्शन होता है, परंतु उस कवित्व शक्तिका आभास नही मिलता, जो नज्म कहने से पहले उनकी गज़लोंमे प्रस्फुटित हुई थी। हालाँकि उन्होने बहुत थोड़ी गज़ले कही थी, परन्तु जो भी कही थीं उनकी शायराना अज़मतके लिए काफी थी।

हालीका गज़ल गोई छोड़कर नज्मगोई अख्तियार कर लेना बहुतसे उर्दू-साहित्यिकोको पसन्द नही आया, वे इसे उर्दू शायरीकी बहुत काफी हानि समझते है। उनके इस परिवर्तनको हिकारतसे देखते है और उन्हे 'क़ौमी भाट' या 'वाइज़े शायर' कहकर उनका मज़हका उड़ाते है, और सर सैयद अहमदकी सुहबतको तो हालीके पतनकी चरम सीमा समझते है।[२]

---

[१]—तनकीदी हाशिये, पृ० २३६

[२]—मजनूँ गोरखपुरी लिखते है—'मुश्किलसे कोई इस खयालसे मुवानसत पैदा कर सकता है कि हाली 'कौमी भाट' या 'वाइज़े शायर' के

सर सैयदकी सुहबतसे हाली शायर नही रहे, वे वाइज़ और नासेह (व्याख्याता, उपदेशक) बन गये। उनके इस युगके कलाममे वोह शीरीनी और चमक कहाँ जो इससे पहलेके अशआरमे पाई जाती है। हाली स्वयं फर्माते है—

बुलबुलकी चमनमे हमज़बानी छोड़ी।
बज़्मे शुअरामें शेरख़्वानी छोड़ी॥
जबसे दिले ज़िन्दा तूने हमको छोड़ा।
हमने भी तेरी रामकहानी छोड़ी॥

यानी वे खुद तस्लीम करते है कि दिले ज़िन्दा न रहनेके सबब शेरख्वानी छोड़ दी, और दिले ज़िन्दा मौलवियतमे रहता नही। बकौल जोश मलीहाबादी—"**मौलवियत है मौतसे बदतर**"। दिल है तो जहान है[१]।

अलावा कुछ और भी थे। यह भी ज़मानेका कितना बड़ा ज़ुल्म है, कि हाली जैसा शायर सर सैयदका 'तावअमुहमिल' (मूक सेवक) या ज्यादा से ज़्यादा ज़मीमा (पत्ती) होकर रह जाये और सज्जाद हुसेन मरहूमके तम्सखरेका निशाना बने—

सैयदकी सरगुज़िश्तको हालीसे पूछिये।
ग़ाज़ीमियाँका हाल डफालीसे पूछिये॥

—तनकीदी हाशिये, पृ० २३७

[१]—मौलाना अब्दुलकलाम आजाद 'गुबारे खातिर' में एक जगह लिखते है—

"मै आपको बतलाऊँ मेरी कामरानियोका राज़ क्या है? मै अपने दिलको मरने नही देता। कोई हालत हो, कोई जगह हो, उसकी तड़प कभी धीमी नही पडेगी। मै जानता हूँ कि जहाँने जिन्दगी (ससारी जीवन) की

मुझे यह डर है दिलेज़िन्दा ! तू न मर जाए ।
कि ज़िन्दगानी इबारत है तेरे जीनेसे ॥
—अज्ञात

सारी रौनके इसी मयकदये ख़िल्वत (मधुशाला) के दमसे है । यह उजड़ा तो सारी दुनिया उजड़ गई । . . . . . बहारके सारे साजोसामाने इशरत (सुख ऐश्वर्यके साधन) मुझसे छिन जाँये, लेकिन जब तक यह नही छिनता मेरे ऐशोतरबकी सरमस्तियाँ कौन छीन सकता है ?" (पृ ९०)

"लोग हमेशा इस खोजमे लगे रहते है कि ज़िन्दगीको बडे-बड़े कामोके लिए काममे लाएँ। लेकिन नही जानते कि यहाँ सबसे बडा काम खुद ज़िन्दगी है। यानी ज़िन्दगीको हँसी-ख़ुशी काट देना । यहाँ इससे ज्यादा सहल-काम कोई नही हुआ कि मर जाएँ और इससे ज्यादा मुश्किल काम कोई नही हुआ कि ज़िन्दा रहिये । जिसने यह मुश्किल हल कर ली, उसने ज़िन्दगीका सबसे बडा काम अंजाम दे दिया ।" (पृ० ९३)

"ख़ुश रहना महज़ एक तबई अहतयाज (प्राकृतिक सुरक्षा) ही नही है बल्कि एक अख़लाकी जिम्मेदारी है।. . . . . . .हमारी हर हालतकी छूत दूसरोको भी लगती है । इसलिए हमारा अख़लाकी फर्ज़ हुआ कि ख़ुद अफसुर्दा ख़ातिर होकर दूसरोको अफसुर्दा ख़ातिर (मनहूस शक्ल) न बनाएँ। हमारी ज़िन्दगी एक आईनाख़ाना है । यहाँ हर चेहरेका अक्स बयक वक्त (एक साथ) सैकडो आइनोसे पडने लगता है । अगर एक चेहरेपर भी गुबार आ जायगा तो सैकडो चेहरे गुबार आलूदा हो जायेगे ।" (पृ० ९४)

"यह अजीब बात है कि मज़हब, फलसफा और इख़लाक तीनोने ज़िन्दगीका मसला हल करना चाहा, और तीनोमे ख़ुद ज़िन्दगीके ख़िलाफ रुझान पैदा हो गया । आमतौरपर समझा जाता है कि एक आदमी

क्या वजह थी कि हालीका दिल जिन्दा नही रहा और वे नग़मा सराई करते-करते ये नासिहाना बोल बोलने लगे—

सुख़नपर हमे अपने रोना पड़ेगा।
यह दफ़्तर किसी दिन डुबोना पड़ेगा॥
हुए तुम न सीधे जवानीमे 'हाली'।
मगर अब मिरी जान होना पड़ेगा॥

और क्यो वे सायए जुल्फ़े बुताँसे भाग खडे हुए ?

अब भागते है सायएज़ुल्फ़े बुताँसे हम।
कुछ दिलसे है डरे हुए कुछ आस्माँसे हम॥

और क्यो वे भरी जवानीमे बूढेहोकर विगत जवानीको निराशाभरी नजरो से झाँकनेको मजबूर हुए ?

गो जवानीमे थी कजराई बहुत।
पर जवानी हमको याद आई बहुत॥

इन सबका उत्तर यही है कि हाली १८५७ के बाद हुई मुसलमानोकी शोचनीय स्थितिको नजरन्दाज नही कर सके। वोह उपलेकी आगकी तरह उनके हृदयमे बेमालूम सुलगती रही।

कर्नल हालेण्डके लाहौरी मुशायरोने उसे और भी कुरेद दिया।

जितना ज्यादा बुझा दिल और सूखा चेहरा लेकर फिरेगा, उतना ही ज्यादा मज़हबी, फ़लसफी और इख़लाकी किस्मका होगा। गोया इल्म और तकद्दुस दोनोके लिए यहाँ मातमी जिन्दगी जरूरी हुई। मजहब और रूहानियतकी दुनियामे जुहदे ख़ुश्क (नीरस धार्मिकता) और तबए ख़ुनक (शीतल स्वभाव) की इतनी गरम बाजारी हुई कि अब जुहद मजाजी और हक आगाही (धार्मिक और सत्यनिष्ठ) के साथ किसी हँसते हुए चेहरेका तसव्वुर ही नही किया जा सकता।" (पृ० ९५)

वहाँ गवर्नमेण्ट बुक डिपोमे रहकर यूरोपियन साहित्यके परिशीलनसे उनका अध्ययन बढा और दृष्टि व्यापक हो गई। वे तगज्जुलके सीमित क्षेत्रसे भाग निकले—

हाली ! अब आओ पैरवीए मगरबी करें।
बस इक्तदाए 'मुसहफ़ी' ओ 'मीर' कर चुके ॥

सर सैयद अहमदकी सुहबतने उस आगको और भी भडका दिया। स्वय तो तगज्जुलके सीमित और इश्किया बन्धनसे भागे ही दूसरोको भी बा-आवाज बुलन्द भाग निकालनेकी तरगीब देने लगे—

कुछ कर लो नौजवानो ! उठती जवानियाँ हैं।

हालीने गद्य और पद्य द्वारा मुस्लिम कौम और उर्दू-साहित्यकी चिर-स्मरणीय सेवा की है। वे शायरकी हैसियतसे नही, अपितु एक कौमी नेता और साहित्यस्रष्टाके नाते प्रसिद्ध है। उनकी अमूल्य रचनाएँ ७ गद्यमे और ७ पद्यमे है। जिनके कई-कई सस्करण हो चुके है—

हालीके महत्वपूर्ण ग्रथ

१—**तिरियाके मसमूम**—इमामुद्दीन ईसाईके एतराजोके जवाबमें १८६७ ई० से पूर्व लिखी गई।

२—**मजालिसउलनिसा**—१८६३ ई० मे लाहौरमे छपी। इस पुस्तक-पर कर्नल हालेण्डने दिल्लीके एक शिक्षा सम्बन्धी दरबारमे हालीको चारसौ रुपये पुरस्कार दिलाये। यह दो जिल्दोमे है। इसमे स्त्रियोकी भाषा और मुहावरे बरते गये है।

३—**मज़ामीने हाली**—धार्मिक, समालोचनात्मक और शिक्षा सम्बन्धी लेखोका संग्रह है।

४––हयाते सादी––१८७२ के करीब लिखी गई। इसमे फ़ारसी-के प्रसिद्ध कवि 'शेख सादी' का जीवन चरित्र, कलाम आदिका विस्तृत वर्णन है।

५––मुकदमए शेरोशायरी––जिस तरह हालीने उर्दू नज्ममें मुसद्दस लिख कर हिन्दुस्तानके मुसलमानोकी मजहबी और कोभी जिन्दगीमे एक महान परिवर्तन कर दिया, उसी तरह गद्यमे यह पुस्तक लिखकर उर्दू-शायरीमे एक हलचल पैदा कर दी।

६––यादगारे गालिब–– हालीने अपने उस्ताद मिर्जा गालिबके सम्बन्धमे अनेक महत्वपूर्ण बाते––उनकी जीवनी, सस्मरण, पत्र, कलाम आदि बडे आकर्षक पूर्ण ढगसे बयान की है।

७––हयातेजावेद–– एक हजार पृष्ठकी इस पुस्तकमे सर सैयद अहमदके सम्बन्धमे विस्तृत वर्णन है।

८––मसनवियात–– १८७४ ई० मे ये मसनवियाँ लाहौरके मुशायरोमे पढी गई।

९––मनाजातेबेवा–– इसमे अत्यन्त व्यथा पूर्ण ढगसे विधवा स्त्रियोकी शोचनीय स्थितिका नज्ममे वर्णन किया है।

१०––चुपकी दाद–– इसमे स्त्रियोकी खूबियो और उनके कर्तव्योका उल्लेख नज्ममे किया है।

११––शिकवए हिन्द–– इसमे इस्लामके भूतकालीन गौरव और वर्तमान पतनका नज्ममे दिग्दर्शन कराया गया है।

१२––मुसद्दसे हाली–– इसमे मुसलमानोके भूतपूर्व वैभव और

वर्तमान स्थितिका अत्यन्त प्रभावोत्पादक ढगसे नज्ममे उल्लेख किया है ।

१३——दीवाने हाली—— इसमे हालीकी गजलो, रूवाइयों, कसीदो मर्सियो आदिका सग्रह है ।

१४——रूवाईयात—— इस पुस्तकका अग्रेजीमे भी अनुवाद छपा है ।

हालीके गजलोके दीवानमे उनकी ११६ गज़ले मिलती है । जिनमे १३०० के करीव शेर होगे । उनके पुराने और नये खयाल दोनोकी मिलो-जुली गज़ले है । पैरविये मगरवी करनेसे पहले हाली तगज्जुलके रगमे फर्माते थे——

दिल न ताअ़तमें लगा जव तो लगाया ग़मे इश्क ।
किसी धन्देमें तो आखिर यह लगाया होता ॥

इश्क सुनते थे जिसे हम, वोह यही है शायद ।
खुदवखुद दिलमें है इक शख्स समाया जाता ॥

वही हाली फिर इस तरहके वोल वोलने लगे——

ऐ इश्क ! तूने अक्सर कौमोंको खाके छोड़ा ॥

नज्मगोई अख्तयार करनेके वाद हालीने गजले लिखना एक तरहसे वन्द कर दिया था । किसीके वहुत आग्रह करनेपर लिखते भी थे तो, उसमे इश्किया रगके वजाय ईश्वरीय या नसीहत आमेज रग होता था। गज़लका प्रत्येक शेर एक दूसरे शेरसे अर्थमे कोई वास्ता न रक्खे, इस पुराने रिवाज-को तोडकर उन्होने ऐसी गज़ले भी कही, जिनके शेर परस्पर सम्वन्धित थे । हम यहाँ उनके नये और पुराने ख्यालके दोनों किस्मोंके मिले-जुले गगा-जमनी शेर दे रहे है । ताकि पाठक अपनी वृद्धि वलसे उन्हे चुन सके——

बशरसे कुछ हो सके न 'हाली' तो ऐसे जीनेसे फ़ायदा क्या ?
हमेशा बेकार तुझको पाया, कभी न सरगर्मेकार[1] देखा ॥

[८]ऐ इश्क़ ! तूने अक्सर क़ौमोंको खाके छोड़ा ।
जिस घरसे सर उठाया, उसको बिठाके छोड़ा ॥
अबरार[2] तुझसे तरसाँ अहरार[3] तुझसे लरजाँ ।
जो ज़द[4] पै तेरी आया उसको गिराके छोड़ा ॥
रावोंके[5] राज छीने, शाहोंके ताज छीने ।
गर्दनकशों[6]को अक्सर नीचा दिखाके छोड़ा ॥
क्या मुग़नियोंकी[7] दौलत, क्या जाहिदोंका तक़्वा[8] ।
जो गंज[9] तूने ताका उसको लुटाके छोड़ा ॥
जिस रहगुज़रपै[10] बैठा तू गौलेराह[11] बनकर ।
सनआँ-से[12] रास्तरौको[13] रस्ता भुलाके छोड़ा ॥

मयखानेकी ख़राबी, जी देखके भर आया ।
मुद्दतके बाद कल वाँ जा निकले थे क़ज़ारा[14] ॥

---

[1]व्यस्त, काममे लीन, [2]नेक लोग, [3]सभ्य मनुष्य,
[4]समक्ष, [5]राजाओके;
[6]घमण्डियोको, [7]पेशेवर संगीतज्ञोकी,
[8]संयम; [9]खजाना, [10]मार्गपर,
[11]वोह जिन, जो जंगलोमे मुसाफिरोको भटका देते है;
[12]एक वयोवृद्ध संयमी फकीर जिसके सात सौ भक्त थे । इश्ककी चपेटमे आकर एक ईसाई लड़कीपर आशिक हो गया, जिसके परिणाम स्वरूप उसे सूअर चराने-जैसा निकृष्ट कार्य करना पडा;
[13]सीधी राहपर चलनेवालेको, संयमीको; [14]संयोगसे ।

देख ऐ उम्मीद ! कीजो हमसे न तू किनारा ।
तेरा ही रह गया है ले-देके इक सहारा ॥
इक शख़्सको तवक़्क़ो बख़्शिशकी बे अमल है ।
ऐ ज़ाहिदो ! तुम्हारा है इसमे क्या इजारा ॥
दुनियाके खरख़सोसे चीख़ उठे थे हम अव्वल ।
आख़िरको रफ़्ता-रफ़्ता सब हो गये गवारा ॥
फिरते इधर-उधर हो किसकी तलाशमे तुम ।
गुम है तुम्हींमे यारो बाग़ेइरम तुम्हारा ॥

तुम किस चीजकी तलाशमे इधर-उधर भटक रहे हो ? तुम्हारी खोई हुई दौलत खुद तुम्हीमे मौजूद है । यानी तुम्हारे प्रयत्नसे, परिश्रमसे वह तुम्हे फिर प्राप्त हो सकती है । बागेइरममे तात्पर्य यहाँ आत्माकी शान्तिसे है ।

यारब ! तलबेवस्ल हो या हो तरबे वस्ल .
जिस दिनको यह दोनो न हों वह दिन न दिखाना ॥
अफ़सोस कि गफ़लतमें कटा अह्दे जवानी ।
था आबे बका घरमें मगर हमने न जाना ॥
ली होशमे आनेकी जो साकीसे इजाज़त ।
फ़र्माया "खबरदार कि नाज़ुक है ज़माना" ॥

ईश्वर ! या तो मुझे तुझसे मिलनेकी अभिलाषा (तलबे वस्ल) रहे या मिलनेके आनन्द (तरबे वस्ल) मे रहूँ । इसके अतिरिक्त मुझे अन्य अवस्था न देखनी पडे ।

अफसोस कि जवानीका ज़माना गफलतमे गुजर गया । आबेबक़ा जिसके पीनेसे इन्सान हमेशा जिन्दा रहता है (यहाँ तात्पर्य शुभ परिणाम और चरित्रसे है) खुद हमारे पास मौजूद था । लेकिन हमने उसको इस्तेमाल नही किया ।

मुरशिदे कामिल (साकी) की हिदायत है कि शराबे मारफत (आत्म-ध्यान) के नशेमें चूर रहो। वह होशमे आनेकी इजाजत इसलिए नही देता कि होशमे आनेपर मद्यपके मुँहसे ऐसे शब्द निकलेगे, जिनसे दुनिया उसकी विरोधी हो जायगी।

जहाँमे 'हाली' किसीपै अपने सिवा भरोसा न कीजियेगा।
यह भेद है अपनी जिन्दगीका बस इसकी चर्चा न कीजियेगा॥
इसीमें है खैर हज़रतेदिल ! कि यार भूला हुआ है हमको।
करे वोह याद इसकी भूलकर भी कभी तमन्ना न कीजियेगा॥
कहे अगर कोई तुमसे वाइज़ ! कि कहते कुछ और करते हो कुछ।
ज़मानेकी ख़ू है नुक्ताचीनी, कुछ इसकी परवा न कीजियेगा॥

ऐ इश्क ! दिलको रक्खा, दुनियाका और न दीं का।
घर ही बिगाड़ डाला तूने बना-बनाया॥

एक आलमसे वफ़ाकी तूने ऐ 'हाली' मगर।
नफ़्सपर अपने सदा ज़ालिम जफ़ा करता रहा॥

नसीहत बेअसर है, गर न हो दर्द।
यह गुर नासहको बतलाना पड़ेगा॥
बहुत याँ ठोकरे खाई है हमने।
बस अब दुनियाको ठुकराना पड़ेगा॥
बशर पहलूमे दिल रखता है जबतक।
उसे दुनियाका गम खाना पड़ेगा॥

शबको ज़ाहिदसे न मुठभेड़ हुई ख़ूब हुआ।
नशः ज़ोरोंपै था शायद न छुपाया जाता॥
लोग क्यों शेख़को कहते है कि ऐय्यार है वोह।
उसकी सूरतसे तो ऐसा नहीं पाया जाता॥

दिल न ताअ़तमें लगा, जब तो लगाया ग़मे इश्क़ ।
किसी धन्धेमें तो आख़िर यह लगाया होता ।।*

इश्क़ सुनते थे जिसे हम वोह यही है शायद ।
ख़ुदबख़ुद दिलमे है इक शख़्स समाया जाता ।।
अब तो तकफ़ीरसे[1] वाइज़ नही हटता 'हाली' ।
कहते पहलेसे तो दे-लेके हटाया जाता ।।

मिलते ही उनके भूल गई कुलफ़तें तमाम ।
गोया हमारे सरपै कभी आस्माँ न था ।।
कुछ मेरी बेख़ुदीसे तुम्हारा ज़ियाँ नहीं ।
तुम जानना कि बज़्ममें एक ख़स्ता जाँ न था ।।
था कुछ न कुछ कि फाँस-सी इक दिलमें चुभ गई ।
माना कि उसके हाथमें तीरो सनाँ न था ।।†
जानी न क़दरेरहमते हक़ पारसाने कुछ ।
ठहरा क़ुसूरवार, अगर बेक़ुसूर था ।।‡

---

* अपना नही ये शेवा कि आरामसे बैठें ।
उस दरपै नही बार तो काबे ही को हो आये ।।
—ग़ालिब

[1]कुफ़्रका फतवा देनेकी आदतसे, जाति वहिष्कृत करनेकी मनोवृत्तिसे ।

†तुफंगो तीर तो ज़ाहिर न था कुछ पास क़ातिलके ।
इलाही फिर जो दिलपै ताकके मारा तो क्या मारा ।।
—ज़ौक़

‡मौक़ूफ़ जुर्म ही पै करमका ज़हूर था ।
बन्दा अगर क़ुसूर न करता क़ुसूर था ।।

क़लक और दिलमें सिवा हो गया।
दिलासा तुम्हारा बला हो गया॥
नहीं भूलता उसकी रुखसतका वक़्त।
वोह रह-रहके मिलना बला हो गया॥

जो करेंगे, भरेंगे खुद वाइज़!
तुमको मेरी खतासे क्या मतलब?
जिनके माबूद हूरों ग़िलमाँ हैं[1]।
उनको ज़ाहिद! खुदासे क्या मतलब॥

मुझमें वोह ताबेजब्ते शिकायत कहाँ है अब।
छेड़ो न तुम कि मेरे भी मुँहमें जबाँ है अब॥
आने लगा जब उसकी तमन्नामें कुछ मज़ा।
कहते हैं लोग जानका इसमें ज़ियाँ है अब॥

छेड़कर वाइजको 'हाली' खुल्दसे—
बिस्तरा क्यों अपना फिंकवाते हैं आप॥
आ रही है चाहे यूसुफ़से सदा।
"दोस्त याँ थोड़े हैं और भाई बहुत"॥

यूसुफको उनके भाइयोंने ईर्ष्यावश कुऐ (चाह) में डाल दिया था। शायरका इस शेरसे तात्पर्य यही है कि जो मुसीबतमें फँसादे, ऐसे भाई तो बहुत, परन्तु मुसीबतोंसे छुटकारा दिलानेवाले दोस्त बिरले ही होते हैं।

कर दिया चुप वाक़यातेदहरने[2]।
थी कभी हममें भी गोयाई[3] बहुत॥

---

[1]स्वर्गके सुखों और अप्सराओंकी अभिलाषाके लिए उपासना करना, ईश्वरभक्ति नहीं, दुकानदारी है।

[2]संसारकी स्थितियोंने; [3]बोलनेकी शक्ति।

उनके जाते ही यह क्या हो गई घरकी सूरत।
न वोह दीवारकी सूरत है न घरकी सूरत॥
किससे पैमाने वफा बाँध रही है बुलबुल!
कल न पहचान सकेगी गुलेतरकी सूरत॥

ऐ बुलबुल! तू क्या समझकर फूलसे वफादारीके वायदे ले रही है? इसका सौन्दर्य तो क्षणभगुर है। कलतक यह इतना कुम्हला जायगा कि तू पहचान भी न सकेगी।

देखिये शेख! मुसव्वरसे खिचे या न खिचे।
सूरत और आपसे बेऐब बशरकी सूरत॥
वाइजो! आतिशे दोजखसे जहाँको तुमने।
वह डराया है कि खुद बन गये डरकी सूरत॥
अपनी जेबोसे रहे सारे नमाजी हुशयार।
इक बुजुर्ग आते हैं मस्जिदमे खिज्रिरकी सूरत॥

मस्जिदमे एक वुजुर्ग निहायत दीनदारीकी वजअ-कतअ बनाये चले आ रहे हैं। तमाम नमाजियोको चाहिए कि वे अपनी जेबोकी हिफाजत करे। क्योंकि वे किसी न किसी सूरतसे उनकी जेबोंसे रुपया उडानेकी कोशिश करेगे। मुमकिन है जेब काट ले। या चन्दा ही मागने लगे।

उनको 'हाली' भी बुलाते थे घर अपने महमाँ।
देखना आपकी और आपके घरकी सूरत॥

आन निकले थे कभी मस्जिदमें हम।
तूने जाहिद! हमको शरमाया बहुत॥

बज्मेमय अच्छी है, जो दुनिया है ऐ मयख्वार! हेच।
याँ समझ लेते तो है दुनियाको दमभर यार! हेच॥

काटिये दिन जिन्दगीके उन यगानोंकी तरह।
जो सदा रहते है चौकस पासबानोंकी तरह॥
मंज़िले दुनियामे है पादररकाब[1] आठों पहर।
रहते है महमाँ सरामें[2] मेहमानोंकी तरह॥
शादमानीमे गुजरते अपने आपेसे नहीं।
गममे रहते है शगुफ्ता शादमानोंकी तरह॥

मयेमुगांका है चस्का अगर बुरा ऐ शेख!
तू ऐसी ही कोई चाट और दे लगा ऐ शेख॥
रियाको[3] सिद्कसे[4] है जामेमय बदल देता।
तुम्हे भी है कोई याद ऐसी कीमिया[5] ऐ शेख!

दरगुजर गर नही करता वोह गुनहगारोसे।
तो तेरा और कोई होगा खुदा ऐ जाहिद!

एक रंजिशमें भुला देते हैं सब।
हों किसीके हमपै लाख अहसाँ अगर॥
ऐब कुछ गिनते नहीं इस ऐबको।
जिससे हों अपने सिवा सब बेखबर॥

घर है वहशतखेज और बस्ती उजाड़।
हो गई इक-इक घड़ी तुझ बिन पहाड़॥
ईद और नौरोज है सब दिलके साथ।
दिल नहीं हाजिर तो दुनिया है उजाड़॥
तुमने 'हाली' खोलकर नाहक जबाँ।
कर लिया सारी खुदाईसे बिगाड़॥

---

[1]घोडेकी रकावमे पाँव डाले हुए, [2]संसार रूपी सराय मे, [3]फरेब मक्कारीको, [4]सच्चाईसे, साफदिलीसे; [5]अक्सीर।

याँ दे चुकी जवाब उमीदे जवाबे ख़त।
वाँ नामाबरने बार भी पाया नहीं हनूज़॥

इश्क़ भी ताकमें बैठा है नजरबाज़ोंकी।
देखना शौक़से आँखें न लड़ाना हरगिज़॥

ज़ालकी[1] पहली ही रुस्तमको नसीहत ये थी—
"जदमें तीरे सफ़ेमिज़गाँकी[2] न जाना हरगिज़"॥

हाथ मलने न हों पीरीमे अगर हसरतसे।
तो जवानीमें न यह रोग लगाना हरगिज़॥

जितने रस्ते थे तेरे हो गये वीराँ ऐ इश्क़!
आके वीरानोंमें अब घर न बसाना हरगिज़॥

हमको गर तूने रुलाया तो रुलाया ऐ चर्ख़!
हम पै ग़ैरो को तो ज़ालिम न हँसाना हरगिज़॥

इक पतेकी जो हमने कह दी आज।
रंग वाइजका कर गया परवाज़[3]॥

यह ग़म नही हैं वोह जिसे कोई हटा सके।
ग़मख्वारी अपनी रहने दे ऐ ग़मगुसार! बस॥

दे ग़ैर दुश्मनीका हमारी ख्याल छोड़।
याँ दुश्मनीके वास्ते काफ़ी है यार बस॥

काफ़िले गुज़रे वहाँ क्योंकि, सलामत वाइज़!
हो जहाँ राहज़न और राहनुमा एक ही शख्स॥

ऐ वाइज! जहाँ रहनुमा (पथ-प्रदर्शक, नेता) ही रहज़न

---

[1] रुस्तमके पिताकी,
[2] नयन बाणोंके समक्ष,
[3] उड गया।

(डाकू) बनकर काफिलेको लूट लेते हो, वहाँसे काफिलो (यात्रीदल) का सही सलामत गुजरना नामुमकिन है।

हाजियो ! है हमको घरवालेसे काम।
घरके महराबो सुतूँसे क्या गरज ॥

ऐ हाजियो ! तुम शौकसे काबेके महराब और खम्बों (सतू) को सजदा करते रहो। हमे तो इस घरके मालिक ख़ुदाकी तलाश है।

यादमे तेरी सबको भूल गये।
खो दिये एक दुखने सब अमराज ॥

गुञ्चा चटका और आ पहुँची ख़िज़ाँ।
फ़स्ले गुलकी थी फकत इतनी बिसात ॥

छुपे है हरीफ़ोंमे[1] अहरार[2] वाइज़ !
बुरा कह न रिन्दोंको जिनहार[3] वाइज !

कोई बात देखी नहीं तुझमे लेकिन।
सुना है कि होते हैं ऐय्यार वाइज़ ॥
हमे और भी तुमसे करते है बदज़न।
यह जुब्बह,[4] यह रीश[5] और यह दस्तार[6] वाइज़ !

आ लगा 'हाली' किनारेपर जहाज।
अलविदा ऐ जिन्दगानी ! अलविदा !!

कल कबकसे[7] चमनसे, यह कहता था एक जाग[8]।
"देख इस खिरामेनाजपै[9] इतना न कर दमाग ॥

---

[1]शत्रुओमे, [2]भद्रपुरुष, [3]हरगिज, [4]पोशाक लिबास, [5]सफेद दाढी, [6]पगडी, [7]चकोरसे, [8]कागा, [9]अठखेलियोपै; चालपै।

है ताकमें उकाब[1] तो शहबाज[2] घातमें ।
हमलेसे याँ अजलके[3] नही एक दम फराग"' ॥

इक सम्भलते हम नजर आते नही ।
वर्ना गिर-गिरकर गये लाखो सम्भल ॥
कबतक आखिर ठहर सकता है वह घर ।
आ गया बुनियादमें जिसकी खलल ॥

हम न थे आगाह[5] वाइज ! जुस्तखूईसे[6] तेरी ।
आदमी तुझको समझकर पास आ बैठे थे हम ॥

गो भलाई करके हमजिन्सोसे[7] खुश होता है जी ।
तहनशीं[8] इसमें मगर दुर्देरिया[9] पाते है हम ॥

दर्देफिराक रश्केउदू तक गराँ नही ।
तग आ गये है अपने दिले शादमाँसे हम ॥

फज्लो हुनर बड़ोके गर तुममें हों तो जाने ।
गर यह नही तो बाबा, वोह सब कहानियाँ है ॥

जबसे सुनी है तेरी हकीकत चैन नही इक आन हमे ।
अब न सुनेंगे जिक्र किसीका आगेको हो गये कान हमे ॥

है अगर बेदर्दियाँ अपनोकी दिलको नागवार ।
नागवार उनसे सिवा गैरोंकी है गमख्वारियाँ ॥

---

[1]गिद्ध, [2]बड़ा बाज, [3]मौतके, [4]चैन, फुरसत, [5]परिचित, भिज्ञ, [6]बदमाशीसे, असभ्य व्यवहारसे, [7]अपने जैसोके साथ, मनुष्योसे, [8]छिपा हुआ; [9]धोखेकी तलछट ।

जीस्त[1] बेअक़लोंको हो जाये बसर करनी मुहाल।
इतनी भी ऐ आक़िलो ! अच्छी नहीं हुशयारियाँ॥

कमसे-कम वाजमें इतना तो असर हो वाइज़ !
बोल क़व्वालके जो दिलमें असर करते हैं॥
ज़ुह्दो ताअ़तका[2] सहारा नहीं जबसे ज़ाहिद !
याद अल्लाहको हम आठ पहर करते हैं॥
ऐब ये है कि करो ऐब, हुनर दिखलाओ।
वर्ना याँ ऐब तो सब फ़र्दोबशर करते हैं॥
इक यहाँ जीनेसे बेज़ार हमीं हैं या रब !
या इसी तरहसे सब उम्र बसर करते हैं ?

देखना हर तरफ़ न मजलिसमें।
रखने निकलेंगे[3] सैंकड़ों इसमें॥
की नसीहत बुरी तरह नासह !
और इक निस[4] मिला दिया बिसमें॥
हो न बीना[5] तो फ़र्क़ फिर क्या है ?
चश्मे इन्साँ-ओ-चश्मे नरगिसमें[6]॥
जिससे नफ़रत है अहले नअ़मतको[7]।
वही नअ़मत[8] है चश्मे मुफ़लिसमें॥
हो फ़रिश्ता भी तो, नहीं इन्साँ।
दर्द थोड़ा-बहुत न हो जिसमें॥

[1]ज़िन्दगी; [2]नेकचलनी और उपासनाका, [3]आलोचनाएँ होंगी,
[4]ज़हर; [5]दृष्टि,
[6]नरगिसके फूलमें आँख होती है, परन्तु दृष्टि नहीं होती;
[7]सम्पन्न मनुष्योंको, [8]वैभव स्वरूप।

जानवर आदमी, फ़रिश्ता, ख़ुदा ।
आदमीकी है सैकड़ो किस्में ।।

आदमीकी बेशुमार किस्मे है । मसलन वोह आदमी जो सिर्फ खाना, पीना, सोना ही जानता है, जानवर है । जिसे अपने फराइज़ (कर्तव्यो) का अहसास (ध्यान) है, आदमी है । जो गुनाहोसे पाक और साफ़ हो चुका है, फरिश्ता (देवता) है, और जो रूहानियत (आत्मलीनता) के आख़िरी दर्जेतक पहुँचकर ख़ुदामे मिल गया है, ख़ुदा है ।

बुलहविस[1] इश्ककी लज्जतसे खबरदार नही ।
है मयेनाबके[2] दल्लाल, क़दहख़्वार[3] नहीं ।।
शहरमें उनके नही, जिन्से वफ़ाकी बिकरी ।
भाव है पूछते फिरते यह, ख़रीदार नहीं ।।
कौन-से वोह गुले रअ़नापै[4] नवासंज[5] नहीं ।
कौन-सी नरगिसे शहलाके वोह बीमार नहीं ।।
कभी लैलापै है मफ़्तूँ[6] कभी शीरींपै फ़िदा ।
और जो फिर देखो तो दोनोंसे सरोकार नहीं ।।
ऐशमें जान फ़िदा करनेको तैयार है वोह ।
और जो हो कीलका खटका भी तो फिर यार नही ।।
नित नया जायका चखनेका है लपका उनको ।
दर-बदर झाँकते फिरनेसे उन्हे आर नहीं ।।
दावये इश्कोमुहब्बतपै न जाना उनके ।
उनमे गुफ़्तार ही गुफ़्तार है करदार नहीं ।। [8]

---

[1]लम्पट, विषयासक्त, [2]शराबके, [3]मद्यप (आत्मलीन), [4]सुन्दर फूल पै, [5]मधुर भाषी, [6]मिटे हुए ।

वोह क़ौम जो जहाँमे कल सदरेअंजुमन[1] थी।
तुमने सुना भी ? उसपर क्या गुजरी अंजुमनगें ?

है जुस्तजू कि खूबसे हैं खूबतर कहाँ।
अब ठहरती है देखिये जाकर नज़र कहाँ॥

होती नहीं कुबूल दुआ तर्के इश्क़की।
दिल चाहता न हो तो जबाँमें असर कहाँ ?

पिया हमने न जामे बेकुदूरत बज्मेदौराँमें।
खिजाँको ले गये हमराह, गर पहुँचे गुलिस्ताँमें॥
जबाँ तक़रीरसे क़ासिर, कलम तहरीरसे आजिज़
न पूछो हमसे क्या देखा है, हमने बज्मेरिन्दाँमे॥

अब वोह अगला-सा इल्तफात नहीं।
जिसपै भूले थे हम वोह बात नहीं॥
रंज क्या-क्या हैं एक जानके साथ।
जिन्दगी मौत है हयात नहीं॥
यूँ ही गुजरे तो सहल है लेकिन।
फ़ुर्सतेगमको भी सबात नहीं॥

हक़ हुआ किससे अदा उसकी वफ़ादारीका।
जिसके नजदीक जफ़ा बाइसे आजार नहीं॥
कुछ पता मंजिले मकसूदका पाया हमने।
जब यह जाना कि हमें ताक़ते गुफ़्तार नहीं॥

कहता है "खैर हम भी सही दुश्मन आपके"।
शिकवेको ले गया है वह बेदादफ़न कहाँ!

---

[1] महफिलकी संचालक।

मेरे दिलमें हो, गो मुझसे निहाँ हो।
मुझे भी ढूँड लेना तुम जहाँ हो॥
तक़ाज़ाए मुहब्बत है वगर्ना।
मुझे और झूठका तुमपर गुमाँ हो॥

एक ही दोस्त और उससे हमें छुड़वाते हो।
नासहो अब तुम्हें दुश्मन कहें या दोस्त बताओ?

बढ़ाओ न आपसमें मिल्लत जियादा।
मुबादा कि हो जाय नफरत जियादा॥
तकल्लुफ़ अलामत है बेगानगीकी।
न डालो तकल्लुफ़की आदत जियादा॥
करो दोस्तो पहले आप अपनी इज़्ज़त।
जो चाहो करे लोग इज़्ज़त जियादा॥
निकालो न रख़ने नसबमें किसीके।
नहीं कोई इससे रज़ालत जियादा॥
करो इल्मसे इक्तसाबे शराफ़त।
नजाबतसे है ये शराफ़त जियादा॥
फ़राग़तसे दुनियामें दम भर न बैठो।
अगर चाहते हो फ़राग़त जियादा॥
जहाँ राम होता है मीठी ज़बाँसे।
नहीं लगती कुछ इसमें दौलत जियादा॥
मुसीबतका इक-इकसे अहवाल कहना।
मुसीबतसे है ये मुसीबत जियादा॥
फिर औरोंकी तकते फिरोगे सख़ावत।
बढ़ाओ न हदसे सख़ावत जियादा॥
कहीं दोस्त तुमसे न हो जाएँ बदज़न।
जताओ न अपनी मुहब्बत जियादा॥

जो चाहो फ़क़ीरीमें इज़्ज़तसे रहना।
न रक्खो अमीरोंसे मिल्लत ज़ियादा॥
है उल्फ़त भी वहशत भी दुनियासे लाज़िम।
पै उल्फत ज़ियादा न वहशत ज़ियादा॥
फ़रिश्तेसे बहतर है इन्सान बनना।
मगर इसमें पड़ती है महनत ज़ियादा॥

कबक[1]-ओ-क़ुमरीमें[2] है झगड़ा कि चमन किसका है।
कल बता देगी खिज़ाँ यह कि चमन किसका है॥
वाइज! इक ऐबसे तू पाक है (?) या जाते खुदा।
वर्ना बे ऐब ज़मानेमें चलन किसका है?

रहेंगे न मल्लाह ये दिन सदा।
कोई दिनमें गंगा उतर जायगी॥

हमारे ज़र्फ़ ही इनआमके क़ाबिल नहीं वर्ना,
लुँढ़ाये खुमपै ख़ुम ग़ैरोंपै क्यों, मुमसिक[3] हो गर साक़ी॥

दोस्तगर भाई न हो, दोस्त है तो भी, लेकिन।
भाई गर दोस्त नहीं, तो नहीं कुछ भाई भी॥

जो कहिये तो झूठी जो सुनिये तो सच्ची।
ख़ुशामद भी हमने अजब चीज पाई॥
हुई आके पीरीमें क़द्रे जवानी।
समझ हमको आई यह ना वक़्त आई॥

इतनी ही दुश्वार अपने ऐबकी पहचान है।
जिस क़दर करनी मलामत औरको आसान है॥

---

[1]चकोर; [2]एक पक्षी, [3]कंजूस।

चिउटियोंमें इत्तहाद और मक्खियोंमे इत्तफ़ाक ।
आदमीका आदमी दुश्मन ख़ुदाकी शान है ॥

तुममें वह सोज़ है, तुममे है वोह ईमॉ बाक़ी ?
रहगया क्या है अब ऐ गबरु-मुसलमॉ बाकी ?
बज़्मे दावतमें रसाई हुई अपनी उस वक़्त ।
मेज़बॉ जब न रहा कोई न महमॉ बाकी ॥

ऐबजोईसे नही, खल्ककी दमभर फ़ारिग ।
जिनको कुछ काम नहीं यॉ, उन्हें फुरसत कैसी ॥

है लिबासे जिस्म तक मुझपै गरॉ ।
दूर जा पहुँची है उरियानी मेरी ॥

परदे बहुतसे वस्लमें भी दरमियॉ रहे ।
शिकवे वो सब सुना किये और मेहर्बां रहे ॥
दैरो हरमको तेरे फ़सानोंसे भर दिया ।
अपने रकीब आप रहे हम जहॉ रहे ॥
याराने तेजगामने मंजिलको जा लिया ।
हम महवे नालये जरसेकारवॉ रहे ॥
या खींच लाये दैरसे रिन्दोंको अहले वाज़ ।
या आप भी मुलाज़िमे पीरे मुगॉ रहे ॥
दरियाको अपनी मौजकी तुगयानियोंसे काम ।
कश्ती किसीकी पार हो या दरमियॉ रहे ॥

है कुछ इक बाक़ी खलिश उम्मीदकी ।
यह भी मिट जाये तो फिर क्या चाहिए ॥
दोस्तोंकी भी न हो परवा जिसे ।
बेनियाज़ी उसकी देखा चाहिए ॥

शेख़ है उसकी निगह जादू भरी।
सुहबते रिन्दोंसे बचना चाहिए॥

दमेगिरिया किसका तसव्वुर है दिलमें।
कि अश्क-अश्क दरिया हुआ चाहता है॥
खत आने लगे शिकवा आमेज उनके।
मिलाप उनसे गोया हुआ चाहता है॥

वफ़ा शर्तें उल्फत है लेकिन कहाँतक।
दिल अपना भी तुझ-सा हुआ चाहता है॥
बहुत चैनसे दिन गुजरते हैं 'हाली'।
कोई फ़ित्ना बरपा हुआ चाहता है॥

बनावटसे नही खाली कोई बात।
मगर हर बातमें इक सादापन है॥

धूम थी अपनी पारसाईकी।
की भी और किससे आश्नाई की॥
क्यो बढ़ाते हो इख़्तलात बहुत।
हमको ताकत नहीं जुदाईकी॥
मुँह कहाँतक छुपाओगे हमसे?
तुमको आदत है खुदनुमाईकी॥
न मिला कोई ग़ारतेईमाँ।
रह गई शर्म पारसाईकी॥

मौतकी तरह जिससे डरते थे।
साअ़त आ पहुँची उस जुदाईकी॥
ज़िन्दा फिरनेकी है हविस 'हाली'।
इन्तहा है ये बेहयाईकी॥

था न जुज़ग़म[1] बिसातेआशिक़म[2]।
ग़मको राहतफ़िज़ा[3] किया तूने ॥

कर दिया ख़ूगरे[4] जफ़ा तूने।
ख़ूब डाली थी इब्तदा तूने ॥

शेख़ ! जब दिल ही दैरमें न लगा।
आके मस्जिदमें क्या लिया तूने ?

दूर हो ऐ दिले मआलअन्देश[5]।
खो दिया उम्रका मज़ा तूने ॥

[1]व्यथाके अतिरिक्त,
[2]प्रेमीके भाग्यमे,
[3]आनन्दमय;
[4]अत्याचारका अभ्यस्त,
[5]परिणामसे डरनेवाला।

१०१

मजरूह

(स्वर्गीय १६०२)

मीर महदी 'मजरूह' मीरहुसेन फिगारके पुत्र और दिल्लीके रहने-वाले थे। गालिबके प्रिय और योग्य शिष्य थे। गदरके हगामोंमें यह दिल्ली छोड़कर पानीपत चले गये थे। उपद्रव शान्त होनेपर पुनः दिल्ली वापिस आ गये। फिर आजीविकाकी खोजमे अलवर गये तो वहाँके राजा शिवध्यानसिंहने इनकी अच्छी कद्र की। अन्तिम दिनोमे नवाब साहबकी क़द्रदानी और मेहरबानियोसे आकर्षित होकर रामपुर जा बसे थे। 'मज्रहरे मानी' नामक दीवान वहीसे प्रकाशित कराया।

'मजरूह' की भाषा सरल और मधुर है। छोटी बहरोमे सारगर्भित शेर कहते थे। इनकी शायरी भावोकी मौलिकता या नवीनताकी दृष्टिसे हीन होते हुए भी छन्द शास्त्रके दोषोसे मुक्त है। इनको लिखे हुए मिर्ज़ा गालिबके अक्सर दिलचस्प पत्र 'उर्दूएमुअल्ला' मे छपे है। मौ० हाली भी इनका बहुत आदर करते थे।

१०२

ज़की

[१८३६-१६०३ ई०]

नवाव सैयद मुहम्मद जकरिया खाँ 'जकी' के पिता सैयद मुहम्मद खाँ और नाना भी शायर थे। ये दिल्लीके प्रतिष्ठित वर्गमे उत्पन्न हुए थे। इनको फारसी और अरवी पर पूर्ण अधिकार था। चिकित्सा, ज्योतिप और सगीत आदिमे भी निपुण थे।

मिर्जा गालिवको अपना कलाम दिखाते थे। मिर्जा इनका वड़ा खयाल रखते थे, और वहुत मुहव्वतसे पेश आते थे। मुशायरोमे अक्सर शरीक होते थे, और जहाँ भी जाते थे, शेरोसुखनकी महफिल गरमा देते थे। कवितामे गालिवके रगका अनुसरण करते थे। आजीविकाकी तलाशमे इन्हे भी मेरठ, इलाहावाद, गोरखपुर, वदायूँ आदि जाना पडा। अन्तमे वदायूँमे डिप्टी इन्सपेक्टर स्कूलकी हैसियतसे पेन्शन पाई और वही १६०३ मे अतकाल हुआ। दीवान अपने जीवनमे ही छप गया था। तर्जे-क़दीमके उस्ताद माने जाते थे। वहुतसे शागिर्द थे।

किसने हयासे नीची नजर की कि हो गया--
आसाँ न देखना मुझे दुशवार देखना ॥

बढ़ा जौके असीरी, जव उन्होंने,
कहा--"कह दो कि यह क़ैदी रिहा है" ॥

सौ हसरतोसे पूछना मेरा कि 'जाओगे?'
उनका वोह एक नाजसे कहना कि 'हाँ चले' ॥

--इन्तकादियात, भा० २, पृ० १४६

१०३

रख़्शां

[१८८३ ई०]

नवाव जियाउद्दीन 'रख़्शा' व 'नैयर' नवाव अहमदवख़्शख़ॉ लुहाराके छोटे वेटे थे। ये गालिवके शिष्य और रिश्तेदार भी थे। मिर्ज़ा इन्हे अपना खलीफा (उत्तराधिकारी) कहा करते थे।

रख़्शॉ अपने जमानेके प्रतिष्ठित विद्वानो और कवियोमे गिने जाते थे। शेरोसुख़नके वडे माहिर और पारखी थे। इतिहासकी ओर भी उनकी वहुत रुचि थी। इनके पुत्र 'साकिव' भी गालिबके शिष्य थे, परन्तु वे १८६९ मे २९ वर्षकी आयुमे ही मर गये। दूसरे पुत्र 'तालिब' अपने वडे भाईके मरनेके वाद 'मजरूह' 'सालिक' और 'हाली' से मशवरए सुख़न करते थे।

साकिबके वडे पुत्र 'तावॉ' और छोटे पुत्र 'साइल' दागके नामवर शिष्य हुए है। उनका उल्लेख वर्तमानयुगके गजलगो शायरोमे 'शेरो सुखन'के द्वितीय भागमे किया जायगा, क्योंकि दागके शिष्य सभी बीसवी सदीमे हुए है।

इनके अतिरिक्त अलवी, अजीज, मश्शाक, जौहर और हरगोपाल तुफ्ता भी गालिबके योग्य शिष्योमे थे। स्थानाभावके कारण सभीका उल्लेख करनेमे असमर्थ है।

३ नवम्वर १९५०

बादशाह और नवाब शायर

उर्दू-शायरीके प्रबल पोषक और शायरोंके आश्रयदाता बादशाह और नवाब सुखनफ़हम तो थे ही, उनमे कितने ही शायरी भी करते थे। इन बादशाहों, नवाबोंने उर्दूके प्रसार और शायरोंको आदर-सत्कार देकर उत्साह बढानेमे अनुकरणीय कार्य किये है। इस युगमे अब कहाँ है ऐसे पारखी जो गुणियोकी कद्र करे।

१८५७के विप्लवके कारण दिल्लीकी बादशाहत और लखनऊकी नवाबी समाप्त हो जानेसे आश्रित शायर निराश्रय होकर भरण-पोपणकी चिन्तामे अन्य रियासतोमे भटकते हुए पहुँचने लगे। जिन रियासतोसे उर्दू-शायरीको फरोग और शायरोंको आश्रय मिलता रहा है, सक्षेपमे उनका भी परिचय दिया जाता है।

दिल्ली दरबार

दिल्लीके बादशाह मुस्लिम सस्कृतिके प्रबल समर्थक और प्रसारक हुए है। इन्होंने फारसी, उर्दूके शायरोकी भी बड़ी क़द्र की, और ईमानकी बात तो ये है कि इन्हीके प्रोत्साहनका बल पाकर जनतामे शायरीकी रुचि बढी और दिन-दूने रात-चौगुने शायर और कलाकार बढने लगे। इन बादशाहोमे शाहआलम द्वितीय, अकबरशाह द्वितीय, मिर्जा सुलेमानशिकोह (शाह आलमके तीसरे पुत्र) शायरी भी करते थे। बादशाहोमे अच्छा कहनेवाले अन्तिम सम्राट बहादुरशाह 'ज़फर' हुए है। जिनका परिचय ज़ौकके शिष्योमे पृ० ६१९-३१ पर मिलेगा। अन्य बादशाहोका कलाम मामूली होनेसे देना व्यर्थ समझते है।

लखनऊ दरबार

लखनऊके नवाबोने जिस तन्मयतासे उर्दू-शायरीका लालन-पालन किया और शायरोंका आदर-सत्कार किया, उसकी झाँकी प्रस्तुत पुस्तकमे यत्र-तत्र मिलेगी। लखनवी नवाबो और बेगमात शायरोंका उल्लेख भी पृ० ३६०-८१ मे दिया गया है। अत यहाँ पुन देनेकी आवश्यकता नही। लखनऊके अन्तिम नवाब बन्दी बनाकर जब कलकत्तेके मटियाबुर्जमे रक्खे गये तो कुछ शायर तो उनके साथ गये ही थे। कुछ शुहरत पाकर बादमे पहुँच गये, और वहाँ लखनऊकी तरह शेरोसुख़नकी सुहबते गरम रहने लगी।

"हज़ारों बन गये काबे जबीं हमने जहाँ रख दी।"

अकबरके दरबारमे नवरत्न थे, तो इनके पास भी मटियाबुर्जमे सप्त-ऋषि नक्षत्र रहते थे। उनको उच्च पदवियाँ देकर नवाबने सम्मानित किया था। इनके अतिरिक्त भी शायर और गुणी रहते थे। इन पुर-लुत्फ मुशायरोमे मिर्ज़ा 'दाग' और 'नज्म' तबातबाई भी पहुँच गये थे। इन सुहबतों और मुशायरोकी वजहसे उर्दू-शायरीका बगालमे भी प्रसार हुआ।

हैदराबाद दरबार

उर्दूशायरीके प्रसार करने और शायरोको आश्रय देनेमे दिल्ली-लखनऊके बाद हैदराबादका नाम आता है। यहाँ भी सैकडों शायरोका जमघट रहा है।

१—नवाब मीर क़मरुद्दीनख़ाँ बहादुर (१६७१-१७४८) ये हैदराबादके प्रथम शासक थे, और 'शाकिर' उपनामसे फारसीमे शायरी करते थे। 'बेदिल' से इस्लाह लेते थे। दो दीवान मिलते है।

२—**मीर महबूबअलीख़ाँ** (१८६९-१९११) दागके शिष्य थे। इनके दो दीवान मिलते हैं।

३—**मीर उसमानअलीख़ाँ**—वर्तमान निज़ाम हैं। 'उसमान' उपनामसे शायरी करते हैं। जलील मानिकपुरीके शिष्य हैं। इनकी गजलोका एक दीवान प्रकाशित हो चुका है। यूँ तो हैदराबाद दरबारसे शायरोको मासिक वृत्तियाँ, सहायता, खिलअत, उपाधियाँ और इनाम-इकराम मिलते ही रहे हैं, परन्तु इन नवाब साहबने जो कार्य किये हैं, उनकी भारतमे अन्यत्र मिसाल नही मिलती। इन्होने उस्मानिया यूनिवर्सिटी स्थापित करके उर्दूका बहुत अधिक प्रसार किया है। 'अंजुमने तरक्किये उर्दू'ने विदेशी भाषाओके अनेक महत्वपूर्ण ग्रथ प्रकाशित किये है। उर्दूके बृहद्कोश और अनेक मौलिक ग्रथ तैयार कराये है। भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोमे रहनेवाले अच्छे साहित्यिको और शायरोको लाखो रुपया प्रतिमास वजीफा देते रहे है। इनसे बढकर उर्दू-साहित्यका हितैषी और कोई नही है।

महाराजा चन्दूलाल शादाँ—(१७६६-१८४५) एक प्रतिष्ठित खत्रिय वशमे उत्पन्न और हैदराबादके प्रधान मत्री हुए है। ये स्वय शायर होनेके अतिरिक्त बडे गुणज्ञ थे। गुणियोका आदर-सत्कार मुक्त हृदयसे करते थे। इनकी गुणग्राहकताके कारण अनेक बड़े-बडे गुणी हैदराबादमे एकत्र हो गये थे। इनके यहाँ प्राय. रोज मुशायरे होते थे। कितने ही शायर और कलाकार इन्होने निमत्रण देकर बुलाये थे। उनके स्वाभिमान और प्रतिष्ठाका बहुत ध्यान रखते थे, और तन, मन, धनसे आदर-सत्कार करते थे। उर्दू-फारसी दोनोमे शेर कहते थे। दोनो भाषाओके दो दीवान मिलते है। तीनसौसे अधिक शायर इनके ज़मानेमे हैदराबादमे परवरिश पाते थे।

राजा गिरधारीप्रसाद 'बाकी'—(१८४०-१९००) कायस्थ थे और सस्कृत, फारसी, उर्दूके विद्वान थे। 'बाकी' उपनामसे शायरी करते

थे। इनकी लिखी १०–१२ पुस्तके मिलती है। ये भी मुक्त-हृदयसे गुणियोका सम्मान करते थे। 'दाग' इन्हीके मत्रित्वकालमे हैदराबाद गये थे।

महाराजा सर किशनप्रसाद 'शाद'—ये भी हैदराबादके प्रधान मत्री हुए है। इन्होने ४० पुस्तकोकी रचना की है। शेर भी बहुत अच्छे कहते थे, कई भाषाओमे पारगत थे और परम्पराके अनुसार गुणियोके बडे कद्रदाँ थे। अनेक शायर इनके युगमे हैदराबादसे वृत्ति पाते थे। नामवर शायरों और प्रतिष्ठित उर्दू-साहित्यिकोंने इनका बड़े सम्मानके साथ अपनी रचनाओ और पत्रोंमे उल्लेख किया है।

रामपुर दरबार

रामपुर भी उर्दू-शायरीका बहुत बड़ा केन्द्र रहा है। यहाँ लखनऊ और दिल्लीसे भी अधिक शायरोंके जमघटे रहे है। यहाँके नवाब स्वयं अच्छे शायर और साहित्यिक होनेके अतिरिक्त गुणियोंके सच्चे कद्रदाँ थे। अच्छे शायरो, गुणियों, विद्वानो, सगीतज्ञो और अन्य कलाकारोंकी बड़ी आवभगत करते थे। उनको मासिक वृत्तियाँ, जागीरे, खिलअत और इनाम इकराम देते रहनेके अतिरिक्त नाजबरदारी भी बहुत करते थे। उनको मुलाजिम न समझकर महमानकी तरह आदर-सत्कार करते थे। उनके स्वाभिमान, प्रतिष्ठा और व्यक्तित्वका पूर्ण ध्यान रखते थे। इसलिए विप्लवके बाद सबसे अधिक शायर इस ओर ही आकर्षित हुए। रामपुर चूँकि दिल्ली और लखनऊ दोनोके नजदीक पड़ता था और नवाब सच्चे गुणज्ञ थे, इसलिए अन्य रियासतोंसे इसीको तरजीह मिली। बहुत बड़ी-बडी तनख्वाहोंके लालचमे भी लोग रामपुर छोड़कर अन्यत्र जाना पसन्द नही करते थे, और कोई लाचार चला भी जाता था तो रामपुर भुलायेसे भी नही भूल पाता था।

"बड़ी मुश्किलसे होता है चमनमें दीदावर पैदा।"

नवाब यूसुफ़अलीखाँ—नवाब मुहम्मद सईदख़ाँके पुत्र थे। ये बड़े गुणज्ञ, कला-पारखी, और सहृदय थे। उर्दू-फारसी दोनोमे शेर कहते थे। 'नाज़िम' उपनाम था। साहिबे दीवान हुए हैं। प्रारम्भमे 'मोमिन' से इस्लाह लेते थे। उनके बाद 'गालिब'से मशवरएसुखन लेते रहे। उनके बाद 'असीर' को कलाम दिखलाते रहे। दिल्ली-लखनऊ-दरबारोके गदरमे उजडनेके बाद अक्सर शायर इन्हीके आश्रयमे आ गये। जिनमे गालिब, मौलाना फजलहक खैराबादी, तसकीन, असीर, वगैरह थे। शायरोके रामपुरमे एकत्र होनेसे उर्दू-शायरीको एक बहुत बडा लाभ ये पहुँचा कि वह अभीतक देहलवी और लखनवी जुदा-जुदा धाराओमे विभक्त थी। यहाँ आकर वह एक हो गई और रामपुर सगम बन गया।

नवाब कल्बअलीखाँ—अपने पिता यूसुफअलीके जन्नतनशीन होनेके बाद १८६५ ई०मे सिंहासनारूढ हुए। इनके शासनकालमे पहलेसे भी अधिक उर्दू-शायरीको फरोग मिला। इनका शासनकाल उर्दू-शायरीका नि सकोच स्वर्णयुग कहा जा सकता है। इन्होने इस छोटी-सी रियासतमे भारतके ऐसे सर्वश्रेष्ठ कलाकार एकत्र कर लिये कि जिनके अन्यत्र उदाहरण नही मिलते। शायरोंका भी बहुत बड़ा समूह था, जिनके चन्द नाम ये हैं—असीर, बहर, अमीर मीनाई, दाग, जलाल, तसलीम, मुनीर, कल्क, उरूज, हया, जान साहब, आगाहिजो शरफ, उन्स, शागल, शादाँ, गनी, जिया, ख्वाजा, मन्सूर, रजा। शायरो और साहित्यिकोंके अतिरिक्त सगीतज्ञ, हकीम, ज्योतिषी, चित्रकार आदि भी एक-से-एक बढकर एकत्र किये गये थे।

ये गुणी और कलाकार रियासतके लिए भारस्वरूप न हो जाएँ, इसलिए इनको रियासतके भिन्न-भिन्न पदोपर नियत कर दिया था। योग्यतानुसार अपनी ड्यूटी भी करते थे और अपने विशेष गुणका जौहर भी दिखलाते थे। इस नियुक्तिसे रियासत और गुणियो दोनोको ही लाभ पहुँचा। रियासत तो व्यर्थके व्ययसे बच गई और गुणियोकी स्थिति

चापलूसों, मुसाहबों, टुकड़खोरोंकी-सी न रहकर एक कमाऊ व्यक्तिकी हो गई। मुलाजिमतमे होते हुए भी इन गुणियोके स्वाभिमान और आवश्यकताओंका नवाब पूर्ण ध्यान रखते थे। कोई उनके साथ दुर्व्यवहार नही कर सकता था, और हर खुशीके अवसरोंपर उन्हे इनाम-इकराम देकर आदर दिया जाता था।

नवाबका गद्य और पद्य दोनोंका अभ्यास था। गद्यमे उनकी कई पुस्तके मशहूर है। फारसी-शायरीका दीवान भी है। उर्दूमे 'अमीर मीनाई'से इस्लाह लेते थे। उर्दूमे चार दीवान उनकी योग्यताके परिचायक है। 'नवाब' उपनामसे निहायत उम्दा शेर कहते थे। भाषाकी शुद्धता और सुन्दरताका बहुत खयाल रखते थे।

इनके पिताने देहलवी-लखनवी शायरीकी दो धाराओंका एकीकरण करनेके लिए जो सगम निर्माण किया था, इनके युगमे उसपर उत्तरोत्तर यात्री आने लगे; और दोनों धाराओंका ऐसा एकीकरण हुआ कि अब उर्दूके सभी शायर विना किसी भेदभावके इस मिली-जुली गगा-जमनी शायरीके उपासक है। श्री रामबाबू सकसेना लिखते है—

"नासिखका तर्ज उनके शागिर्दोंके जमानेमे जो कि अपने उस्तादकी उस्तादाना रविशको कायम न रख सके थे, बदसे बदतर हो गया था। उन लोगोंके कलाममे इस तर्जके तमाम अयूब (दोष) तो मौजूद थे, मगर खूबियाँ मफकूद (गायब) थी। इस तर्जके बरतनेवाले रामपुरमे बहर, मुनीर, कल्क और असीर थे। बरखिलाफ इसके तर्जे दिल्लीके पैरो (अनुयायी, समर्थक) दाग और तसलीम थे।. ..इनमे और लखनऊवालोमे ज़मीनो-आस्मानका फ़र्क था। उनके (दागके) अशआर बहुत मकबूल हुए। हर शख्स उनके रगका दिलदादा था। तसलीम गो कि लखनऊके थे, मगर रग बिल्कुल दिल्लीका अख्तियार किया था। ये 'नसीम' देहलवी (मोमिनके शागिर्द)के शागिर्द थे। इनपर नासिखके रगका जादू कभी नही चला। वे हमेशा इसको बुरा समझते रहे, और

जहाँ कही रहे, मोमिनो नसीमकी पैरवी (अनुकरण) करते रहे। 'मोमिन' और गालिब थोड़े अर्सेतक रामपुर रहे, इस वजहसे उनका असर कुछ ज़्यादा न पड सका। ....लखनऊ और दिल्लीके शायर रामपुरमे लडते-झगडते और मुबहसा करते रहे। जिसका नतीजा शायरीके लिए अच्छा हुआ। यानी 'नासिख़'के जमानेसे जो एक बेजा लफ्फाजी (शब्दाडम्बर) और तसन्नोह (बनावट, तकल्लुफ, कृत्रिमता)का शौक दाखिल हो गया था, वह जाता रहा।.. .अब लोग शायरीके सही जज्बात (भावो) और उनके मुनासिब अल्फाजसे वाकिफ हो गये। लखनऊके तर्ज़ेकदीम (प्राचीन परम्परा)के शैदाओ (भक्तो)ने देख लिया कि अब इस जदीद रगके सामने उनका रग नही जम सकता। मजबूरन उनको तर्ज़ेदेहलीकी तरफ मुतवज्जह (आकर्षित) होना पडा। चूँकि दागकी मकबूलियत आम हो रही थी, लिहाजा उनके मुआसरीन (प्रतिद्वन्द्विओ)-को इसके सिवा कोई चाराकार न था कि पब्लिककी पसन्दका अतवा (ख़याल) करते हुए वही तर्ज अख्तियार करे। चुनाचे अमीर जो दागके बडे हरीफ और मद्दमुकाबिल थे, उनको भी इस राय आम्माके सामने सरे तसलीम खम करना पडा, और इसी वजहसे उनका दूसरा दीवान 'सनमखानये इश्क' दागके रगमे है। गो कि कही-कही अपने खास रगमे भी कहे जाते थे। इसी तरह उन्होने 'जौहरे इन्तखाब' और 'गौहरे इन्तखाब' एक 'मीर' और एक 'दर्द'के रगमे कहकर इस बातका सबूत दिया कि वे दिल्लीके रंगको लखनऊपर तरजीह देते है। शागिर्दाने अमीर अर्थात् रियाज़ खैरावादी, जलील मानिकपुरी और हफीज़ जौनपुरीने एक कदम और बढाया। बल्कि उनके अक्सर अशआर तो ऐसे है, जो दाग और शागिर्दाने दागके कलामसे अलहदा नही किये जा सकते। यही हाल जलालका भी समझना चाहिए। जलाल—रश्क और वर्क़के शागिर्द थे, और उनकी नश्वो-नुमा (शिक्षा-दीक्षा) बिल्कुल लखनऊके तर्जपर हुई थी। मगर ताज्जुब है कि उन्होने भी इस रगको

छोड़कर दिल्लीका रंग अख़्तियार किया। चुनाचे उनका एक दीवान बिल्कुल इसी रंगका है और इसमे उन्होने मीरकी भी बहुत पैरवी की है, मगर हमारे इस लिखनेसे यह नही समझना चाहिए कि अमीर-ओ-जलाल बिल्कुल अपने रंगको भूल गये थे।"[1]

हिज़हाईनेस नवाब सैयद हामिदअलीख़ाँ—निहायत अच्छे शायर और सुख़नफ़हम थे। अपने पूर्वजोके समान इन्होने भी गुणियोका बहुत आदर-सत्कार किया। वर्तमानमे इनके पुत्र रामपुरके शासक है।

टाँडा दरबार—टाँडा रामपुर और बरेलीके नजदीक है। यह रामपुरके वंशजोकी जागीर है। लखनऊके नवाब शुजाउद्दौलाने रामपुरका राज्य जब फ़ैजुल्लाख़ाँको दिया तो उनके छोटे भाई मुहम्मदयारखाँको भी पचास हजारकी यह जागीर दी थी। मुहम्मदख़ाँ भी शायर थे। 'अमीर' तखल्लुस रखते थे। ये भी शायरोका आदर-सत्कार करते थे। इन्होंने 'सौदा' और 'सोज़'को बुलानेका प्रयत्न किया, किन्तु वे लखनऊ चले गये। 'क़ायम' चाँदपुरीको देहलीसे बुलाकर अपने यहाँ रखा। उन्हे सौ रुपये मासिक देते थे, और उन्हीसे इसलाह लेते थे। 'मुसहफी', 'फिदवी' लाहौरी, मीर मुहम्मद नईम 'परवाना', 'इशरत' आदि इस दरबारसे लाभ उठाते रहे है। यह चित्रकारी अच्छी जानते थे। १७७४ ई०में जन्नतनशी हुए।

फ़रूख़ाबाद—फरुक्ख़ाबादके नवाब महरबानख़ाँ 'रिन्द' अच्छे शायर और संगीतज्ञ थे। मशवरयेसुख़न पहले 'सोज़'से लेते रहे। फिर 'सौदा'के पहुँचनेपर उनसे भी लेते रहे। जब फरुक्ख़ाबादसे इस वंशकी नवाबी समाप्त हुई तो यहाँ शेरोसुख़नकी मजलिसे भी समाप्त हो गई।

अज़ीमाबाद—महाराजा शितावराय बंगालके नायब-दीवान थे। स्वयं शायर भी थे और शायरोके आश्रयदाता भी। इनकी मृत्युपर

---

[1]तारीखे अदबे उर्दू, पृ० ४१४-१६

१७७३ ई०मे इनके पुत्र राजा कल्याणसिंह उसी पदपर नियुक्त हुए। इनका उपनाम 'राजा' था और मीर ज़ियाउद्दीन 'ज़िया'से इसलाह लेते थे। 'फुग़ॉ'ने भी मुर्शिदाबाद और फैज़ाबादसे लौटकर यही सम्मान पूर्वक जीवन व्यतीत किया, महाराजा इनका बहुत आदर-सत्कार करते थे।

मुर्शिदाबाद—मुर्शिदाबादके नवाबोने भी शायरोका उचित स्वागत किया। सोज़, कुदरत, अन्तमे वही रहने लगे थे और वही उन्होने समाधि पाई। मिर्ज़ा जहूर अली 'खलील' भी नवाबके निमत्रणपर गये थे। मर्सिया-गो शायर थे। यहाँका वातावरण राजनैतिक षडयन्त्रोसे दूषित और अशात रहता था। इसलिए इस ओर विशेष शायर नही आये।

टौंक—टौंकके नवाब सर हाफिज मुहम्मद इब्राहीम अलीखॉ १८६६ ई०मे राज्यासीन हुए। ये 'खलील' उपनामसे शायरी करते थे। 'अमीर' मीनाईके शिष्य 'बिस्मिल' खैराबादी इनके कविता-गुरु थे। ज़हीर, असद, मुज़तर आदि शायर इनके यहॉसे भी सम्मानित हुए थे। 'असद'के यहाँ कई शिष्य थे। जिनमे असगरअली 'आबरू' हबीबुल्ला 'जब्र' प्रसिद्ध है। इन नवाबोके उत्तराधिकारी भी शायरीसे दिलचस्पी रखते है।

अलवर—अलवरके महाराजा शिवध्यानसिंह—ज़हीर, तसवीर, तिश्ना, मजरूह, सालिक आदिके आश्रयदाता थे। 'फसानयेआज़ाद'के ख्याति-प्राप्त लेखक प० रतननाथ 'सरशार'को भी बुलाकर सम्मानित किया था।

अन्य स्थान—भोपाल, मगलोर (काठियावाड) जयपुर, मालियर कोटला, बहावलपुरके शासक भी शायरोका उचित आदर-सत्कार करते रहे है।

११ अक्टूबर १९५० ई०

समाप्त

जेरे क़लम—

शेर-ओ-सुख़न

भाग दूसरा

१९०१ से १९५१ तकके वर्तमान युगीन सर्वश्रेष्ठ २०१
गजलगो शायरोका परिचय और उनके श्रेष्ठतम
कलामका सकलन तथा वर्तमान शायरीकी
गति-विधि पर सिंहावलोकन

पुरातन शायरीका कायाकल्प किस प्रकार हुआ, कैसे-कैसे अजीबो-गरीब इन्कलाब आये, उर्दू-शायरीने कैसे-कैसे पहलू बदले और कितनी करवटे ली, बाजारी माशूकसे नफरत, हया परवर शीला नारीका सम्मान, रोने-विसूरनेकी प्रथा बन्द, व्यक्तिगत दुखोको भूलकर विश्वके दीन-दुखियोके गमोको अपनानेका इतिहास, आलोचनात्मक विवेचन, शायरोसे साक्षात मिलकर उनके रेखाचित्र, उनके स्वय पसन्दीदा अशआर, गोयलीयजीकी लेखनीका वास्तविक चमत्कार।

कुछ ख्यातिप्राप्त शायर

पुरानी यादगारे

१ शाद अजीमाबादी
२ नज्म तबा तबाई
३ आसी गाजीपुरी
४ रियाज खैराबादी
५ असगर गोण्डवी
६ फानी बदायूनी
७ जलील मानिकपुरी
८ सफी लखनवी
९ अजीज लखनवी
१० आरजू लखनवी
११ आगा शायर देहलवी
१२ साइल देहलवी
१३ हसरत मोहानी
१४ नातिक गुलाठी
१५ सर इकबाल
१६ सीमाब अकबराबादी
१७ ताजवर नजीबाबादी

जिनका दम ग़नीमत है

१८ दिल शाहजहाँपुरी
१९ यगाना चंगेज़ी
२० साक़िब लखनवी
२१ जिगर मुरादाबादी
२२ हफ़ीज़ जालन्धरी
२३ साग़िर निज़ामी
२४ जोश मलीहाबादी
२५ लभूराम जोश
२६ रघुपति सहाय फ़िराक़
२७ दत्तात्रिय कैफ़ी
२८ हरीचन्द अख़्तर
२९ गोपीनाथ अमन
३० नूह नारवी
३१ अमर लखनवी
३२ वहशत कलकत्तवी
३३ रविश सिद्दीक़ी
३४ हामिद अल्ला अफ़सर

प्रगतिशील

३५ सरदार जाफ़री
३६ नून-मीम-राशिद
३७ अहमद नदीम क़ासिमी
३८ सलाम मछलीशहरी
३९ फ़िक्र तौंसवी
४० मनोहरलाल ज़िया
४१ साहिर लुधियानवी
४२ नरेशकुमार शाद
४३ जगन्नाथ आज़ाद
४४ बालमुकन्द अर्श
४५ अहसान दानिश
४५ मजाज़
४७ फ़ैज़
४८ जज़्बी
४९ सबा अकबराबादी
५० ख़ुर्शीद फ़रीदाबादी
५१ मख़मूर जालन्धरी

सहायक ग्रंथ-सूची

प्रस्तुत पुस्तकमे इन शायरोका कलाम उनकी निम्न लिखित कृतियोसे संकलित किया गया है—

सौदा

१ कुलियाते सौदा (नवलकिशोर प्रेस कानपुर द्वितीयावृत्ति सितम्बर १८८७ ई०)

मीर

२ कुलियातेमीर (नवलकिशोर प्रेस कानपुर तृतीयावृत्ति जून १८९२ ई०)

३ मजामीर भाग १-२ अमर लखनवी (किताबी दुनिया लि० दिल्ली १९४७ ई०)

दर्द

४ दीवाने दर्द (नवल किशोर प्रेस लखनऊ १९२९ ई०)

रंगीन

५ दीवाने रंगीन-इशा (निजामी प्रेस बदायूँ १९२४ ई०)

दयाशंकर नसीम

६ गुलजारे नसीम—चकवस्त (नवलकिशोर प्रेस लखनऊ १९१३ ई०)

जौक

७ दीवाने जौक—मुहम्मदहुसेन आजाद (आज़ाद बुकडिपो लाहौर १९३२ ई०)

मोमिन

८ कुल्लियाते मोमिन—जिया अहमद एम० ए० ([illegible] इलाहाबाद १९३८ ई०)

ग़ालिब

९ दीवाने ग़ालिब—जोशमलसियानी (प्रकाशक [illegible] कश्मीरी गेट दिल्ली)

अमीर मीनाई

१० मिरातुलग़ैब

ज़फ़र

११ कुलियाते ज़फ़र (नवलकिशोर प्रेस कानपुर)

दाग़

१२ मुन्तख़िबे दाग़—अहसन मारहरवी (प्रकाशक [illegible] एकेडमी इलाहाबाद)

हाली

१३ दीवाने हाली—महरूम, जिया ([illegible] दिल्ली [illegible])

और जिन शायरोंकी हमें मूल कृतियाँ प्राप्त न हो सकीं, उनका कलाम जिन ग्रन्थोंसे लिया गया है, उन ग्रन्थोंका उल्लेख कलामके अन्तमें प्रस्तुत पुस्तकमें यथास्थान दे दिया गया है, उनमें मुख्य सहायक ग्रन्थ ये हैं—

१४ इन्तक़ादियात भाग १-२—नियाज़ फ़तहपुरी (अब्दुलहक़ एकेडमी हैदराबाद दकन १९४३-४४)

१५ आबेहयात—मौ० मुहम्मद हुसेन आज़ाद

१६ तारीख़े अदबे उर्दू—रामबाबू सक्सेना—(नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ)

१७ तनक़ीदी हाशिये—मजनूँ गोरखपुरी (इदारए इशाअत उर्दू हैदराबाद)

१८ अन्दाजे—फिराक गोरखपुरी—(हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद)

१९ छानबीन—असर लखनवी—(दानिश महल लखनऊ १९५०)

२० मकतूबाते नियाज भाग १-२—नियाज फतहपुरी (निगार बुक एजेन्सी लखनऊ १९४३-४४ ई०)

२१ निगार, लखनऊ

२२ आजकल, दिल्ली

इनके अलावा निम्न पुस्तकोसे भी उद्धरण दिये गये हैं—

२३ हिन्दी काव्यधारा—राहुल सांकृत्यायन (किताब महल इलाहाबाद)

२४ रियाजे रिजवाँ—नियाज अहमद (१९३८)

२५ नक्दोनजर—हामिदहुसेन कादरी (शाह एण्ड क० आगरा १९४२ ई०)

२६ मयखानये रियाज—तस्नीम मीनाई (इदारये इशाअत उर्दू हैदराबाद १९४५ ई०)

२७ मजामीने चकबस्त—प० बृजनारायण 'चकबस्त' (इण्डियन प्रेस प्रयाग १९३७)

२८ सईदी डिक्शनरी—मौ० मुहम्मद मुनीर (मतबये मजीदी कानपुर १९४०)

शेरोसुखनके निर्माणमे अनेक ग्रंथोका परिशीलन हुआ है। जिनमें-से कुछकी तालिका शेरोशायरीमे दी जा चुकी है। ऊपर केवल उन्ही ग्रंथोकी सूची दी जा रही है, जिनके उद्धरण प्रस्तुत पुस्तकमे दिये गये है। हम उन सभी शायरो, लेखकों, सम्पादको और प्रकाशकोके अत्यन्त कृतज्ञ है, जिनकी रचनाओ, सम्पादित ग्रंथो और प्रकाशनोमे शेरोसुखनके निर्माणमे सहायता या अनुभूति मिली है।

डालमियानगर (बिहार) —गोयलीय

१५ जून १९५१

अनुक्रमणिका

शायर, लेखक, विशेष व्यक्ति

आ

इ

ई

उ

ए

औ

ग

च

ज

स

देश, प्रान्त, शहर

दिल्ली-लखनऊका उल्लेख बहुत ही अधिक हुआ है, इसलिए इन दोनों शहरोंकी पृष्ठ-संख्या नहीं दी गई है।

पहाड़-नदी

भाषा

अरबी-फारसी, हिन्दी-उर्दूके उल्लेखोसे पुस्तक भरी पड़ी है। अतः इन शब्दोकी पृष्ठ संख्या देना भी उचित नही समझा।

ग्रन्थ

लोकमत

पुस्तके हर दृष्टिसे सुन्दर और उपादेय है।

—सम्पूर्णानन्द

ऐसे सुन्दर प्रकाशनके लिए बधाई।

—मैथिलीशरण गुप्त

भारतीय ज्ञानपीठ बहुत अच्छा काम कर रहा है। भगवान् करे आपको खूब सफलता हो।

—सुन्दरलाल

प्राचीन जैन-कहानियाँ और जैन-शासनको मैंने बहुत पसन्द किया।

—वासुदेवशरण अग्रवाल

ज्ञानपीठ द्वारा भारतीय ज्ञानके प्रकाशनमे बहुत उपयुक्त वृद्धि होगी। हमारे देशकी ज्ञान-ज्योतिमे उससे मूल्यवान् वृद्धि होगी।

—जिनविजय मुनि

भारतीय ज्ञानपीठ काशीका सकल्प और जो कृतियाँ प्रकाशनार्थ तैयार हो रही हैं, उन्हे देखकर बड़ा सन्तोष हुआ।

—राहुल सांकृत्यायन

प्रकाशन बहुत सुन्दर हुआ है, सामग्री भी स्तुत्य है।

—हीरालाल जैन

इसमे कोई सन्देह नही कि पुस्तके बहुत उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

ज्ञानपीठके प्रकाशनके दर्शनमात्रसे हृदय प्रफुल्लित हो गया।

—के० भुजबली शास्त्री

आप जिस दृष्टिकोणसे प्रकाशन क्षेत्रमे उतर रहे है, उसका हार्दिक स्वागत है।

—रामप्रताप त्रिपाठी

ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित पुस्तके पढकर मुझे वड़ी प्रसन्नता हुई। पुस्तकोंके विषय और उनके सिद्धहस्त अधिकारी लेखक दोनोका समुचित चुनाव ग्रन्थमालाके उत्कृष्ट उद्देश्यके अनुकूल ही हुआ है। साम्प्रदायिक सकुचित भावनाके स्थानमे पुस्तकोका विशुद्ध सास्कृतिक दृष्टिकोण उनकी उपयोगिता और महत्त्वके क्षेत्रको और भी वढा देता है। आशा है यह ग्रन्थमाला राष्ट्रभाषा हिन्दीके लिए एक गौरवकी वस्तु होगी और हिन्दी संसार इसका समुचित आदर करेगा। हम हृदयसे इस योजनाका स्वागत करते हुए उसकी पूर्ण सफलताके लिए शुभ कामना करते है।

—मंगलदेव शास्त्री

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि यह ज्ञानपीठ इन तीनो कार्यो (प्राचीन ग्रन्थ सम्पादन, सकलन, लोकोदयकारी नूतन निर्माण) को समान श्रद्धाके साथ करना चाहता है।

—आनन्द कौसल्यायन

इस सस्थाके उद्देश्य वहुत उदार है। मेरा सद्भाग्य है कि मैं अपने जीवनमे ही अपनी इच्छाके अनुरूप इस सस्थाका उदय देख सका।

—नाथूराम प्रेमी

पुस्तकोकी छपाई अतीव सुन्दर और स्वच्छ शुद्ध है। अन्तरग और वहिरग तन-मन-नयनके लिए आनन्दप्रद और शान्तिदायक है।

—शिवपूजनसहाय

आपकी आयोजनासे मुझे पूर्ण सहानुभूति है।

—बच्चन

सभी पुस्तके महत्त्वपूर्ण है। ज्ञानपीठ साहित्यकी वडी सेवा कर रहा है।

—अमरनाथ झा

पुस्तकोकी छपाई सफाईके विषयमे कहना ही क्या है। वहुत ही सुन्दर है। यहाँ तक कि मेरे-जैसे सुसंस्कृत कहलानेवाले व्यक्तिको भी ईर्ष्या हो सकती है कि मेरे ग्रन्थ भी इतने ही अच्छे क्यो न छपे। आजकल-के जमानेमे जव कागजकी इतनी कमी है, ऐसे सुन्दर प्रकाशनको नज़र लग सकती है।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

[अक्टूबर १९५० में संशोधित और परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण]

शेर-ओ-शायरी

[उर्दूके सर्वोत्तम १५०० शेर और १६० नज़्में]

प्राचीन और वर्तमान कवियोंमें सर्वप्रधान
लोकप्रिय ३१ कलाकारोंके मर्मस्पर्शी पद्योंका संकलन
और उर्दू-कविताकी गति विधिका
आलोचनात्मक परिचय

प्रस्तावना-लेखक—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन—

"शेरोशायरीके छः सौ पृष्ठोंमें गोयलीयजीने उर्दू-कविताके विकास और उसके चोटीके कवियोंका काव्य-परिचय दिया है। यह एक कवि-हृदय, साहित्य-पारखीके आधे जीवनके परिश्रम और साधनाका फल है। हिन्दी-को ऐसे ग्रन्थोंकी कितनी आवश्यकता है, इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं। उर्दू-कवितासे प्रथम परिचय प्राप्त करनेवालेके लिए इन बातोंका जानना अत्यावश्यक है। गोयलीयजी जैसे उर्दू-कविताके मर्मज्ञका ही यह काम था, जो कि इतने संक्षेपमें उन्होंने उर्दू छन्द और कविताका चतुर्मुखीन परिचय कराया। गोयलीयजीके संग्रहकी पंक्ति-पंक्तिमें उनकी अन्तर्दृष्टि और गम्भीर अध्ययनका परिचय मिलता है। मैं तो समझता हूँ इस विषयपर ऐसा ग्रन्थ वही लिख सकते थे।"

'कर्मयोगी'के सम्पादक श्री सहगल—"वर्षोंकी छानबीनके बाद जो दुर्लभ सामग्री श्री गोयलीयजी भेंट कर रहे हैं, इसका जवाब हिन्दी संसारमें चिराग लेकर ढूँढनेसे भी न मिलेगा, यह हमरा दावा है।"

डॉ० अमरनाथ झा—"शेरोशायरी बहुत अच्छी पुस्तक है। इसके पढ़नेसे उर्दू-कविताका अच्छा ज्ञान होता है। रचयिता बधाईके पात्र हैं।"

मूल्य आठ रु०

[अगस्त १९५० में प्रकाशित]

मिलनयामिनी

श्री बच्चनजीकी नवीनतम कृति

मिलन यामिनीमे जीवनकी एक प्रबल उद्दाम प्रेरणाका कलापूर्ण चित्रण तो है ही, इसमे हमे एक कलाकारके अन्तस्तलकी और विकसित व्यक्तित्वकी निकटतम झाँकी मिलती है।. मिलन यामिनीके पीछे एक ऐसे कविका हृदय ह जिसने जीवनके विभिन्न पहलुओको निर्द्वन्द्व होकर अत्यन्त निकटसे देखा है। जिसने ससारकी प्रतिक्रियाओसे सघर्ष किया है, जो प्राप्यके लिए तपा है और खपा हैं, तथा जिसकी अनुभूतिने सागरकी गहराइयाँ और शिखरोकी ऊँचाइयाँ नापी है। अभिशापका भी वरदानकी तरह झेलता, निशाओको निमत्रण देता, एकान्त सगीतमे अन्तरकी आकुलताको उंडेलता हुआ कवि एक दिन उस मजिलपर पहुँचा, जहाँ सतरंगिनीकी आभा और आकर्षण उसके प्राणोपर छा गये। मिलन-यामिनी उसी जीवन-यात्रा और जीवन-साधनाकी एक परितृप्तिपूर्ण मजिल है। मूल्य चार रु०

[द्वियीय संस्करण जुलाई १९५० में प्रकाशित]

मुक्तिदूत

श्री वीरेन्द्रकुमार

श्री जैनेन्द्रकुमार—

"कथा अत्यन्त करुण है। लिखा भी उसे उतनी ही आस्था और आर्द्रतासे गया है। इसकी भापा और वर्णनका वैभव मुग्ध कर देता है। इतना सचित्र और मनोरम वर्णन हिन्दीमे मैंने अन्यत्र देखा है, ऐसा याद नही पडता। मोतियोकी लड़ी-से वाक्य जहाँ-तहाँ मिलते है। मन उनकी मोहकता और कोमलतापर गल-सा आता है। प्रसादजीके वाद यह शोभा और श्री, गद्यमे मैंने वीरेन्द्रमे ही पाई। मृदुता और रिजुता वल्कि चाहे कुछ विशेष ही हो। हिन्दीकी ओरसे इस 'मुक्तिदूत' के दानपर मैं वीरेन्द्र-का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।" मूल्य पाँच रु०

[मार्च १९५१ में प्रकाशित]

गहरे पानी पैठ

[सूक्तिरूपसें ११८ मर्मस्पर्शी कहानियाँ]

श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय

गुरुजनोके चरणोंमें बैठकर जो सुना.

इतिहास और धर्मग्रन्थोमें जो पढ़ा.

और हियेकी आँखोसे जो देखा.

वही जीवनभरका अध्ययन और अनुभव लेखकने कागजपर बखेर दिया है। प्रवचनो और व्याख्यानोमे उदाहरण स्वरूप दी जानेवाली श्रेष्ठतम आख्यायिकाएँ।

मूल्य ढाई रु०

[मार्च १९५१ में प्रकाशित]

ज्ञानगंगा

[संसारके महान् साधकोकी सूक्तियोंका अक्षय भण्डार]

श्री नारायणप्रसाद जैन

इन सूक्तियोको पढकर पता चलता है कि मनुष्यके जागरित मनमे पृथ्वीके विभिन्न खण्डोमे रहकर अनन्त युगोतक जीवनसे जूझकर और जीवनको अपनाकर अपने अनुभव द्वारा सत्यको किस प्रकार प्राप्त किया है और उसे किस अमर वाणीमे व्यक्त किया है। यह मानव-सन्ततिका अक्षय भंडार और अखण्ड उत्तराधिकार है। यहाँ देश, काल, जाति और भाषाकी सीमाओसे परे सारा विश्व ज्ञानके प्रकाशसे उद्भासित सत्यके बलसे अनुप्राणित और सौन्दर्यके आकर्षणसे एकाकार प्रतीत होता है। ज्ञानकी यह कितनी बडी करामात है कि वह मानव-मात्रमे भेद ही उत्पन्न नहीं करता, जीवनकी मौलिक एकताका आधार साक्षर वाणीमे व्यक्त करता है और इतिहासके पृष्ठोपर अमरत्वकी छाप लगा देता है।

मूल्य छ रु०

[फरवरी १९५१ में प्रकाशित]

पंच-प्रदीप

श्री शान्ति एम० ए०

आमुख-लेखक श्री सुमित्रानन्दन पन्त लिखते हैं:--"शातिजीका कविहृदय सस्कारत स्वच्छ सुथरे कक्षके भीतर प्रतिष्ठित है, जहाँसे उनका सहज बोध भावनाके उत्थान-पतनो, सुख-दुखके मधुर-तिक्त सवेदनों तथा वाह्य जगत्के आघातों और विक्षोभोको एक स्वस्थ सयमन तथा आगे वढनेकी प्रेरणा प्रदान करता रहता है। कही भी कवयित्रीकी समर्थ भावना ऊबड-खावड धरतीकी ठोकर खाकर परास्त होती नही प्रतीत होती, और न वह भावोच्छ्वास मात्र वनकर वाष्पकी तरह हवामें उडती दिखाई देती है।. कवयित्रीकी भाषामे स्वाभाविकता, सजीवता, मधुर प्रवाह तथा शवितका सन्तुलित सौष्ठव है। वह अपने काव्य-निर्माणमे वच्चन तथा महादेवीजीकी झकारोको आत्मसात् कर उन्हे नवीन रूप प्रदान कर देती है।" मूल्य दो रु०

[फरवरी १९५१ में प्रकाशित]

मेरे बापू

श्री हुकुमचन्द्र वुखारिया 'तन्मय'

डा० रामकुमार वर्मा--

"मेरे वापूमे युग पुरुषको कविकी श्रद्धाञ्जलि समर्पित हुई है। इस श्रद्धाञ्जलिमे कविकी अनुभूति और कल्पनाके ऐसे प्रसून हे, जिनकी सुगन्धि निरन्तर पूजाकी पवित्रता लिए रहेगी। बापूका व्यक्तित्व ही काव्यका सहज विषय है। कवित्वके इस जागरणमे कविकी लेखनी सदेश-वाहिका वन गई है। ये सन्देश शताब्दियोतक गूँजते रहेगे। मूल्य ढाई रु०

वैदिक साहित्य

प्रस्तावना-लेखक :--श्री सम्पूर्णानन्दजी, शिक्षा-मन्त्री

इसके लेखक वैदिक साहित्यके प्रकाण्ड-विद्वान् श्री प० रामगोविन्द त्रिवेदी है। वैदिक साहित्य का इतना सागोपाग परिचय हिन्दी तो क्या सम्भवतया भारतकी अन्य भाषाओ मे भी उपलब्ध नही है। पुस्तकके लगभग ५०० पृष्ठों मे अबतक प्राप्त ११ सहिताओ, १८ ब्राह्मण ग्रन्थो, ९ आख्यायिकाओ और २२० उपनिषदोकी मूलज्ञानराशि और उनके सम्वन्धमे अन्य ज्ञातव्य बातोका विवेचन है। मूल्य छ रु०

सन् १९५१ की प्रकाशित पुस्तकें
मेरे बापू
महापुराण
भारतीय ज्ञानपीठ काशी
वर्द्धमान
नारायणप्रसाद जैन
गहरे पानी पैठ
गोयलीय
भारतीय ज्ञानपीठ, काशी